आर्यिका इन्दुमती अभिनन्दन ग्रन्थ

卐

पुरोवाक् :

डा० लालबहादुर जैन शास्त्री, दिल्ली

एम. ए., पी एच. डी , साहित्याचार्य, न्याय-काव्यतीर्थ

☼

सम्पादक :

डा० चेतनप्रकाश पाटनी, जोधपुर

एम. ए , पी एच. डी ,

☼

प्रबन्ध सम्पादक :

डूंगरमल सबलावत

डेह (राज०)

卐

वी० नि० सं० २५०९ } १९८३ { वि० सं० २०३९

प्रकाशक

☼ प्रकाशन विभाग, श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा
☼ आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी अभिनन्दन समिति, कलकत्ता
☼ श्री भारतवर्षीय शान्ति वीर दिगम्बर जैन सिद्धान्त संरक्षिणी सभा, श्री महावीरजी

卐

प्रतियां : २०००

卐

मूल्य
५१)

卐

मुद्रक—
पाँचूलाल जैन
कमल प्रिन्टर्स
मदनगंज–किशनगढ़

यदर्चाभावेन प्रमुदितमना दर्दुर इह,
क्षणादासीत्स्वर्गी गुणगणसमृद्धः सुखनिधिः ।
लभन्ते सद्भक्ताः शिवसुखसमाजं किमु तदा
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु नः ।।

पण्डित भागचन्द्र/महावीराष्टक

वन्देऽहं चन्द्रसागरं

गुप्तित्रयं समितियुक्तमहाव्रतानि,
धृत्वा त्रयोदशविधं मुनिरूपधर्मं ।
कर्मारिभेदनविधौ निशितं कुठारं,
श्रीचन्द्रसागरगुरुं प्रणमामि भक्त्या ।।

* * *

य. संस्तुतस्तु न चकभू कदापि तोषं,
वा निन्दकेषु विदधे न कदापि रोषं ।
सर्वेष जीवगणकेषु दयांदधानं,
श्री चन्द्रसागरगुरु प्रणमामि भक्त्या ।।

* * *

घोरोपसर्गविजयी खलु शास्त्रवेत्ता,
ध्यानीव्रती गुणनिधिस्तु हितोपदेशी ।
दुःखाब्धितस्तरति तारयतीतरान्यः,
त चन्द्रसागरगुरुं प्रणमामि भक्त्या ।।

* * *

ग्रन्थानधीत्य सकलान् श्रुतसारभूतान्,
बोधं विधाय शिवसौख्यकर च शुद्धं ।
योऽभूद् दृढस्तपसि निश्चल भावयुक्तः,
त चन्द्रसागरगुरुं प्रणता सुपार्श्वा ।।

आर्यिका इन्दुमती अभिनन्दनग्रन्थ :

दृढ़ तपस्वी, आर्ष मार्ग के कट्टर पोषक, निर्भीक वक्ता,

आगम मर्मस्पर्शी, सत्यान्वेषी, तारण तरण

आचार्यकल्प १०८ श्री चन्द्रसागर महाराज

जन्म :	मुनि दीक्षा	समाधि
माघ कृष्णा त्रयोदशी	मार्गशीर्ष शुक्ला १५	फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा
वि० सं० १९४०	वि० सं० १९८६	वि० सं० २००१

समर्पण

✲✲

जिनशासन प्रभाविका, सन्मार्ग प्रकाशिका,

सफल संघ-सञ्चालिका,

दृढ़ अनुशासिका,

निर्भीक, स्पष्ट वक्ता

उदारचरिता

गुरुभक्तिपरायणा

सत्यान्वेषी

परम करुणाशीला

वात्सल्य परिपूर्णा

आर्यारत्न

परम पूज्य इन्दुमती माताजी के

पुनीत कर-कमलों में

सविनय

सादर समर्पित

जिनशासन प्रभाविका, सिद्धान्त संरक्षिका, तपोनिधि, अध्यात्ममूर्ति, परम कारुण्यशीला

परम पूज्य आर्यिकाश्री इन्दुमती माताजी

जन्म	क्षुल्लिकादीक्षा	आर्यिकादीक्षा
वि. स १९६२	वि. स २०००	वि स २००६
डेहू–नागौर	कसाबखेड़ा	नागौर (राजस्थान)

प्रकाशन समिति की ओर से

☸

परम पूज्य १०५ वयोवृद्ध तपस्विनी गणिनी आर्यिका श्री इन्दुमती माताजी का आर्यिका संघ बहुख्यात है। आपने अपनी शिष्याओं—आर्यिका सुपार्श्वमतीजी, आर्यिका विद्यामतीजी, आर्यिका सुप्रभामतीजी, सहित विक्रम संवत् २०२६ का वर्षायोग महानगर कलकत्ता में सम्पन्न किया था। वहा आपके विराजने से जैनधर्म, दर्शन और संस्कृति की महती प्रभावना हुई थी। तभी धर्मनिष्ठ श्रावकों के मन में यह बात भी आई कि यदि यह आर्यिका संघ भारत के पूर्वाञ्चल मे—आसाम, नागालैण्ड आदि प्रदेशों में विहार करे तो जैन धर्म का और जैन संस्कृति का सुन्दर प्रचार-प्रसार हो सकता है। तदनुरूप योजना बनी। पूज्य माताजी इन्दुमतीजी द्वारा होने वाली धर्मप्रभावना को देख कर सुश्रावकों के मन मे असीम भावोल्लास जाग्रत हुआ और यह भावना बनी कि इनका जितना अभिनन्दन किया जाए, कम है; जितनी प्रशस्ति गाई जाए उतनी थोड़ी है। यह विचार भी आया कि माताजी के अभिनन्दन रूप मे अपने सन्तोष के लिए एक सुन्दर सा ग्रंथ प्रकाशित कर अपने श्रद्धासुमन समर्पित किये जांय।

सुश्रावको की इस भावना को मैंने आर्यिका सुपार्श्वमतीजी के सम्मुख वाणी दी और करबद्ध अनुरोध किया कि हमारी इस भावना को मूर्त रूप देने मे आपका सहयोग अपेक्षित है। पूज्य इन्दुमतीजी का और आपका वर्षों का साथ है अतः आप माताजी का जीवनवृत्त लिख दें तो हमारा बहुत कुछ काम हो सकेगा। आर्यिका सुपार्श्वमतीजी का उत्तर था कि माताजी का जीवनवृत्त लिखने मे मुझे कोई संकोच नहीं परन्तु मेरे धर्मध्यान, स्वाध्यायादि मे अधिक व्यवधान न हो अतः आप अपनी सुविधानुसार समय निकाल कर आवें तो मैं सम्पूर्ण जीवनवृत्त लिपिबद्ध करा दूंगी। मैंने तुरन्त हामी भरी। उस समय संघ बारसोई में विराज रहा था, वहीं इस शुभकार्य को प्रारम्भ किया, शुभस्य शीघ्रम्। इसे एक सयोग ही समझना चाहिए कि पूज्य इन्दुमती माताजी जब वे मोहनी बाई थीं, उनका विवाह यही बरसोई मे सम्पन्न हुआ था और कुछ माह पश्चात् वैधव्य की स्थिति भी यही बनी थी। विवाह से दो माह पूर्व भागलपुर में सम्पन्न हुई पचकल्याणकप्रतिष्ठा में तीर्थङ्कर की माता की सेवा करने वाली ५६ कुमारिकाओं मे से एक मोहनी बाई भी थी। बारसोई में प्रारम्भ हुआ लेखन कार्य कानकी, किशनगंज (स० २०३१) आदि स्थानों पर कुछ आगे बढ़ा। अनन्तर संघ ने आसाम की ओर विहार किया और गौहाटी (सं० २०३२), डीमापुर (स० २०३३), विजयनगर (स०

२०३४), कानकी (सं० २०३५), भागलपुर (स० २०३६) आदि स्थानो पर चातुर्मास किये। मैं समय-समय पर संघ मे जाता रहा और मैने जीवनवृत्त लिपिबद्ध करने का काम जारी रखा। इस अचल में आर्यिका सघ के पदविहार से जैन धर्म की जो अभूतपूर्व प्रभावना हुई है वह शब्दो मे नही आकी जा सकती। इन स्थानो के व्यक्तियो की लेखनी से लिपिबद्ध किये गये संस्मरणो से आपको उसकी झलक मात्र ही मिल सकती है। जिस क्षेत्र मे शताधिक वर्षों से दिगम्बर जैन साधुओ का गमन नहीं हुआ था, उस अचल मे पूज्य इन्दुमती माताजी के नेतृत्व मे सघ ने विहार कर हजारों लोगो को अहिंसा धर्म मे प्रवृत्त किया है, मद्य-मांस, रात्रि भोजन का त्याग कराया है, चैत्यालयो की स्थापना करवाई है और विशाल जिनबिम्ब प्रतिष्ठा महोत्सव भी सम्पन्न कराये हैं।

मैंने जीवनवृत्त तो लिपिबद्ध कर लिया परन्तु इसके अतिरिक्त भी तो सामग्री चाहिये थी; सघ के चातुर्मास-स्थलों पर जहां भी जाता वहा के श्रावको को सस्मरण, विनयाजलि, कविता, लेख आदि के लिए भी प्रेरणा करता; इस आशय की विज्ञप्ति जैन-पत्रो मे भी निकलवाई परन्तु बहुत ही कम सामग्री जुट पाई। 'ग्रन्थ' के प्रकाशन हेतु अनेक महानुभावो से पत्रो के माध्यम से तथा व्यक्तिगत रूप से भी सम्पर्क स्थापित किया पर सन्तोषप्रद सहयोग न मिलने से आशा-निराशा के हिण्डोले मे झूलता रहा तथापि मैंने व्यक्तिगत प्रयास करना बन्द नही किया।

साधर्मी बन्धुओ से विचार-विमर्श कर दिनाक २५ जुलाई, १९८० के दिन कलकत्ता मे श्रीमान् माणकचन्दजी सा० पाटनी के निवास स्थान पर उन्ही की अध्यक्षता मे एक बैठक आयोजित की गई। उसमे ग्यारह महानुभावो ने भाग लिया। श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के अध्यक्ष श्रीमान् निर्मलकुमारजी सेठी भी उपस्थित थे। सर्व सम्मति से पूज्य इंदुमती माताजी के अभिनन्दन का और उस अवसर पर अभिनन्दन ग्रथ प्रकाशित करके समारोह पूर्वक उन्हे समर्पित करने का निर्णय लिया गया। सम्पूर्ण कार्यक्रम को सुचारुरूप से गति देने के लिये आर्यिका १०५ श्री इदुमती माताजी अभिनन्दन समिति का गठन किया गया। पदाधिकारी इस प्रकार मनोनीत हुए—

अध्यक्ष	:	श्री माणकचन्द पाटनी, कलकत्ता
उपाध्यक्ष	:	श्री निर्मलकुमार सेठी, सीतापुर
		श्री डूगरमल बाकलीवाल, खारूपेटिया
मत्री (एव ग्रथ प्रकाशन)	:	श्री डूगरमल सबलावत, डेह
सह मत्री		श्री भागचन्द गगवाल, कलकत्ता
		श्री वीरेन्द्रकुमार जैन, कलकत्ता
कोषाध्यक्ष	:	श्री निर्मलकुमार सरावगी, कलकत्ता
सह कोषाध्यक्ष	:	श्री जयचन्दलाल सबलावत

सबने आर्थिक सहयोग देने और दिलवाने का आश्वासन भी दिया। यह भी निर्णय लिया गया कि भारत के सम्पूर्ण दिगम्बर जैन समाज से सहयोग प्राप्त किया जाए तथा विद्वानो व श्रीमानो से सम्पर्क कर जीवनीपरक ऐतिहासिक महत्त्व का ग्रथ प्रकाशित किया जाए। मत्री होने के नाते इन निर्णयो को कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व मुझ पर आ पडा।

इस बैठक के बाद कार्य मे गति आई। मैं कलकत्ता से सम्मेदशिखरजी गया जहा आर्यिका संघ विराज रहा था। ग्रथ के सम्बन्ध मे पूज्य आर्यिका सुपार्श्वमतीजी से विचार विमर्श कर अब तक एकत्र हुई सामग्री लेकर मैं डेह आ गया। काम बहुत भारी था, जिम्मेदारी बडी थी। ग्रथ प्रकाशन सम्बन्धी सूचना पुन. जैन-पत्रो मे निकलवाई। सैकडो व्यक्तिगत पत्र भी लिखे, सामग्री आना शुरू हुआ, अब समस्या आई इसके सम्पादन की। सम्पादन हेतु समाज के अनेक परिचित विद्वानो से पत्र व्यवहार किया परन्तु किसी भी विद्वान का सन्तोषप्रद उत्तर प्राप्त न होने से चित्त मे अशान्ति, आकुलता पैदा हो गई। कुछ दिनो तक बडा उद्विग्न रहा–समझ नही पा रहा था कि क्या करूं? कार्य मे शिथिलता आ गई। तभी क्षुल्लक १०५ श्री सिद्धसागरजी महाराज लाडनूं वालो के दर्शनो का सौभाग्य हुआ। पूज्य आर्यिका १०५ इदुमती माताजी के अभिनन्दन ग्रथ की चर्चा मैंने उनसे की और सम्पादन-प्रकाशन की अपनी समस्याओ का जिक्र भी किया। कुछ क्षणों तक विचार करने के बाद वे बोले—(स्व०) मुनिपु गव समतासागरजी महाराज की गृहस्थावस्था के सुपुत्र डॉ० चेतनप्रकाश जी पाटनी, जोधपुर विश्वविद्यालय मे पढाते है, वे योग्य विद्वान है। यदि वे इस कार्य को हाथ मे ले लें तो आपका काम आसानी से और बढिया ढग से हो सकता है। मैंने कहा कि उनका नाम तो बहुत सुना है। जैन पर्वो पर आकाशवाणी से समय-समय पर प्रसारित होने वाली उनकी वार्ताए भी सुनी है, उनके सम्पादित ग्रथ भी देखे हैं परन्तु उनसे परिचय बिल्कुल भी नहीं। वे बोले—एक बार मिलो तो सही, परिचय मे कितनी देर लगती है, हमारा नाम लेना। महाराजश्री ने मुझे बहुत आश्वस्त किया तो भी मेरा मन साक्षी नही दे रहा था कि यह कार्य श्री चेतनप्रकाशजी कर देंगे।

मैं उधेड़बुन मे डेह लौट आया। ८-१० दिन और निकल गए तभी व्यक्तिगत आवश्यक कार्य मे मई ८१ मे जोधपुर जाना हुआ। क्षुल्लक सिद्धसागरजी महाराज से हुई चर्चा मस्तिष्क मे थी ही; विचार किया कि चेतनप्रकाशजी से मिलें तो सही। मध्याह्न मे ही एक साथी सहित उनके आवास पर पहुचा। घटी बजाई, स्वय पाटनीजी ने ही द्वार खोल कर स्वागत किया। बैठक मे बैठने के बाद परस्पर परिचय हुआ। मैंने आर्यिका सघ के सम्बन्ध मे चर्चा की। आप बोले—संघ के सम्बन्ध मे पढा-सुना तो बहुत है परन्तु साक्षात् दर्शन-मिलन नही हुआ। मैंने 'अभिनन्दन ग्रंथ' के सम्बन्ध मे चर्चा की और ग्रंथ का सम्पादन भार स्वीकार करने के लिये अनुरोध किया। आप उन दिनों विश्वविद्यालय की परीक्षाओ के सचालन मे व्यस्त थे। उत्तरपुस्तिकाओ के मूल्याङ्कन हेतु

आपको जयपुर भी जाना था और संशोधन हेतु एक ग्रंथ भी आपकी टेबिल पर पड़ा था। आपने अपनी सीमाओं का उल्लेख करते हुए अपनी परिस्थिति बताई और कहा कि मैं कोई विशिष्ट विद्वान् नहीं हूं, अच्छा हो यह भार आप किसी योग्य विद्वान् को सौंपे। मैंने उनसे सारी स्थिति स्पष्ट कर पुन अनुरोध किया तो उन्होंने इस गुरुतर भार को वहन करने की अपनी स्वीकृति दे दी। उनकी स्वीकृति पाकर मुझे बड़ा चैन मिला मानो मेरे कन्धों का बोझ उन्होंने ले लिया हो। अतिशय धन्यवाद देकर मैंने उनसे विदा ली और डेह पहुच कर शीघ्र ही सारी सामग्री उनको भेज दी। उन्होंने इस काम को प्राथमिकता देकर पूर्ण किया और सारी विद्यमान सामग्री को संशोधित-सम्पादित कर स्वय सारी प्रेस कापी की, जिसे लेकर मैं दिसम्बर १९८१ मे पूज्य माताजी सुपार्श्वमतीजी के पास शिखरजी पहुंचा; उन्हे सारी सामग्री का अवलोकन कराया, उनके सुझावानुसार यत्र-तत्र किंचित् परिवर्तन भी किये और तदनन्तर जनवरी १९८२ मे ग्रथ प्रेस मे दे दिया गया।

अभिनन्दन-समिति के निर्णयानुसार ग्रन्थ की एक हजार प्रतिया मुद्रित होनी थी परन्तु श्रीमान् निर्मलकुमारजी सेठी, अध्यक्ष, श्री भा. दि जैन महासभा, श्रीमान् हरकचन्दजी सरावगी, अध्यक्ष अ० भा० शान्तिवीर दि० जैन सिद्धान्तसरंक्षिणी सभा तथा श्रीमान् पूनमचन्दजी गंगवाल, झरिया ने सुझाव दिया कि ग्रन्थ कम से कम २००० की सख्या मे छपे ताकि विभिन्न प्रदेशो मे जहा आर्यिका सघ का विहार हुआ है वहा तथा देश के विभिन्न पुस्तकालयो मे, जिनालयो के शास्त्र भण्डारो मे, मघो मे ग्रथ की अपेक्षित प्रतिया दी जा सकें। मैंने तुरन्त प्रस्ताव रखा कि तब ये सस्थाए भी अभिनन्दन समिति का सहयोग क्यो न करे? हर्ष का विषय है कि श्रीमान् हरकचन्दजी सरावगी ने सहर्ष सहयोग देना स्वीकार किया और कहा कि अ० भा० शान्तिवीर दि० जैन सिद्धान्त सरंक्षिणी सभा भी ग्रन्थ-प्रकाशन मे सहयोग करेगी, उसे भी ग्रन्थ का प्रकाशक लिखा जाए। श्री भा० दि० जैन महासभा के ४ मार्च, १९८२ को भिण्डर (उदयपुर) मे सम्पन्न हुए अधिवेशन मे श्री धर्मचन्द मोदी (ब्यावर) के प्रस्ताव पर पूज्य आर्यिका इदुमती माताजी के अभिनन्दन ग्रन्थ की योजना का स्वागत एव अनुमोदन किया गया (जैनगजट मगलवार २३ मार्च, ८२)। अध्यक्ष महोदय ने महासभा के प्रकाशन विभाग के माध्यम से प्रकाशन मे सहयोग की बात कही।

इस प्रकार ग्रन्थ प्रकाशन मे अभिनन्दन समिति के अतिरिक्त सि. स. सभा, महासभा व अहिंसा प्रचार समिति, कलकत्ता जैसी सस्थाओ ने सहयोग किया है। मैं इन सबका आभारी हू।

ग्रन्थ के सभी रचनाकारो को मैं हार्दिक साधुवाद देता हूं। विशेष रूप से परम पूज्य आर्यिका श्री सुपार्श्वमतीजी का अत्यन्त अनुगृहीत हू जिन्होंने ग्रन्थ रचना व प्रस्तुतीकरण मे हमारा मार्गदर्शन कर अभूतपूर्व सहयोग प्रदान किया। अन्य महानुभावो मे मै श्रीमान् लक्ष्मीचन्दजी छाबडा, गौहाटी (भूतपूर्व अध्यक्ष, महासभा), श्रीमान् निर्मलकुमारजी सेठी, सीतापुर (वर्तमान अध्यक्ष,

महासभा), श्रीमान् गणपतरायजी सरावगी गौहाटी, श्रीमान् किशनलालजी सेठी डीमापुर, श्री राजकुमारजी सेठी डीमापुर, श्री चैनरूपजी बाकलीवाल डीमापुर, श्री पूनमचन्दजी गंगवाल भरिया श्री जयचन्दलालजी गंगवाल इम्फाल, श्री उम्मेदमलजी पाण्ड्या दिल्ली, श्री पुखराजजी पाण्ड्या गोरखपुर, श्री अमरचन्दजी पहाड़िया कलकत्ता, श्री तिलोकचन्दजी कोठारी कोटा, श्री मन्नालालजी बाकलीवाल इम्फाल व श्री तनसुखलालजी काला, बम्बई का उनके हार्दिक सहयोग के लिये चिर आभारी हूं।

ग्रन्थ के लिए सामग्री सकलन व प्रकाशन में डेह, तिनसुकिया व बारसोई समाज का मुझे विशेष सहयोग मिला। ब्र० मदीबाई, ब्र० मैनाबाई व ब्र० प्रमिला बाई से भी मुझे कई विस्मृत सूचनाए प्राप्त हुई। एतदर्थ मैं इन सबका भी आभारी हू। अर्थ सहयोग के लिये मैं सभी उदारमना साधर्मी बन्धुओ के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हू। सहयोगियों की सूची ग्रन्थ के अन्त में मुद्रित है।

'जैन दर्शन' के सम्पादक डा० लालबहादुरजी शास्त्री ने ग्रन्थ का पुरोवाक् लिख कर भेजा, उसके लिए मैं उनका अत्यन्त अनुगृहीत हूं। ग्रन्थ के सफल सम्पादन के लिए मैं यशस्वी सम्पादक डा० चेतनप्रकाशजी पाटनी का अभिनन्दन करते हुए उन्हे हार्दिक धन्यवाद देता हूं। ग्रन्थ का वर्तमान रूप उन्ही की सन्तुलित सूझबूझ का सुपरिणाम है। ब्लाक निर्माण के लिए मैं श्री प्रतापचन्दजी पाटनी (जुबली ब्लाक्स, जयपुर) का व ग्रन्थ मुद्रण के लिये श्रीमान् पाँचूलालजी बैद (कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज–किशनगढ़) का अत्यन्त आभारी हूं। श्री पाँचूलालजी को मैं किन शब्दों में धन्यवाद दूँ। उनकी सुरुचि व सहयोग के बिना यह ग्रन्थ आपके हाथों में पहुंच ही नहीं सकता था। वे विशेष धन्यवादार्ह हैं।

यह ग्रन्थ आपके हाथों में ६-७ मास पूर्व ही पहुंच सकता था परन्तु गृहस्थी एवं व्यापार सम्बन्धी मेरी उलझनो तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी व्यवधानों के कारण मैं ही इसे पूर्णता प्रदान करने में असमर्थ रहा, इसके लिये मैं आप सबसे क्षमायाचना करता हूं। इति शुभम्

डूँगरमल सबलावत
प्रबन्ध सम्पादक एव मंत्री, अभिनन्दन समिति

❋

आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी

[संक्षिप्त जीवन झाँकी]

जन्म	:	वि० स० १६६२
जन्म स्थान	:	डेह्–नागौर (राजस्थान)
जन्म नाम	:	मोहनी बाई
जाति	:	खण्डेलवाल
गोत्र	:	पाटनी
वर्ण	:	वैश्य
पिता श्री	:	चन्दनमल पाटनी
मातु श्री	:	जड़ाव बाई
विवाह	:	वि० स० १६७५, ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष, बारसोई
पति श्री	:	चम्पालाल सेठी
वैधव्य	:	वि० स० १६७५, पौष कृष्ण पक्ष
संयम ग्रहण	:	**द्वितीय प्रतिमा** : सुजानगढ़ वि० सं० १६६१
	:	**सप्तम प्रतिमा** : नागौर
क्षुल्लिका दीक्षा	:	आश्विन शुक्ला १० वि० सं० २००० कसावखेडा (महाराष्ट्र)
क्षुल्लिका दीक्षा गुरु	:	आ० क० श्री चन्द्रसागरजी महाराज
आर्यिका दीक्षा	:	आश्विन शुक्ला १० वि० सं० २००६, नागौर
आर्यिका दीक्षा गुरु	:	आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज
अद्यावधि कुल वर्षा योग	:	४० चालीस
विहार प्रान्त	:	राजस्थान, बिहार, कर्णाटक, महाराष्ट्र, बंगाल,
	:	म० प्र०, आसाम, उड़ीसा, नागालैण्ड

पुरोवाक्

श्री १०५ पूज्य आर्यिका माता इन्दुमतीजी के इस अभिनन्दनग्रंथ का पुरोवाक् लिखते हुए मैं जिस हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूं, उसे प्रकट करना मेरी लेखनी के बाहर है। त्याग-तपस्या के क्षेत्र मे जहां जैन साधुओं ने अपनी अप्रतिम शक्ति का उपयोग किया है वहां जैन साध्वियां भी उनसे पीछे नही रही हैं। यह बात दूसरी है कि अपनी स्त्री-पर्याय के कारण वे उस सीमा तक नही पहुंच सकती जहां तक जैन साधु पहुच जाता है फिर भी उन्होने अपनी चरम सीमा तक पहुंचने में सतत प्रयत्न किये हैं। युग के आदि मे मोक्षमार्ग का उद्घाटन भगवान आदिनाथ ने किया लेकिन इस उद्घाटन के प्रयोग मे भगवान आदिनाथ की पुत्रियों—ब्राह्मी और सुन्दरी का भी हाथ था। आदिनाथ भगवान के साथ चार हजार राजाओं ने भी दीक्षा ली थी लेकिन वे सब के सब प्रायः पथभ्रष्ट हो गये। यहां तक कि भगवान आदिनाथ का पौत्र मारीच भी भ्रष्ट हो गया किन्तु आदिनाथ की दोनों पुत्रियो ने अन्त तक आदिनाथ भगवान का साथ दिया, इतना ही नहीं बल्कि अपनी त्याग-तपस्या के बल पर वे दोनों साध्वी आर्यिका संघ की गणिनी (प्रधान) बन गई। भगवान आदिनाथ और उनके पुत्रों ने पर्याप्त मात्रा में गृहस्थ-धर्म का उपयोग कर दीक्षा ग्रहण की थी लेकिन ब्राह्मी और सुन्दरी ने विवाह तक भी नही किया। अतः कहना होगा कि दोनो कन्याओ के त्याग और वैराग्य मे अपेक्षाकृत विशेषता थी। श्रावक-श्राविकाओं मे भी देखा गया है कि प्रत्येक तीर्थङ्कर के समवसरण में श्राविकाओ की संख्या श्रावको से अधिक रहती थी अतः कहना होगा कि धर्म के आचरण में स्त्रियां पुरुषों से पीछे नहीं किन्तु आगे ही रही हैं। भविष्य में भी जब पांचवें काल का अन्त होगा, वहां तक मुनि-आर्यिका रहेंगे और कल्कि राजा जब टैक्स के रूप में मुनि-आर्यिका के प्रथम ग्रास का मूल्य ग्रहण करेगा तब दोनों ही साधु-साध्वी निराहार रह कर समाधिमरण करेंगे। इस तरह हम देखते हैं कि धार्मिक क्षेत्र मे मुनि की तरह आर्यिका भी सदा अग्रणी रही है। वर्तमान मे भी आर्यिकाओं द्वारा जो धर्म प्रचार हो रहा है वह किसी मुनि से कम नही है।

आज परम पूज्य आचार्य धर्मसागरजी और उनके संघ मे जो विशेषता है वही विशेषता पूज्य आर्यिका माता इन्दुमतीजी और उनके संघ में है। ख्याति लाभ, पूजा से परे रह कर ध्यान-अध्ययन मे ही माता इन्दुमतीजी, सुपार्श्वमतीजी आदि आर्यिकाओ का समय व्यतीत होता है। जहां तक अनुशासनशीलता की बात है माता इन्दुमतीजी स्वयं शास्त्रों से अनुशासित होकर चलती हैं और उनकी शिष्य-मण्डली माताजी से सदा अनुशासित रहती हैं। असम एवं नागालैण्ड जैसे प्रदेशो मे निर्भयता से विहार करने वाला सम्भवत यह पहला ही संघ है। आपके विहार से वहा जो अभूतपूर्व धार्मिक जागृति हुई है, वह उल्लेखनीय है। आज मुनि आर्यिकाओं की जहाँ पूजा-प्रतिष्ठा, आराधना होती है वहां कुछ बातो को लेकर उनकी आलोचना और निन्दा भी होती है किन्तु यह माता इन्दुमतीजी का संघ है जिसकी पूजा-प्रतिष्ठा, आराधना तो होती है किन्तु निन्दा या आलोचना नहीं होती। इसका स्पष्ट कारण है कि इस संघ मे लोकैषणा, आत्मप्रतिष्ठा या किसी प्रकार के अर्थसंचय की भावना नही है।

माता इन्दुमतीजी के संघ के दर्शन हमे सबसे पहले गौहाटी (आसाम) में हुए जहा आपका पहली बार पदार्पण हुआ था। वहा सुपार्श्वमती माताजी के सर्वोदयी भाषणों को सुन कर हृदय गद्गद हो गया। लोगो से जानकारी हुई कि आप इन्दुमती माताजी की शिष्या हैं और परम विदुषी हैं। हमने मन मे कहा कि द्रव्य और भाव दोनों से माता इन्दुमतीजी पार्श्ववर्ती (निकट रहने वाली) होने के कारण आपका सुपार्श्वमती नाम सार्थक है। दूसरी बार माताजी के दर्शन सम्मेदशिखर तीर्थ पर शिक्षण शिविर मे भाग लेने के अवसर पर हुआ। एक सप्ताह तक बराबर आपके नय-सुसस्कृत भाषणो को सुनने का सौभाग्य मिला। माता सुपार्श्वमती जैसी शिष्या जिनके संघ मे विराजमान हैं, उस संघ की गरिमा का क्या कहना है!

प्रस्तुत अभिनन्दनग्रन्थ मे जो सामग्री दी गई है वह सुन्दर सुवाच्य और सुसज्जित है। ग्रन्थ के प्रारम्भ मे ही परम पूज्य आचार्य धर्मसागरजी महाराज का आशीर्वाद तो पूज्य माता इन्दुमतीजी के सिर पर छत्र के समान है। माताजी के सम्बन्ध मे आचार्यश्री के ये शब्द "इन्दुमतीजी देव शास्त्र गुरु की भक्त हैं। अपने नियमों का कदापि उल्लंघन नही करती हैं; सतत सयमसाधना में संलग्न रहती हैं........" सदा के लिये एक प्रमाणपत्र के समान है। परम पूज्य आचार्य महाराज खरे वक्ता, स्पष्टवादी हैं, किसी लगाव या विलगाव के कारण किसी की निन्दा-प्रशंसा नहीं करते। जो जैसी है, उसको उसी रूप में कहते हैं। आपको स्वयं को जब अभिवन्दनग्रथ भेंट किया गया तब उसको तो आपने लिया ही नहीं; साथ ही उन साधुओ की आलोचना भी की जो किसी धार्मिक कार्य को आगे कर समाज से चंदा चिट्ठा करते हैं, मन्दिर तीर्थ आदि बनवाते हैं, ग्रन्थादि छपाते हैं। ऐसा निस्पृह और निरीह साधु यदि अपनी वीतरागता की छाया मे किसी की प्रशंसा या आलोचना करता है तो निःसन्देह वह सत्य है। शास्त्रो मे लिखा है—"वक्तु. प्रामाण्यात् वचनस्य प्रामाण्यम्" अर्थात्

वक्ता की प्रामाणिकता से ही वचनों मे प्रामाणिकता आती है। वीतरागतायुक्त व्यक्तित्व ही वक्ता की प्रामाणिकता होती है। आचार्य धर्मसागरजी की वीतरागता में किसको सन्देह हो सकता है ? अतः परम पूज्य आचार्यश्री ने जो कुछ इन्दुमती माताजी के सम्बन्ध में कहा है वह निःसन्देह प्रमाणभूत है।

ग्रंथ में माता सुपार्श्वमतीजी ने माता इन्दुमतीजी का जो जीवनवृत्त दिया है वह पठनीय और मननीय है। लोक में कहावत है—"जो होता है वह अच्छे के लिये होता है" मोहनी (माता इन्दुमती का पूर्व नाम) कन्या का दुःखद वैधव्य आर्यिका इन्दुमती रूप मे परिणत हो गया, इससे अच्छी बात और क्या हो सकती थी। वैधव्य का वह समय सभी लोगो के लिये दयनीय था और आज संयमसाधना के समय माता इन्दुमतीजी के लिये वे सभी लोग दयनीय हैं।

माता इन्दुमतीजी के बारे में कहा जाता है कि वे कठोर अनुशासनशील हैं फिर भी मातृहृदय से अछूती नही हैं गणिनी पद वस्तुतः बड़ा उत्तरदायित्वपूर्ण होता है; वह उत्तरदायित्व कठोर अनुशासन के बिना पूर्ण नहीं होता। अतः यम-नियमादि पालन कराने में कठोरता होना स्वाभाविक है फिर भी माताजी का हृदय दयाप्लावित रहता है, यह उनकी विशेषता है। वस्तुतः महान् आत्माओं में यह विशेषता होनी ही चाहिए। 'उत्तररामचरित' मे रामचन्द्रजी के विषय में ग्रथकार ने लिखा है कि—

वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि, को हि विज्ञातुमर्हति॥

अर्थात् लोकोत्तर महापुरुष वज्र से भी अधिक कठोर एवं पुष्प से भी अधिक कोमल होते हैं अतः उनके हृदय को कौन जान सकता है। यह सूक्ति उस समय कही गई है जब रामचन्द्रजी सीताजी को घर से निकालने पर आमादा थे। यह वही रामचन्द्रजी थे जो सीता के अपहरण के बाद उनके वियोग के दुःख से वृक्षों से पूछते फिरते थे कि क्या तुमने मेरी सीता को देखा है ? कहा इतना स्नेह और कहां उतनी कठोरता। यही तो लोकोत्तरता है। पूज्य माता इन्दुमतीजी भी इसी प्रकार कठोर और मृदु हृदया दोनों ही हैं अतः उनकी लोकोत्तरता में किसको सन्देह हो सकता है !

माता इन्दुमतीजी के संघ में माता सुपार्श्वमतीजी का सहयोग तो सोने में सुगन्ध की तरह है। भगवान महावीर के समवसरण में जो वर्चस्व गौतम गणधर का था वही वर्चस्व माता सुपार्श्वमती का माता इन्दुमतीजी के संघ में है। गौतम गणधर के अभाव मे ६६ दिन तक जन-साधारण का दुर्भाग्य रहा कि महावीर की दिव्यध्वनि उनको नहीं सुनाई दी, ठीक इसी प्रकार अगर संघ में माता सुपार्श्वमती न होती तो हम सभी लोग माता इन्दुमतीजी की गरिमा को समझ नहीं पाते। आज माता इन्दुमतीजी के संघ का जो कुछ गौरव है निःसन्देह उसकी आधारभूत माता

सुपार्श्वमतीजी है। जब यह कहा जाता है कि माता इन्दुमतीजी का संघ आया है तो तुरन्त दृष्टि माता सुपार्श्वमती की ओर चली जाती है और अब तो माता इन्दुमती एवं माता सुपार्श्वमतीजी में इतना अभेद हो गया है कि लोगो मे कोई माता इन्दुमतीजी का संघ कहता है तो कोई माता सुपार्श्व-मतीजी का संघ कहता है। माता सुपार्श्वमतीजी आर्यिका जगत् मे जहा शीर्षस्थ विदुषी हैं, वही उनकी प्रवचन शैली भी बेजोड है। आपका नाम सुनते ही श्रोताओं की भीड उमड पड़ती है। शङ्का-समाधान मे भी आप विचक्षण हैं। वास्तव मे, माता इन्दुमतीजी एव माता सुपार्श्वमतीजी आज चाद-सूर्य की तरह धार्मिक जगत् मे प्रकाश विकीर्ण कर रही हैं। इन्दुमतीजी तो नाम से भी 'इन्दु' अर्थात् चन्द्रमा हैं, अन्तर इतना ही है कि चन्द्रमा सकलङ्क है और माता इन्दुमतीजी पूर्णतया कलङ्कहीन है।

ग्रन्थ मे माता इदुमतीजी संघ के ३९ वर्षायोग—चातुर्मासो की चर्चा है। सभी वर्षायोगो मे माताजी द्वारा किये गये धर्म प्रचार का अद्भुत वर्णन है। माताजी की अद्भुत तप. साधना, धर्म का प्रभाव और प्रचार तथा अनेक अतिशय-चमत्कारो का बडा रोचक और प्रभावी उल्लेख किया गया है, जिसे पढ कर स्वत ही धर्म की ओर बढने की प्रेरणा मिलती है। एक व्यन्तर ने किस प्रकार संघ की रक्षा की, वह रात भर सिपाही की पोषाक पहन कर बैठा रहा और प्रात. काल होते ही कैसे गायब हो गया इत्यादि बडा रोचक एव हृदयग्राही प्रसङ्ग है। आसाम, नागालैण्ड आदि प्रदेशो मे जहा कभी दिगम्बर साधुओ का विहार नही हुआ, वहा वर्षों तक विहार कर माता इन्दुमती जी के संघ ने एक नये इतिहास को जन्म दिया है। सच तो यह है कि धर्मप्रचार और उसका स्थायित्व आज आर्यिका इन्दुमती माता जैसे संघो से ही सम्भव है जहा धर्मप्रचार मे स्वार्थ का कोई लगाव नही है, न धन एकत्र करने की हाय-हाय है, न पद ग्रहण की अभिलाषा है, न किसी सभा-संस्था के निर्माण की कामना है, न किसी जुलूस या गाडियों को इधर-उधर दौडाने की इच्छा है। कुछ लोग कहा करते है कि यदि उक्त कामो को भी किया जाए तो इसमे क्या हानि है, आखिर जो संस्थाओं का निर्माण करते हैं या चन्दा-चिट्ठा करते है तो धर्म के लिये ही तो करते हैं, अपने लिये तो करते नही फिर क्या नुकसान है ? ऐसे लोगो से हमारा कहना है कि यदि यह धर्म के लिये किया जाता है तो ये लोग फिर अष्ट द्रव्यों से भगवान की पूजा आदि क्यो नही करते ? क्यो नही भगवान का अभिषेक करते ? यदि यह कहा जाय कि इसमे आरम्भ होता है तो इन संस्थाओ के निर्माण मे मन्दिर आदि के बनवाने मे भी आरम्भ होता है फिर इसको क्यो किया जाता है ? आरम्भ के अतिरिक्त चन्दा-चिट्ठा करके संस्था आदि निर्माण करने से परिणाम भी संक्लिष्ट होते हैं; इनके रख-रखाव मे आर्तध्यान भी होता है और रौद्रध्यान भी। कल्पना कीजिए—किसी ने हजार या लाख रुपये का दान बोला। उस दान का पैसा मुद्दतो तक बार-बार मगाने पर भी नही आता तो स्वत ही आर्तध्यान होना स्वाभाविक है और कोई-कोई तो दान बोल कर भी बाद मे इन्कार कर देता है तो उस पर क्रोध भी आता है अत. रौद्रध्यान भी सम्भव है। परम पूज्य आचार्य धर्मसागरजी

के शब्दो मे चन्दा-चिट्ठा करने वाले साधु निःसन्देह साधुता से बहुत पीछे हैं। लेकिन प्रसन्नता इस बात की है कि पूज्य आर्यिका माता इन्दुमतीजी के संघ में इस प्रकार का कोई प्रसंग ही नही है। वहा तो एक वीतरागता ही साध्य है। अपने इसी साध्य की सिद्धि के लिये माता इन्दुमतीजी, माता सुपार्श्वमतीजी, माता विद्यामतीजी, सुप्रभामतीजी आदि साध्वियां एक आदर्श मार्ग को अपना रही हैं। उनके संघ से आज सर्व साधारण का जो उपकार हो रहा है वह असाधारण है। उस उपकार का बदला मात्र उनके अभिनन्दनग्रन्थ से नही चुकाया जा सकता। अगर उपकार का बदला ही चुकाना है तो हमें उनके बताये हुए मार्ग का ही अनुसरण करना होगा और वह मार्ग है त्याग मार्ग। पुत्र पिता के चरण तो छूता है पर पिता की आज्ञा का अनुसरण नही करता तो उसे सुपुत्र कैसे कहा जा सकता है? इसलिये वास्तविक स्थिति तो यह है कि हम सदाचार की ओर आगे बढ़ें।

जहां तक इन्दुमती माताजी के अभिनन्दनग्रन्थ का सम्बन्ध है, वह उनके प्रति भक्ति का ही एक प्रारूप है। इस भक्ति के रूप में हम माताजी के लिये ऐसे अनेक अभिनन्दनग्रंथ समर्पित करें तो भी कम हैं। वास्तव मे तो यह ग्रथ आज से वर्षों पहले ही समर्पण करना था लेकिन द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव सभी जब अनुकूल होते हैं तभी कार्य बनता है। इस सम्बन्ध मे श्री डूंगरमलजी सबलावत से मेरी बात हुई थी। वे कहने लगे कि "बहुत पहले निकलना तो दूर रहा, अभी निकल गया, यह क्या कम है। इस अभिनन्दनग्रन्थ के प्रति स्वय माता इन्दुमतीजी इतनी उपेक्षा रखती हैं कि सघ से पत्र का उत्तर मिलना तो दूर अनेक बार व्यक्तिगत रूप से जाने के बाद भी सूचनाएं पूरी नही मिलती; फिर जैसे-तैसे जोड़-तोड़ मिला कर हम कोई बात पूरी कर पाते हैं।" इससे मुझे यह प्रतीत हुआ कि किसी निस्पृह साधु का अभिनन्दनग्रथ निकालना भी बड़ा कठिन है।

श्री डूंगरमलजी सबलावत कठोर परिश्रमी और लगन के पक्के हैं। अनेक विघ्न-बाधाओं के होते हुए भी आपने इस ग्रथ को जिस सुन्दरता के साथ निकाला है, वह प्रशंसनीय है। ग्रथ के पाच खण्ड हैं—(१) आशीर्वचन आदि (२) चित्र माला (३) जीवनवृत्त (४) लेखमाला (५) प्रकीर्णक। सभी खण्डो में उपयोगी सामग्री है। ग्रंथ के सम्पादक डा० चेतनप्रकाशजी पाटनी का प्रयास भी सराहनीय है। उनकी देख-रेख में ग्रथ का सम्पादन हुआ है। प्रकाश्य सामग्री को आपने ग्रंथ मे अच्छी तरह संजोया है। लेखों का चयन भी सुन्दर है।

पूज्य माता इदुमतीजी को मैं पुन. पुनः नमन करता हूं। उनके आशीर्वाद से अपने आत्म-कल्याण की भावना करता हू। यह अभिनन्दनग्रंथ माताजी का नही किन्तु माताजी के उन गुणो का है जिनका आश्रय लेकर मुझ जैसा पामर प्राणी भी उनके चरणो मे आत्मसमर्पण की भावना रखता है।

—डा० लालबहादुर शास्त्री

ब्राह्मी चन्दनबालिका भगवती, राजीमती द्रौपदी,
कौशल्या च मृगावती च सुलसा, सीता सुभद्रा शिवा ।
कुन्ती शीलवती नलस्य दयिता, चूला प्रभावत्यपि,
पद्मावत्यपि सुन्दरी प्रतिदिनं, कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ।।

मनुष्य समाज की रचना में पुरुष यदि महत्त्वपूर्ण है तो स्त्री भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं। वह नर की जननी है और मातृत्व के आदर्श गौरव को प्राप्त है।

जननी परमाराध्या, जननी परमा गतिः।
जननी देवता साक्षात्, जननी परमो गुरुः॥

'स्त्री का सर्वश्रेष्ठ रूप माता है और सच मानो तो इससे मधुर, इससे सुखकर शब्द, इससे सुन्दर रूपसृष्टि संसार में कोई अन्य नहीं। संसार का समस्त त्याग, समस्त प्रेम, सर्वश्रेष्ठ सेवा, सर्वोत्तम उदारता एक माता शब्द मे छिपी पड़ी है।' मातृत्व की इस अद्वितीय विशेषता से ही समाज ने नारी को प्रथम वन्दनीय माना है।

परन्तु विविध संस्कृतियों के इतिहास का अवलोकन करें तो तथ्य कुछ भिन्न ही प्रकट होता है। सर्वत्र नारी को हीन ही स्वीकृत किया गया है। 'बाइबिल' में नारी को 'सब बुराइयों का मूल' और 'शैतान का द्वार' घोषित किया है। 'कुरान' में भी स्त्रियों को उचित स्थान नहीं दिया गया है। मुसलमान बहुविवाह को धर्मसम्मत मानते हैं; पर्दे की प्रथा का श्रेय भी इस्लामी सभ्यता को है। उत्तर कालीन वैदिक परम्परा में भी नारी को गौरवपूर्ण स्थान नहीं मिला, उन्हें धर्मशास्त्र सुनने तक का अधिकार नहीं दिया गया और मनु महाराज ने तो यह घोषणा कर दी कि—

"प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः सन्तानार्थं च मानवा....।

× × ×

"उत्पादनमपत्यस्य, जातस्य परिपालनम्।
प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम्॥मनु० ९/२७॥

शङ्कराचार्य ने भाषित किया कि "द्वारं किमेकं नरकस्य ? नारी।"

भगवान महावीर के संघ में अनेकानेक स्त्रियों को दीक्षित देख कर और उनके द्वारा श्राविका, क्षुल्लिका और आर्यिका के व्रतो के अनुष्ठान द्वारा होने वाली धार्मिक उदारता को देख कर शिष्य आनन्द ने अपने गुरु बुद्ध से पूछा कि आप अपने सघ मे स्त्रियों को दीक्षित क्यों नहीं करते तो उन्होंने बड़ी आनाकानी की। बाद में जब परिस्थितियो से विवश होकर भिक्षुणीसंघ बनाने का आदेश भी दिया तो उसके नियमों में भिक्षुसघ से भेद भी कर दिये और उन पर कड़ा अनुशासन भी लगा दिया। बुद्ध ने भी स्त्रियों की निन्दा ही की है और पुरुषो को उनसे सचेत रहने का उपदेश दिया है। वस्तुतः उस समय वैदिक संस्कृति का बोलबाला था। उसके खिलाफ प्रवृत्ति करना साधारण काम नहीं था परन्तु तीर्थङ्कर महावीर ने उसे कार्यरूप में परिणत कर नारी का समुद्धार किया। श्रमण संस्कृति में आंशिक रूप से नारी का प्रभुत्व बराबर कायम रहा।

वैदिक संस्कृति की इस सकीर्ण विचारधारा के प्रभाव से यद्यपि श्रमण संस्कृति भी अछूती नहीं रही, इस धर्म के अनुयायियों ने भी आगमों व पुराणादि ग्रंथों में नारी को विषबेल, नरकपद्धति और मोक्ष-मार्ग मे बाधक बताया तथापि श्रमण संस्कृति में नारी की धर्म साधना का कोई अधिकार नहीं छीना गया। वे उपचार महाव्रतादि के अनुष्ठान द्वारा आर्यिका जैसे महत्तर पद का पालन करती हुई अपने जीवन को सफल बनाती रही हैं।

भारतीय श्रमण सस्कृति में केवल भगवान महावीर ने ही स्त्री को अपने संघ में दीक्षित कर आत्म-साधना का अधिकार दिया हो, ऐसा नहीं है अपितु अन्य २३ तीर्थङ्करों ने भी अपने-अपने संघ में ऐसा ही किया है। इससे स्पष्ट विदित होता है कि श्रमण संस्कृति में पुरुषो की भांति स्त्रियों को भी समान धार्मिक अधिकार प्राप्त होते रहे है, यहा व्रत धारण करने का जितना अधिकार श्रावक का है उतना ही अधिकार श्राविका का भी।

भगवान आदिनाथ ने अपने पुत्रो के साथ-साथ अपनी दोनो पुत्रियो को भी शिक्षित और सुसंस्कृत बनाया। ब्राह्मी और सुन्दरी दोनों बहनो ने अङ्कविद्या और अक्षरविद्या तथा अन्य नाना कला-कौशल में दक्षता प्राप्त की थी और अपने भाई भरत की अनुमति से भगवान ऋषभदेव से ही आर्यिकाव्रत को दीक्षा लेकर ज्ञानसाधना की थी। भगवान द्वारा प्रस्थापित किये गये चतुर्विध संघ के आर्यिका संघ की गणिनी आर्यिका ब्राह्मी ही थी। यह तथ्य इस बात की ओर सकेत करता है कि जैनधर्म और जैन समाज नारी के विषय मे प्रारम्भ से ही उदार था। इसी कारण जैन सस्कृति के प्रारम्भ से ही उच्च-विद्याविभूषित और शीलवती जैन नारियो की परम्परा प्रवहमान है। यदि ऐसा न होता तो जिन कर्मप्राण एवं धर्मप्राण अद्वितीय नारीरत्नो के चरित्रो से जो जैन साहित्य और इतिहास भरा पड़ा है और आज भी जिनका अभाव नही है, वह कभी नही होता।

नारी अपने जीवन में जिन विविध रूपों में उपस्थित होती है, उनमें महत्त्वपूर्ण है उसका माँ, पत्नी और कन्या या पुत्री का रूप। जननी के गौरव की गाथा तो सबने गाई है। 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'। माँ की ममता, माता का दुलार, माँ का वात्सल्य प्रेम अद्भुत होता है; वह शब्दों में नहीं आंका जा सकता। स्त्री का दूसरा रूप है—पत्नी रूप। वस्तुतः गृहस्थ जीवन नारी के बिना चल ही नही सकता—गृहिणी का नाम ही घर है। 'घरनी बिन घर भूत का डेरा'। नर और नारी दोनों परिवार रूपी रथ के पहिए हैं। एक के बिना दूसरे का निर्वाह नहीं। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। सद्गृहस्थ अपनी गृहस्थी के आदर्श से अपने को गौरवान्वित अनुभव करते हैं। कन्या का विवाह वयस्क अवस्था में ही किया जाना चाहिए जिससे वह अपने उत्तरदायित्व को पूर्ण रूप से समझ सके। विज्ञपुरुषों ने बालविवाह को सर्वथा अनुत्तरदायी और असगत कहा है। विवाहोपरान्त कन्या के जन्म से 'स्त्री जाति' की महत्ता का ज्ञान होता है, पुरुष अपनी स्वच्छन्दता भूल जाता है और उसके सामने भी अपनी कन्या को योग्य पति के लिए देने का प्रश्न उपस्थित होता है। कन्या का जीवन नारी के निर्माण का काल है। इस समय बहुत कुछ भार तो माता पर रहता है, कुछ पिता पर भी। सुशिक्षित, सुसंस्कृत कन्या अपने माता-पिता के नाम को उज्ज्वल करती है; बाद मे पति के घर पहुंच कर उसका घर समुज्ज्वल करती है। अतः कन्या का गुणवती, शिक्षित और सुसंस्कृत होना नितान्त आवश्यक है। कन्याओं का लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा स्वस्थ वातावरण में होने चाहिए। भगवान आदिनाथ ने स्वयं अपनी कन्याओ का लालन-पालन, शिक्षण अपने हाथों से किया था। परिणामस्वरूप वे कन्याए आदर्श ब्रह्मचारिणी रह कर लोक के समक्ष महान् आदर्श उपस्थित कर गई हैं। इसके अतिरिक्त गृहस्थ मार्ग है जहां मातृत्व का गौरव प्राप्त कर कन्या 'वीर प्रसू' बन सकती है।

ससार के प्रत्येक जीव को अपने शुभ-अशुभ कर्मों को भोगना ही पड़ता है। पत्नी के तीव्र अशुभ कर्मोदय से जब उसका पति दिवङ्गत हो जाता है तो वह 'विधवा' हो जाती है। अब वह क्या करे? प्रायः विधवा के आदर्श को समझने में बड़ी भूल हुई है। कभी उसे जीवित ही पति के शव के साथ जला दिया जाता था; कभी वह स्वयं पति की देह के साथ जल कर 'सती' होती थी। आज भी कभी-कभी ऐसी घटनायें सुनने-पढ़ने में आ जाती हैं। समाज में और परिवार में विधवा को अशुभ, पापिनी, पतिभक्षिणी और न जाने क्या-क्या कहा जाता है। आज तो कुछ तथाकथित समाज सुधारक उसके पुर्नविवाह की भी वकालत करने लगे हैं परन्तु एक बात विचारणीय है कि विवाह तो कन्या का होता है, विधवा का कैसा विवाह? विधवा के विवाह की योजना कर उसके जीवन को आदर्श से गिराना है। भारतीय ललना का यही आदर्श है वह एक पति को छोड़ कर अन्य में पतिभाव कर ही नहीं सकती। अन्य पुरुष का चिन्तन करना पाप ही नहीं नारीत्व का अपमान करना है। सांसारिक सुख तो कुछ काल के लिए इन्द्रिय तृप्ति कर सकते हैं किन्तु आत्मपतन भव-भव को

बिगाड़ता है अतः विधवा स्त्री का कर्त्तव्य है कि वह पञ्चपरमेष्ठी में दृढ़तापूर्वक भक्ति करते हुए संसार शरीर और भोगों से उदासीनता धारण करे, स्वाध्याय आदि में सन्तोषपूर्वक मन लगा कर अपने जीवन का शेष समय व्यतीत करे—ऐसा धार्मिक जीवन व्यतीत करने वाली विधवा ही कुल और समाज की गौरव है।

आदिपुराण में जिनसेनाचार्य ने ललितांगदेव की मृत्यु के बाद स्वयंप्रभा की चर्या एवं चेष्टाओं का चित्रण कर विधवा नारी की क्रियाओं का एक चित्र प्रस्तुत किया है। ललितांगदेव की मृत्यु के बाद स्वयंप्रभा संसार के भोगों से विरक्त होकर आत्मशोधन करने लगी। वह मनस्विनी भव्य जीवों के समान छह माह तक जिनपूजा में उद्यत रही और तदनन्तर सौमनस वन सम्बन्धी पूर्व दिशा के जिन मन्दिरों में चैत्यवृक्ष के नीचे पंच परमेष्ठी का स्मरण करते हुए समाधिमरण धारण किया—

षण्मासान् जिनपूजायामुद्यताऽभून्मनस्विनी ॥५५॥
ततः सौमनसोद्यान पूर्वदिग्जिन मन्दिरे ।
मूले चैत्यतरोः सम्यक् स्मरन्ती गुरु पञ्चकम् ॥५६॥
समाधिना कृतप्राणत्यागा प्राच्योष्ट सा दिवः ॥⋯⋯५७॥ पर्व ६, आदिपुराण॥

यों नारीजीवन की चरम उन्नति आर्यिका के व्रत ग्रहण करने में है। सीता, आर्यिका के व्रत ग्रहण कर ही १६ वें स्वर्ग को प्राप्त हुई।

यह बड़े गौरव का विषय है कि ब्राह्मी और सुन्दरी से प्रारम्भ हुई यह आर्यिका परम्परा आज भी प्रवहमान है। कई कुमारिकाओं, कई अल्पवयस्क विधवाओं व अन्य नारियों ने इस उत्कृष्टरूप को धारण कर स्व-पर कल्याण किया है। आज भी ऐसी अनेक नारी-विभूतियां हम लोगों के बीच विद्यमान हैं जिन्होंने अपने व्यक्तित्व, चरित्र और शील से न केवल अपने आप को गौरवान्वित किया है अपितु कुल, समाज, देश, धर्म और संस्कृति की प्रतिष्ठा में भी चार चांद लगाये हैं। निश्चय ही ये वन्दनीय, नमस्करणीय और अभिनन्दनीय हैं।

ऐसी ही वर्तमान दिव्य विभूतियों में से एक हैं—आर्यिका १०५ श्री इंदुमती माताजी जिन्होंने वैधव्य रूप अभिशाप को वरदान सिद्ध किया और जो विगत चालीस वर्षों से आर्यिका के व्रतों का निर्दोषरीत्या पालन कर रही हैं। यही नहीं आपने भारत के उन प्रदेशों में संघ सहित पैदल विहार कर जैन धर्म और जिनवाणी की अभूतपूर्व प्रभावना की है जहां विगत कई शताब्दियों से दिगम्बर जैन साधु-साध्वियों का विहार नहीं हुआ था। आपने सहस्रों नर-नारियों को धर्म के मार्ग में प्रवृत्त किया है और कुछ को अपने ही सदृश संयमारूढ़ किया है। आचार्यकल्प चन्द्रसागरजी महाराज जैसे निर्भीक गुरु

की इस निर्भीक शिष्या ने अपने व्यक्तित्व और कर्तृत्व से जैन धर्म, संस्कृति और समाज को गौरवान्वित किया है। इस आधार पर ही अनेक व्यक्तियों एवं अखिल भारतीय स्तर की संस्थाओं के सहयोग से वर्तमान समिति ने आपके अभिनन्दन का निश्चय किया और अभिनन्दनग्रंथ की रूपरेखा तैयार की।

ग्रंथ में पांच खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में आशीर्वचन, शुभ कामना, संस्मरण और काव्याञ्जलि स्वरूप शताधिक महत्त्वपूर्ण उद्गार हैं। भक्तों ने आर्यिकाश्री के प्रति भावभीनी विनयाञ्जलियां प्रस्तुत की हैं तो कवियों ने काव्याञ्जलियां; सन्तों और मुनियों ने अपने आशीर्वचन प्रेषित किये हैं तो सम्पर्क में आने वाले नर-नारियों ने आर्यिकाश्री के व्यक्तित्व और शील के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण संस्मरण संजोए हैं। द्वितीय खण्ड चित्रमाला में आर्यिकाश्री से सम्बन्धित विविध अवसरों व विविध स्थानों के भावपूर्ण एवं क्रियानिदर्शक चित्र हैं जो घटनाओं को मूर्तिमान् करने में सहायक हैं। तृतीय खण्ड जीवनवृत्त इस ग्रंथ का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अङ्ग है जो पूरा का पूरा आर्यिकाश्री सुपार्श्वमती माताजी की लेखनी से प्रसूत है। यह इस ग्रन्थ की विशिष्टता एवं अभिनवता है। इसमें पूज्य आर्यिकाश्री इन्दुमती माताजी के जीवन के विविध पक्षों का प्रामाणिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। यह कार्य उन्हीं की अन्यतम शिष्या सुपार्श्वमती माताजी ने सम्पन्न किया है जो विगत ३३ वर्षों से उनके सान्निध्य में रह रही हैं अतः यह वर्णन और भी अधिक विश्वसनीय हो गया है। पाठक जब इस रोचक वर्णन को पढ़ेगा तो उसे लगेगा कि वह भी आर्यिकाश्री के विहार में कहीं सहयात्री तो नहीं रहा।

पूज्य सुपार्श्वमतीजी ने इस जीवनवृत्त में चरितनायिका के साथ-साथ आचार्य शान्तिसागरजी महाराज के बाद की साधु-साध्वी परम्परा पर भी प्रासंगिक रूप से प्रकाश डाला है और जहां आवश्यक समझा है, वहां संक्षिप्त परिचय भी लिखा है। इसके अतिरिक्त आर्यिकाश्री के वर्ष-दर-वर्ष विहार स्थलों, चातुर्मासस्थलो के माध्यम से लेखिका ने हमें सम्पूर्ण-जैनतीर्थों की महत्त्वपूर्ण यात्रा भी करा दी है। तीर्थयात्रियों के लिए यह जीवनवृत्त स्वतंत्ररूप से मार्गदर्शक (गाइड) का काम भी कर सकता है। थोडे शब्दों में कहूं तो चरितनायिका के जीवन की उपलब्धियों का आकलन करते हुए विदुषी माताजी सुपार्श्वमतीजी ने हमें जङ्गम और जड़ सभी तीर्थों की निरापद यात्रा करने का सौभाग्य प्रदान किया है जिनके पुण्यस्मरण से ही भक्त पापों से छूटता है। यह खण्ड इस ग्रंथ का प्राण है जिसके लिए लेखिका कोटि-कोटि बधाई की पात्र हैं। यही भावना है कि पूज्य माताजी अपनी वाणी और लेखनी से जिनवाणी के मर्म को सरल रूप में प्रकट करती रहें जिससे जन सामान्य लाभ उठा सके। चतुर्थ खण्ड लेखमाला में दस लेख नारी जीवन के विविध पक्षों पर सुधी लेखकों द्वारा लिखे गए हैं। श्रावक धर्म, संयम तथा व्रत धारण की महत्ता को प्रकट करने वाले लेख भी हैं। दो निबन्ध शोधपरक हैं। पण्डिता सुमतिबाईजी ने पूज्यपाद कृत समाधिशतक पर समीक्षात्मक निबन्ध प्रस्तुत किया है।

आचार्यकल्प १०८ श्री श्रुतसागरजी महाराज का 'शुभोपयोग' शीर्षक निबन्ध संक्षिप्त किन्तु सारगर्भ है। आर्यिका ज्ञानमतीजी का लेख 'समयसार में व्यवहारनय' व्यवहारनय की उपयोगिता और महत्ता को दर्शाता है।

अन्तिम प्रकीर्णक खण्ड में चरितनायिका के जन्मस्थान—'डेह' के जिनायतनों का वर्णन करने वाला एक लेख है तथा मंत्र-तंत्र विशेषज्ञा आर्यिका सुपार्श्वमतीजी के णमोकार मंत्र, ऋषिमण्डल यंत्र और विजयपताका यंत्र से सम्बन्धित तीन संक्षिप्त परिचयात्मक लेख हैं। रुचिशील श्रावकों के लिये ये उपयोगी सिद्ध होंगे।

सम्पादन में मेरी दृष्टि यही रही है कि ग्रन्थ माताजी के व्यक्तित्व के अनुरूप सरल और सहज बने तथा वह सामान्यजन के लिये उपयोगी हो अतः गुरु-गम्भीर विषयो से सम्बन्धित लेखों को मैं इसमें स्थान नहीं दे पाया हूं। इसके लिये मैं उन लेखकों से क्षमा चाहता हूं जिनकी कृतियों को अपनी सीमाओ के कारण मैं इसमें समाहित नहीं कर सका हूं। बहुत देर से आए अनेक संस्मरणों व भावाञ्जलियों को भी सम्मिलित नहीं किया जा सका है, इसका मुझे खेद है। कतिपय संस्मरणों व लेखों को संक्षिप्त भी करना पड़ा है जिसके लिए मैं सम्बद्ध महानुभावों से क्षमायाचना करता हूं।

सम्पादन कार्य में मुझे पूज्य आर्यिकाश्री सुपार्श्वमती माताजी तथा प्रबन्ध सम्पादक श्री डूंगरमलजी सबलावत का प्रभूत सहयोग सम्प्राप्त हुआ है, इसके लिये मैं उनका अतीव आभारी हूँ। पूज्य आर्यिकाश्री ने ग्रन्थ के विविध खण्डों के लिये न केवल अपनी लेखनी से सामग्री ही जुटाई है अपितु सम्पूर्ण ग्रन्थ का स्वयं अवलोकन कर व उचित मार्गदर्शन कर मेरे कार्य को अत्यन्त सहज कर दिया है। मैं उनका चिर कृतज्ञ हूं।

ग्रन्थ के लिये सामग्री-सकलन हेतु श्रीयुत डूंगरमलजी सबलावत पिछले कई वर्षों से प्रयास कर रहे थे। ग्रंथ प्रकाशन योजना बनती-बिगड़ती रही परन्तु उनकी दृढ़ता रंग लाई और यह काम अब सफल हो रहा है। ग्रन्थ सम्बन्धी सारा पत्राचार आपने ही किया है, अनेक लोगों से व्यक्तिगत सम्पर्क भी किया है तथा इस सम्बन्ध मे अनेक स्थानों की यात्राएं भी की हैं। यद्यपि आपका स्वास्थ्य अब ठीक नहीं रहता परन्तु आपकी निष्ठा मूर्तिमान हो सकी है इसलिये आपको बड़ा सन्तोष है। सबलावतजी के माध्यम से ग्रन्थ के प्रकाशको ने ग्रन्थ सम्पादन का गुरुतर उत्तरदायित्व मुझे दिया इसके लिए मैं सभी सम्बद्ध महानुभावों का अत्यन्त आभारी हूं। सबकी देवशास्त्रगुरु भक्ति निरन्तर वृद्धिगत हो, यही कामना करता हूं। मेरे अनुरोध पर जैन जगत् के प्रसिद्ध विद्वद्वर्य, पण्डितरत्न, व्याख्यानवाचस्पति डॉ० लालबहादुरजी शास्त्री एम० ए०, पीएच० डी० साहित्याचार्य, न्याय-काव्य तीर्थ ने व्यस्त रहते

हुए भी ग्रन्थ का पुरोवाक् लिख कर मुझ पर जो अनुग्रह किया है उसके लिये मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ। उन्हें अपनी विनम्र प्रणति निवेदन करता हूँ।

ग्रन्थ के मुद्रक श्रीयुत पांचूलालजी जैन, संचालक, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज-किशनगढ़ भी अतिशय धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने विद्युत सम्बन्धी कई व्यवधानों के बावजूद ग्रन्थ को सुन्दर और सुरुचिपूर्ण ढंग से मुद्रित कर समय पर प्रकाशित करने में सहयोग दिया।

वस्तुतः यह सम्पूर्ण ग्रन्थ उक्त सभी महानुभावों के सुष्ठु सहयोग का सुफल है, इसके लिये वे सभी हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं। यदि इसमें कोई अपूर्णता या त्रुटि रह गई है तो वह मेरी है। इसके लिए मैं सुधी पाठकों से क्षमा याचना करता हूँ।

अन्त में, परम पूज्य आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी, श्री सुपार्श्वमती माताजी, श्री विद्यामती माताजी और श्री सुप्रभामती माताजी के चरण कमलों में सविनय वन्दामि निवेदन करता हुआ यही भावना भाता हूँ कि—

जब लौं नहीं शिव लहूं, तब लौं देहु यह धन पावना।
सत्सङ्ग, शुद्धाचरण, श्रुत अभ्यास, आतम-भावना॥

इत्यलम्

चेतनप्रकाश पाटनी
सम्पादक

खण्डानुक्रम

¤

कहां / क्या

प्रथम खण्ड : आशीर्वचन, शुभकामना, संस्मरण–काव्यांजलि

द्वितीय खण्ड : चित्रमाला

तृतीय खण्ड : जीवनवृत्त

चतुर्थ खण्ड : लेखमाला

पंचम खण्ड : प्रकीर्णक

नमस्कार महामंत्र

णमो अरिहंताणं

णमो सिद्धाणं

णमो आइरियाणं

णमो उवज्झायाणं

णमो लोए सव्वसाहूणं

आर्यिका इन्दुमती अभिनन्दन ग्रन्थ

प्रथम खण्ड

आशीर्वचन

अभिवादन

संस्मरण

और

काव्याञ्जलि
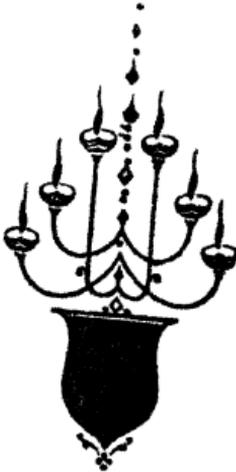
परम पूज्य पट्टाधीश आचार्य १०८ श्री धर्मसागरजी महाराज का

शुभाशीर्वाद

आर्यिका इन्दुमतीजी से हमारा परिचय आचार्यकल्प चन्द्रसागरजी महाराज के समय से है। तब मैंने क्षुल्लक दीक्षा ले ली थी। इन्दुमतीजी देवशास्त्र-गुरु की परमभक्त हैं। अपने नियमों का कदापि उल्लंघन नहीं करती हैं। सतत संयम साधना में संलग्न रहती हैं। अपने छोटे से संघ को साथ लेकर आपने देश के विभिन्न प्रान्तों में जैनधर्म की जो अद्‌भुत प्रभावना की है वह चिरस्मरणीय रहेगी। माताजी अपनी संयम साधना में रत रह कर इसी तरह अनवरत भव्य जीवों को उद्‌बोधन देती रहें और आशातीत सफलता प्राप्त करें—यही हमारा आशीर्वाद है।

परम पूज्य महान् तपस्वी आचार्य १०८ श्री सन्मतिसागरजी महाराज का

आशीर्वाद

संघ नायिका आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी ने संघ सहित जगह-जगह पर अहिंसा, त्याग, सत्य, सदाचार का उपदेश देकर प्राणियों का कल्याण किया है। आप इसी प्रकार धर्म की प्रभावना करती रहे।

आप दीर्घायु हों—यही आशीर्वाद है।

प्रेषक **संघसंचालिका ब्र० मैनाबाई**

परम पूज्य १०८ आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज का

आशीर्वाद

आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी ने पहले १०८ आचार्यकल्प श्री चन्द्रसागरजी महाराज के साथ रह कर धार्मिक साहस के साथ वैयावृत्य आदि कार्य सम्पन्न किए थे। अब तो १०५ आर्यिका सुपार्श्वमतीजी उनकी पूर्णपरिचर्या कर रही हैं। इन्दुमतीजी ने संघस्थ आर्यिकाओं—सुपार्श्वमती, विद्यामती, सुप्रभामती—के साथ आसाम प्रान्त मे विहार कर धर्म की प्रभावना की है। वे इसी प्रकार जैन शासन की प्रभावना करती रहे, ऐसी कामना है।

धर्म-प्रभावना करती हुई श्री १०५ आर्यिका इन्दुमतीजी अपने लक्ष्य-समाधि की सिद्धि कर, स्त्री-लिंग छेद कर आगे मुक्ति प्राप्त करे, यही आशीर्वाद है।

प्रेषक : **संघसंचालिका ब्र० चिन्नाबाई**

पूज्य १०८ गणधर आचार्य श्री कुन्थुसागरजी महाराज के

आशीर्वचन

यह दिगम्बर जैन समाज का परम सौभाग्य है कि जैनधर्म-प्रभावना रत माताजी श्री १०५ इन्दुमतीजी का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है।

आपके संघ में श्री सुपार्श्वमती, विद्यामती, सुप्रभामती सभी परम विदुषी हैं। आपके द्वारा समस्त भारत में खूब प्रभावना हो रही है; आगे भी आपके द्वारा प्रभावना होती रहे।

आप शतायुष्क हों, ऐसा हमारा आशीर्वाद है।

* शुभ कामना *

आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी अनुभवी और वयोवृद्ध आर्यिका-रत्न हैं। उनका जितना भी अभिनन्दन किया जाए, वह थोड़ा है। उनका स्वाध्याय-प्रेम और चरित्र-निष्ठा सदा प्रशंसनीय है। आप युग-युगों तक अपने ज्ञान और चारित्र के द्वारा समाज को लाभान्वित करती रहें, यही मेरी हार्दिक कामना है।

—आर्यिका ज्ञानमती

*

परम पूज्य (स्व०) १०८ मुनि श्री सन्मतिसागरजी महाराज का

卐 आशीर्वाद 卐

आर्यिका इन्दुमतीजी बहुत पुरानी दीक्षित हैं। क्षुल्लिका-दीक्षा श्री १०८ मुनि चन्द्रसागरजी से ली और आर्यिका-दीक्षा आचार्य श्री १०८ श्री वीरसागरजी महाराज से ली। हमारा उनका बहुत पुराना सम्बन्ध है। श्री १०८ चन्द्रसागरजी महाराज का विहार उज्जैन की तरफ हो रहा था, उस समय आप ब्रह्मचारिणी थी, मैं भी दूसरी प्रतिमा धारक श्रावक था। आपका हमारे से अधिक स्नेह था।

बहुत दिनो के पश्चात् आपका विहार हमारे प्रान्त में हुआ। मैं उस समय ठिकाने राजमहल मे सर्विस करता था। मेरे घर माताजी का आहार हुआ, उस समय मैं अपने हाथ से रोटी बनाता था। माताजी का विहार नासरदा, सांपला की तरफ हुआ और बहुत प्रेरणा के साथ माताजी का चातुर्मास टोडारायसिह मे हुआ।

इस चातुर्मास मे धर्मप्रभावना अधिक रही और कई व्यक्ति व्रती बने और कितनी ही बाइयाँ व्रती बनी। उनमे से सौ० गुलाबबाई ने ब्रह्मचर्य के व्रत लिये अर्थात् ब्रह्मचारिणी बनी, आज वह आर्यिका शान्तिमती के नाम से संघ में साथ है। यह सब प्रभाव आर्यिका इन्दुमतीजी का है। हमको उस समय दूसरी प्रतिमा के व्रत थे, पाचवी प्रतिमा के व्रत माताजी से ही लिये। तत्पश्चात् नागौर में माताजी का चातुर्मास हुआ। मैं भी दर्शनार्थ वहा गया था। चातुर्मास में सिद्धचक्रविधान बड़ी प्रभावना के साथ हुआ।

माताजी ने श्री १०८ आचार्य वीरसागरजी से आर्यिका के व्रत धारण किये, मैं उस समय ब्रह्मचारी था। उसके बाद आर्यिका १०५ श्री सुपार्श्वमतीजी, इन्दुमतीजी के साथ हो गईं। सुपार्श्वमतीजी की दीक्षा जयपुर खानियाँ मे हुई थी, उसके दो दिन पहिले हमारी और श्रुतसागरजी महाराज की दीक्षा हुई थी।

श्री १०५ आर्यिका इन्दुमतीजी और सुपार्श्वमतीजी माताजी ने अनेक प्रान्तों मे भ्रमण करके धर्म की बहुत प्रभावना की है। यहा तक कि आसाम और डीमापुर जहां किसी भी साधु का विहार आज तक नही हुआ, ऐसे प्रान्त में धर्म की खूब प्रभावना की। जगह-जगह बिम्बप्रतिष्ठा और वेदीप्रतिष्ठाएँ हुई और अब भी गिरिडीह और कलकत्ता की तरफ माताजी का विहार हो रहा है। जगह-जगह प्रभावना हो रही है।

माताजी का अभिनन्दन ग्रन्थ छप रहा है। यह बहुत प्रसन्नता की बात है। माताजी के लिये हमारा 'समाधिरस्तु' शुभ आशीर्वाद है।

परम पूज्य १०८ मुनि श्री अजितसागरजी महाराज का

शुभाशीर्वाद

इस अनादि-अनिधन संसार में प्रत्येक जीव ने स्थावर-त्रस पर्याय में परिभ्रमण करते हुए अनन्त दुःख सहे हैं। इन दुःखों का मूल कारण संसार-शरीर-भोगो की आसक्ति है। अतः जब आसन्न भव्य जीवों के अन्तःकरण में भवाङ्ग योग से तत्त्वज्ञानपूर्वक यथार्थ वैराग्य होता है तब वे अनवरत आत्म-हित के मार्ग मे रत रहते हुए आत्मगुणों का विकास करने में यथागति तथा यथाशक्ति तत्पर रहते हैं। स्वयसिद्ध अनादि अनिधन जैन धर्म के सिद्धान्तानुसार १०५ श्री आर्यिका इन्दुमतीजी ने अपनी दुर्लभ मनुष्य पर्याय को सफल करने का जो पुरुषार्थ किया है वह अत्यन्त प्रशंसनीय है तथा हिताभिलाषिणी प्रत्येक महिलावर्ग के लिए अनुकरणीय है।

आर्यिका इन्दुमतीजी का बाल्यकाल-जैसा कुलीन कन्या का होना चाहिये उसीके अनुरूप रहा है। यौवन अवस्था में ही वैधव्य का दुःख भार भी नित्यप्रति पूजा दान तीर्थयात्रा आदि शुभकार्यों में व्यतीत हुआ था।

कुलीन महिला को पति के मर जाने पर नियम से परम्परा से मुक्ति की कारणभूत आर्यिका दीक्षा लेनी चाहिए। आर्यिका दीक्षा से आत्म-कल्याण होता है तथा ससार के समस्त प्रकार के सुख देने वाले पुण्य की प्राप्ति होती है विधवा स्त्री को अपने कुटुम्ब से मोह छोड़ कर शुद्ध परिणामों को रखते हुए अपने जीवन को सफल बनाना चाहिए।

यदि आर्यिका दीक्षा लेने की सामर्थ्य न हो तो तीनों प्रकार के शल्यों को छोड़ कर शुद्ध ब्रह्मचर्यव्रत धारण करना चाहिए।

इन्द्रिय विकार और कामवर्धक कथाएँ न तो पढनी चाहिए और न श्रवण ही करनी चाहिए। रागी स्त्री पुरुषो के संसर्ग से भी दूर रहना चाहिए। बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से अपने शरीर का शृङ्गार नही करना

चाहिए। मृदु शय्यासन पर नही सोना चाहिए। आँखों में अञ्जन नहीं लगाना चाहिए। शरीर पर सुगन्धित द्रव्यों का लेप नही करना चाहिए। ताम्बूल-भक्षण नहीं करना चाहिए। रागवर्द्धक गीतों का श्रवण नहीं करना चाहिए। कामवर्द्धक गरिष्ठ भोजन नही करना चाहिए। शरीर शोषक तथा धर्मध्वंसक शोक नही करना चाहिए। असाता कर्म बन्धन अतिरुदन नहीं करना चाहिए।

विधवा स्त्री को व्रत तपश्चरण के द्वारा मन इन्द्रियों को वश मे करना चाहिए तथा वैराग्यवर्द्धक द्वादश भावनाओं का चिन्तन सदा करते रहना चाहिए। धार्मिक ग्रन्थों के पठन पाठन मे निरन्तर रत रहना चाहिए। जिनपूजा और पञ्चपरमेष्ठी के जाप आदि धार्मिक क्रियाओं का आचरण करते हुए समय का सदुपयोग करना चाहिए।

विधवा स्त्री का जो उक्त शास्त्रोक्त आचरण है उनका १०५ इन्दुमती आर्यिका ने अपने जीवन मे यथा शक्ति पालन किया था।

तत्पश्चात् परम तेजस्वी, सिंहवृत्तिधारी, प्रखरवक्ता पू० १०८ मुनि श्री चन्द्रसागरजी महाराज का पावन समागम प्राप्त करके क्षुल्लिका के व्रत धारण कर एवं उनका आगमानुसार पालन करने के कुछ वर्ष पश्चात् ही गुरु वियोग हो जाने से परमशान्त, कृपासिन्धु आचार्य १०८ श्री वीर-सागरजी महाराज के चरणसान्निध्य को प्राप्त कर आर्यिका दीक्षा अंगीकार कर आगमोक्त विधि से पालन कर रही है।

आगमानुसार आर्यिका के कर्त्तव्य निम्नलिखित है—

आर्यिकाएँ परस्पर अनुकूल रहती हैं। ईर्ष्याभाव नहीं रखती। आपस में संरक्षण में सदा तत्पर रहती हैं। क्रोध, वैर, मायाचार आदि दोषों से दूर रहती हैं। लोकापवाद से सदा भय-भीत रहती हैं। सतत लज्जाशील रहती है। न्यायमार्ग की मर्यादा का सदा ध्यान रखती हैं। जाति, कुल तथा गुरु परम्परा के अनुकूल आचरण करती हैं। शास्त्रपठन, श्रवण चिन्तन स्मरण में सदा रत रहती हैं। अनित्यादि द्वादश भावना, दशलक्षण धर्म के स्वरूप चिन्तन मे सदा तत्पर रहती हैं। स्वशक्ति के अनुरूप द्वादश प्रकार के तपश्चरण करती हैं। यथाशक्ति द्विविध संयम पालन करती हैं। जैसा कि मूलाचारप्रदीप में आचार्य सकलकीर्ति ने भी कहा है—

परस्परानुकूलाः सदाऽन्योन्यरक्षणोद्यताः।
लज्जा मर्यादा संयुता मायारागादि दूरगाः ॥१॥
आचारादिसुशास्त्राणां, पठने परिपरिवर्तने।
तदर्थ कथने विश्वा-नुप्रेक्षागुणचिन्तने ॥२॥

सारार्थ श्रवणे शुद्ध-ध्याने संयमपालने ।
तपोविनय सद्योगे, सदा कृतमहोद्यमाः ॥३॥
मल्लजल्लविलिप्तांगाः, वपुः संस्कारवर्जिताः ।
विक्रियातिगवस्त्रैकावृताः शान्ताश्चला मताः ॥४॥
संवेगतत्परादक्षा, धर्मध्यान परायणाः ।
कुलकीर्ति जिनेन्द्राज्ञा, रक्षणोद्यतमानसाः ॥५॥
दुर्बलीकृत सर्वाङ्गा, तपसा सकलार्यिकाः ।
द्वित्र्यादिगणनायुक्ताः निवसन्ति शुभाशयाः ॥६॥
उत्तमं स्वात्मकल्याणं पुण्यं वा सर्व सौख्यदम् ।
सर्वदुःख निवृत्तिश्च, जायते जिन दीक्षया ॥७॥

आर्यिका इन्दुमती आगमानुसार आचरण करते हुए अपने पादमूल में रहने वाली आर्यिकाओ के संरक्षण तथा गुणवर्द्धन मे तत्पर है। अनेक प्रान्तो के अनेक नगरो में विशेषतः गौहाटी, डीमापुर मे पद-विहार कर महती धर्म प्रभावना कर रही हैं।

यह धार्मिक पुरुषो के मुख से श्रवण कर मेरा चित्त अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव करता है। १०५ विदुषी आर्यिका श्री सुपार्श्वमती भी भारतवर्ष में प्रत्येक प्रान्त, नगर ग्राम में यशोध्वजा फहरा रही है वह सम्पूर्ण, इन्दुमती माताजी का ही कृपा प्रसाद है, जैसा पुत्री के प्रति माता का वात्सल्य होता है वह यहाँ दृष्टिगत हो रहा है।

मुझे कई बार उनकी ध्यानमुद्रा के निरीक्षण का अवसर मिला था, शरीर की बहुत स्थिरता रहती है, प्रत्येक आर्यिका को अनुकरणीय है। इतनी वृद्धावस्था मे भी अपने आर्यिका के पद का निर्दोषरीत्या पालन कर रही हैं अतः अन्तिम जीवन में आगमोक्त विधि से समाधिमरण को प्राप्त हो, यही मेरी शुभ कामना है।

प्रेषक : **प्रभु चित्तौड़ा, उदयपुर**

❖

कतिपय मधुर
प्रेरक प्रसंग

✡ आर्यिका सुपार्श्वमती

आर्यिका दीक्षा के बाद साहसी मातेश्वरी इन्दुमतीजी ने अपने पूत चरणों से पश्चिम से पूरब तक भारत को पवित्र किया है। सात बार सम्मेदशिखरजी की पदयात्रा की है। अनेक प्रान्तो में ज्ञानगंगा प्रवाहित की है तथा कितने ही भव्य नर-नारियों को व्रती बनाकर सन्मार्ग पर लगाया है।

आपने सात बार चम्पापुर की, पाँच बार राजगिरि, पावापुरी, गुणावा की तथा दो बार खण्डगिरि की यात्रा की है। कुन्थलगिरि तीन बार, मुक्तागिरि तीन बार, बड़वानी दो बार जा चुकी हैं तथा बुन्देलखण्ड के सारे क्षेत्रों की भी पदयात्रा कर चुकी है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि आपने अपने जीवन मे कितने प्रदेशों की और कितने मीलों की पद यात्रा कर अपने धर्मोपदेश से कितने जीवो को लाभान्वित किया है। किस प्रकार धर्म का प्रचार किया है। आपने जन-जन के हृदय से मिथ्यात्व को निकालने का जो परिश्रम किया है, उसका उल्लेख करना भी कठिन है। आपकी प्रशंसा के लिए मेरे पास शब्द नही हैं। मैं आपके सम्बन्ध में क्या लिखूं ? आपके जीवन की एक-एक घटना प्रेरणाप्रद है। आपके हृदय में कोमलता कूट-कूट कर भरी हुई है। आपकी निर्भीकता और पुरुषार्थ पुरुषों को भी मात करते है।

卐 एक बार माताजी डेह ग्राम पधारी। आषाढ़ का महीना था। समाज की तीव्र भावना थी कि आप चातुर्मास डेह मे ही करें, बहुत अनुरोध किया गया परन्तु आपने स्वीकार नहीं किया। कारण—डेह आपकी जन्म भूमि है। वहां कुटुम्बियो को एकत्वजन के निधन के कारण तथा कतिपय की गम्भीर अस्वस्थता के कारण बहुत अशान्ति थी। माताजी ने बार-बार सम्बोधन किया तो उन्हें कुछ शान्ति मिली।

माताजी आपने चातुर्मास की स्वीकृति क्यों नही दी ? इसके उत्तर में आपने कहा कि—"निमित्त कारण पाकर परिणामों की विशुद्धि और संक्लेश होता है; जैसे माला देखने से

फेरने के भाव होते हैं, दर्पण देखने से मुख देखने के भाव होते हैं; आहार देखने से आहार संज्ञा उत्पन्न होती है अतः बाह्य कारण कलापों से दूर रहना चाहिए।

यहाँ पर कुटुम्बी जन हैं। उनका मन अशान्त है। वे हमारे समक्ष आकर कभी रोते भी हैं इसलिए ममत्व होना सहज है। इनको देख कर मेरे मन में भी कभी आकुलता होना सम्भव है। अतः मैं यहाँ पर चातुर्मास करना नहीं चाहती।"

और माताजी अकेली ही अपनी पिच्छी-कमण्डलु उठा कर चल दीं, किसी से यह नहीं कहा कि मेरी व्यवस्था कर दो। आपका तो हमेशा यही कहना है कि "सबका भाग्य साथ रहता है; भाग्यानुसार व्यवस्था अपने आप हो जाती है। याचना करने से नही होती।" याचना करना तो आपने सीखा ही नही है। आपकी निर्भीकता और अयाचकवृत्ति अत्यन्त अनुकरणीय है।

卐 आपने वीरसागरजी महाराज के संघ के साथ सम्मेदशिखरजी की यात्रा की। जयपुर से चल कर शिखरजी पर्वत पर पहुँचने तक आपने अपना कमण्डलु किसी दूसरे को नहीं दिया। अपने ही हाथ में लेकर चलती थी। अपनी चाल से तो आप सर्व साधुओं को पीछे छोड देती थी अतः सभी सघस्थजन आपको गाडी का इंजन कहते थे। निश्चित किए हुए स्थान पर सबसे पहले आप ही पहुँचती थी अत. आपको देख कर सिगनल हो गया, गाड़ी आने वाली है, ऐसा भी कहते थे।

विहार में आप कभी भयभीत नहीं होती थीं। धार्मिक कार्यों में तथा आगम पर दृढ़ विश्वास होने से आप आगम का निरादर अथवा आगमिक क्रियाओं की अवहेलना सहन नही करती थी अतः चाहे कोई धनिक हो या निर्धन, सम्बन्धी हो या कोई विद्वान् आप शास्त्रीय चर्चा में तत्पर हो जाती थीं। कभी भय नही खाती थी, निर्णय किये विना पीछे भी नही हटती थी अत· आपको पूज्य आदिसागर महाराज सिंहनी भी कहते थे।

卐 स्त्रियो में स्वभावतः ईर्ष्या होती है परन्तु ईर्ष्या आपके हृदय को स्पर्श भी नहीं कर सकी है। दूसरों की बढ़ती को देख कर आपके हृदय मे वात्सल्य भाव उमड आता है। वैयावृत्ति करना तो आपका स्वभाव है। छोटे-बड़े सबकी वैयावृत्ति आप स्वयं करती हैं। साधुओं के लिए घास बिछाना, पुस्तक रखना, रोगी की इच्छानुसार उपचार करना आदि में आप निपुण हैं। मान कषाय का कण भी आपके पास नही फटकता। यह मुझसे छोटा है, मैं इसकी वैयावृत्ति कैसे करूँ, आदि का भेद आपके पास है ही नहीं। यदि रोगी का मल-मूत्र भी साफ करना पड़े तो आप बिना किसी हिचकिचाहट के ऐसा भी तुरन्त कर देती हैं।

आपकी विचारधारा इस प्रकार है—

मान के पर्वत पर मत चढ़ो। कोई भी काम करो, आगा-पीछा सोच कर करो। अपने पद का ध्यान रखो। कभी किसी की देखा-देखी मत करो। यशोलिप्सा से दूर रहो क्योंकि यह मिश्री मिला हुआ जहर है। स्त्रियों के प्रलोभन मे मत आओ। लोकविरुद्ध कार्य मत करो। बात को बोलने से पूर्व पहले हृदय रूपी तराजू पर तोलो फिर बाहर खोलो। वचन की कीमत सबसे अधिक है। किसी भी काम को करना हो तो कृत्य में लाकर दिखाओ, वचनों से नहीं क्योंकि भाषण की अपेक्षा आचरण महत्त्वपूर्ण होता है। संसार के प्रवासी बनो, निवासी नहीं। ज्ञान की अपेक्षा संयम महान् है अत. सयम की रक्षा करो। संयमी के समीप ज्ञान स्वत. आ जाता है। संयमी का 'तुष माष भिन्न' ज्ञान भी श्रुतकेवली बनने में सहायक हो जाता है। संयम का धनी ही सच्चा धनी है। प्राण जाने पर भी शास्त्रविरुद्ध बात मत बोलो। कम खाना और गम खाना सीखो। शास्त्र के अनुसार अपनी बुद्धि बनाओ। बुद्धि के अनुसार शास्त्र का अर्थ मत करो।

आपका उपर्युक्त एक-एक वाक्य बहुमूल्य है। आपकी सहिष्णुता, निर्भीकता निर्लोभता अनुकरणीय है। आपके धैर्य को देख कर आचार्य महावीरकीर्तिजी महाराज तो आपको 'छोटे चन्द्र-सागर' ही कह देते थे।

卐 कवियों ने मनुष्यों के पाषाण, किसमिस, नारियल और बेर के समान चार प्रकार के स्वभाव माने हैं। बाहर और भीतर दोनों रूपों में जिसके हृदय में कठोरता होती है वह मनुष्य पाषाण के समान है। बाह्य मे कोमलता और अन्तरग मे कठोरता वाला मनुष्य बेर के समान है। ये दोनो दुर्जन प्रकृति के होते है। बाह्याभ्यन्तर दोनो मे कोमलता वाला मनुष्य किसमिस के समान है और जिसके बाह्य अनुशासन मे तो कठोरता है परन्तु अन्तरङ्ग मे मृदुता है वह नारियल के समान है।[1]

---

१. उत्तम पुरुष की दसा ज्यो किसमिस दाख,
　　बाहिर अभितर विरागी मृदु अग है।
मध्यम पुरुष नारियल कैसी भाँति लिये,
　　बाहिज कठिन हिय कोमल तरग है।
अधम पुरुष बदरी फल समान जाके,
　　बाहिर सो दीखे नरमाई दिल सग है।
अधम सो अधम पुरुष पुंगीफल सम,
　　अन्तरग बहिरग कठोर सर्वंग है।

—बनारसीदास

इन्दुमती माताजी का स्वभाव नारियल की भाँति है। ये बाहर से कठोर दिखाई देती हैं। कोई भी मनुष्य सहसा इनके समक्ष बोलने का साहस नहीं कर पाता। परन्तु इनका हृदय भीतर से बहुत कोमल है। ये दूसरे के दुःख को अपना दुःख समझती हैं। किसी दुःखी को देखकर इनका हृदय द्रवीभूत हो जाता है। आँखों से अश्रु प्रवाहित होने लगते हैं। पाप कार्य के लिए आपका हृदय पाषाण के समान है। कितना भी भय और संकट क्यों न आए, आप अपने पद के विरुद्ध कार्य नहीं करतीं। ख्याति, पूजा, लाभ के प्रलोभन से या किसी के द्वारा की हुई प्रशंसा से आपका हृदय धर्म के विरुद्ध नहीं हो सकता। अनुशासन करने में आप नारियल के समान हैं और दुःखियों के दुःख में किसमिस के समान हैं।

सम्यग्ज्ञान की सुगन्ध और सदाचार के आभूषण से आपका जीवन सुशोभित है। आप संयम की साबुन और भेदज्ञानरूपी निर्मल नीर के द्वारा आत्मा को निर्मल बनाती हैं। आपका हृदय निःकषाय और पवित्र है। जिनधर्म के प्रति आपकी अटूट श्रद्धा है।

णमोकार मन्त्र का माहात्म्य :

एक बार महावीरकीर्तिजी महाराज के संघ के साथ आप खंडगिरि जा रही थी। कटक जाने को एक नहर के पास से पगडंडी थी। अपने स्वाभावानुसार माताजी आगे-आगे जा रही थीं। जब सध्या समय सघ निश्चित स्थान पर पहुँचा तो देखा कि माताजी नहीं पहुँची हैं। महाराजश्री ने कहा—वह तो हम सबके आगे चल रही थी, पीछे तो नहीं है। कहीं जगल में भटक गई। चारों तरफ दौड-धूप मच गई। इधर रात्रि हो आई। आठ बजे तक श्रावक गण इधर-उधर खोजते रहे परन्तु माताजी का कोई पता नहीं लगा। सर्दी के दिन ! कहां ठहरी होगी—अकेली है— स्त्री पर्याय है। सभी का चित्त शोकसागर मे डूब गया। चिता के सिवाय कर ही क्या सकते थे। चाँदमलजी चूड़ीवाल और दीपचन्दजी बडजात्या ने सारी रात माताजी को खोजने में पूरी कर दी परन्तु कहीं पर भी माताजी का पता नहीं लग पाया।

प्रातः काल आठ बजे माताजी निश्चित स्थान पर अपने आप आ गई। सबकी चिंता दूर हो गई। हृदय हर्ष से भर गया। सबने नमस्कार करके पूछा—माताजी ! रात्रि में आप अकेली कहां रहीं ? सर्दी में क्या किया होगा ? माताजी ने कहा—मैं अकेली कैसे ? मेरे साथ णमोकार मन्त्र था। मार्ग मे चलते-चलते जब संध्या होने लगी तब मैं एक गाव में पहुँच गई। पहुँचते ही एक सज्जन मिले और अपने परिचित मानव के समान आदरपूर्वक अपने घर मे ले गये तथा अपने घर के बाहर के कमरे में थोड़ा-सा घास बिछा दिया। एक दीपक रख दिया और कहा कि आप सुखपूर्वक रात्रि व्यतीत करिये। यहां किसी का भय नहीं है। मैंने दरवाजा बन्द कर लिया एवं णमोकार मन्त्र का जप करती रही। प्रातः काल हुआ। उसने रास्ता बता दिया और मैं यहाँ आ गई।

जिसके हृदय में णमोकार मन्त्र है उसको आपत्ति कैसे आ सकती है।

अभिलषितकामधेनौ, दुरितद्रुमपावके हि मंत्रेऽस्मिन्।
दृष्टादृष्टफले सति परत्र मंत्रे कथं सजतु ।।यशस्तिलक चम्पू।८।१५३।।

अभिलषित फल देने के लिये कामधेनु, पाप वृक्ष को भस्म करने के लिए अग्नि स्वरूप इस मन्त्र के द्वारा प्रत्यक्ष फल की सिद्धि हो जाने पर दूसरे मन्त्रों मे रुचि कैसे हो सकती है। इसलिये इस मन्त्र मे लीन हो जाओ।

यह मन्त्र परमोपकारी है। सर्व विघ्नों का नाशक है। जगत की सारभूत वस्तु णमोकार मन्त्र ही है। इस मन्त्र मे अपूर्व शक्ति है। इसकी महिमा का वर्णन मैं क्या करूं।

卐 विक्रम सवत् २०२५ मे आपने आकलूज मे चातुर्मास किया था। वहां आपको एक भयकर पोड़ा हो गई थी। मूत्राशय मे ग्रन्थि हो जाने से मल-मूत्र करने में आपको तीव्र वेदना होती थी। आपके अनन्य भक्त श्री शांतिनाथ सोनाज ने तन-मन-धन से आपकी सेवा की परन्तु मर्मभेदी पीडा तो आपको ही भोगनी पड़ती थी। वैद्य, डाक्टर, सर्जनादि की परीक्षा के बाद एक ही निर्णय हुआ कि यह ग्रन्थि कैंसर की है। इसको कुछ भाग में आप्रेशन करके परीक्षा करनी पड़ेगी। माताजी ने सर्वथा इन्कार कर दिया, मुझे कुछ नही कराना है। उसी समय परम पूज्य, मन्त्रशास्त्रवेत्ता, धन्वन्तरि, १८ भाषाओ के ज्ञाता बाल ब्रह्मचारी १०८ श्री महावीरकीर्तिजी महाराज आ गये।

माताजी को और दुगुना साहस मिल गया। णमोकार मन्त्र पर अटल श्रद्धान होने से उन्होंने कह दिया कि मुझे किसी औषधि की जरूरत नही है। सर्व रोग का नाशक, अभ्युदय-प्रदायक णमोकार मन्त्र मेरे हृदय मे अंकित है। अब मुझे दूसरी औषधि से क्या प्रयोजन। वैसा ही हुआ भी। उपचार में महाराजश्री के मुख से निर्गत (छाछ में तुलसी के पत्ते) औषधि और मुख्यतया णमोकार मन्त्र का जाप। बस, देखते-देखते चंद दिनो में ही ग्रन्थि कहा चली गई, पता ही नहीं लगा। पुन: वैद्य आदि ने निरीक्षण किया तो वे आश्चर्य करने लगे और कहने लगे, यह असाध्य रोग कैसे दूर हो गया। आपने कौनसी औषधि सेवन की। जब णमोकार मन्त्र का माहात्म्य सुना तो वे चकित रह गये और मंत्र की प्रशसा करने लगे।

卐 वि० सं० २०२६ मे माताजी रुग्ण थी। पैर मे भयंकर पीड़ा थी। आप बारामती में थी। परन्तु चातुर्मास वहा नहीं करना चाहती थी। क्योकि शहर में मल-मूत्र के स्थान की उपयुक्त व्यवस्था नही थी।

एक दिन प्रात:काल बारामती के मुखिया श्रेष्ठिवर श्री चन्दुलालजी सर्राफ आये। उनके शरीर पर सिर्फ एक वस्त्र (धोती मात्र थी) हाथ मे एक दुपट्टा।

माताजी के पैर पकड़ कर कहने लगे कि अम्मा मी भिक्षा साठी आलो आहे भला भिक्षा द्या भिक्षा घेतल्या सिवाय मीं जाणहार नाही ।। माताजी ने कहा—बाबा ! क्या मागते हो ? बाबा ने कहा—तुम्ही ये थे चातुर्मास करण्या ची स्वीकृति द्या होच माझी भिक्षा, मी तुम्हाला ये पूत जाण देशहार नाहीं ।। माताजी ने कहा—मुझे यहां रहना पसन्द नही है क्योंकि यहा पर साधु के योग्य मल-मूत्र विसर्जन का स्थान नही है ।

बाबा ने कहा—अम्मा, दोन मील दूर एक बोर्डिंग आहे, तिको चैत्यालय पण आहै भी तुझी सगली व्यवस्था करतो—तो स्थान फार उत्तम आहे—तुमची स्वास्थ्य भी दृष्टि न पण । यदि तुम्हीं नही गेल्या तो भी तुला डोंक्यापर उचलून घेवून जाई ।

आखिर माताजी ने स्वीकृति दे दी और शहर के बाहर दो मील दूर पर जैन बोर्डिंग में चातुर्मास किया । प्रतिदिन सैंकड़ो नर-नारी गाड़ी-मोटर, साईकिल आदि पर दर्शन करने और उपदेश सुनने आते और कृतकृत्य हो जाते ।

卐 वि० स० २०२४ मे गोम्मटेश्वर के अभिषेक के बाद विहार करके कुंभोज बाहुबली पहुँचे । वहां पर बाहुबली की २७ फुट ऊँची मूर्ति है । अनेक क्षेत्रों की रचना है । वयोवृद्ध, ज्ञानी, ध्यानी १०८ श्री समन्तभद्र महाराज वहा पर रहते हैं । जब कुम्भोज बाहुबली में पांच दिन रह कर विहार करने लगे तब समन्तभद्र महाराज ने कहा—अम्मा, आपको चातुर्मास यहीं पर करना पड़ेगा । माताजी ने कहा—मैं इधर के श्रावकों के हाथ का आहार नही लेती हूँ । इसलिये यहां पर चातुर्मास करना कठिन है । महाराजश्री ने वहां के कार्यकर्त्ताओं को कहा कि या तो माताजी के चातुर्मास की यहां व्यवस्था करो, नहीं तो मैं अम्मा जहा चातुर्मास करेगी वहा जाऊंगा । मैं भी वहीं पर चातुर्मास करूंगा । महाराज की आज्ञानुसार गजावेन आदि कार्यकर्त्ताओं ने व्यवस्था करके माताजी का चातुर्मास कुम्भोज बाहुबली में कराया । इससे ज्ञात होता है कि माताजी के प्रति दिगम्बर साधुओं का कितना स्नेह है ।

वीरसागर महाराज, आदिसागर महाराज, महावीरकीर्तिजी महाराज आदि दिगम्बर साधु माताजी को कर्मठ, निर्भीक सिंह पुरुष मानते थे ।

महावीरकीर्तिजी महाराज तो कभी कभी माता कह करके पुकार लेते थे और कहते थे, ये तो छोटे चन्द्रसागर हैं ।

मैं ३२ साल से माताजी के साथ रहती हूँ । मैंने कभी माताजी के मन में ईर्षा, असूया, परनिन्दा के भाव नही देखे । यद्यपि आपकी दृष्टि तेज है, मुख पर ओज है इसलिये सामने आने

वाले को क्रोध मालूम होता है परन्तु सहवासी सहवासी के गुण जानता है। आपके हृदय में कितनी कोमलता है, वह कहने की नहीं अपितु अनुभव करने की वस्तु है।

卐 आप अपने शरीर से निस्पृही हैं। दूसरों को कष्ट होगा यह सोच कर आपका हृदय कांप जाता है।

विक्रम सम्वत् २०२७ का चातुर्मास कारंजा में था। असाता के उदय से आप रुग्ण हो गईं। एक दिन आपको बहुत जोर से ज्वर था। हम लोग पास में ही सोये हुए थे। निद्रा आ गई। प्रात काल देखा तो माताजी जमीन पर सोये हुए थे। मैंने पूछा—माताजी आप जमीन पर क्यो सोये? वहां से उठकर यहा पर क्यो आये? माताजी ने कहा—रात में मुझे घबराहट हो गई। मैंने सोचा—अन्तिम समय आ गया है। इसलिये चार घन्टे तक पाटा आदि का त्याग करके नीचे सो गई। वहा पर शास्त्र थे इसलिए यहां आ गई। हमको क्यों नहीं जगाया? जगा कर क्या करती—मैं अपना णमोकार जप करती रही। मैने सोचा कि तुम सब घबरा जाओगे, आकुलता करोगे इसलिये नही जगाया।

इस प्रकार मैने अपने जीवन में माताजी का साहस, धैर्य, निर्भीकता, अनसूया, ममत्व, वैयावृत्तित्व आदि गुणो को जैसा देखा वैसा सर्वत्र सुलभ नही है।

सर्व वृक्षों में चन्दन, सर्व गजो के गण्डस्थल मे मोती सुलभ नही है। उसी प्रकार सर्व गुण सम्पन्न होकर आर्यिका व्रत धारण करना भी सुलभ नही है।

卐 एक बार हम लोग शिखरजी आ रहे थे। रास्ता भूल गये। संध्या होने वाली थी। एक ग्राम में पहुँचे। वहां पर एक सज्जन ने कहा—आप यहां कैसे आये? आपको कहां जाना है? मैंने कहा—सिंहपुरी चन्द्रपुरी जाना है। इधर सिंहपुरी का रास्ता नहीं है यह चोरों का ग्राम है। आप मेरे साथ चलिये, यहा रुकने से धोखा है। दो मील पर उसका घर था वहां पर ले गया। गर्मी के दिन थे। उसके आगन में ठहर गये। हम दस स्त्रिया थीं। उसमें तीन कुमारिकाएँ १८ वर्ष की, दो आदमी थे। सब घबरा गये। अब क्या होगा? ग्राम से चार पाच लोग हाथों में लाठी लेकर आ गये। यद्यपि वे लोग हमारी रक्षा करने के लिये आए थे परन्तु हम सब घबरा गए। अब क्या होगा? विशेष चिंता कुमारियों की थी। माताजी ने कहा—तुम सब सो जाओ, मैं बैठी हूँ। अरे! जिसके पास णमोकार मन्त्र है, उसको भय किसका? वास्तव में, रात्रि निर्विघ्न पूरी हो गई। प्रात: काल उन लोगों ने सडक पर पहुँचा दिया। दो घन्टे में हम बनारस पहुँच गए। ऐसे कितने ही प्रसंग आये परन्तु माताजी अपने धैर्य से कभी विचलित नहीं हुईं। धन्य है इनका जीवन।

इन्होंने अपने धैर्य के बल पर ही बाहुबली की यात्रा की तथा आसाम और बंगाल में विहार करके सुषुप्त मानवों को जाग्रत किया। इनके प्रभाव से बोकाघाट, गौहाटी, जागीरोड़, बगाई गांव, डेरगाव, मंडिया, डीमापुर, गौरीपुर आदि जगहो पर चैत्यालय की स्थापना हुई है और दो साल में विजयनगर में दो पंच कल्याणक, व बरपेटा आदि में वेदीप्रतिष्ठा जैसे महान कार्य हुए हैं।

आप ख्याति पूजा-लाभ रूपी राक्षसों से भयभीत हैं। आपकी आत्मा में निर्लेपता, निष्कपटता, निष्पक्षता, उदारता और सरलता आदि अनुकरणीय गुण विद्यमान हैं। वैसे तो आपमें सम्यक्त्व के आठों अंगों की आभा स्फुटित है। किन्तु आपके हृदय में वात्सल्य अंग और निःशंकित अग तो विशेष है। आस्तिक्य भाव की तो आप मूर्ति ही हैं।

यद्यपि आप मितभाषी हैं तथापि आपका तत्त्वज्ञान अगाध है। आपने बहुत से ग्रन्थों की स्वाध्याय की है। जब स्वाध्याय करते है तो उसमे जो कोई नवीन प्रकरण आता है तब झट से मुझे दिखाते है—देखो, यह बात कैसी है ?

आपके हृदय मे चन्द्रसागर महाराज के प्रति अगाध भक्ति एवं श्रद्धा है। उनका स्मरण करते ही आपकी आंखो में अश्रुधारा बहने लगती है।

आपका गुणानुवाद जितना भी किया जाय उतना ही थोडा है।

संक्लेश रूपी व्याघ्रो से युक्त, सकल्प-विकल्प रूपी भयंकर क्रूर प्राणियों से व्याप्त मम-कार-अहंकार रूपी सघन अन्धकार से भयावह और आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान रूपी कंटकों से भरे हुए गृहस्थाश्रम से निकाल कर मुझे आर्यिका पद पर स्थापित करने का श्रेय आपको ही है।

मेरे अध्ययन में आपका ही परम सहयोग रहा है। मेरे प्रति आपका जो उपकार है उसको मैं किसी जन्म में भुला नही सकती। वीर प्रभु से प्रार्थना है कि आप चिरायु होवें तथा आपकी छत्रछाया में रह कर मैं निर्दोष व्रतों का पालन करती रहूँ।

❖

गुरुभक्त माताजी

आर्यिका १०५ श्री विद्यामती माताजी
संघस्था

चारित्र शिरोमणि, प्रबल धर्मप्रचारक, जैनधर्म उद्योतक, प्रातः स्मरणीय परम पूज्य (स्व०) १०८ आचार्यकल्प श्रीचन्द्रसागरजी महाराज की परम भक्त शिष्या १०५ इन्दुमती माताजी जब डेह पधारी थी उस समय मैं २४ वर्ष की थी। उस समय मेरी कोई विशेष धार्मिक रुचि भी नही थी। माताजी से भेट होने पर आपने मुझ से कहा—"मनुष्य भव प्राप्त करके क्यों इसे व्यर्थ व्यतीत कर रही हो ? यह समय ज्ञानाभ्यास करने का और सयमी बनने का है तुम्हारे लिये। यदि यह मनुष्य भव बिना ज्ञान सयम के चला गया तो फिर इसका मिलना महान् दुर्लभ है।" माताजी के उद्बोधन से मानो मैं सोते से जागी। उनके वचनामृत मेरे हृदय मे पैठ गए। माताजी गृहस्थावस्था मे भी हमारे परिवार के थे, यह जानकर तो उनका सान्निध्य पाने की मेरी भावना बलवती हो उठी।

विक्रम संवत् २०१७ मे आचार्यवर्य परम पूज्य (स्व०) १०८ शिवसागरजी महाराज का वर्षायोग सुजानगढ़ में सम्पन्न हुआ था। उस समय संघ में ३० पीछी थी। आर्यिका इन्दुमतीजी और सुपार्श्वमतीजी भी वहीं विराज रही थी। इस विशाल सघ की चर्या को देख कर मेरे मन में भी आर्यिका दीक्षा लेने की भावना हुई। परन्तु परिवार ने आज्ञा नही दी। मुझे पूज्य इन्दुमती माताजी और सुपार्श्वमती माताजी का सहारा था। वे बोले—"तुम चिन्ता न करो, हम तुम्हे अपने पास रखेंगे।" इससे मेरा उत्साह बढ़ा और मैंने पूज्य शिवसागरजी महाराज से आर्यिका दीक्षा ले ली। तब से अब तक मैं पूज्य आर्यिका द्वय के संरक्षण सान्निध्य मे ही रही हूँ।

पूज्य बडे माताजी, आर्यिका इन्दुमतीजी के गहन गुणों का वर्णन मुझ जैसी अज्ञानी क्या कर सकती है तथापि भक्तिवश कुछ लिखने का प्रयास करती हूँ।

गुरु की महिमा बरणी न जाय।
गुरु नाम जपो मन वचन काय॥

मुझ अबोध को माताजी ने सन्मार्ग दिखाया है। 'गुरु बिना ज्ञान, भेद बिना चोरी' गुरु के बिना ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती और भेद के बिना चोरी नहीं होती। माता-पिता तो सिर्फ जन्म देने वाले होते हैं, सच्चा मार्ग दर्शाने वाले तो गुरु ही होते हैं—

गुरुरेव भवेन्माता, गुरुरेव भवेन् पिता।
गुरुरेव सखा बंध, गुरुरेव भवेद्धितं॥
गुरुःस्वामी गुरुर्भ्राता, गुरु विद्यागुरु गुरुः।
स्वर्गोगुरुर्गुरुर्मोक्षो, गुरुर्बन्धुर्गुरुः सखा॥

आज यदि मुझे माताजी के धर्मामृत रूप वचन प्राप्त नहीं होते तो न जाने मेरा क्या हाल होता! इस ससार रूपी मरुस्थल में भटकती हुई, दु:ख रूपी सूर्य की प्रखर किरणों के आताप से त्रस्त हुई मैं कैसे शान्ति पाती! माताजी के मुझ अकिंचन पर असीम उपकार हैं। माताजी के सम्बन्ध में क्या लिखूं? धन्य है वे जनक जननी जिन्होने इस महान् सन्तान को जन्म दिया।

पूज्य माताजी अपने गुरु चन्द्रसागर महाराजजी की अत्यन्त भक्त हैं। उनके प्रति आज भी आपका अटल श्रद्धान है। महाराज का नाम लेने मात्र से आपकी आंखों में अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है। माताजी के हृदय मे अपने गुरु के प्रति जो भक्ति है, वह सामान्यत: देखने को नहीं मिलती। यही प्रगाढ़ गुरुभक्ति माताजी की संयमसाधना में सहायक बनी है। वृद्धावस्था एवं दुर्बल शरीर के होते हुए भी आपका आत्मबल विशेष वृद्धिगत है। ७६ वर्ष की इस उम्र में भी आप निरन्तर १२ घण्टे तक बिना किसी सहारे के बैठकर स्वाध्याय करती रहती हैं, किसी प्रकार की आकुलता नही होती। जब विहार करते हैं तो एक दिन में २० मील तक पैदल चल लेती हैं। दूसरों की वैयावृत्य स्वयं अपने हाथों से करती हैं, चाहे बालक हो या वृद्ध हो, कोई भी अस्वस्थ हो, निरन्तर वैयावृत्य में जुट जाती हैं।

एक बार कुन्थलगिरिजी के रास्ते में हम तीनों ही साथ थीं, साथ में कोई भी श्रावक नहीं था। सामने पर्वत भी दिखने लगा था; हमने एक पगडण्डी पकड़ी और चलने लगे परन्तु मार्ग भूल गए। बियाबान जङ्गल में जा पहुँचे। मैं तो ऐसे ही बहुत घबराती हूँ; अब तो और ज्यादा घबराने लगी। माताजी ने धैर्य बँधाते हुए कहा—"णमोकार मन्त्र का जाप करो। हृदय में भगवान की उत्कृष्ट भक्ति है तो स्वयं ही पहुँच जाओगे।" णमोकार मंत्र का जाप करते-करते स्वय ही मार्ग मिल गया। ऐसे लगा जैसे कोई व्यक्ति दीपक हाथ में लेकर मार्ग दर्शाता हुआ आगे-आगे चल रहा है।

कुन्थलगिरि निर्विघ्न पहुँचे। यह महिमा माताजी की निर्भीकता, भगवद्भक्ति और गुरुभक्ति की है। ऐसी अनेक घटनाएँ घटित हुई हैं जो मैंने प्रत्यक्ष देखी हैं। माताजी की जिनवाणी के प्रति भी अविचल श्रद्धा है। शास्त्र विरुद्ध कार्य—चाहे कोई भी करता हो—उन्हें स्वीकार्य नहीं, वे उसका निग्रह करने का पूर्ण प्रयत्न करते हैं।

पूज्य माताजी का हृदय नवनीतवत् कोमल है। आचार्यों ने गुरु की उपमा नारियल से दी है। जैसे नारियल ऊपर से कठोर होते हुए भी भीतर से कोमल होता है, खाने वाले को पुष्टि और सन्तोष देता है वैसे ही माताजी भी ऊपर से कठोर प्रतीत होती हैं किन्तु उनका हृदय बड़ा कोमल है। उनके साथ रह कर ही उनके गुणों को पहचाना जा सकता है।

गुरु कुलाल शिष्य कुम्भ है, गढ़-गढ़ काढ़े खोट।
भीतर हाथ पसार कर, बाहिर मारे चोट॥

माताजी का भी यही रूप है। जैसे कुम्भकार घट बनाते समय ऊपर चोट मारता है परन्तु साथ ही भीतर हाथ भी रखता है वैसे ही माताजी अपने शिष्यों के प्रति ऊपर से कठोर बोलते हुए भी अन्दर-अन्तर में हाथ रखते हैं। जैसे माता हमेशा अपनी सन्तान का हित चाहती है वैसे ही माताजी भी सब जीवों का हित चाहती है; उन्हें सन्मार्ग में लगाती हैं।

मेरी तो निशि दिन यही भावना है कि आपकी छत्रछाया मे रहकर मेरा संयम सतत वृद्धिगत होता रहे। आप चिरायु हों, आपका पुनीत आशीर्वाद हमें दीर्घकाल तक मिलता रहे।

मेरी भी गुरुभक्ति अटूट बनी रहे, इसी भावना के साथ पूज्य माताजी के चरणों में शत शत वन्दामि।

❖

"वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि"

卐 ☼ आर्यिका सुप्रभामती

जिस प्रकार मयूर वर्षाऋतु के आगमन की प्रतीक्षा करता है, हम भी उसी प्रकार किशोरावस्था में स्कूल की छुट्टी की राह देखते थे क्योंकि लम्बी छुट्टी के दिनो मे हम लोग परम पूज्य आचार्य शान्तिसागरजी महाराज के सान्निध्य-लाभ का अवसर नही चूकते थे। आचार्यश्री के दर्शन, आहारदान-लाभ, स्वाध्याय, तत्त्वचर्चा और उनकी अमृतवाणी सुनने की अत्यन्त उत्कण्ठा बनी रहती थी। आचार्यश्री स्वाध्याय के बाद या सायकालीन प्रतिक्रमण से पूर्व अपने चिन्तन से प्राप्त अनुभव से उपलब्ध 'बोल' कहते थे। परम पूज्य आचार्यश्री के मुखारविन्द से कई बार सुना कि "चन्द्रसागर जैसा सिहवृत्ति का वीर तपस्वी कही नही मिलेगा।" "विचारों की स्पष्टता, मन की दृढ़ता, वाणी की निर्भयता तपस्या की कठोरता आदि गुणों की खान चन्द्रसागर था।" "उत्तरप्रान्त में समाजजाग्रति हेतु मानो उसने शङ्खनाद ही किया था। त्यागी-तपस्वियों की तपस्या से हरा-भरा और प्रफुल्लित यह मरुस्थल चन्द्रसागरजी की ही देन है।"

बाप जैसी बेटी :

पूज्य इन्दुमती माताजी उन्हीं चन्द्रसागरजी महाराज की सुशिष्या हैं जिनके सम्बन्ध में चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर महाराज अपने विचार उपर्युक्त रीत्या व्यक्त किया करते थे। पूज्य माताजी मे भी अपने गुरु के गुण ज्यो के त्यों फलीभूत दिखाई देते है। निर्भयता, कुशल संचालन, दृढ़ अनुशासन, वैचारिक स्पष्टता और कठोर तपस्या में आप भी कुछ पीछे नहीं हैं। माताजी के इन गुणों का परिचय उनके सान्निध्य में रहने से शीघ्र प्राप्त होता है। निश्चय ही आप 'गुरु जैसा शिष्य' 'बाप जैसी बेटी' उक्ति को चरितार्थ करती हैं।

असाधारण धैर्य :

'अबला' होते हुए भी आपने अपने पुरुषार्थपूर्वक सुयोग्य, आज्ञाशील, विदुषी शिष्या सुपार्श्वमतीजी और विद्यामतीजो को साथ लेकर केवल ब्र० देवकुमारी, ब्र० हरकीबाई, ब्र० सन्तोषबाई और ब्रह्मचारी कैलाशजी के सहयोग से मरुभूमि से लेकर श्रवणबेलगोलादि दक्षिण भारत की पैदल यात्रा सम्पन्न की है।

पूज्य इन्दुमती माताजी के कुशल अनुशासन और सुपार्श्वमती माताजी की धाराप्रवाही सिद्धान्त गर्भित प्रवचन शैली से आकृष्ट हो परम पूज्य समन्तभद्र मुनिराज ने कुम्भोज बाहुबली में चातुर्मास करने की प्रेरणा दी। अकलूज, बारामती, कारञ्जा आदि स्थानों पर भी आर्यिकासंघ के चातुर्मास महाराजश्री की प्रेरणा से ही हुए। माताजी के प्रति आज भी उनकी धर्म-वत्सलता बनी है।

कारञ्जा से सम्मेदशिखरजी की ओर विहार हुआ। बनारस के बाद कही श्रावकों की बस्ती नहीं। दो तीन ब्रह्मचारी, ड्राईवर और क्लीनर के अलावा अन्य कोई श्रावक साथ नही। अनोखा प्रान्त ! कई मील तक ठहरने के लिए उपयुक्त स्थान नही मिला।। चारो ओर जङ्गल ही जङ्गल था। अन्धकार होने आया, ठहरने को स्थान का पता नही था। कुछ दूरी पर ऊँची-ऊँची झाड़ियों के झुण्ड के बीच तापसियो का एक आश्रम दिखाई दिया। गर्मी के दिन थे, वही रुकना पड़ा। कुछ देर बाद वे संन्यासी ताड़ी पीके मस्त हुए थे। चारों ओर अग्नि जला कर वे जोर-जोर से 'धुनी' करने लगे। हम घबराए लेकिन बडे माताजी धीरतापूर्वक बोली—"क्या वे तुमको खा जाएंगे ? घबराते क्यों हो ? णमोकार महामन्त्र का जाप करो, विश्वास करो। जिसके पास णमोकार महामंत्र रूप अमूल्य शस्त्र है, उसका कोई बाल भी बांका नही कर सकता।" णमोकारमन्त्र के जाप्यपूर्वक रात्रि निर्विघ्नतया पूरी हुई; सुबह विहार हुआ।

मिरजापुर, आरा, पटना के पास शाम के समय ताड़ी पी कर मस्त हुए लोगों के समुदाय जगह-जगह दिखाई देते थे, अनेक बार ऐसे स्थानो पर ठहरने के प्रसग भी आए। कई स्थानो पर तो ऐसे ही लोग रात्रि भर जागरण करके हम लोगो को धैर्य बँधाते थे; इतना ही नही—"हम गरीबो के यहां ठहर कर हमारा आतिथ्य स्वीकारो और हमारा घर-आंगन पवित्र करो" ऐसी याचना करते थे।

कुशल अनुशासन :

योग्य अनुशासन न हो तो बड़े से बडे राष्ट्र का चन्द दिनों में 'तीन तेरह नौ बारह' हो जाता है। घर में भी योग्य मार्गदर्शक न हो तो वह भी अशान्ति का स्थान हो जाता है। इसी तरह कुशल अनुशासक न हो तो संघ द्वारा भो धर्मप्रभावना नही हो सकती। अनुशासक के लिये 'नारियल'

(श्रीफल) की उपमा दी जाती है जो ऊपर से कठोर होते हुए भी अन्दर से मधुर और कोमल होता है तथा शीतल जल से परिपूर्ण होता है। पूज्य इन्दुमती माताजी का व्यक्तित्व भी ऐसा ही है, ऊपर से नारियल जैसा कठोर और भीतर से दया-अनुकम्पा के जल से लबालब।

पूज्य बड़े माताजी के पास सहसा सीधे जाने का कोई साहस नही करता किन्तु पास बैठने के बाद इन्दुवत् शीतलता के प्रभाव से मुग्ध हुआ वहाँ से उठ कर जाने के लिए भी तैयार नही होता क्योकि माताजी के नाम मे ही—मोहनी से इन्दुमती एक प्रकार का जादू है। अनुभव करने वाला ही इस रहस्य को समझेगा।

अद्भुत सेवावृत्ति :

अन्त.करण की कोमलता बिना दूसरो की सेवा नही बन सकती। पूज्य इन्दुमती माताजी के मन में—चाहे छोटा हो या बड़ा हो उसकी सेवा करने हेतु हिचक नही होती। विहार में भी सबसे पहले पहुँच कर घास-चटाई स्वयं अपने हाथ से बिछायेंगे। शास्त्र के लिए चौकी-पाटा पहले से लगाया हुआ मिलेगा, शास्त्र खोलना बाँधना आदि सब काम स्वय करेंगे। वह भी बडो चतुराई से। माताजी के समान काम की चतुराई क्वचित् ही देखने में आएगी। कितने भी मील चल कर आए हों शरीर थका हो तो भी सारा काम स्वय करेंगे, प्रमाद तो आपको छू भी नहीं गया।

सम्मेदशिखरजी में पहाड़ की वन्दना हेतु कभी विलम्ब हो जाता तो हाथ में कमण्डलु लिये पहाड़ की तलहटी मे हमारी राह देखते हुए दिखाई देते, लौटते ही गर्म जल आदि तैयार मिलता।

धुलियान चातुर्मास मे दशलक्षणव्रतों में एक स्त्री का स्वास्थ्य नवमें उपवास के दिन बिगड़ गया। जीवन बचने की भी आशा नही रही थी। धर्मशाला में ठहरी हुई उस स्त्री की वैयावृत्य हम लोग करते थे लेकिन माताजी जैसी सेवा कोई नहीं कर सकेंगे। पूज्य बड़े माताजी का चतुर्दशी का उपवास था, माताजी ने दो दिन तक उस स्थान को छोड़ा ही नही—रात दिन णमोकार मन्त्र सुनाते थे, इतना ही नहीं लघुशंका के लिए भी स्वयं हाथ पकड़ कर ले जाते थे। माताजी का यह सेवाभाव देखकर दाँतों तले अंगुली दबानी पडती है। आप कभी किसी काम के लिए दूसरे से कहते नहीं, सब काम स्वावलम्बनपूर्वक स्वयं करते हैं।

अन्तःकरण की दयालुता :

संघ के अन्य त्यागी व्रती जब माताजी के पास व्रत-उपवास की प्रतिज्ञा लेने जाते हैं तो अन्तराय अथवा स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण उपवास देने की माताजी की इच्छा कम ही रहती है। लेकिन हम लोगों की उपवास की भावना प्रबल देख कर माताजी कहेंगे—"मैं भी करूंगी उपवास" या फिर "मन्नै ठा कोनी"।

निर्भयवृत्ति :

कलकत्ता-चातुर्मास में श्री सुपार्श्वमती माताजी का स्वास्थ्य ठीक नही था। आठ माह तक वहां रहे। आखिर, विहार करने का विचार किया। गर्मी का मौसम होने से विहार में तकलीफ होगी ऐसा विचार कर वहाँ के प्रमुख लोगो—जयकुमारजी, कल्याणमलजी, शान्तिलालजी सीतारामजी प्रभृति ने विहार का विरोध किया, सत्याग्रह किया। परन्तु विहार का एक बार निश्चय कर लेने पर बड़े माताजी ने लोगो के विरोध की, अनशन की तनिक भी परवाह नही की। माताजी ने संघ सहित विहार कर दिया। पू० माताजी स्पष्टवक्ता हैं, छोटा हो चाहे बड़ा जो कहना है, स्पष्ट कह देंगे; गुत्थी या ग्रन्थि बनाए रखना उनका स्वभाव नही।

कर्त्तव्यपरायणता :

वि० स० २०३४ मे विजयनगर (आसाम) मे चातुर्मास हुआ। इसके बाद माताजी ने कानकी (बंगाल) के श्रावकों के विशेष आग्रह के कारण स० २०३५ का चातुर्मास वहाँ करने का आश्वासन दे दिया। विहार मे, मार्ग मे फाल्गुन के अष्टाह्निका महोत्सव हेतु नलवाड़ी रुके। तत्रस्थ श्रावको ने वहाँ चातुर्मास करने के लिए बहुत आग्रह किया। समाज के छोटे-बड़े सभी की एक यही इच्छा कि आर्यिका सघ का चातुर्मास वहाँ हो। परन्तु कानकी के समाज को पहले आश्वासन दे चुके थे, तो भी लोगो ने हठ न छोड़ी। विहार मार्ग में जगह-जगह आते थे। बरपेटा मे बस लेकर ५०-६० श्रावक-श्राविकाएँ नलवाड़ी से आए। चातुर्मास की स्वीकृति लेने के लिए माताजी के चरणों मे गिर पड़े परन्तु स्वीकृति नही मिली। अस्वीकृति के कारण वे हतोत्साहित हुए, उनके नेत्रों ने जल प्रवाहित कर माताजी के चरण प्रक्षालित किये। करुणाविगलित माताजी की आँखो से भी अश्रु बहने लगे। सामने वाले की आँखों मे अश्रु देखकर दयालु माताजी के करुणापूर्ण नेत्र भी अश्रु-विमोचन करने लगते हैं। माताजी का हृदय गद्गद् हो गया—चारो ओर स्तब्धता छा गई। अपूर्व-भक्ति और करुणा का यह हृदयद्रावक दृश्य देख कर सुपार्श्वमती माताजी कहने लगी—"स्वीकृति ही चाहिए ना? दे दो माताजी!" लेकिन कर्त्तव्यपरायण और कुशल अनुशासक बड़े माताजी ने कहा—"थूकना और फिर उसे चाटना कहा का न्याय है?" अर्थात् किसी को प्रथम वचन दे के बाद मे ना कहना योग्य नही। साधु के वचन एक बार ही निकलते हैं।" इस रहस्य को समझकर नलवाड़ी के श्रावक दु:खी मन से लौट गये।

धोबडी मे फाल्गुन की अष्टाह्निका में सिद्धचक्र मण्डल विधान हुआ। एक दो दिन के बाद विहार का निश्चय किया गया। गर्मी थी, विहार के दिन, आहार के आरम्भ में ही बडे माताजी की अञ्जुलि मे बाल निकलने से अन्तराय हो गया। श्रावक गण कहने लगे—कल आहार के बाद विहार करना। लेकिन विहार करने का विचार प्रथमत: कर लेने से उसी दिन विहार हुआ।

अपरिमित वात्सल्यभाव :

अकलूज में श्री गंगाराम दोशी द्वारा निर्मित श्री बाहुबली मन्दिर में वर्षायोग सम्पन्न किया था। श्री सुपार्श्वमती माताजी बहुत अस्वस्थ थीं। प्रतिदिन उलटी (वमन) होने से पेट में एक बूंद पानी भी नहीं ठहर पाता था। श्री शान्तिनाथ सोनाज्ञ, चम्पाबाई, माणिकचन्दजी ने खूब प्रयत्न किया। वैयावृत्ति मे कोई कमी नही थी। गर्मी के दिन थे, अन्तराय भी बहुत आती थी। क्या करें, समझ मे नहीं आता था। अन्तराय न हो इसलिये बहुत सावधानी रखते थे। एक दिन बिल्ली का बच्चा चौके में घुसने लगा। माणिकचन्दजी ने उसे पकडने का प्रयत्न किया। दो तीन बार हाथ से छूट कर बिलकुल माताजी के समक्ष जाकर बैठ गया। अन्तराय हो गई। सुपार्श्वमतीजी को अन्तराय हुई, ऐसा समझते ही बडे माताजी की अञ्जुलि अपने आप छूट गई, अन्तराय हुई। यह है हार्दिक वात्सल्य। सघ में किसी को भी जरा कुछ हो जाए तो माताजी स्वयम् वैयावृत्ति करेंगे, पास मे बैठेंगे, सिर पर पीठ पर हाथ फेरेंगे, बार-बार पूछेंगे। इस प्रकार की वात्सल्य परिपूर्ण सहानुभूति क्वचित् ही कही मिलेगी।

गुरु-भक्ति :

पूज्य बड़े माताजी को गुरुवर्य श्री चन्द्रसागर महाराज के वचनों पर अटल श्रद्धा रही है। शास्त्रीय या व्यावहारिक कोई भी चर्चा होगी तो माताजी—'आगम मे ऐसा कहा है, यह नहीं कहेगी' अपितु चन्द्रसागर महाराज ऐसा कहा करते थे, यही बात बार-बार कहेंगी। क्योंकि गुरु कभी आगम के विरुद्ध नही कहते, यह दृढ श्रद्धा है। गुरु के वचन जगत् के जीवों के अज्ञानान्धकार का नाश करने मे कारणभूत होते हैं। गुरु ही संसार में भटकने वाले जीवों को दीपस्तम्भ के समान मार्गदर्शक होते हैं; इसीलिये तो सिद्धों से पहले अरिहन्तों को नमस्कार किया गया है क्योंकि वे ही हमारे प्रत्यक्ष गुरु हैं। उनकी दिव्यध्वनि सुन कर भव्य जीव अरिहन्त जैसे स्वरूप को प्राप्त होते हैं।

आचार्य कल्प चन्द्रसागरजी जैसे गुरु की शिष्या पूज्य बड़े माताजी इन्दुमतीजी की हम लोग अनुगामिनी हैं। हमे माताजी की छत्रछाया दीर्घकाल तक प्राप्त होती रहे, यही कामना है।

❖

सहवासिनो हि जानन्ति

✻ आर्यिका सुपार्श्वमती

बहुत से लोग कहते हैं कि इन्दुमती माताजी विदुषी नहीं हैं। नीति यह कहती है कि—"सहवासिनो हि जानन्ति, चरित्रं सहवासिनाम्" सहवासी ही सहवासी के गुणों को जानता है। मुझे गत ३३ वर्षों से आपके साथ रहने का सौभाग्य मिला है। यद्यपि माताजी कोई डिग्रीप्राप्त--उपाधिधारी नही हैं, वक्ता भी विशिष्ट नही हैं तथापि आपका अनुभव ज्ञान अति शोभनीक है। "थोथा चना बाजे घना" सारहीन चना बहुत आवाज करता है, बजता रहता है परन्तु भरे हुए चने में आवाज नहीं आती। इसी प्रकार वक्ता का ज्ञान थोथे चने के समान भी हो सकता है परन्तु अनुभव ज्ञान भरे हुए चने की भाँति है। माताजी का ज्ञान भरे हुए चने की भाँति है। वह अनुकरणीय है। मैं जब उपदेश देती हूँ, उस समय मुझे संकेत करती हैं कि यह बात कल बोली हुई है, एक ही बात को बार-बार कहने से पुनरुक्ति दोष होता है। आपको कितने ही स्तोत्रपाठ एवं ग्रन्थो के श्लोक कण्ठस्थ हैं। जब मैं बोलते-बोलते कोई श्लोक भूल जाती हूँ तो आप शीघ्र ही बता देती हैं।

आप शास्त्रविरुद्ध कोई भी बात सुनना नही चाहतीं। कितना ही बडा विद्वान् हो या कोई प्रभावशाली धनिक हो—शास्त्रविरुद्ध बोलने पर आप उसे डाँटे बिना नहीं रह सकती। मुझे तो बार-बार कहती हैं—यशोलिप्सा के कारण कभी धर्ममार्ग से च्युत नहीं होना। जिनधर्म पर आपकी दृढ़ आस्था है। आपका हृदय अत्यन्त दयालु है, किसी की आँखों में अश्रु देख कर आपकी आँखें भी जल बहाने लगती हैं।

आप शास्त्रविरुद्ध कार्य (यथा—विधवा विवाह, विजातीय विवाह) की कट्टर विरोधिनी हैं। अतः कोई-कोई आपका भी विरोधी बन जाता है परन्तु आप उसकी किंचित् भी परवाह नहीं करती है। माताजी कहती हैं कि शक्तिप्रमाण शास्त्रोक्तविधि के अनुसार कार्य करना

चाहिए। शक्ति न हो तो श्रद्धान अवश्य करना चाहिए। शास्त्र हमारे देखने में न आवे तब तक सगति के प्रभाव से या रूढ़िवशात् कोई क्रिया करते हैं—यह बात अलग है परन्तु शास्त्र देख लेने पर, विशिष्ट आचार्यों के कथनों को ज्ञात कर लेने पर भी जो दुराग्रह या पक्षपात को नही छोड़ना चाहते हैं और विपरीत कल्पना कर अपनी मनमानी करते हैं; उन्हें समझाने के लिए हमारे पास शब्द नही है। अपना कल्याण चाहने वाले मनुष्य को आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती के वचनों पर ध्यान देना चाहिए—

"सम्माइट्ठी जीवो, उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं, अजाणमाणो गुरुणियोगात् ।।"

(सम्यग्दृष्टि जीव जिनेन्द्रदेव के द्वारा उपदिष्ट प्रवचन का श्रद्धान करता है और स्वयं नहीं जानता हुआ गुरु के उपदेश से 'जिनेन्द्रभगवान का कहा हुआ है' ऐसा समझ कर विपरीत भाव का श्रद्धान करता है तो भी वह सम्यग्दृष्टि है।) परन्तु—

"सुत्तादो तं सम्मं दरसिज्जंतं जदा ण सद्दहदि।
सो चेव हवई मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुदो ।।"

(आचार्य कथित सूत्रों से सम्यक्प्रकार समझाए या दिखाए जाने पर भी यदि श्रद्धान नहीं करता है तो वह उसी समय मिथ्यादृष्टि हो जाता है, इसलिए शास्त्रानुसार मति करनी चाहिए।)

ज्ञान लव के घमण्ड में आकर देव-शास्त्र-गुरु की अवहेलना मत करो। ज्ञान क्षणध्वंसी है। ज्ञान का फल चारित्र है, उसकी रक्षा करने का प्रयत्न करना चाहिए।

पूज्य माताजी इस समय ७६ वर्ष की है परन्तु प्रमाद आपको आज भी स्पर्श नही कर सका है। यद्यपि आपका स्वास्थ्य कमजोर है, जङ्घाबल क्षीण हो गया है, उठने-बैठने मे तकलीफ होती है तथापि अपना काम आप स्वयमेव करती हैं। किसी से इतना भी नही कहती कि यह पुस्तक उठाकर मुझे दे दीजिए।

आपके गुणों की प्रशसा जितनी की जाए उतनी ही कम है। मैंने अनेक आर्यिका-माताओं के दर्शन किए हैं, महान् विदुषियो के भी दर्शन किए हैं परन्तु इन्दुमती माताजी के समान शान्ति, सरलता, अनसूया भाव विरलों में ही हैं।

चन्द्रमा के समान आपका चारित्र निर्मल है; चन्द्रमा तो फिर भी कलङ्कित है आपका चारित्र निर्दोष है। सूर्य के समान तेजस्वी होती हुई भी आप सन्तापकारी नही हैं समुद्र के समान गम्भीर होते हुए भी आपके वचन मधुर हैं, समुद्र के पानी के समान खारे नहीं हैं। मेरु के समान थिर होते हुए भी आप जड़ नहीं हैं—अतः समझ नही पा रही—आपको किसकी उपमा दूं ?

ऐसी परोपकारिणी माता के चरणों में मेरा शत शत वन्दन ! शत शत वन्दन !! ❖

धर्ममूर्ति माताजी

—क्षुल्लक सिद्धसागर, लाडनूँ वाला

आर्षमार्ग एवं आगम की पोषिका, निर्भीक, त्याग की प्रतिमूर्ति, धर्मसंरक्षिका, वैयावृत्य आदि तपों मे असाधारण विश्वास रखने वाली, आर्यिका शिरोमणि १०५ श्री इन्दुमती माताजी का जीवन अत्यन्त गौरवपूर्ण एवं श्रद्धा का आधार केन्द्र है। आपका अध्यात्मपूर्ण त्यागमय जीवन सम्पूर्ण नारी जाति के लिए तथा समाज के लिए अतीव सशक्त स्तम्भ के रूप में विद्यमान है। स्वर्गीय आचार्यकल्प १०८ श्री चन्द्रसागरजी महाराज की अन्यतम शिष्या रत्न होने के साथ-साथ आपने उनकी आर्षमार्ग परम्परा को अक्षुण्ण बनाए रखने में जिस साहस के साथ सत्यधर्म का पोषण किया है, वह धार्मिक जनो के लिए युग-युगान्तर तक आदर्शमार्ग के रूप मे अमर रहेगा।

आपने अपनी धर्मोद्योत की प्रबल भावना से अगणित प्राणियों को सन्मार्गगामी बनाया है जिसकी गुणगाथा आज देश के कोने-कोने में गाई जाती है। आपने देश के सभी प्रान्तो मे विहार करके जैनधर्म की महती प्रभावना की है। आगमसम्मत सिद्धान्त के प्रतिपादन मे आप निर्भीक कुशल वक्ता है। आपके मुखमण्डल पर सदैव वीतरागता, गम्भीरता एवं विद्वत्ता का तेज चमकता रहता है। आपके धर्मोपदेश मे सिद्धान्त और व्यवहार आदि का पूर्ण समावेश रहता है, जो व्यक्ति आपका मधुर प्रवचन एक बार भी सुन लेता है, वह अपना अहोभाग्य मानने लगता है।

आपकी शिष्यपरम्परा में १०५ आर्यिका रत्न श्री सुपार्श्वमती माताजी का नाम वर्तमान समय मे जैनजगत मे कीर्तिमान स्थापित कर रहा है। आपकी ज्ञानगरिमा से देश व समाज को मार्गदर्शन मिलता है। आपकी स्फुरणशील प्रतिभा से सम्पूर्ण मानव समाज गौरवान्वित हो रहा है। आपके ही संघ मे आपकी आज्ञाकारिणी व आपके पदचिह्नों पर चलने वाली १०५ आर्यिका श्री विद्यामतीजी व सुप्रभामती जी भी निरन्तर ध्यानाध्यन मे रत रहती है।

इस संघ का अवदान अत्यन्त सराहनीय अथ च अनुकरणीय है।

पूज्य १०५ आर्यिका श्री इन्दुमती माताजी के अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन दिगम्बर जैन समाज का अतीव स्तुत्य कार्य समझा जाएगा। ऐसी परम धर्ममूर्ति माताजी के चरण कमलो में मेरा त्रिधा शत शत वन्दन! शतशत वन्दन!! शतशत वन्दन!!!

अपने विशेषण आप

ब्र० कुमारी प्रमिला एम. ए. शोधस्नातिका
संघस्था

संवत् २०२७। ग्राषाढ का ग्रष्टाह्निका पर्व निकट था। मंदिरजी के सूचना पट्ट पर सूचना लिखी थी कि कल प्रातःकाल नौ बजे परम विदुषी ग्रायिकारत्न इन्दुमतीजी एवं सुपार्श्वमतीजी के संघ का नगर में पदार्पण हो रहा है ग्रतः सभी बन्धुग्रों से प्रार्थना है कि ग्रधिकाधिक संख्या में गढ़ा रोड पर उपस्थित होकर माताजी के स्वागत-समारोह में सम्मिलित होकर पुण्योपार्जन करे।

सूचना पढ कर मैं घर ग्रा गई। तब मुझे देवदर्शन ग्रौर साधु-दर्शन में कोई विशेष रुचि नहीं थी। सिर्फ मां की प्रेरणा से ही यदा कदा मन्दिर चली जाया करती थी।

ग्रायिका संघ का शहर में पदार्पण हुग्रा। एक दो दिन में ही सारे शहर में यह चर्चा होने लगी कि ऐसी विदुषी ग्रादर्श ग्रायिकाएँ हम लोगों ने ग्राज तक नहीं देखीं। इन्दुमती माताजी की सौम्य शान्त मुखमुद्रा देखते ही बनती है। सुपार्श्वमती माताजी तो मानो साक्षात् शुभ्रवस्त्रावृता सरस्वती देवी ही हैं। विदुषी तो हैं ही, साथ में उत्कृष्ट चारित्र की धनी हैं ग्रौर योग-ध्यान साधना की देदीप्यमान मणि भी हैं। यह भी सुना कि उनके हृदय में क्रोध, मान, माया ग्रौर लोभ का प्रवेश नहीं है, पक्षपात से वे कोसो दूर हैं। जो कहती हैं, शास्त्रोक्त ग्रौर सप्रमाण कहती हैं।

प्रातः ग्रौर मध्याह्न दो समय प्रवचन होते थे। प्रतिदिन सूचना के द्वारा उपदेश का विषय ग्रौर स्थान बता दिये जाते थे। मेरा घर ग्रायिकाग्रों के ठहरने के स्थान से लगभग दो मील दूर था, मन में धर्म के प्रति कोई विशेष रुचि या ग्राकर्षण भी नहीं था ग्रतः मैं नहीं जाती थी। मां प्रतिदिन उपदेश सुनने के लिए जाती थी ग्रौर घर ग्राकर ग्रायिकाग्रों की ग्रौर उनके

उपदेश की जी भर प्रशंसा किया करती थी कि ऐसी साध्वियां तो मैंने अपने जीवन में अभी तक नहीं देखीं। क्योंकि हमारे नगर में प्रतिवर्ष साधु संघों का आगमन होता रहता है, इसीकारण हमारा नगर 'धर्मनगरी' भी कहा जाता है। मां मुझे भी बार-बार कहती कि "बेबी ! तुम भी एक बार तो उपदेश सुनने चलो।" इस सारी चर्चा और मां की बार-बार की प्रेरणा ने मुझे उत्साहित किया और एक दिन प्रवचन सुनने के इरादे से मैं भी मां के साथ गई।

वह दिन मैं अपने जीवन मे कभी नही भूल सकती। वह छवि भी मेरे स्मृतिपटल पर पूर्ववत् अंकित है। माताजी वर्ग पाट पर आसीन था। श्रोतासमुदाय के कारण स्थान भी छोटा पड़ रह था। आर्यिकाओं के सौम्य स्वरूप को देख कर मेरा मस्तक स्वत: ही नत हो गया, न जाने किस आकर्षण ने मुझे बांध लिया था; हृदय असीम आह्लाद व शान्ति का अनुभव करता प्रतीत हुआ। अन्तरङ्ग मे भावना जागी कि आर्यिकाओ के निकट जाकर बैठूँ परन्तु भीड़ में आगे जा पाना सर्वथा असम्भव था अत: पीछे ही बैठना पडा। आर्यिका सुपार्श्वमतीजी का उपदेश प्रारम्भ हुआ। विषय था : मानव जीवन का शृङ्गार ब्रह्मचर्य। माताजी कह रही थी—

मातायें अनेक सन्तानों को जन्म देती हैं। यदि उनकी एक भी सन्तान—मुनि, आर्यिका, ब्रह्मचारी या त्यागी, व्रती बन जाती है तो उस माता का जन्म सफल हो जाता है। जो ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं, देव भी उनके चरणों मे नतमस्तक होते हैं। जिस पुरुष ने तीन लोक में चिन्तामणि रत्न समान अपना समस्त शील खो दिया है उसने मानो जगत मे अपनी अपकीर्ति का ढोल बजाया है, अपने वंश मे कालिमा लगाई है, चारित्र को जलाञ्जलि दी है, गुणों के समूह रूप बाग में आग लगाई है। समस्त आपत्तियों का संकेत स्थान कुशील है। जिसने शील बिगाड़ा है उसने मानो मोक्षनगर के द्वार पर दृढ़ता से किवाड़ लगा दिये है; ऐसा समझ कर हे भव्यप्राणियो ! कुशील का त्याग कर ब्रह्मचर्य का पालन करो।

अङ्कस्थाने भवेच्छीलं, शून्याकारम् व्रतादिकम्।
अङ्कस्थाने पुनर्नष्टे, सर्वं शून्यव्रतादिकम् ॥

× ×

शुचिर्भूमिगतं तोयं, शुचिर्नारी पतिव्रता।
शुचिर्धर्मपरो राजा, ब्रह्मचारी सदा शुचिः ॥

× ×

अभुक्त्वाऽपि परित्यागात्स्वोच्छिष्टं विश्वभावितं।
येन चित्रं नमस्तस्मै, कुमारब्रह्मचारिणे ॥

सम्पूर्ण सभा ने मन्त्रमुग्ध होकर प्रवचन सुना। माताजी धारा प्रवाह बोल रही थीं उनके विशद ज्ञान की थाह नहीं लगा पा रही थी मैं। भीतर ही भीतर मेरा मन मानव जीवन के शृङ्गार स्वरूप ब्रह्मचर्य को अपनाने का निश्चय कर रहा था। मैं प्रवचन से पूर्णतः अभिभूत हो गई थी। अनेक स्त्रीपुरुषों ने आर्यिकाश्री से ब्रह्मचर्यव्रत अंगीकार किया। मेरे मन ने भी निर्णय लिया—आजीवन ब्रह्मचारिणी रहना।

सभा के बाद भी भीड़ के कारण आर्यिकाओं के निकट जाकर चरण स्पर्श करने का सौभाग्य मेरा नहीं हो सका। मन ही मन कुमारब्रह्मचारिणे नमः का भाव लिए लौटी। माताजी की आहार क्रिया देखने का अवसर भी मिला। ज्ञात हुआ आज ही संघ का यहाँ से विहार होने वाला है। आहार के बाद जब आर्यिका सुपार्श्वमतीजी दातार के गृहाङ्गण में कुछ क्षणों के लिए बैठी तो शिक्षा देने लगी—

आहारनिद्राभयमैथुनं च, सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो, धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥

मनुष्य पर्याय की सार्थकता धर्म धारण करने में ही है। हिंसा, झूठ, चोरी कुशील और परिग्रह इन पाँच पापों का त्याग करना ही धर्म है।

माताजी ने वहाँ उपस्थित हम सब बालिकाओं को यह भी कहा कि जब तक तुम्हारा विवाह न हो तब तक के लिए तुम ब्रह्मचर्य व्रत ले लो। मैं बोली—माताजी! यदि कोई आजीवन ब्रह्मचर्य से रहे तो क्या हानि है? माताजी ने कहा—इसमें हानि कैसी; यह तो सर्वोत्कृष्ट है।

माताजी धर्मशाला में लौट आयी। मेरा कोई विशेष परिचय नहीं हो सका। कुछ घण्टों बाद आर्यिका संघ का विहार हो गया। पर मुझे न जाने क्या हुआ—आर्यिका संघ के चले जाने से मानो मेरा कुछ खो गया। रात हो आई—मगर मेरी आँखों में नींद नहीं। इन्दुमती माताजी की स्नेहमयी छवि और सुपार्श्वमती माताजी का उपदेशामृत मेरे हृदय को रससिक्त कर रहे थे। माताजी की मन्द मुस्कान और मधुर झिड़कियाँ रह-रह कर याद आ रही थी। मेरा मन हुआ यदि पंख होते तो…………

साहस करके मैंने माँ से कहा—"माँ! मुझे तो इन्दुमतीजी के चरणों की दासी बनना है।" यह सुन कर एक बार तो मेरी माँ हँसी, मेरी बात को मखौल समझ कर बोली—जाओ! आर्यिका बन जाओ।

मैंने कहा—बहुत ठीक! आर्यिका तो अभी नहीं परन्तु ब्रह्मचर्य व्रत तो मैंने अभी से ही ले लिया है। मैं विवाह नहीं करूं गी—यह मैं भगवान की साक्षी और तेरे चरणों का स्पर्श करके कहती हूँ।

मेरी मन:स्थिति भाँप कर माँ मुझे कुछ दिन बाद माताजी के पास ले आई। मेरा उनसे किसी प्रकार का परिचय तो था नहीं। इन्दुमती माताजी परीक्षक हैं। बिना जाँचे-परखे किसी को साथ रहने की अनुमति नहीं देते। मैं सुपार्श्वमती माताजी के पास पहुँची। मैंने कहा—मातेश्वरी! मैं तो आपके चरणों का आश्रय लेने आई हूँ। माताजी मुझे इन्दुमतीजी के पास ले गये। माताजी ने सब पूछताछ करने के बाद मुझसे कहा—बाई, ब्रह्मचर्य व्रत सोरो कोनी, लोहा का चना चबाना है, तू तो छोटी है, ब्रह्मचर्य व्रत पाल लेसी कांई? मैंने हाँ भरी तो माताजी ने कहा—अच्छा, अबार पाँच वर्ष को ब्रह्मचर्य व्रत ले ले। मैंने स्वीकार कर लिया, उसी दिन से माताजी के चरणसान्निध्य में रह रही हूँ।

मैं माताजी के गुणों का क्या वर्णन करूँ? आप वात्सल्य की अमृतसिन्धु हैं। भव-समुद्र से पार करने के लिए छिद्ररहित नौका हैं। भव्यात्मारूपी कमल वन को प्रफुल्लित करने के लिए सूर्य हैं। आप बाह्य में श्रीफल के समान कठोर दिखते हुए भी अन्तरङ्ग मे द्राक्षावत् मृदु हैं। प्रमाद, आलस्य और निद्रा रूपी तस्करो से सदा सावधान रहने वाला आपका मानस निरन्तर ज्ञान-ध्यान मे लवलीन रहता है।

विहार करते हुए एक बार हम लोग रात्रि मे किसी निर्जन स्थान में ठहरे। चारों ओर घना अन्धकार था। रात्रि मे उल्लू की आवाज सुन कर तो मैं घबरा उठी, नई-नई आयी थी, कमरा छोड़ कर बाहर खुले मे कभी सोई भी नहीं थी। माताजी ने कहा--किस बात का डर है? तुम्हें कोई खाता है क्या? चुपचाप सो जाओ। मैं बैठी हूँ।

उद्यमं साहसं धैर्यं बलबुद्धिपराक्रमाः।
षडेते यत्र विद्यन्ते तत्र दैव सहायकृत्॥

माताजी का साहस और धैर्य सराहनीय है। कैसी भी आपत्ति आ जाए आप घबराती नहीं। आपने निद्रा को तो मानो जीत ही लिया है। ११ बजे रात के बाद तो आप ही हम लोगों का पहरा देने के लिये सजग होकर बैठ जाती हैं।

आप रुग्ण होते हुए भी अपने सारे कार्य स्वयं करती हैं। समीप में सोने वालों की नींद न खुल जाए अत: आप बहुत धीमी चाल से चलती हैं, दरवाजे तक की आवाज नही होने देतीं। आपकी चाल वैसे तो तेज है परन्तु आश्चर्य यह है कि चलते समय आपका शरीर हिलता नही, न हाथ हिलते हैं। आप ऐसे चलती हैं जैसे नदी का पानी प्रवाहित हो रहा हो।

आप जिनभक्ति के घृत से भरा हुआ सम्यग्ज्ञान का दीपक लेकर चिदानन्द के अन्वेषण में तत्पर हैं। आपका हृदय करुणा का सागर है। वस्तुत: आपके गुणों की आप ही विशेष्य और

आप ही विशेषण हैं। मात्र ज्ञान के कोष तो कई हैं परन्तु उस ज्ञान को जीवन में उतारने वाले विरले ही हैं—माताजी उन विरलों में से हैं। आप रत्नत्रय की सजीव मूर्ति हैं।

विश्ववन्द्य वीतराग प्रभु के आगमानुकूल चर्या वाली, प्रातः स्मरणीय परम तपोधन, लोकोत्तरगुणसम्पन्न, आदर्श साधुराज पूज्य चन्द्रसागरजी महाराज के चरण चिह्नों का अनुगमन करने वाली, धैर्यशालिनी, मृदुभाषिणी, करुणामूर्ति, अनेकानेक सद्गुणों की खान आर्यिका इन्दुमती माताजी के चरणों में मेरा कोटिशः वन्दन!

मेरी माता चिरायु होवे। जब तक गगन मे सूर्यचन्द्र हैं तब तक माँ का उज्ज्वल यश जगत को समुज्ज्वल करता रहे। आपकी तेजोमय आभा मुझे दीप्ति प्रदान करे, मैं आपकी छत्रछाया मे रह कर निरन्तर उन्नति करती रहूँ, यही भावना है।

चिरस्मरणीय प्रभावना

परम हर्ष का विषय है कि जैन समाज श्री १०५ आर्यिकारत्न पूज्य माताजी इन्दुमतीजी का अभिनन्दन कर रहा है। यह अभिनन्दन एक महान् साध्वी इन्दुमती माताजी का ही अभिनन्दन नहीं, अपितु एक त्यागी, तपस्वी एवं आदर्श नारी का अभिनन्दन है। पूज्य माताजी ने जिस उत्तम त्याग मार्ग पर चल कर इस देश मे आत्म कल्याण हेतु धर्मप्रचार करके हजारो अज्ञ प्राणियो को ज्ञान रूपी प्रकाश प्रदान किया है, वह समाज में चिर-स्मरणीय रहेगा।

मैं १०५ आर्यिकाश्री इन्दुमती माताजी की शतायु की कामना करती हूँ। अभिनन्दन समारोह के लिये भी मंगल कामनायें प्रेषित करती हूँ।

—**ब्र० कमलाबाई जैन, संस्थापिका व संचालिका**
आदर्श महिला विद्यालय, श्रीमहावीरजी

पूज्य माताजी

❖

मेरी मातृभूमि डेह में श्री चन्दनमलजी पाटनी की सुपुत्री मोहनी बाई का जन्म आज से ७६ वर्ष पूर्व हुआ। वही मोहनीबाई आज अपने संयम, तप और त्याग के द्वारा आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी के नाम से विख्यात है।

प्रथम बार जब मोहनीबाई मुनिसंघ के सान्निध्य में कुछ समय व्यतीत कर डेह लौटी तब यहाँ के दोनों मन्दिरों में 'स्त्री-प्रक्षाल' की प्रथा न होने से अभिषेक पूजन में उन्हे काफी असुविधा हुई। कई दिनों तक श्री दिगम्बर जैन चिन्तामणि पार्श्वनाथ की नसियांजी में अभिषेक-पूजन की व्यवस्था हुई परन्तु शीघ्र ही आपने अपने ही मकान में गृहचैत्यालय स्थापित किया और इस प्रकार समस्त स्त्री समाज के लिए अभिषेक पूजन हेतु निर्विघ्न धर्मसाधना का उपयुक्त स्थान बना दिया।

वि० सं० २००६ में १०८ श्री वीरसागरजी महाराज के कर कमलों से नागौर मे आपकी आर्यिका दीक्षा हुई थी। तब से आज तक आप निरन्तर धर्म-साधना और धर्मप्रभावना के कार्यों में ही संलग्न रही है। अपने छोटे से संघ के साथ बगाल, बिहार, आसाम, नागालेंड आदि प्रदेशों मे भ्रमण कर आपने जैनधर्म की प्रभावना की है, वह अपने आप मे एक मिसाल है।

मैंने भी आपकी और पूज्य (स्व०) आर्यिका विमलमती माताजी की प्रेरणा से डेह में पूज्य १०८ श्री वीरसागरजी महाराज के विशाल सघ की उपस्थिति में दूसरी प्रतिमा के व्रत ग्रहण किए। अनन्तर आप ही की प्रेरणा से सप्तम प्रतिमा के व्रत अंगीकार किए हैं। मेरी प्रबल भावना है कि मैं भी पूज्य माताजी के समान ही आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर स्त्रीपर्याय से छूटने का पुरुषार्थ करूँ।

मैं देवाधिदेव १००८ वीर प्रभु से प्रार्थना करती हूँ कि माताजी दीर्घायु हों और इसी तरह श्रावक-श्राविकाओं को सन्मार्ग पर लगाती रहें।

—ब्रह्मचारिणी मवीबाई, डेह

परम करुणाशील आर्यिका

✡ संघस्था ब्र० नयनाकुमारी

इन्दु अर्थात् चन्द्रमा। चन्द्रमा के समान है धवल यशरूपी कान्ति जिनकी ऐसी प० पूज्य श्री १०५ आर्यिका इन्दुमती माताजी के सम्बन्ध में कुछ अभिप्राय प्रकट करने को मन अत्युत्कट हो रहा है।

चन्द्रमातुल्य ही नही अपितु चन्द्रमा को भी जीतने वाली, शीतलता प्रदान करने वाली इन माताजी का सान्निध्य, चरणसेवा, नेतृत्व-छाया बड़े सौभाग्य से मुझे मिल रही है। भव-भव के सन्ताप को मिटाने वाली शीतलता जहाँ मिलती है उससे अधिक कौनसा सुकृत्य है? चन्दन का तो कोई प्रयोजन ही नहीं ऐसा मुझे मालूम हो रहा है। इस भव सन्ताप को ही मिटाने के लिये आये हुए पू० माताजी के चरण सान्निध्य में पूज्य सुपार्श्वमती माताजी, विद्यामती माताजी, सुप्रभामती माताजी उत्कृष्ट शान्ति का लाभ ले रहे है। यह प्रत्यक्ष उदाहरण है।

प्रजा तो उत्पन्न करने वाले सभी कोई हैं लेकिन सुप्रजा को तो बहुत विरले लोग ही उत्पन्न करते हैं। सुप्रजा के निर्माण का श्रेय त्यागी गणों को है। केवली भगवान कुछ नही कहते लेकिन उनकी मौन आकृति ही अन्य संसारी लोगो के वैराग्य का कारण बनती है।

इन्दुमती माताजी स्त्री होकर भी वीर पुरुषों के समान कार्य करने वाली महती गुण वाली हैं। आपने पूरे भारत देश का विहार केवल तीन माताजी को साथ में लिये हुए किया। ऐसी निर्भरता दृढ़ श्रद्धान के बिना कैसे प्राप्त हो सकती है।

जो निश्चय किया है, चाहे कुछ भी हो जाय उससे फिर मुंह नही मोड़ते। निश्चयता पर अटल रहना ही महान् लोगो का लक्षण है।

आपके दिव्य अनुशासन में संघ परम वीतरागता की दृढता का अनुकरण कर रहा है। आपका अन्त:करण परमदया से आर्द्र रहता है। छोटे-बड़े सभी जीवों के प्रति आपके हृदय में परम करुणा भाव है किसी को भी किसी प्रकार की तकलीफ न हो, इस सम्बन्ध में आप पूर्ण सतर्क रहती हैं। लेकिन अपने बारे में यत्किचित् भी भाव प्रकट नही करतीं। मानो आपको कभी किसी प्रकार का दु:ख ही नही होता। एक बार की बात है—विहार मे मार्ग में एक समय लघुशङ्का कर लौटते हुए आपके पाँव में एक नुकीला काटा इस तरह चुभा कि कोमल चरण से खून की धारा बहने लगी। मैं आपके साथ गयी थी। मै घबरा गयी। तुरन्त अन्य माताजो को आकर बोला। इतने में कमण्डलु के पानी से पैर धोकर अन्दर आ गयी। मुझे कुछ भी नही हुआ—ऐसा बोलीं। अपने कारण विहार न रुक जाय, यह विशेष भावना थी।

आपका प्रत्यक्ष जीवन प्रतिक्षण प्रेरणा देता है, वीतरागता का दर्शन कराता है। विहार में कोमल चरण कमल, संयम का उपकरण पिच्छिका, कार्य करते समय कोमल हस्त, परम गम्भीर मुद्रा, खरगोश के समान चाल आदि शरीर की प्रतिक्षण की क्रिया मे करुणा का श्रोत बहता है। वीतरागता के प्रति उन्मुखता है, ऐसे जान पड़ता है।

सम्यग्दर्शनदीपप्रकाशकामेयबोधसंभूताः।
भूरिचरित्र पताकास्ते साधुगणास्तु मां पान्तु ॥

सम्यक्दर्शन रूपी दीपक से भव्य जीवों को प्रकाशित करने वाले जीवादि तत्वो के ज्ञान से सुशोभित, अतिशय से चारित्र की ध्वजा जिन्होने फहराई है, वे साधुगण मेरी रक्षा करें।

❖

सन्मार्गदर्शिका

वैधव्य—जीवन का भार, खुद के लिये भी और दूसरों के लिए भी अप-शकुन; १८ वर्ष की आयु, अपरिपक्वबुद्धि, परिवार के वात्सल्य से वंचित मैं······ दुविधाग्रस्त, किंकर्त्तव्यविमूढ, सर्वथा निराश, हताश ! ! तभी सुखद सान्निध्य मिला पूज्य इन्दुमती माताजी का और सुपार्श्वमतीजी का—अब तो मुझे ऐसा लगने लगा मानो अन्धे के हाथ बटेर लग गई हो । माताजी की ममतामयी वाणी से मेरा वैधव्य मेरे लिए वरदान बन गया । वह धर्मध्यान से संयुक्त हुआ और मैं साधनापथ पर आगे बढ़ी ।

परम पूज्य इन्दुमती माताजी की अनुकम्पा और आशीर्वाद दीर्घकाल तक मुझे प्राप्त होते रहे, इसी भावना के साथ मैं पूज्य आर्यिका श्री के चरणों में शतशः वन्दामि निवेदन करती हूँ ।

—ब्रह्मचारिणी देवकी बाई, संघस्था

वात्सल्यमयी माताजी

पूज्य माताजी इन्दुमतीजी के चरण सान्निध्य मे लगभग पिछले बीस वर्षों से रहने का मुझे जो सुअवसर प्राप्त हुआ है इसे मै अपना परम सौभाग्य मानता हूँ । मैं निपट अबोध बालक था, यह भी नही जानता था कि भोजन किस हाथ से करना चाहिए, पूज्य माताजी ने मुझे शिक्षा दी और अपने आत्मकल्याण में प्रवृत्त हो सकूँ, इस प्रकार की योग्यता प्रदान की । माताजी के मुझ पर अगणित उपकार हैं ।

जन्मदात्री माँ का वात्सल्य न तो मैंने देखा और न ही अनुभव किया किन्तु उससे अधिक वात्सल्य मुझे पूज्य माताजी से मिला ।

दीर्घकाल तक इनकी हार्दिक ममता प्राप्त करता हुआ आत्मकल्याण के पथ पर आगे बढ़ता रहूँ—इस भावना के साथ पूज्य माताजी के चरणों में सविनय, श्रद्धा सहित विनयाञ्जलि समर्पित करता हूँ ।

माँ के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन !

—ब्रह्मचारी कैलाशचन्द सेठी, संघस्थ

अटूट गुरुभक्ति

ब्रह्मचारी नेमीचन्द बड़जात्या, नागौर

महान् तपस्वी (स्व०) आचार्यकल्प श्री चन्द्रसागरजी महाराज का चातुर्मास जब खानियां-जयपुर मे हुआ था तब मैं (स्व०) भाईजी श्री चाँदमलजी बडजात्या, ब्र० मोहनीबाई और ब्र० मथुराबाई (स्व० विमलमती माताजी) आदि के साथ पूज्यश्री के दर्शनार्थ गया था। लगभग एक माह तक महाराज के सान्निध्य का बडा लाभ मिला। उन दिनों खानिया की स्थिति आज जैसी नही थी, पहाड पर घने जगल के कारण जंगली जानवरों का उपद्रव भी होता रहता था।

पूज्य चन्द्रसागरजी महाराज आहार के बाद सामायिक करने हेतु प्राय: पहाड़ पर चले जाया करते थे। एक दिन की बात है कि महाराज के पहाड पर चले जाने के बाद, थोड़ी देर में एक व्यक्ति ने आकर सूचित किया कि नागा बाबा के पास तो शेर आया है। इस सूचना से हम सब भयभीत हो गये कि अब क्या होगा ? महाराजश्री के पास जाने की हिम्मत भी नहीं हो पा रही थी और सबके चित्त चिन्तित भी हो रहे थे। तभी ब्र० मोहनी बाई ने हिम्मत करके सबको ललकारते हुए कहा कि यदि महाराज को कुछ हो गया तो हम भी जीवित रह कर क्या करेंगे ? चलो, मेरे साथ !

गुरुभक्त ब्र० मोहनी बाई आगे बढ कर जय बोलती हुई पहाड़ की ओर जाने लगी तो हम सब उपस्थित श्रावक-श्राविकाएँ भी उनके साथ हो गये। जय बोलते हुए जब महाराजश्री के पास पहुँचे तब तक शेर उठ कर जा चुका था, उसके पावों के चिह्न स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। महाराज-श्री प्रसन्नमुद्रा मे स्वाध्याय कर रहे थे। यही निर्भीक, निडर मोहनी बाई आज पूज्य इन्दुमती माताजी के रूप में दिगम्बर जैन धर्म की अतिशय प्रभावना कर रही हैं। आपकी क्षुल्लिका दीक्षा

(स्व०) आचार्यकल्प चन्द्रसागरजी महाराज के हाथों हुई थी कसावखेड़ा मे और नागौर में आपने (स्व०) आचार्य वीरसागरजी महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण की थी। तब से आप निर्दोषरीत्या स्व-पर कल्याण मे संलग्न हैं।

संघस्थ आर्यिका सुपार्श्वमतीजी परम विदुषी एवं प्रखर वक्ता हैं। आपके प्रवचनों से व लेखनी से जैनाजैन समाज का महान् कल्याण सम्पन्न हो रहा है। आर्यिका विद्यामतीजी और आर्यिका सुप्रभामतीजी भी निरन्तर स्वाध्याय निरत रहती है। पूज्य इन्दुमतीजी ने संघ सहित सुदूर पूर्वाञ्चल में विहार कर जैनाजैन समाज को जैन धर्म के शाश्वत सिद्धान्तों से परिचित कराया है।

पूज्य माताजी दीर्घायु होकर स्वपर कल्याण करते रहे और क्रमशः स्त्री पर्याय का छेद कर शीघ्र अविनाशी मोक्षसुख प्राप्त करें, यही भावना है। साथ ही हमे भी आशीर्वाद प्रदान करें ताकि हम भी आत्मकल्याण में अग्रसर हो सकें।

卐 मंगल कामना 卐

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी अभिनन्दन समिति ने आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी का अभिनन्दन करने एवं अभिनन्दन के अवसर पर एक अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन करने का निश्चय किया है।

पूज्य आर्यिकाश्री के श्रीचरणों में नमोस्तु निवेदन करता हुआ मैं आपके प्रयास एवं अभिनन्दनग्रन्थ की पूर्ण सफलता की मङ्गल कामना करता हूँ।

—प्रकाशचन्द सेठी, रेल मन्त्री, भारत सरकार

चारित्र शिरोमणि

ब्र० धर्मचन्द जैन
आचार्य धर्मसागर महाराज संघस्थ

मानव समाज का कल्याण करने वाले साधनों में सन्त समागम का सर्वोपरि स्थान है। प्रातः स्मरणीय आ० श्री जिनसेन स्वामी ने महापुराण में कहा है कि :—

मुष्णाति दुरितं दूरात्परं पुष्णाति योग्यताम् ।
भूयः श्रेयो नु बध्नाति प्रायः साधुसमागमः ।।

सन्त समागम द्वारा पापो का क्षय होता है, आत्मा की शक्ति विकसित होती है और जीव कल्याण के पथ मे प्रवृत्त होता है। सत तुलसीदासजी ने कहा है :—

पुण्य पुञ्ज बिनमिलहिं न संता ।
सत् संगति संसृति कर अन्ता ।।

परम पूज्य आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी का सान्निध्य मुझे १९७२ ई० मे जब मैं मासोपवासी मुनिराज १०८ श्री सुपार्श्वसागरजी के संघ के साथ तीर्थराज सम्मेदाचल पर दर्शनार्थ गया था, प्राप्त हुआ था।

तब से निरन्तर मुझे उनका वात्सल्य प्राप्त होता रहा है। गुणीजनों के प्रति उनके हृदय मे सहज वात्सल्य भाव है। उनकी प्रवृत्ति अनुसन्धानोन्मुखी रही है। मैं तभी से माताजी के सम्पर्क मे रहा। आपके संघ में प्रेम पीयूष प्रदायिनी विदुषी रत्न आर्यिका १०५ श्री सुपार्श्वमती माताजी के उपदेश से स्वाध्याय के फल ज्ञान का विकास प्राप्त करता रहा हूँ।

आर्यिका इन्दुमती माताजी कहा करती हैं कि—भैया! ज्ञान कोई किताबों में नही लिखा, यथार्थ ज्ञान तो हमारी आत्मा में विद्यमान है, पर

कर्म मैल ने उसे ढक रखा है, धर्मशास्त्र इस कर्म मैल को साफ करने में मार्ग दर्शक हैं। जो ज्ञान चिन्ता को मिटाये वह सुख का मार्ग है एवं कारण है।

वचन की पक्की :

पूज्य माताजी वचन की पक्की है। अड़गाबाद (बंगाल) में माताजी ने कहा कि—यहाँ से कल विहार होगा। परन्तु रात्रि को पूज्य माताजी (इन्दुमतीजी) के पैर में भयानक दर्द हो गया। चलना-फिरना कठिन हो गया तब समस्त समाज को चिन्ता हो गई, क्या उपचार किया जाय।

सभी गाँवों में विहार का समाचार चला गया। आगे वाले गाँव के लोग लेने के लिये आ गये परन्तु प्रातः १० बजे तक पैर वैसे का वैसा रहा। उठना कठिन हो रहा था। लोगो को चिन्ता हो चली विहार कैसे होगा। स्थानीय लोग तथा सघ के अन्य साधुओं ने कहा कि—पैर जब ठीक होगा तब विहार होगा—आदि। सब की बातें सुनने के बाद आ० इन्दुमतीजी ने कहा कि—हमने कह दिया एव वचन दिये हैं सो हम तो विहार करेंगे। माताजी ने मन्दिर मे भगवान के दर्शन किये और णमोकार महा मन्त्र का जाप्य करके वहाँ से विहार कर दिया। लोग आश्चर्य करने लग गये। दर्द था वह कहाँ गायब हो गया। धन्य है त्याग, तपके प्रभाव को।

आपके जीवन मे अनेकानेक आश्चर्यकारी घटनाएँ घटी, उपसर्ग भी आये परन्तु आपने सब कुछ समता भाव से सहन किया।

चारित्र शिरोमणि :

बंगाल, बिहार, आसाम जहाँ सैकड़ों वर्षों से दिगम्बर जैन साधु नही गये वहा पर जा कर भगवान महावीर का सन्देश गाँव-गाँव, नगर-नगर मे पहुँचा कर सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह के मार्ग का दिग्दर्शन करते हुए गौहाटी (आसाम) मे चातुर्मास किया।

परम पूज्य चारित्र शिरोमणि आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी अनेक गुणों की पुञ्ज हैं। आपकी सौम्य व सरल आकृति, आपके आन्तरिक वैराग्य की परिचायिका है। आपका हृदय निष्कपट एवं उदार है, आप प्राणि मात्र की हितचिन्तक, मानव समाज की मंगल विधायिका और संघ की सफल संचालिका हैं। ऐसी त्यागमूर्ति, वैराग्यमयी, चारित्र शिरोमणि के चरणों में विनम्र नमोस्तु !

❖

शान्त मौन मूर्ति

❖

मुझे पूज्य इन्दुमती माताजी के सर्वप्रथम दर्शन किशनगंज में हुए। बाद में तो कई बार दर्शन करने के अवसर मिले किन्तु प्रथम-दर्शन में जो छवि मेरे मनदर्पण में उतरी, उसे यहाँ अंकित करने का प्रयास है।

शान्त मौन-मूर्ति, यह है उनका सर्वांग, सम्पूर्ण परिचय। कम से कम बोलना, यह माताजी की विशिष्टता है। परिणामों मे शान्ति अवतरित हुई है जो सारे दिन-रात उन्हे घेरे में रख कर सच्चे साधु का साक्षात् परिचय कराती है। वात्सल्यपूरित माँ के सभी गुण आप मे भरे हुए हैं। आपके सघ में जो कौटुम्बिक वातावरण है, वह दूसरे संघों के लिए पदार्थपाठरूप है। इतनी उम्र मे भी आपकी सारी चर्या शास्त्रोक्त है।

आपने आर्यिका श्री सुपार्श्वमतीजी को इस चर्या का पहरेदार बना रखा है, सो वे खुद चलती हैं और साथ में आर्यिका विद्यामतीजी, सुप्रभामतीजी व संघ को चलाती हैं। वे खुद अत्यन्त विदुषी होते हुए भी अपनी गुराणी का अनहद मान-सम्मान रखती हैं जिससे वे एक आदर्श शिष्या बनी हुई है।

पूज्य इन्दुमतीजी 'इन्दु' माने चन्द्रमा जैसी शीतल है, उष्णता का अश नजर नहीं आता। अपने पद के अनुकूल जानकारी--शास्त्रो की (सिद्धान्त) और आचरण दोनों आपमे पूर्ण रूप मे है।

सारे भारत के संघों मे अत्यन्त प्रभावशाली और पुण्यशाली कोई संघ है तो वह पूज्य माताजी का संघ है। प्रभावना अनहद होती है और भक्तों को ज्ञान-प्रसाद मिलता है जो अन्यत्र दुर्लभ है या नहिवत् है।

पूज्य माताजी शत् शरद् जीवे, धर्म की प्रभावना में वृद्धि करती रहें। इन्हीं कामनाओ के साथ मेरी नम्र प्रणामाञ्जलि स्वीकार करें।

—ब्र० कपिल कोटड़िया, हिम्मतनगर

जगदुद्धारक आर्यिकाश्री

मैं १२ वर्ष की अल्पायु में ही विधवा हो गई थी। माता-पिता की इकलौती लाड़ली बेटी थी। धर्म क्या होता है? और विधवावस्था में क्या करना चाहिए कुछ भी नहीं समझती थी। माँ दिन भर मुझे देख-देख कर रोती थी कि कैसे इसका जीवन पूरा होगा तभी मेरे शहर कुचामन सिटी में परम पूज्य इन्दुमती माताजी का पदार्पण हुआ। प्रवचन होते—मैं भी जाती, परिचय हुआ। शनैः शनैः माताजी ने मेरी वेशभूषा उतरवायी तथा अनेक बार मार्मिक उद्‌बोधन देते हुए यथार्थ जीवन का परिचय कराया। इस प्रथम परिचय के कुछ समय बाद से ही मै माताजी के साथ रहने लगी और आपकी प्रेरणा से धर्मसाधना हेतु सप्तम प्रतिमा के व्रत भी ग्रहण किये।

माताजी के हृदय की अनुकम्पा का क्या बखान करूँ! उनके हृदय को तो वही जान सकता है जो कभी उनके निकट आया हो या कुछ काल तक साथ रहा हो। अन्यथा उनके चेहरे के तेज से सबको भय सा लगता है। सभी कहते हैं कि आर्यिका सुपार्श्वमतीजी मे तो माँ जैसी ममता है परन्तु बड़े माताजी (इन्दुमतीजी) में पिता जैसी कठोरता, सख्त अनुशासन। हाँ, अनुशासन तो उनमें है पर वे द्रवीभूत भी शीघ्र हो जाती हैं। उन्हें प्रत्येक कार्य समय पर करना ही अच्छा लगता है। किसी को तकलीफ हो ऐसा तो वे सहन भी नही कर सकती। उनके गुणों को व्यक्त करने की क्षमता मुझमें बिल्कुल भी नहीं है; जो कुछ योग्यता मुझमें विकसित हुई है, वह सब पूज्य माताजी की ही अनुकम्पा है, अनुग्रह है, प्रसाद है।

जगदुद्धारक माताजी के श्रीचरणों में शत-शत वन्दन!!!

—ब्रह्मचारिणी हरकीबाई, संघस्था

प्रभावक संघ

भागचन्द सोनी, अजमेर
संरक्षक . अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा

वर्तमान आर्यिका संघों में परम पूज्य १०५ श्री इन्दुमती माताजी का संघ अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। पूज्य माताजी सरल, शान्त, गम्भीर, संयम-साधिका और तपस्विनी हैं। आपके नेतृत्व मे संघ ने भारत के सभी प्रमुख नगरों में विहार किया। विशेषतः भारत के सुदूरवर्ती पूर्वी प्रदेशों में जहां अभी तक दिगम्बर साधुओं का कभी विहार नही हुआ—वहाँ पिछले वर्षों मे आपके संघ का विहार हुआ जिससे वहां की जनता को अपूर्व और अनुपम धर्म-लाभ हुआ। इसके साथ ही अनेक धर्म-प्रभावक महोत्सव व समारोह हुए। जहाँ जहां भी आपके संघ का विहार हुआ वहां की जैन व जैनेतर जनता ने आपके धर्मोपदेशों को सुना और जीवन में उतारने का भी प्रयत्न किया। इस विहार-काल में आपके सघ ने अपनी धर्मसाधना और त्यागमयी वाणी की अमिट छाप छोड़ी। यह, वास्तव में, जैन इतिहास मे एक उल्लेखनीय महत्त्वपूर्ण बात है। माताजी का संघ सर्वत्र सभी वर्गों के व्यक्तियों व समाज द्वारा अभिनन्दित हुआ; यह गौरव का विषय है।

पू० माताजी इन्दुमतीजी का संघस्थ आर्यिकाओ के साथ मातृत्व भरा, मृदुल एवं वात्सल्यपूर्ण व्यवहार है, इस कारण ही वे संघ-नायिका के पद पर प्रतिष्ठित हैं और अपनी गरिमा से संघ का संचालन कर रही हैं। संघस्थ आर्यिकाओं ने भी धर्म-प्रभावना के कार्यों में महान् योग दिया है।

आपके संघ की परम विदुषी, सुयोग्य, गहन अध्ययनशील, ललित वाणी धारिका पू० १०५ श्री सुपार्श्वमती माताजी के द्वारा संघ को विशेष ख्याति प्राप्त हुई है और आपके पांडित्यपूर्ण धर्मोपदेश से भारत का कोना-कोना प्रभावित हुआ है। आप सदृश परम विदुषी से सारा समाज गौरवान्वित हुआ है।

बहुत समय हो गया, आपके संघ का चातुर्मास होने का सौभाग्य अजमेर नगर को प्राप्त हुआ था, सभी समाज को आपके उपदेशों से अपरिमित लाभ हुआ और संघ की वैयावृत्ति का दुर्लभ अवसर प्राप्त हुआ। मुझे व मेरे परिवार को संघ के दर्शनों का सौभाग्य चातुर्मास के समय एवं श्रवणबेलगोला में महामस्तकाभिषेक के समय भी प्राप्त हुआ था।

पू० इन्दुमतीजी, सुपार्श्वमती माताजी एवं अन्य माताजी को मेरा सपरिवार सादर वन्दामि। संघ के सर्व प्रकार से कुशल-मंगल की इच्छा करता हुआ, निर्विघ्न संयम-साधना की भावना करता हुआ, उनके द्वारा सदैव जैन धर्म की विशेष प्रभावना की कामना करता हूँ।

मंगल कामना

परम पूज्य आर्यिकारत्न १०५ श्री इन्दुमती माताजी सतत आत्मकल्याण में जागरूक रहने वाली निर्भीक नारी रत्न है। आपके सौम्य व्यक्तित्व का साहचर्य पाकर अनेक स्त्री पुरुषों ने शक्त्यनुसार व्रत नियम ग्रहण किये हैं। आपको अपने जैसी ही विदुषी शिष्या श्री सुपार्श्वमती माताजी का समागम मिला है। श्री विद्यामतीजी और श्री सुप्रभा-मतीजी के साहचर्य ने भी सघ की गरिमा बढ़ाई है। आपने संघ सहित सम्पूर्ण भारत मे विशेषत: पूर्वोत्तर भारत मे जैनधर्म का प्रचार-प्रसार कर अभूतपूर्व कार्य किया है। जहां मन्दिर-चैत्यालय नही थे वहाँ इनकी स्थापना कर सुश्रावको के लिए निष्ठा के आलम्बन केन्द्र स्थापित किये हैं। ऐसी गणिनी का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित कर आप प्रशंसनीय कार्य कर रहे हैं।

मैं अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रकाशन हेतु सफलता की कामना करती हूँ। साथ ही पूज्य माताजी के स्वस्थ एवं नीरोग, दीर्घजीवन के लिये प्रार्थना भी।

"हे माता शत-शत वन्दन, तुम हो जग में शीतल चन्दन।"

—चरणसेविका : ब्र० मैनाबाई डेह निवासी

अभिवन्दन !

*

त्याग और तपस्या की मूर्ति हैं पूज्य इन्दुमती माताजी। समिति ने उनके अभिनन्दन ग्रन्थ का कार्य हाथ मे लिया........यह एक पुनीत कार्य है जिसके लिए सबका आशीर्वाद अभीष्ट है।

आर्यिका के व्रत धारण कर पूज्य माताजी आत्म कल्याण मे प्रवृत्त हुई हैं। आप सदैव आत्मचिन्तन मे लीन रहती हैं। प्रमाद से कोसों दूर हैं। "सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वं" की आप साकार रूप हैं।

आप धन्य हैं ! डेह की पावन नगरी धन्य है जिसने ऐसे महिला-रत्न को जन्म दिया है। डेह निवासी इसलिए भी सारे भारत में प्रसिद्ध है कि वे कट्टर आर्षपरम्परा के रक्षक है, पोषक हैं और किसी के भुलावे मे आने वाले नही।

पूज्य माताजी के संघ में आर्यिका सुपार्श्वमतीजी, आर्यिका विद्यामतीजी और आर्यिका सुप्रभामतीजी जैसी विदुषी और प्रभावशालिनी माताएँ है। पिछली कई शताब्दियों में पहली बार इस सघ ने आसाम, डीमापुर, नागालैंड प्रदेशो मे विहार कर तत्रस्थ निवासियो का समीचीन मार्गदर्शन कर उनका महदुपकार किया है जिसके लिये सम्पूर्ण जैन जगत् सघ का कृतज्ञ है।

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महा सभा ऐसे रत्नों का हार्दिक अभिनन्दन करती है। जिनेन्द्र भगवान से यही प्रार्थना है कि माताजी दीर्घायु हो और दिगम्बर जैन धर्मावलम्बियों की धार्मिक आस्था को दृढ करने मे अपना अनुपम योग देती रहे।

— निर्मलकुमार जैन सेठी
अध्यक्ष, अखिल भारतवर्षीय दि० जैन महासभा

निर्भीक गुरु की निर्भीक शिष्या

हरकचन्द सरावगी (पाण्ड्या)
अध्यक्ष, अ० भा० शान्तिवीर दि जैन सिद्धान्त संरक्षिणी सभा
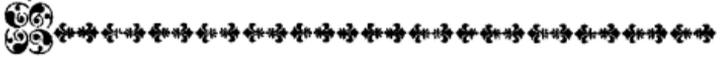
महान् तपस्वी आचार्यकल्प १०८ चन्द्रसागरजी महाराज के सम्पर्क ने डेह निवासी, पाटनी एवं सेठी कुल को समुज्ज्वल करने वाली मोहनी बाई का जीवन-क्रम ही पलट दिया। मोहनी बाई ने गुरुवर से क्षुल्लिका के व्रत ग्रहण किये थे। आपकी आर्यिका दीक्षा नागौर मे पूज्य १०८ श्री वीरसागरजी महाराज के कर-कमलो से हुई थी। गुरुभक्त माताजी ने अपनी जीवनचर्या से सभी को आकृष्ट और मुग्ध किया है। मुझे भी समय-समय पर आपके दर्शन करने का व प्रवचन सुनने का अवसर मिलता रहता है। मैंने आपको सदैव 'ज्ञानध्यानतपोरक्तः' पाया है। आपकी चर्या पूर्णतः आगम के अनुकूल होती है। निर्भीक गुरु की आप निर्भीक शिष्या हैं।

हमारे निवास स्थान सुजानगढ में वि० स० २०१७ में आचार्यश्री १०८ शिवसागरजी महाराज ने विशाल संघ सहित चातुर्मास किया था। आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी का संघ भी साथ में था। साधुओ के समागम से समाज में त्याग और चारित्र के प्रति विशेष श्रद्धा उत्पन्न हुई थी। श्री विद्यामतीजी ने आर्यिका के व्रत इसी वर्षायोग में विशाल जनसमूह के मध्य ग्रहण किये थे। वह दृश्य आज भी मेरी स्मृति में ज्यों का त्यों सुरक्षित है।

पूर्वोत्तर भारत में आर्यिका सघ के विहार से जो धर्मप्रभावना हुई है उसे यदि 'न भूतो न भविष्यति' भी कह दिया जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। साधुगण चलते फिरते तीर्थ होते हैं, उनके समागम से तत्काल फल की प्राप्ति होती है अर्थात् जीव का कल्याण होता है। माताजी के सम्पर्क में आने से अनेक लोग हिंसा के मार्ग से विरत हुए हैं, उन्होंने दुर्गुणों का त्याग किया है और अपने श्रेष्ठ आचरण से वे आज सुखी जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

संघ की सभी आर्यिकाओं—आर्यिका सुपार्श्वमतीजी, आर्यिका विद्यामतीजी और आर्यिका सुप्रभामतीजी की आप पर अटूट श्रद्धा-भक्ति है और उन्हें भी आपसे अनुपम वात्सल्य और सौहार्द सम्प्राप्त हुआ है। सबके सहयोग से संघ विशेष धर्मप्रभावना कर रहा है।

मैं यही भावना भाता हूँ कि यशस्वी माताजी चिरजीवी हों और इसीप्रकार स्वपर-कल्याण में रत रहे।

तपस्विनी माताजी के चरणो में सविनय वन्दामि !

अभिवादन

परम पूज्य आर्यिका इन्दुमती माताजी अपने छोटे से संघ सहित जैनधर्म की जो अभूतपूर्व प्रभावना इस युग में कर रही हैं वह चिरस्मरणीय रहेगी। आपके प्रयत्नो से अनेक गृह चैत्यालय स्थापित हुए हैं। आपके सान्निध्य मे वेदी प्रतिष्ठाएँ और पंचकल्याणक महोत्सव आयोजित हुए हैं। श्रद्धा और भक्ति के इन स्थानो के निर्माण से आने वाली कई पीढ़ियाँ लाभान्वित होगी और उनमें धार्मिक संस्कार विकसित होगे।

आसाम, बगाल, नागालैण्ड आदि प्रदेशों मे आपके मंगलविहार से नयी धर्म-चेतना जाग्रत हुई है। अनेक स्त्री पुरुषों ने मद्य-मांस-मधु और रात्रि भोजन का त्याग किया है अहिंसा धर्म को अगीकार किया है।

मेरा माताजी से काफी पुराना परिचय है। माताजी प्रारम्भ से ही अपनी चर्या मे कठोर रही हैं, शिथिलता आपको जरा भी पसन्द नही। अनुशासन और स्वावलम्बन ही आपको विशेष प्रिय रहते हैं। आप कम बोलती हैं पर बिना बोले ही आपके सौम्य मधुर व्यक्तित्व से बहुत कुछ उपदेश मिल जाता है, यह सम्पर्क मे आने से ही ज्ञात होता है।

पूज्य माताजी नीरोग और स्वस्थ रह कर सतत स्व-पर कल्याण में संलग्न रहे यही भावना है। आर्यिकाश्री के चरणों मे सविनय वन्दामि !

—ब्र० सूरजमल जैन, निवाई

अनुपम धर्मोद्योत

☼ रायबहादुर हरकचन्द्र जैन, रांची

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई है कि आप पूज्य १०५ आर्यिका श्री इन्दुमती माताजी का अभिनन्दन करने जा रहे है और उस अवसर पर एक अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन भी कर रहे हैं।

श्री पूज्य १०५ आर्यिका इन्दुमती माताजी के सघ द्वारा सम्पूर्ण भारत में विशेष धर्मोद्योत हुआ है। संघस्थ सभी आर्यिका माताजी के उपदेशों द्वारा लाखों ही प्राणी लाभान्वित हुए हैं। सयम एवं चारित्र का विशेष रूप से प्रसार हुआ है। आपके संघ में पूज्य आर्यिका सुपार्श्वमतीजी, विद्यामतीजी, सुप्रभामतीजी सभी ध्यानाध्ययन में रत रहते हैं। पूज्य १०५ आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी अनेक ग्रन्थो के रचयिता, सरल स्वभावी, मृदुभाषी और जैन सिद्धान्त के विशेष पाठी हैं। आपका मधुर उपदेश सुनते हुए श्रोतागण कभी नही अघाते।

पूज्य माताजी ने सघ सहित सारे भारत मे विहार किया है। पश्चिमी बंगाल के अनेक नगरों में तथा आसाम प्रान्त में भी आपका ससघ विहार हुआ है। आपकी प्रेरणा, सान्निध्य एवं छत्रछाया मे आसाम में विजयनगर का सुप्रसिद्ध पञ्चकल्याणक महोत्सव सम्पन्न हुआ। सम्पूर्ण आसाम प्रान्त में आपके सघ के माध्यम से जैन धर्म का विशेष प्रचार हुआ है, जैनधर्म की ध्वजा खूब फहरी है।

वर्तमान में पूज्य माताजी के संघ का चातुर्मास गिरिडीह में हुआ है। गिरिडीह जैन समाज का यह अत्यन्त सौभाग्य है कि आर्यिका संघ का चातुर्मास उनके नगर में सम्भव हो सका। बिहार प्रान्त में भी अनेक नगरों में तथा सम्मेदाचल तीर्थराज पर आपका विहार हुआ।

उस समय अनेक बार आपके दर्शनों का लाभ मिला। रांची समाज के पुण्योदय से आर्यिका संघ का पदार्पण रांचीनगर में भी हुआ था। उस समय मुझे पूज्य आर्यिका संघ के दर्शनों व उपदेशों का लाभ विशेष रूप से मिला, जिससे मुझे बड़ी शान्ति मिली।

मैं पूज्य १०५ ससंघ आर्यिका श्री इन्दुमती माताजी का सादर अभिनन्दन कर उनके चरणों में प्रणामाञ्जलि अर्पित करता हुआ, आर्यिका माताजी के स्वास्थ्य, दीर्घायुष्य एवं रत्नत्रय-कुशलता की कामना श्री वीर प्रभु से करता हूँ तथा भावना करता हूँ कि उनके संघ के माध्यम से अवनितल पर दीर्घ काल तक निरन्तर रत्नत्रयधर्म का प्रचार प्रसार होता रहे।

मैं अभिनन्दन ग्रन्थ और अभिनन्दन समारोह दोनो की हार्दिक सफलता चाहता हूँ।

मंगल कामना

पूज्य आर्यिका इन्दुमती माताजी के संघ की सभी आर्यिकाएँ सुन्दर आदर्श प्रस्तुत कर रही हैं। विदुषी आर्यिका सुपार्श्वमतीजी के उपदेश से लाखों लोगों का कल्याण हुआ है। वे चारों अनुयोगों की ज्ञाता हैं। आर्यिका सुप्रभामतीजी हमारे श्राविकाश्रम की छात्रा रही हैं। वे विदुषी और अध्यवसायी हैं। सम्पूर्ण सघ उत्कृष्ट चारित्रधारी है। हमारे श्राविकाश्रम में संघ का आगमन हुआ था। संघ की विद्वत्ता का लाभ सब छात्राओ को प्राप्त हुआ। इस संघ का विहार सम्पूर्ण हिन्दुस्तान में हुआ है।

संघ के द्वारा धर्म प्रभावना होती रहे और पू० इन्दुमती माताजी शतायु हों—यही मंगल भावना है।

—पद्मश्री पं० सुमतिबाई शहा
अध्यक्षा, श्राविका संस्थानगर, सोलापुर

रत्नत्रय की मूर्ति माताजी

परम पूज्य आर्यिका माता इन्दुमतीजी का दि० जैन समाज अतिशय कृतज्ञ है। उन्होंने अपने नारी जीवन को एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया है। वे प्रभावक संघ नायिका सिद्ध हुई हैं। उनके संघ ने भारत के पूर्वांचल में जो प्रभावक छाप छोड़ी है वह सैकड़ों वर्षों तक जीवित रहेगी। आज पूज्य माताजी गिरिराज सम्मेदशिखरजी पर विराजमान हैं। अतः वहां की यात्रा करने वाले को द्विगुणित लाभ की प्राप्ति होती है। उनके संघस्थ पूज्य आर्यिका माता सुपार्श्वमतीजी, जिनकी कि सच पूछो तो माता इन्दुमतीजी ही संस्कारदायिनी माँ हैं, अपने प्रामाणिक सदुपदेशों द्वारा जन-जन को सन्मार्ग की ओर अनुप्राणित कर रही हैं। उनकी सरल एवं सरस वाणी के द्वारा जिज्ञासु सहज ही अपनी शंका का समाधान प्राप्त कर लेता है।

माता इन्दुमतीजी के श्रद्धालु भक्त उन्हें अभिनन्दन ग्रन्थ भेट कर रहे हैं। इससे पूज्य माताजी का क्या यह तो उनके भक्तों का ही स्वतः पुण्योपार्जन का एक अंग है जिसके बहाने से वे गुरु भक्ति के सुमन अर्पित कर रहे हैं। मैं इस श्रद्धा यज्ञ में अत्यन्त भक्ति के साथ सम्मिलित हूं। जब भी अवसर मिला है मैंने माताजी के पुण्य दर्शन का लाभ उठाया है और वे क्षण मेरे जीवन के धन्य क्षण हैं। इस युग में ऐसे वीतरागी गुरुओं का चरण-सान्निध्य ही वास्तव में संयम की भूमिका निभाने में दृढ़ता प्रदान करता है, ऐसा मेरा अटूट विश्वास है। यद्यपि पूज्य माताजी बहुत कम बोलती हैं परन्तु उनकी अत्यन्त सौम्य एवं वात्सल्य पूर्ण मुद्रा बिना बोले ही बहुत कुछ कह देती है। यह सुस्मित दृष्टि जिस पर पड़ गई उसका सौभाग्य जग गया समझना चाहिए।

श्री पार्श्वप्रभु के चरणों में मेरी विनम्र प्रार्थना है कि समस्त दि० जैन समाज का ऐसा सौभाग्य रहे जो तीर्थराज सिद्ध क्षेत्र पर आने वाले श्रद्धालु भक्त तीर्थ वन्दना के साथ ही दीर्घकाल तक पूज्य माताजी के पुण्य दर्शन एवं उनका आशीर्वाद प्राप्त करते रहे।

—सेठ बद्रीप्रसाद सरावगी, पटना सिटी

❖

मंगल कामना

परम पूज्य १०५ आर्यिका इन्दुमतीजी ने अपने आदर्श जीवन से भारत देश और नारी जाति को गौरवान्वित किया है। मरुभूमि में जन्म लेकर सम्पूर्ण देश को अपने उत्कृष्ट आचरण से लाभान्वित करते हुए आपने नारी पर्याय को सार्थक किया है।

महानगर कलकत्ता में वर्षायोग करके आपने हम लोगों पर असीम उपकार किया; अनन्तर, जहां कभी दिगम्बर साधुओं के चरण नहीं पड़े उन क्षेत्रों—बंगाल, आसाम, नागालेंड—में भी मंगल विहार करके आपने जैनधर्म की विशेष प्रभावना की है; अहिंसा धर्म का उद्योत किया है।

मैं यही मंगल कामना करता हूँ कि पूज्य माताजी दीर्घायु हों और उनका प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ता रहे। उनके श्री चरणो मे शत-शत वन्दन !

माणकचन्द पाटनी, अध्यक्ष
आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी अभिनन्दन समिति

विनयाञ्जलि

विद्यमान दिगम्बर जैन आम्नाय की साध्वियों में आर्यिकारत्न १०५ श्री इन्दुमती माताजी का उल्लेखनीय स्थान है। प्रायः बालब्रह्मचारिणी पूजनीया माताजी गत तीस-पैंतीस वर्षों से गृहत्यागिनी तपस्विनी का जीवन जीती हुई स्व-पर कल्याण में रत रहती आई हैं। ऐसी एकनिष्ठ धर्मप्रभाविका, आत्मसाधिकाओं से ही स्त्रीजाति गौरवान्वित है।

पूज्या माताजी के तपःपूत व्यक्तित्व एव धर्मप्रभावक कृतित्व का हार्दिक अभिनन्दन करते हुए, हम उनकी मोक्षमार्गी साधना की सफलता की कामना करते है और उनके प्रति अपनी विनम्र विनयाञ्जलि अर्पित करते हैं।

—(डॉ०) ज्योतिप्रसाद जैन, लखनऊ

विनयाञ्जलि

संसार में प्राणियों के लिए सिर्फ एक ही कार्य ऐसा है जो दुष्कर है और वह है वीतरागमार्ग की साधना। पञ्चम काल में तो यह बात और भी सटीक है। भव्यों के ज्ञानचक्षु खोलने में सतत तत्पर रहने वाले त्यागी और ज्ञानी साधु सन्तों की अक्षुण्ण परम्परा के रूप में आज जो भी आर्षमार्गी त्यागी-व्रती मुनियों को चर्या का निरतिचार पालन करते हैं, उनके ही ज्ञान, तप, कृपा और आशीष से हमारा धर्म और समाज आज की विकट परिस्थितियों मे भी अपना अस्तित्व कायम रखे हुए है। ऐसे कुछ इन-गिने सन्तों की परम्परा में १०५ परम पूज्य विदुषी आर्यिकारत्न श्री इन्दुमती माताजी की ओजमयी धर्मवाणी के रसास्वादनका अवसर हमे मिल रहा है, यह सभी का सौभाग्य है।

जीवित तीर्थ के रूप में माताजी ने देश में सर्वत्र विहार करके ज्ञान, धर्म, त्याग तपस्या की जो मिसाल कायम की है वैसी मिसाल सदियों में कभी-कभी ही देखने में आती है। आपके ज्ञान-प्रकाश से समाज आलोकित हुआ है और आज हमें धर्मचर्चामय वातावरण की झलक जगह-जगह दिखाई देने लगी है। ७६ वर्ष की उम्र में आज भी आपकी निरतिचार साधना दूसरों के लिए प्रकाश-स्तम्भ का कार्य कर रही है। यह समस्त श्रावकों के लिए परम गौरव और हर्ष की बात है। परम विदुषी पूज्य १०५ आर्यिका श्री सुपार्श्वमतीजी का सान्निध्य प्राप्त होना तो जैन परम्परा के सौभाग्य का सूचक है ही, शायद ही इसमें दो राय हो।

श्री सम्मेदशिखरजी में वृहद् इन्द्रध्वजविधान के आयोजन के समय पूज्य माताजी ने उमड़ते मेघों और बढ़ते तूफानी बवण्डरको अपने तपोबल से तिरोहित करके विमार्गियों और अनास्था-वादियों के मन में भी आस्था के कोमल अंकुर अंकुरित करके जैन धर्म की जो प्रभावना की है वह जैन इतिहास में अमिट लेख के रूप मे सदैव स्मरण की जाएगी। देवशास्त्र और गुरु के प्रति श्रद्धा और उस मार्ग का अनुसरण करने में लाखों भव्यों का जो स्थितिकरण आपने किया है वह अन्य के लिए भी अनुकरणीय मार्ग है। जैनशासन की सेवा में अहर्निश संलग्न तपस्विनी माताजी की तपस्या का अभिनन्दन समाज जितनी बार भी करे, उतना ही कम है। आज अभिनन्दन ग्रन्थ के रूप में समाज जो एक छोटा सा प्रयास कर रही है, वह सराहनीय प्रयास का पहला कदम मात्र है। अन्यथा हम

क्षुद्रशक्तिधारी साधारण गृहस्थों की इतनी औकात ही कहाँ कि वह तपस्वियों के तपोबल की क्षमता मापने का साहस कर सके। परन्तु अपनी श्रद्धा, अपनी भावना प्रदर्शित करने का हमारे समक्ष अन्य विकल्प भी तो नही है।

मुझे प्रसन्नता है कि आज समाज ने वीतरागी की शक्ति के प्रति नमनभाव के रूप में अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित करने की योजना को साकार रूप देने का निश्चय किया है। मेरी शुभ-कामना है कि यह प्रयास शीघ्र साकार हो तथा पूज्यश्री माताजी के चरण कमलों में भी सविनय प्रार्थना है कि इसी प्रकार हम सभी को संसार समुद्र से तिरने का मार्ग प्रशस्त करती रहे; जिससे स्वपर कल्याण की मङ्गलमयी भावना फलीभूत होकर जिनशासन की प्रभावना से विश्व मे सुखमय वातावरण की सृष्टि हो सके।

—बाबूलाल जैन, जमादार
महामन्त्री, श्री भा० दि० जैन शास्त्रि परिषद्

हार्दिक शुभकामना :—

प्रातः स्मरणीय परम पूज्य आर्यिका १०५ इन्दुमती माताजी के अभिनन्दन ग्रन्थ के लिए हमारी हार्दिक शुभकामनाएँ स्वीकार करे।

बाह्य आभ्यन्तर परिग्रह व ममता से रहित, आडम्बरहीन, सरल, धैर्यशील, इन्द्रिय सुखों की लिप्सा से दूर, राग-द्वेष-मोह-माया-अहंकार एवं कषायों के आवेश से विरत, ज्ञान ध्यान में लीन, परोपकार की साक्षात् मूर्ति पूज्य इन्दुमती माताजी के चरणों मे मेरा सविनय शत शत वन्दन।

पूज्य माताजी शतायु होकर भव्य जीवों के अभ्युत्थान एवं जिनवाणी की रक्षा के साथ साथ आत्मकल्याण कर परमस्थान प्राप्ति की साधना में सफल हों—यही मेरी जिनेन्द्र प्रभु से प्रार्थना है।

—जयचन्द डी० लोहाड़े
महामन्त्री, भारतवर्षीय दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, बम्बई

धम्मं सरणं पव्वज्जामि

पूज्य आर्यिका इन्दुमतीजी का सम्पूर्ण जीवन आदर्श नारी जीवन का निदर्शन है। आप प्रारम्भ से ही स्वावलम्बी, साहसी, धैर्यशीला और दृढ़ निश्चयी रही हैं। १३ वर्ष की अवस्था में ही वैधव्य का पर्वत सम संकट भी आपके मन में निराशा को जन्म न दे सका। लोक में चार ही शरण हैं—'अरिहन्ते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवली पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।' ऐसा दृढ श्रद्धान करते हुए आपने देव गुरु धर्म की शरण ली। और इस प्रकार आपने अपनी पर्याय को सार्थक किया है।

अपने आद्यगुरु आचार्य कल्प (स्व०) श्री चन्द्रसागरजी महाराज के प्रति आपके मन में आज भी अटूट भक्ति है। आपकी यह गुरु भक्ति सबके लिए ईर्ष्या की वस्तु है। जब १०८ मुनिराज श्री चन्द्रसागरजी महाराज मारवाड़ मे पधारे थे तभी से श्रीमती मोहनीबाई ने अपने जीवन का कर्त्तव्य निश्चित कर मन ही मन उनका शिष्यत्व स्वीकार करने का संकल्प कर लिया था। आप उनके दर्शन-पूजन, आहारदान, उपदेश श्रवण आदि क्रियाओं में सतत सलग्न रहती, फिर दूसरी प्रतिमा के व्रत ग्रहण किए और संघ के साथ में रह कर कसावखेड़ा मे आपने पूज्य गुरुदेव से क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण की। जब आचार्यकल्प गुरुदेव अपने पूज्य गुरुदेव शान्तिसागरजी महाराज के सान्निध्य मे कुन्थलगिरि पर विराज रहे थे तब मुझे और नागौर निवासी (स्व०) श्री चांदमलजी बड़जात्या को सपरिवार एक, डेढ माह तक आपके निकट रहने का अवसर मिला था। तब हमे पूज्य माताजी इन्दुमतीजी के उपदेशों से ही ज्ञात हुआ था कि साधु-सेवा और गुरुभक्ति किस विधि से की जाती है।

पूज्य वीरसागरजी महाराज से आपने आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। अपने दीक्षागुरुओं की भांति आप भी विगत कई वर्षों से जैनधर्मकी अभूतपूर्व प्रभावना कर रही हैं। जिस तरह चन्द्र-सागरजी महाराज ने मारवाड़ का उद्धार किया था उसी तरह आपने संघ सहित बंगाल, बिहार, आसाम, नागालैंड प्रदेशों में विहार कर अनेक भव्य जीवों को सन्मार्ग पर लगाया है। आप साहसी गुरु की साहसी शिष्या हैं। आसाम प्रान्त में आपके ही प्रसाद से पचकल्याणक प्रतिष्ठायें, वेदी प्रतिष्ठायें हुई और स्थान-स्थान पर गृह चैत्यालयों का निर्माण हुआ। संघ में आप सहित चारों ही माताजी

शान्त स्वभावी, मृदुभाषी और सतत स्वाध्यायी हैं। सबकी सब अपनी चर्या पालन में कठोर हैं। आर्यिका सुपार्श्वमतीजी तो साक्षात् सरस्वती तुल्य हैं। आर्यिका विद्यामतीजी और आर्यिका सुप्रभामतीजी भी निरन्तर पठन-पाठन में ही संलग्न रहती हैं। मैं अल्पज्ञ हूँ, संघ के और संघनायिका के गुणों का शतांश भी वर्णन नहीं कर सकता हूँ।

अन्तमें, पूज्य माताजी इन्दुमतीजी व संघस्थ माताजी के पवित्र चरणों में त्रियोग शुद्धिपूर्वक त्रिवार नमोस्तु निवेदन करता हूँ और यही भावना भाता हूँ कि संघ दीर्घकाल तक हम संसारी प्राणियों को धर्म मार्ग का दिग्दर्शन कराता रहे।

विनीत : झूमरमल बगड़ा, सुजानगढ़

प्रभावशाली व्यक्तित्व

गत वर्ष माताजी के संघ का चातुर्मास शिखरजी में हुआ था। उस समय मुझे भी वहाँ जाने का सुअवसर मिला था। आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी और आर्यिका श्री सुपार्श्वमती माताजी व अन्य माताओं के दर्शनों का लाभ भी मिला। तदुपरान्त बीस पन्थी कोठी में इन्द्रध्वज-विधान समारोहपूर्वक सम्पन्न हुआ था। यह भी निर्णय हुआ कि चौबीसी मन्दिर की बगल की पहाड़ी पर एक विशाल भवन का निर्माण कराया जाए। इसकी स्वीकृति भी मैंने बीस पन्थी कोठी कमेटी की अध्यक्षता करते हुए दिलवाई थी।

इतनी सारी बातें मात्र एक चातुर्मास के दौरान निर्णीत हो जावे, यह कोई साधारण बात नहीं है। इसके लिए बहुत बड़े पुण्य का प्रताप होना चाहिए। आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी की तपस्या, उनके त्याग से प्रभावित होकर ही श्रावकों को दान करने की प्रेरणा होती है।

मैं पूज्या आर्यिका श्री इन्दुमती माताजी के प्रति अपने श्रद्धासुमन सादर समर्पित करता हूँ तथा आपके अभिनन्दन समारोह की सफलता चाहता हूँ।

—सुबोधकुमार जैन
मानद मंत्री श्री जैन बाला विश्राम, आरा (बिहार)

चारित्रगुरु माताजी

❖

भोग और योग के आकर्षण मे जिन्होने 'योग' का चयन किया, उन पूज्य इन्दुमती माताजी का जीवन आज 'कुन्दन' की भाँति दमक रहा है। उनकी विचारधारा पूर्णतः आगमानुकूल है। मैंने माताजी को विविध रूपों और परिस्थितियों मे देखा है। उन्हें देव-शास्त्र-गुरु पर अगाध श्रद्धा है। वे गुरुओं के आदेश का अक्षरशः पालन करती हैं। जिनवाणी उनका प्राण है।

उनका छोटा सा संघ निरन्तर ज्ञान-ध्यान रत रहता है। श्री १०५ आर्यिका सुपार्श्वमतीजी में गजब की विद्वत्ता है, उनकी वक्तृत्व शैली बडी प्रभावशालिनी है। संघस्थ सभी आर्यिकाएँ मूर्तिमन्त चारित्र हैं।

पू० इन्दुमती माताजी, आर्यिका सुपार्श्वमतीजी की चारित्र गुरु है। सप्तम प्रतिमा के व्रत इन्होंने पूज्य माताजी से ही ग्रहण किये थे।

पू० इन्दुमती माताजी से व्रत ग्रहण करने का सौभाग्य अनेक लोगों को मिला है, मैं भी उनमें से एक हूँ। मैंने भी यथाशक्ति कुछ नियम अंगीकार किये हैं और गुरुवर्या के अनुग्रह से उनके निर्दोष पालन में पूर्णतया सावधान हूँ।

मैं पूज्य माताजी के चरणों में नमोस्तु निवेदन करता हुआ उनके दीर्घ स्वस्थ जीवन की शुभ कामना करता हूँ। चारित्रगुरु के चरणों में पुनः नमोस्तु, नमोस्तु, नमोस्तु।

—मदनलाल गंगवाल, डेह

वन्दन !

पूज्य पितामह ब्र० दीपचन्दजी बड़जात्या एवं पिताश्री चाँदमलजी बड़जात्या के संस्कारनिष्ठ जीवन का मुझ पर बहुत प्रभाव पड़ा है। इस प्रभाव को गहराई प्राप्त हुई है गुरुजनों के सम्पर्क से। स्व० पिताजी के विशेष सम्पर्क के कारण मुझे भी आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी के संघ में दर्शन-वन्दनार्थ जाने का सौभाग्य मिलता रहा है। आर्यिका द्वय की प्रेरणा से मेरी श्रद्धा को बल मिला है। इन्हीं की प्रेरणा से मैंने दशलक्षण व्रत व अष्टाह्निका व्रत किए हैं। सिद्धचक्रविधान व शान्तिविधान की विशेष पूजायें की हैं। गतवर्ष तीर्थराज श्री सम्मेदशिखरजी पर आयोजित वृहत् इन्द्रध्वज विधान में सहयोग करने का भी मेरा सौभाग्य रहा है।

चार आर्यिकाओं के इस छोटे से संघ ने अपने ज्ञान और चारित्र से जैनाजैन जनता का जो उपकार किया है वह स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है।

मैं १००८ श्री पार्श्वनाथ भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि पूज्य माताजी इन्दु-मतीजी का दिव्यदर्शन, सदुपदेश और आशीर्वाद हमें दीर्घकाल तक प्राप्त होता रहे। माताजी के पुनीत चरणों में शत-शत वन्दन !

— बा० पारसमल बड़जात्या, कलकत्ता

नमन !

यह जानकर बड़ा हर्ष हुआ कि पूज्य आर्यिका माताजी १०५ श्री इन्दुमतीजी का अभिनन्दन ग्रन्थ छप रहा है।

पूज्य इन्दुमती माताजी के संघ का सुजानगढ मे संवत् २०१७ में चातुर्मास हुआ था। माताजी संघ का संचालन बडी कुशलता एवं दूरदर्शिता से करती हैं। संघ में पूज्य माताजी श्री सुपार्श्वमतीजी विशेष विदुषी हैं और वह सब पूज्य इन्दुमती माताजी के ही कारण।

पूज्य माताजी के चरणों में मेरा शत शत वन्दन !

—प्रकाशचन्द पाण्ड्या, कोटा
(सुजानगढ़ निवासी)

—卐 卐 卐— मंगल कामना —卐 卐 卐—

मरुभूमि में जन्मी, प्रशम मूर्ति, तपस्विनी आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी ने संघ सहित समस्त भारत में निर्भीकतापूर्वक विचरण कर धर्म की अभूतपूर्व प्रभावना की है। अपने गुरु आचार्यकल्प चन्द्रसागरजी महाराज की भाँति ही सदा दृढ़ रह कर आपने श्रमण सस्कृति को प्रचारित प्रसारित किया है। जैनाजैन जनता को कल्याणकारी धर्म का उपदेश देकर अहिंसा के पथ पर प्रवृत्त किया है। अनेक भव्य जीवों ने आपकी प्रेरणा से मद्य, मास रात्रि भोजन व अशुद्ध खान-पान का त्याग किया है।

आसाम प्रान्त के विभिन्न स्थानों में जहाँ श्रावकों के घर तो थे परन्तु चैत्यालय या मन्दिर नहीं थे वहां आपकी प्रेरणा से चैत्यालयों का निर्माण हुआ है। विजयनगर में आपके सान्निध्य में विशेष उत्साहपूर्वक पंचकल्याणक जिनबिम्ब प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न हुआ था। अनेक स्थानों पर संघ के सान्निध्य में मण्डल-विधान आदि महदनुष्ठान सम्पन्न हुए हैं।

ऐसी अद्वितीय धर्मप्रभावक पूज्य १०५ श्री इन्दुमती माताजी एवं अन्य माताओ के चरणों में सविनय नमोस्तु निवेदन करता हूँ। मै माताजी की आरोग्यपूर्ण दीर्घायु की कामना करता हूँ।

—अमरचन्द पहाड़या, कलकत्ता

❋ माता ! तुम सजीव श्रद्धा हो !

परम पूजनीया प्रातः स्मरणीया श्री १०५ इन्दुमतीजी ने समग्र समाज को—विशेषतया महिला समाज को—सही दिशा में जो गति-मति दी है, उससे उनकी संज्ञा और कक्षा सार्थक हुई है। उनके चन्द्र से उज्ज्वल चरित्र और शीतल स्वभाव तथा वरदा बुद्धि एवं सुखदा सुमति को लखते और देखते हुए मेरे कविकण्ठ से बरबस निकल रहा है—

माता, तुम सजीव श्रद्धा हो !
चिरायु हो; प्रण-सन्नद्धा हो !!

—लक्ष्मीचन्द्र 'सरोज'; जावरा (म० प्र०)

त्यागमूर्ति

जिस समय ब्र० मोहनीबाई की क्षुल्लिका दीक्षा कसावखेड़ा में होने के तार-पत्र डेह में आपके ससुराल पक्ष एवं पीहर पक्ष के पास आये तब दीक्षा-समारोह में सम्मिलित होने की प्रबल इच्छा हुई।

कसावखेड़ा मे महान् तपस्वी आचार्यकल्प १०८ श्री चन्द्रसागरजी महाराज के दर्शन प्राप्त कर महान् हर्ष हुआ। माताजी की दीक्षा के लिये आज्ञा देने पर गुरुवर के वैराग्यपूर्ण उपदेश को सुनकर हम लोगो ने अशुद्ध जल का त्याग किया।

माताजी इन्दुमतीजी साक्षात् त्याग की मूर्ति हैं। आपके संघ में आर्यिका सुपार्श्व-मतीजी, विद्यामतीजी और सुप्रभामतीजी है। आपने अनेक उपसर्ग सहते हुए भी जैनधर्म का प्रकाश मारवाड़ से आसाम तक फैलाया है।

आपके गुणों का वर्णन करने की शक्ति सुरेन्द्र में भी नही, मै अज्ञानी आपके गुणों का क्या वर्णन कर सकता हूं। आप आप ही हैं; जैसा नाम है वैसी ही आप है।

कब मेरा सौभाग्य होगा कि आपके दर्शन कर आशीर्वाद प्राप्त करूँ ?

आप दीर्घायु हो; यही प्रार्थना है।

—हुकमीचन्द सेठी, डेह

विनयाञ्जलि

महान् प्रवक्ता, त्यागमूर्ति, घोर तपस्विनी, परम विदुषी आर्यिका माताजी श्री १०५ इन्दुमतीजी के पावन चरणों मे विनयाञ्जलि अर्पित करते हुए कामना करता हूँ कि आप दीर्घायु हो।

विनयावनत . वैद्य राजकुमार शास्त्री, निवाई

गुरुभक्त आर्यिका

¤

परम पू० १०५ आर्यिका श्री इन्दुमतीजी आर्ष प्रणीत आगम मे परिपूर्ण आस्था रखने वाली, निर्भीक, साहसी और कर्त्तव्यनिष्ठ आर्यिकाश्री है। आप डेह (नागौर) की सुप्रसिद्ध दिगम्बर जैन खण्डेलवाल जात्युत्पन्न वीर महिलारत्न है। डेह में जब आर्ष आगम के निर्देशक, विशिष्टवक्ता, सस्कृतज्ञ, बहुश्रुतविद्वान्, सिहवृत्तिधारक, निस्पृही, जितेन्द्रिय (घृत, मीठा, लवण के आजन्मत्यागी), स्पष्टवक्ता, क्रान्तिकारी ऋषि १०८ (स्व.) श्री चन्द्रसागरजी महाराज का पदार्पण हुआ था तब आपके सदुपदेश से समाज मे एक धार्मिक क्रांति आई थी।। अनेक भव्य जीव व्रत, नियम, सयम की ओर आकृष्ट हुए थे, उन्ही में से महिलारत्न मोहनीबाई (आर्यिका इन्दुमतीजी) भी एक थी। इन्होंने गुरुदेव से क्षुल्लिका के व्रत लिये। फिर गुरुराज के संघ के साथ विहार करती रही। व्रतपरिपालन में आप सहिष्णु और दृढ़ सिद्ध हुई। गुरुभक्ति से आपकी आत्मा मे वैराग्य भावना बलवती हुई, फलस्वरूप आपने पू० १०८ वीर सागरजी महाराज से आर्यिका के व्रत लिये।

जब आपका विहार संघ के साथ-साथ मारवाड़ में सुजानगढ़, लाडनूँ आदि नगरों ग्रामों में हुआ तब ब्र० भँवरीबाई (वर्तमान आर्यिका सुपार्श्वमतीजी) को आपका परिपूर्ण धार्मिक स्नेह मिला, इससे इनका भाव भी आपकी सेवा मे रत रहने का हो गया। पूज्य माताजी इनके लिए सिद्धान्त, व्याकरण, साहित्य आदि के पठन-पाठन हेतु विद्वद् संयोग के लिए प्रयत्नशील रहतीं। (मैं उस समय सुजानगढ़ के जैन विद्यालय में धर्म अध्यापक था) तथा आपकी पूरी सार-संभाल रखतीं। परिणाम सामने है, आज आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी जैन दर्शन, साहित्य, न्याय, व्याकरण, इतिहास की प्रकाण्ड विदुषी हैं, अपनी प्रवचनशैली से विद्वद्वर्ग को भी मुग्ध कर देती हैं। पू० इन्दुमती माताजी के प्रति आपकी अटूट भक्ति है।

आप दोनों के अतिरिक्त संघ में आर्यिका विद्यामतीजी और आर्यिका सुप्रभामती माताजी भी हैं। सब ज्ञान, ध्यान और लोकोपकार में लीन रहती हैं।

संघस्थ सभी आर्यिकाओं के गुणों का अभिनन्दन करते हुए मैं १००८ पद्मप्रभु भगवान से सबके शतायुष्य होने की कामना करता हूँ।

शुभमिति !

—पं० मिश्रीलाल शाह जैन शास्त्री

❖ वन्दन ❖

पूज्य आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी के अभिनन्दन की योजना ज्ञात कर अतीव प्रसन्नता हुई। पूज्य माताजी जब संघ सहित हमारे प्रान्त में पधारे थे तथा गोहाटी मे वर्षायोग सम्पन्न किया था, वह एक अविस्मरणीय ऐतिहासिक घटना है। क्योकि इस सुदूर प्रदेश में तब तक दिगम्बर साधुओं ने कभी प्रवेश नही किया था।

मैं पूज्य आर्यिकासंघ के श्रीचरणो में वन्दामि निवेदन करता हूं।

अभिनन्दनग्रन्थ पूर्ण सफलता के साथ शीघ्र प्रकाशित हो; यही कामना है।

विनीत : **हुकमचन्द सरावगी**
फर्म : छगनलाल सरावगी एण्ड संस, गोहाटी

मंगल कामना

आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी के अभिनन्दन का जो कार्यक्रम बना है वह वास्तव में बहुत प्रशसनीय है। अभिनन्दन ग्रन्थ से धर्मप्रभावना में व्यापक वृद्धि होगी।

पूज्य माताजी ने अपना सम्पूर्ण जीवन समाजहित में लगाया है उनकी अमृतमयी वाणी और उपदेश जैन-जगत् के लिये ही नहीं अपितु समस्त मानव-जगत् के लिए कल्याणकारी हैं।

मैं पूज्य माताजी के चरणकमलों में सविनय वन्दामि निवेदन करता हुआ अभिनन्दन ग्रन्थ के शीघ्र प्रकाशन हेतु अपनी शुभ कामनाएँ सम्प्रेषित करता हूं।

विनीत : **कमलकुमार जैन, कलकत्ता**

शुभकामना

--डॉ० महेन्द्रसागर प्रचण्डिया
डी. लिट्.
मानद संचालक, जैन शोध अकादमी
अलीगढ़

पूजनीया आर्यिका १०५ इन्दुमतीजी का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकट करना वस्तुतः जिनवाणी को अनेक अंशों में प्रकाशित करना है।

पञ्च परमेष्ठियों में आचार्य और उपाध्याय के उपरान्त साधु का क्रम आता है। साधु में मुनि १०८ गुणों का धारी होता है। ऐलक और क्षुल्लक १०५ गुणों के धारी होते हैं। १०५ गुणों से समलंकृत साध्वी को आर्यिका कहा जाता है। इस पर्याय में आर्यिका ही श्रेष्ठ स्तर माना गया है। पूजनीया आर्यिका इन्दुमतीजी सुधी आर्यिकाओं में असाधारण स्थान रखती हैं।

पूजनीया माताजी की जीवनचर्या, वाणी वैदुष्य तथा आहार-विहार जिन-साधु चर्या की प्रयोगशाला है। ऐसी गुणवती आत्माओं के मंगल दर्शन कर भव्य आत्माएँ कल्याणोन्मुख होती हैं।

पूजनीया माताजी की वन्दना करते हुए संघस्थ साध्वी समुदाय को सुखसाता की मंगल-कामना करता हू। अभिनन्दनग्रन्थ के सम्पादन और प्रकाशन में आप अतिशय साफल्य प्राप्त करें; ऐसी मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ और भावनाएँ कृपया स्वीकार कीजिए।

* मंगल कामना *

मुझे यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि आप आर्यिकारत्न १०५ श्री इन्दुमती माताजी का एक अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे हैं। यह बहुत ही सराहनीय कार्य है। इस ग्रन्थ के माध्यम से समाज को कई प्रकार की अनुभूतियां मिलेंगी।

पूज्य माताजी राजस्थान की एक महिला रत्न हैं जिन्होंने नागौर जिलान्तर्गत डेह में जन्म लेकर अपने जीवन को सार्थक बनाया है और जो मुक्ति-मार्ग पर आरूढ़ हैं।

आज लगभग ७४ वर्ष की आयु में भी आपका ध्यानाध्ययन अबाधगति से नियम पूर्वक चल रहा है और एक संघ का कुशल संचालन भी आपके सान्निध्य में हो रहा है। आपकी परमशान्त मुद्रा वन्दक को अनायास आकर्षित करती है।

श्री वीर प्रभु से हम यही मंगलकामना करते हैं कि आप दीर्घ काल तक पूर्ण आरोग्यतापूर्वक रत्नत्रय का धर्माराधन करती हुई, हमें सन्मार्ग-देशना देती रहें और जिस मार्ग को आपने अपनाया है, उसकी अन्तिम मंजिल को प्राप्त करें।

—पं० लाड़लीप्रसाद जैन, पापड़ीवाल
सवाई माधोपुर

अभिवन्दन
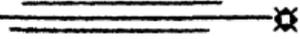
श्री धर्मचन्द मोदी
महामन्त्री
भा. दि. जैन महासभा राजस्थान शाखा

विश्ववन्द्य भगवान आदिनाथ के सुपुत्र भरत के नाम से सम्बोधित किया जाने वाला हमारा देश भारतवर्ष आध्यात्मिकता का केन्द्र रहा है। यहाँ अध्यात्मप्रेमियो ने अपनी साधना और तपस्या के बल पर स्वय का तो कल्याण किया ही है, संसार के प्राणियो को भी इस ओर प्रेरित किया है। आधुनिक युग भौतिक विकास का युग है। भौतिकता की चकाचौंध से लोकरुचि भोगाकाक्षा और विषयवासनाओ की पूर्ति में ही बनी हुई है अतः आध्यात्मिकता उपेक्षित है। अधुना, जहाँ ज्ञानविज्ञान प्रतिदिन आश्चर्यचकित करनेवाली प्रगति की ओर अग्रसर है वहा व्यक्ति का चरित्र पतन की पराकाष्ठा पर पहुँच गया है। प्राचीन सस्कृति के प्रति उपेक्षा और आधुनिक भौतिकता की तीव्र आकाक्षा ने मानव जीवन को विकृत बना दिया है, फलस्वरूप उसका हेयोपादेय का ज्ञान जाता रहा है। ऐसी स्थिति में जीवनाकाश मे सुख शाँति के स्थान पर दुःख और अशान्ति की घटाओं का घहराना स्वाभाविक है। परन्तु मनुष्य सुख शान्ति की खोज के लिए व्यग्र है। उसे मार्ग नहीं सूझ रहा है। इस प्रकार के त्रस्त एवं संतप्त जीवन के लिए आर्ष परम्पराओ एवं प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रतीक मुनि जन व आर्यिकाओ का सान्निध्य तथा जिनवाणी ही समीचीन एवं प्रशस्त मार्ग का दिग्दर्शन कराने में साधकतम साधन हो सकते है। इस दृष्टि से परम विदुषी पूज्य आर्यिकाश्री १०५ इन्दुमती माताजी के अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन की योजना न केवल श्लाघनीय ही है अपितु समय की पुकार भी है।

ससार में व्यक्ति आता है और चला जाता है। ऐसी महान् विभूतियों का भी प्रादुर्भाव होता है जिनका जीवन स्व-पर कल्याण हेतु समर्पित

होता है। ऐसी महान् आत्माओं में परम पूज्य आर्यिका श्री इन्दुमती माताजी भी एक हैं जिनकी आत्मा का प्रकाश आध्यात्मिक चेतना एवं स्फूर्ति प्रदान करते हुए जगमगा रहा है। आपने देश के सभी प्रान्तों में विशेषत: पूर्वोत्तर भारत में भ्रमण कर आत्मधर्म की दुन्दुभि बजाते हुए अपनी सरल, मधुर, मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी वाणी से तथा चारित्र के प्रभाव से सहस्रों प्राणियों को सदाचार की ओर उन्मुख किया है। आपके इस महदुपकार के लिए यह राष्ट्र सदैव कृतज्ञ रहेगा। आपके प्रभावक व्यक्तित्व ने अपनी महान् साधना, उज्ज्वल चारित्र एवं समीचीन ज्ञान के आधार पर नारी के महत्त्व को उजागर करते हुए यह सिद्ध कर दिया है कि भारत वसुन्धरा पर नारियों ने भी अपने गौरवशाली पवित्रतम चारित्र से भारतीय संस्कृति के इतिहास में स्वर्ण पृष्ठ जोडे हैं।

मैं परम पूज्य माताजी के चरणों में श्रद्धासुमन समर्पित करता हुआ आपकी दीर्घायु की कामना करता हूँ। शत शत वन्दन!

卐 मंगल कामना 卐

परम पूज्य १०५ आर्यिका श्री इन्दुमती माताजी के सम्मान में प्रकाश्य अभिनन्दन ग्रन्थ की सफलता के लिए अपनी हार्दिक मंगलकामनायें संप्रेषित करता हूँ।

पूज्य माताजी ने अपने ज्ञान और आचरण द्वारा समस्त नारी जाति का मस्तक ऊँचा किया है और अनेक प्राणियों को संयम मार्ग मे अग्रसर किया है।

अपने ज्ञान और विवेक द्वारा आपने अनेक प्रातों की धर्म पिपासु जनता को धर्मामृत का पान करा कर उसे सच्चे देवशास्त्र गुरु की दृढ़ श्रद्धा पर आरूढ किया है।

माताजी ने अपने छोटे से संघ के माध्यम से जैन धर्म का जिस रूप मे प्रचार प्रसार किया है वह अविस्मरणीय है। आपके दर्शन-वन्दन और आशीर्वाद प्राप्ति बडे पुण्य का फल है।

पूज्य माताजी के चरणों में सविनय नमोस्तु। मैं आपके उत्तम स्वास्थ्य व दीर्घजीवन की कामना करता हूँ।

—शिखरीलाल पाण्ड्या, डेह

मंगल कामना

परम पूज्य १०५ आर्यिका श्री इन्दुमती माताजी ने सुदूर पूर्वाञ्चल में संघ सहित विहार कर जैनाजैन समाज पर जो उपकार किया है वह कभी भूला नहीं जा सकता।

आपने आर्यिका सुपार्श्वमतीजी, विद्यामतीजी और सुप्रभामतीजी के साथ इस अंचल में विहार कर हजारों लोगों को मद्य मांस का त्याग कराया है; अनेक लोगों ने आपकी प्रेरणा से अशुद्ध आहारादि का त्याग किया है।

डीमापुर वर्षायोग में संघ के द्वारा हमारा व समाज का अमित उपकार हुआ है। संघ के सान्निध्य में धर्मप्रभावना के अनेकानेक कार्य हुए, लोगों को जैनधर्म के सम्बन्ध मे विशेष जानकारी मिली, साध्वी संघ की चर्या से 'त्यागमयी जैनधर्म' की अमिट छाप इस क्षेत्र के लोगों पर पड़ी है।

पूज्य माताजी की दीर्घायु की कामना करता हुआ, अभिनन्दन ग्रन्थ की सफलता चाहता हूँ।

—राजकुमार सबलावत, डीमापुर

*

मैं इसे अपना असीम पुण्योदय ही मानता हूँ कि गौहाटी वर्षायोग पूरा करके जैन प्राचीन ऐतिहासिक स्थल 'सूर्य पहाड' का अवलोकन कर पूज्य १०५ आर्यिका श्री इन्दुमती माताजी संघ सहित हमारे तेल डिपो--ग्वालपाड़ा में पधारी। साध्वियों की चरण रज से मेरा तो घर परम पवित्र हो गया।

पण्डाल मे सार्वजनिक उपदेश एवं केशलोच की क्रिया को देख कर जैन साध्वियों की विद्वत्ता, तप, त्याग, कष्टसहिष्णुता एवं संयमाराधना का जैनाजैन जनता पर काफी प्रभाव पड़ा। लोग कहने लगे कि "ये वास्तव में तप त्याग की साक्षात् मूर्तियाँ हैं।" अनेक स्त्री-पुरुषों ने मद्य मांस त्याग के नियम लिये।

आसाम में संघ के विहार से अभूतपूर्व जागृति आई है, अनेक नर-नारी आत्महित में प्रवृत्त हुए हैं।

मैं परम पूज्य माताजी का श्रद्धापूर्वक अभिनन्दन करता हूँ और आपके दीर्घायुष्य की कामना करता हूँ।

—हुलासचन्द पाण्ड्या, ग्वालपाड़ा (आसाम)

❖ अभिनन्दन

यह जान कर प्रसन्नता हुई कि 'आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी अभिनन्दन ग्रन्थ' का प्रकाशन हो रहा है। माताजी ने समाज जागरण एवं नारियों में धार्मिक भावना भरने का वृहद् कार्य किया है। यह उपयुक्त ही है कि समाज उनके चरणों में अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करे।

हमारे विनम्र अभिनन्दन सहित—

—अक्षयकुमार जैन, नई दिल्ली

❖ शुभकामना

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी का अभिनन्दन ग्रन्थ शीघ्र ही तैयार होने जा रहा है।

मेरी यही कामना है कि यह ग्रन्थ पूर्ण सफलता के साथ शीघ्र ही पूर्ण हो।

—सेठ सुनहरीलाल जैन, बेलनगंज, आगरा

❖ महान् माताजी

पूज्य माताजी १०५ श्री इन्दुमतीजी के अभिनन्दन के बारे में लिखा सो जानकर बहुत खुशी हुई। मेरे सस्मरण मँगाए सो मैं तो सिर्फ इतना ही लिखना चाहता हूँ कि माताजी महान् हैं; उनके बारे में जितना लिखा जावे, उतना थोड़ा है।

मैं उनके चरणों में अपने नमस्कार भेज रहा हूँ।

—सुमेरचन्द जैन, डालीगंज लखनऊ

कोटि कोटि वन्दन !

पूज्य आर्यिका इन्दुमती माताजी द्वारा ऐसे स्थानों पर भ्रमण करके जैनधर्म का प्रचार-प्रसार हुआ है जहाँ पर अब तक जैन साधुओं का भ्रमण इस शताब्दी में सुनने में भी न आया था।

आगम के प्रति अटूट श्रद्धान, ज्ञान और दृढ निश्चय का संगम माताजी में अलौकिक प्रतिभा का द्योतक है।

मैं अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन युवा परिषद् परिकर एवं अपनी ओर से पूज्य आर्यिकारत्न श्री १०५ इन्दुमती माताजी का कोटि-कोटि वन्दन कर अभिनन्दन करता हूँ और श्री जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना करता हूँ कि माताजी दीर्घायु हों।

—**कैलाशचन्द्र जैन, सर्राफ**
अध्यक्ष अ० भा० दिगम्बर जैन युवा परिषद्, टिकैतनगर

*

हार्दिक विनयाञ्जलि

भारतीय जैनधर्माकाश में आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी का संघ इन्दु के समान समुज्ज्वल वृष चन्द्रिका का वर्षण कर भ्रान्त भव्य जीवों को कर्त्तव्यपथ का बोध करा रहा है। संघ नायिका इन्दुमती माताजी आगम रहस्य की महान् ज्ञाता, रत्नत्रय की अनुपम साधिका और परम तपस्विनी है। साधारणतः रुक्षस्वभावी भासित होती हैं—वस्तुतः 'नारिकेलसमाकाराः दृश्यन्ते हि सुसज्जनाः' उक्ति के अनुसार आपका अन्तर कितना स्नेहसिक्त है; यह उनके सान्निध्य में रह कर ही अनुभव किया जा सकता है। आप देव-शास्त्र-गुरु और धर्म का किंचित् भी अवर्णवाद सहन नहीं कर सकती। आपके संघ के आसाम प्रदेश के विहार को आसामवासी आज भी पूर्ण श्रद्धा के साथ स्मरण करते हैं। विशेषतः आसाम के जैनेतर विवेकी व्यक्ति तो आपसे बहुत ही प्रभावित हुए हैं।

आपके अभिनन्दन ग्रन्थ के सम्पादन-प्रकाशन हेतु गठित व्यवस्था समिति निश्चय ही अतिशय धन्यवाद की पात्र है।

परम पूज्य आर्यिकाश्री के चरणकमलों में पूर्ण श्रद्धा के साथ वन्दना करता हुआ मैं अपनी हार्दिक विनयाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

मांगीलाल सेठी 'सरोज', सुजानगढ़
मन्त्री, प्रचार विभाग
श्री भा० दि० जैन सि० स० सभा

मंगल कामना :

आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी के अभिनन्दन स्वरूप ग्रन्थ-प्रकाशन की योजना ज्ञात कर हार्दिक प्रसन्नता हुई। मैं ग्रन्थ के त्वरित प्रकाशन की मंगल कामना करता हूँ।

आर्यिकाश्री ने संघसहित ऐसे प्रान्तो मे विहार किया है जहाँ दिगम्बर साधु नहीं पहुँचते। वहां जैन और जैनेतर समाज मे आपके संयमित और अनुशासित जीवन की गहरी छाप पड़ी है। जैनाजैन जनता ने सघ का सर्वत्र भावभीना स्वागत किया है।

गौहाटी और डीमापुर के चातुर्मास एवं विजयनगर की 'बिम्ब प्रतिष्ठा' देखकर तथा आपके प्रवचन पीयूष का पान कर जनता इतनी अभिभूत हुई थी कि उसके मुख से यही उद्गार प्रकट होते थे—"जैनधर्म के सिद्धान्तों का पालन करने से ही घर मे, समाज में, देश में, और सम्पूर्ण विश्व में शान्ति स्थापित हो सकती है।।"

माताजी के त्याग-तपस्या एवं मधुर उद्बोधन में ऐसी आकर्षणशक्ति है कि बार-बार सान्निध्यलाभ लेने एवं आशीर्वाद पाने की अभिलाषा बनी ही रहती है।

मैं माताजी के दीर्घायुष्य की कामना करता हूँ ताकि हम लोगों को सन्मार्ग का दिग्दर्शन होता रहे।

—माँगीलाल बडजात्या, नागौर

जीवन्त संस्कृति :

आर्यिका इन्दुमतीजी के अभिनन्दन का आयोजन निश्चय ही बहुत सुन्दर बात है। पूज्य माताजी के सान्निध्य लाभ का सुअवसर तो मुझे नही मिला परन्तु उनके बारे में स्वर्गीय पण्डित श्री राजकुमारजी, पण्डितश्री बाबूलालजी जैन जमादार आदि अन्य विभूतियों व जैन समाचार पत्रों द्वारा जो ज्ञात हुआ उसके आधार पर कह सकता हूँ कि उनमे अद्वितीय स्फूर्ति, गति और संकल्प है। शुद्ध खान-पान, निर्मल मन और निष्काम आचरण। उनमे वह सब है जो भारतीय संस्कृति को सम्पूर्ण जीवन्तता के साथ परिभाषित करता है।

सन्यासी नदी की भाँति जीता है। वह ऐसी सरिता के समान है जो निरन्तर बहती जाती है, जहाँ जाती है वहा की प्यास बुझाती है, रस बरसाती है और अन्त में अपने आराध्य सागर में लीन हो जाती है।

धर्म जब ज्ञानी के हाथ पड़ता है तो वह मोक्ष बन जाता है। पण्डित से केवल जानकारी मिलती है, ज्ञानी से सच्चा ज्ञान मिलता है। साधु का लक्षण है सन्तोष।

साधु वही है जो जागा हुआ है।

जो त्यागते गए, वे पूज्य होते गए, तिरते गए।

—प्रेमचन्द्र जैन, अध्यक्ष, अहिंसा मन्दिर, नई दिल्ली

मंगल कामना

आर्यिकारत्न १०५ श्री इन्दुमती माताजी ने भारत के विभिन्न प्रान्तों में विशेषतः पूर्वाञ्चल में संघ सहित विहार करके सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की ज्योति प्रकाशित की है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य के सिद्धान्तों के सदुपदेश द्वारा हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील सेवन, मद्य-मांस भक्षण आदि का त्याग कराके जीवो को सन्मार्ग पर लगाया है, इस तरह आपने जैन धर्म की अभूतपूर्व प्रभावना की है।

अपनी वृद्धावस्था के बावजूद माताजी अपनी क्रियाओं में चारित्र पालन में पूर्णतः सावधान और दृढ़ हैं; इसे तपश्चर्या का या संयम का प्रभाव ही कहा जा सकता है।

मै ऐसी महान् विभूति के उत्तम स्वास्थ्य और दीर्घायु की कामना करता हूं।

माताजी के चरणों में बारम्बार नमन !

—उम्मेदमल पाण्ड्या, शान्ति रोडवेज, दिल्ली

मरुधरप्रदेश में जन्मी आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी ने दोनों कुलों को उज्ज्वल करके अपनी स्त्रीपर्याय को सार्थक किया है। अपनी शिष्याओं—श्रुतपारगामी आर्यिका सुपार्श्वमतीजी, विद्यामतीजी और सुप्रभामतीजी—सहित सारे भारत मे विहार करके मानव जाति का महान् उपकार किया है।

आपकी प्रेरणा से अनेक लोग अपनी शक्त्यनुसार व्रत-नियम ग्रहण करके चारित्रशुद्धि की ओर अग्रसर हुए हैं। आप डेह मे जन्मी थीं। सम्वत् २००६ मे नागौर में दीक्षा लेकर आपने इस क्षेत्र का नाम उज्ज्वल किया है। आपने यहां तीन चातुर्मास किए हैं, नागौरवासी आपके उपकार को कभी विस्मृत नही कर सकते। आज यहां देव-शास्त्र-गुरु के प्रति जो असीम श्रद्धा भक्ति दिखाई दे रही है वह सब आपकी ही देन है।

पूर्वाञ्चल में पदविहार कर आपने जो धर्म चेतना जाग्रत की है वह ऐतिहासिक महत्त्व का कार्य है।

मैं त्यागमूर्ति, परम निस्पृह आर्यिका इन्दुमती माताजी के चरण कमलों में शत-शत वन्दन निवेदन करता हूँ और यही मंगल कामना करता हूँ कि वे दीर्घजीवी हों और इसी तरह धर्म-प्रभावना करती रहें।

—सोहनसिंह कानूनगा, नागौर

卐 **माताजी शतायु हों** 卐

पूज्य १०५ इन्दुमती माताजी का संघ एक छोटा संघ होते हुए भी अत्यन्त प्रभावशाली संघ सिद्ध हुआ है। संघ के सान्निध्य में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति संघ की आगमानुकूल चर्या, विद्वत्ता और प्रभावना क्षमता से प्रभावित हुए बिना नही रह पाता।

सीकर में आपका चातुर्मास विशेष धर्मप्रभावनापूर्वक सम्पन्न हुआ था। आज से बीस वर्ष पूर्व हमारे ग्राम लालास में हुई वेदी प्रतिष्ठा में आपकी उपस्थिति ने समारोह में चार चाँद लगा दिये थे। संघ के आगमन से व प्रवचनों से जैनाजैन जनता को काफी धर्मलाभ मिला था।

यों तो संघ के दर्शनों का सौभाग्य कई बार मिला है परन्तु बिजयनगर (आसाम) की पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा में जो चमत्कार देखने को मिला वह चिरस्मरणीय है। समारोह के समय वर्षा होने लगी थी जो रुकने का नाम नही लेती थी। उस समय संघ के सान्निध्य में खचाखच भरे पण्डाल मे पाँच मिनट तक णमोकार मन्त्र का पाठ हुआ और पाँच दिनो तक वर्षा ऐसे गायब रही मानो वर्षा का कोई मौसम ही न हो। यह है आपकी चमत्कारिक प्रतिभा व धर्म के प्रति अटूट आस्था।

पूज्य माताजी ने संघ सहित भारत के अन्य प्रान्तों के अलावा आसाम, नागालैंड, बगाल आदि प्रान्तों में—जहाँ जैन साधुओं का गमन प्रायः नही होता—पैदल विहार कर जैनधर्म की जो प्रभावना की है वह चिर उल्लेखनीय है।

पूज्य माताजी शतायु हो, ऐसी मेरी वीरप्रभु से प्रार्थना है।

—चरणचञ्चरीक : **महावीरप्रसाद जैन, लालास वाला**

आदर्श आर्यिका संघ

(लेखक : डा० लालबहादुर शास्त्री, दिल्ली)

इस बीसवीं शताब्दी में जैनधर्म के प्रचार और प्रसार के लिए मुनि, आर्यिका, त्यागी, व्रतियों ने जो अनवरत प्रयत्न किया है वह आज के इतिहास में अभूतपूर्व है। गृहस्थों की इस भावना को "जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्व सौख्यप्रदायी" मूर्त रूप देने वाला हमारा उक्त समुदाय ही है। देश-देशान्तर मे भ्रमण करना, रूखा-सूखा अनियमित एक बार आहार लेकर रहना, प्रतिदिन दो-दो बार प्रवचन-उपदेश करना, निन्दा-स्तुति से उपेक्षित रहकर सर्वसाधारण को आत्मज्ञान, संयम में रहने को प्रोत्साहित करना, (बदले मे) किसी प्रकार के प्रति ग्रहण की आशा न रखना, साधु की अपनी विशेषता रहती है। यही विशेषता धर्म के प्रचार-प्रसार को प्रभावक बना देती है। धर्म आचरण माँगता है और आचरण हृदय माँगता है। ये दोनों ही बातें धर्म-प्रचार को सफल और प्रभावक बनाती है। साधु इन दोनों के सहारे ही जीवित रहता है अतः उसकी क्षीण आवाज भी श्रोताओं के हृदय में अक्षीण बल और उत्साह उत्पन्न करता है, यही कारण है कि--साधुओं के सम्पर्क में आकर तो गृहस्थ साधु बन जाता है, किन्तु किसी गृहस्थ या विद्वान् के सम्पर्क में आकर किसी को साधु बनते नहीं देखा। यह साधु जीवन भारत देश का प्राण रहा है, अतः कहना चाहिए कि यदि देश में कुछ भी नैतिकता का या सदाचार का अस्तित्व है तो उसका श्रेय साधु-साध्वी संघ को है।

महान् त्यागी, तपस्वी पूज्य १०५ श्री माता इन्दुमतीजी का संघ एक ऐसा ही साध्वी संघ है, जिसने देश के कोने-कोने में धर्म की जागृति की है, पश्चिमी भारत में एक लम्बे अर्से तक विहार कर इन दिनों आप ससघ पूर्वाञ्चल प्रदेश आसाम की तरफ विहार कर रही हैं। कहते हैं कि यह पहला ही अवसर है जब आसाम जैसे सुदूर प्रदेश में दिगम्बर जैन व्रतियो का विहार हो रहा है, उनमें भी साधु नही साध्वियों का विहार हो रहा है।

आसाम में आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी और उनके सघ का जो अभूतपूर्व स्वागत हुआ, वह वचनातीत है। जैनों के साथ अजैनों ने भी उनके स्वागत में पलक-पाँवड़े बिछा दिए।

सभी आगे आकर माताजी के दर्शन करना चाहते थे, उत्सुकता और हर्ष से विभोर होकर सभी मानो होड़ लगाकर पहले आना चाहते थे। इस संघ की प्रमुख गरिणनी आर्यिका माता १०५ श्री इन्दुमतीजी में वृद्धावस्था के बावजूद स्फूर्ति इतनी है कि विहार मे सबसे आगे चलती हैं। दैनिक चर्या में पूर्ण नियमित एवं सावधान हैं। यही कारण है कि समस्त संघ अपने आपमें पूर्ण अनुशासित है, हितमित भाषी एवं अत्यन्त शान्त है। आपके दर्शनमात्र से ही बिना उपदेश के ही शान्ति और वैराग्य का उपदेश मिल जाता है।

आपकी प्रमुख शिष्या महान् विदुषी आ० १०५ श्री सुपार्श्वमतीजी हैं। इन्हें उपाध्याय माताजी भी कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी। आपको वक्तृत्व शैली और अध्ययन आदि सभी कुछ वरदान स्वरूप प्राप्त हुए हैं। जो कुछ कहती हैं स्पष्ट और सयुक्तिक कहती हैं। भाषा में कहीं स्खलन नहीं, प्रमाणों में कहीं त्रुटि नही, तर्क में कहीं निर्बलता नहीं, आपके प्रवचन शास्त्रीय मर्यादा से कभी बाहर नहीं होते। जितना कुछ बोलती हैं वह तर्क पूर्ण, बोधगम्य तथा रुचिकर होता है जिसे श्रोताओं की अपार भीड भी एकाग्रमन से सुनती है। संस्कृत, प्राकृत आदि का अच्छा ज्ञान है। निरन्तर स्वाध्याय, प्रवचन, सामायिक, ध्यान के अतिरिक्त समय मे अध्ययन और अध्यापन का कार्य बराबर चालू रहता है।

आजकल तत्त्व की जो एकांगी चर्चा की जाती है और धर्म की जो अन्यथा व्याख्या की जाती है, उसके विरुद्ध आपके समन्वयात्मक भाषणों से समाज को सही दिशा मिली है। अन्धकार की प्रगाढ़ता तभी तक रहती है जब तक सूर्य की प्रभा उदित नही होती। माता श्री सुपार्श्वमतीजी को यदि ज्ञान सूर्य की प्रभा कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं है।

इसी संघ में दो आर्यिकाएँ और हैं—श्री १०५ आ० विद्यामतीजी और श्री १०५ आ० सुप्रभामतीजी। दोनों ही अत्यन्त शान्त और साधु चर्या मे, पठन-पाठन में रत हैं, उन दोनों की प्रशम-मूर्ति को एकत्र देख कर लगता है मानों कोई लोकोत्तर "श्री" और "सरस्वती" बैठी हैं अथवा कभी कभी कल्पना उठती है कि—उक्त दोनों माताएँ पू० इन्दुमतीजी एवं सुपार्श्वमतीजी की छाया ही हैं।

❖

हमारे दिगम्बर जैन समाज मे भी अनेक साध्वी-संयमिनी-विदुषी हैं। वे चाहे जिस प्रमेय को स्याद्वाद की सिद्धि से सिद्ध करने के लिए सज्ज हैं। उनकी प्रतिभा, विद्वत्ता, अभीक्ष्णज्ञानोपयोगिता, करुणा, स्त्रीजाति के विषय में अनुकम्पा आदि गुण श्लाघनीय ही नहीं अनुकरणीय भी हैं। आर्यिका ज्ञानमतीजी, आर्यिका सुपार्श्वमतीजी, आर्यिका विशुद्धमतीजी, आर्यिका इन्दुमतीजी आदि आर्यिकागण लोक के सामने स्त्रियों के आदर्श रूप को उपस्थित कर रही हैं।

आर्यिका इन्दुमतीजी ने मरुभूमि के शुष्क वातावरण में जन्म लेने पर भी संयमरूपी अमृत से अपने आपको पवित्र किया एवं इतर अनेक आत्माओं का उद्धार किया। असमय में प्राप्त वैधव्य में भी आध्यात्मिक ज्योतिकिरण को जागृत कर संयमाराधना की ओर आकृष्ट करने का महान् कार्य आर्यिका इन्दुमतीजी ने किया है; यह सामान्य बात नही है।

भारतीय नारी आज वैसे ही चमक-दमक की ओर आकृष्ट है। आज के भौतिक वातावरण, चलचित्र, स्नो पाउडर के जगमगाते युग में संयम की ओर निष्ठा कहाँ? तपश्चर्या कर शरीर को सुखाने का कार्य आज की नारी क्यो करने लगी!

दूसरी ओर अकाल में भी प्राप्त वैधव्य से नारी-जीवन संत्रस्त हो उठता है। भले ही वह एकाकी जीवन हो परन्तु उन विधवाओं का मुख-दर्शन भी अमंगलकर है। विवाहादि शुभकार्यों में सामने आने की एवं सामने आकर बैठने की उन्हे अनुमति नही है। यह विरोधाभास व विडम्बना कैसी? जो आर्यिका के व्रत धारण कर सकती है, उपचार से महाव्रती बन सकती है, उन स्त्रियों के

मंगलरूप का दर्शन अमंगलकर कैसे ? स्त्रियो को पति की मृत्यु के बाद वैधव्य दीक्षा लेने के लिए संहिताशास्त्रों में कथन है। यदि वे घर मे रहे तो वैधव्य दीक्षा लेकर रहें। गृहविरत हो जांय तो स्त्रियोचित प्रतिमात्मक चारित्र को वे धारण करें, इस प्रकार उनके मार्ग में कल्याण है।

अनेक लोग स्त्रियों को शिक्षण देने के सम्बन्ध में आनाकानी करते हैं; कितने ही लोग स्त्रियों को जो शिक्षण दिया जाता है, उसके अनौचित्य पर आक्षेप करते हैं परन्तु इस सम्बन्ध में हमारा स्पष्ट मत है कि स्त्रियो को शिक्षण देने में कोई आपत्ति नहीं है; उन्हें सुशिक्षित व सुसंस्कृत करने की परम आवश्यकता है; यह हमारी प्राचीन संस्कृति के सर्वथा अनुकूल है। भगवान आदिनाथ ने अपनी दोनो पुत्रियों से कहा कि बेटियों ! तुम दोनो युवती होने पर भी शील व विनय से वृद्ध स्त्रियों के समान हो; तुम्हारे शरीर वय सौन्दर्य और शील विद्या से विभूषित हो जांय तो यह जन्म सफल होगा। इस जगत् में विद्यावन्त पुरुष विद्वानो से सम्मान प्राप्त करता है व विद्यावती स्त्री स्त्री-सृष्टि के श्रेष्ठ पद को प्राप्त करती है। मानव के लिए विद्या श्रेयस्करी व यशस्करी है। अच्छी तरह आराधित विद्यादेवता इष्टार्थ को पूर्ण करती है, विद्या मगलदायिनी है, विद्या अपने साथ ही जाने वाला द्रव्य है, समस्त प्रयोजनों को विद्या उत्पन्न करती है इसलिये पुत्रियो ! तुम्हे अभी विद्या का अर्जन करना चाहिये।

यह उपदेश देकर धर्म, न्याय, व्याकरण, छन्द अलंकार आदि शास्त्रों मे अपनी दोनों पुत्रियों को भगवान ने विदुपी बनाया, फलत: ससार के भोगो से विरक्त होकर दोनो ने आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। ऐसी विद्या को प्रदान करने का निषेध कौन कर सकता है। विद्या ऐसी हो जो हित-प्राप्ति और अहित के परिहार मे समर्थ हो, कल्याण के मार्ग को बताने वाली हो, अकल्याण से बचाने वाली हो, लोकद्वय मे हितप्राप्ति कराने मे समर्थ हो। ऐसी विद्या ही आचार्य शान्तिसागरजी के पट्ट में सुशोभित, अधिकृत आचार्य वीरसागरजी के द्वारा दीक्षित आर्यिका इन्दुमतीजी, सुपार्श्वमतीजी आदि ने ग्रहण की है। यह कहते हुए हमें आनन्द होता है; वे और उनकी शिष्याएं सभी परम विदुषी हैं, जैनधर्म की महती प्रभावना करती हुई भारत में सर्वत्र विहार कर रही हैं। दक्षिणोत्तर भारत में सर्वत्र उनका चातुर्मास हुआ है। सर्व प्रमुख स्थानों में उनके अस्खलित व विद्वत्तापूर्ण प्रवचन हुए है; तप: पूत अतिशय निर्मल ज्ञान होने के कारण उनकी धारावाहिक कथनपद्धति अपूर्व है; बड़े-बड़े विद्वान् भी उनका अनुकरण नही कर सकते हैं; ऐसा भी कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं हो सकती है। ग्रन्थो के प्रमाण, ग्रन्थो के स्थल, किस अनुयोग के ग्रन्थ मे कहाँ क्या है ? आदि उन्हें कण्ठोक्त है। उनका क्षयोपशम अनुपम है, तपश्चर्या अगाध है। बड़े-बड़े विद्वान् सयमी आप विदुषियों की विद्वत्ता का लोहा मानते हैं। आपने श्रवणबेलगोला, मूडबद्री, अकलूज, कुम्भोज बाहुबली, कलकत्ता, किसनगंज आदि प्रमुख स्थानो में और राजस्थान के प्रमुख नगरों मे चातुर्मास किये हैं। सर्वत्र जैनधर्म की जय-भेरी बजाई है। आर्यिका सुपार्श्वमतीजी की विद्वत्ता सर्वविश्रुत है।

वैधव्य दीक्षा या जिनदीक्षा :

स्त्रियों को पति का वियोग होना दुर्भाग्य की बात है तथापि अशक्य अनुष्ठान है; आयु के पूर्ण होने पर कोई किसी को बचा नहीं सकता है। ऐसी स्थिति में स्त्रियों को वैधव्य प्राप्त होता है। वैधव्य प्राप्त होने पर उनका कर्त्तव्य है कि संसार का त्याग कर जिनदीक्षा लेवे परन्तु जिसको जिनदीक्षा लेने की सामर्थ्य न होवे, वह घर मे ही रह कर आत्मकल्याण करे एवं अपना जीवन आदर्शमय व्यतीत करे।

आर्यिकाजी का मार्ग अलग :

आर्यिका इन्दुमतीजी ने संसार की स्थिति का अच्छी तरह निर्णय किया था। उन्होंने दूसरे उत्तम मार्ग का अनुसरण किया। जैनी दीक्षा लेकर अपने को तप: पूत सयम से नियन्त्रित करने का निश्चय किया क्योकि सांसारिक जीवन में स्वैराचार की ओर प्रवृत्ति हो सकती है परन्तु जैनी तपस्या स्वैराचार की विरोधिनी है—'चित्रं जैनी तपस्या हि स्वैराचार विरोधिनी' महर्षि वादीभसिंह के वचन को आपने सत्य सिद्ध करने का दृढ़ सकल्प लिया, अपने ही समान त्यागी, संयमी, विदुषी साध्वियों का निर्माण करने का उन्होन सतत प्रयत्न किया। आपने सुपार्श्वमती माता जैसी विदुषी को जन्म दिया, उनसे जो समाज का उपकार हो रहा है वह अनुपम है। पूज्य सुपार्श्वमती माताजी की विद्वता इतनी बढी-चढ़ी है कि बड़े-बडे विद्वान् बीसों वर्ष विद्यालय में क्रमबद्ध अध्ययन कर भी वह विद्वत्ता प्राप्त नही कर सकते हैं। आप प्रमाण के बिना बात नही करती हैं, प्रमाण भी उधार नही, नगद देती हैं। ग्रन्थो का स्थल, श्लोक, आचार्य, प्रकरण आदि का उल्लेख उनके प्रवचनों में सुनिए; वे बोलती-चलती विश्वकोश हैं। समाज के सुधार के लिए एवं स्त्री-समाज के सुधार के लिए ऐसी ही विदुषी साध्वियो की आवश्यकता है। समाज के सद्भाग्य से ऐसी साध्वियों को दीर्घ जीवन प्राप्त हो परन्तु माताजी बहुत बीमार रहती हैं; राजयक्ष्मा सदृश बीमारी उनको हो गई है तथापि वे निर्भय व निर्द्वन्द्व है। उन्हें मालुम है कि एक दिन शरीर को छोड़ना है, हेय है। ऐसे हेय काय पर मोह क्यों किया जाय; यह उनकी तपश्चर्या की विशेषता है।

"चित्रं जैनी तपस्या हि यस्यां कायेऽपि हेयता" वादीभसिंह के इस वचनानुसार वे शरीर को सर्वथा हेय समझकर अपने कर्तव्य के प्रति पूर्ण जागृत है। संसार-भोगों के लिए अनेक शरीर समर्पित किए परन्तु योग के लिए एक भी शरीर का त्याग नहीं किया, इस पवित्र विचार से वे सदा अपने ध्यानाध्ययन मे मग्न रहती है। उनके द्वारा अनेक ग्रन्थों का निर्माण हुआ है; अनेक सूक्ष्म व गम्भीर विषयों की गुत्थियों को अपने ग्रन्थों में उन्होंने प्रमाण व युक्तिपूर्वक सुलझाया है। उनके द्वारा रचित ग्रन्थों का पढ़ कर विद्वान् भी आश्चर्यचकित हो जाते हैं। भारतवर्ष के अनेक प्रान्तों में उनके विहार व चातुर्मासों से जनता पर अपूर्व प्रभाव पड़ा है; अनेकान्तात्मक सिद्धान्त की महती प्रभावना

संघ के द्वारा हुई है और हो रही है। आसाम प्रान्त में सुदूरवर्ती होने के कारण एवं पहाडी मार्ग से कठिनतापूर्वक विहार होता है अतः साधुगण बहुत कम जाते हैं परन्तु आर्यिका इन्दुमतीजी के संघ का विहार भारत के इस पूर्वाञ्चल में हो रहा है। पश्चिम बंगाल, आसाम, डीमापुर, बिहार आदि प्रान्तों के स्त्रीपुरुषों का यह सौभाग्य ही माना जा रहा है। उनके द्वारा सन्मार्ग में प्रेरित अनेक स्त्री पुरुष हैं। उनके साथ ही विदुषी श्री सुप्रभामती माताजी हैं, सो दक्षिण भारत की हैं।

इस प्रकार इस भौतिक युग में आर्यिका इन्दुमती माताजी के संघ ने भारत में जो प्रभावना की है और कर रही है, वह अभूतपूर्व है। आज गांव-गांव में, घर-घर में घूम घूम कर श्रावकों की हितकामना करने वाले साधु-साध्वियों का विहार भारत में सर्वत्र हो तो धर्म का अपूर्व उद्योत हो सकता है। यह कार्य इन्दुमतीजी के संघ से सिद्ध हो रहा है, इसमें कोई शंका नहीं है।

❖

नारी महान्

☼ श्री जिनेन्द्रकुमार जैन, एडवोकेट, सिविल लाइन्स, बरेली

हमारे देश में प्राचीनकाल से ही नारी का गौरवपूर्ण स्थान रहा है। मध्यकाल मे मुस्लिम शासन होने पर उसकी स्वतत्रता छीन कर उसे पर्दे मे बन्द कर दिया गया था किन्तु आज फिर वह अपनी स्वतंत्रता और प्रतिष्ठा का पूर्ण उपभोग करने मे सक्षम है। आज वह पुरुष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर कर्मशील हुई है। राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक सभी क्षेत्रो मे नारी अब कर्मठ होकर अपनी क्षमता व योग्यता का परिचय दे रही है।

जैन समाज में जो चतुर्विध संघ की स्थापना की गई है उसमें गृहस्थ दशा में श्राविका और संन्यास दशा मे आर्यिका को वही स्थान प्राप्त है जो श्रावक एव मुनि को है। आर्यिका मुनिवत् ही पूज्य एवं वन्दनीय है। साधुवर्ग का जो कार्य समाज को अपने चरित्र एवं उपदेश द्वारा आदर्श रूप देना है, वही कार्य नारी भी आर्यिका रूप में कर रही है। हमारे समाज में अनेक प्रबुद्ध महिलाएँ ब्रह्मचारिणी के रूप में तथा आर्यिका के रूप में सदाचार का प्रचार कर समाज का उत्थान करने में प्रयत्नशील है।

आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी ऐसे ही नारी रत्नों में से एक हैं जिन्होंने समाज को उन्नत करने और सदाचार का प्रचार करने का बीड़ा उठाया है। उन्होंने भारत के उन क्षेत्रों में जहाँ दिगम्बर साधु नही पहुँचते, संघ सहित विहार कर जैनाजैन समाज को सम्बोधित और सावधान किया है। स्वच्छ जीवन व्यतीत करने हेतु मार्गदर्शन किया है। यह हमारे समाज एवं देश का सौभाग्य ही है कि आज के इस अन्धकार युग में हमें ज्ञान का प्रकाश देने के लिए माताजी जैसे नारी रत्नों का आश्रय प्राप्त है।

पूज्य माताजी के चरणों में शतशः नमन।

❖

साध्वी शिरोमणि

लेखक : स्व० तेजपाल काला, नांदगांव (नासिक)

परम पूज्य १०५ आर्यिका रत्न शिरोमणि इन्दुमती माताजी के अभिनन्दन स्वरूप ग्रन्थ प्रकाशित करने की योजना अत्यन्त स्तुत्य है । "न हि कृतमुपकार साधवो विस्मरन्ति" इस उक्ति के अनुसार सज्जन पुरुष अपने ऊपर उपकार करने वाले उपकार कर्त्ता के गुणों का कभी विस्मरण नहीं करते ।

पूज्य १०५ साध्वी शिरोमणि इन्दुमती माताजी ने अपने रत्नत्रय युक्त दीर्घकालीन साधु जीवन में समस्त जैन समाज पर अनगिनत उपकार किये हैं । भगवान महावीर द्वारा निर्दिष्ट, आगम के अनुसार साधुजीवन का कठोरता से पालन करते हुए पूज्य माताजी ने अपने दीर्घ जीवन में आगममार्ग का यथाविधि संरक्षण और संवर्धन किया है । असंख्य लोगों को धर्ममार्ग में लगाया है । त्याग और संयम का दीप प्रज्ज्वलित रखा है । यदि इतना उपकार करने वाली आगम मार्ग संरक्षिका साध्वी का सम्मान, संस्मरण और कृतज्ञता ज्ञापन द्वारा अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित कर न किया जाता तो वह कृतघ्नता ही होती ।

बहुत छोटी ही अवस्था में वैधव्य प्राप्त होने पर भी अपने वैधव्य का उपयोग आत्मोत्थान मे लगाकर आदर्श जीवन का जो श्रेष्ठ उपमान आपने देश मे स्थापित किया, वह नि.सन्देह बहुत ही प्रशंसनीय और अनुकरणीय है ।

आपके इस आदर्श उपमान के पीछे वर्तमान युग के एक महान् विद्वान, साधु एवं अत्यन्त श्रेष्ठ, निष्कलंक, लोकेषणा-रहित, आडम्बरहीन, आगम चक्षु, कठोर तपस्वी, परम-पूज्य स्व० १०८ मुनिराज श्री चन्द्रसागर जी महाराज की प्रेरणा और

आशीर्वाद रहा है । आप ही से पूज्य माताजी ने क्षुल्लिका दोक्षा लेकर रत्न-त्रय युक्त साधु जीवन में प्रवेश किया । पूज्य गुरुवर्य की तरह ही आपने भी अपने साधुजीवन के दीर्घकाल में जिस कठोर आत्मसाधना, रत्नत्रय की विशुद्धता एवं आत्म निष्ठता का परिचय दिया और दे रही हैं, वह अन्यत्र मिलना दुर्लभ है । अपने गुरुवर्य की तरह से ही आपने भी किसी भी प्रकार के लोकानुरंजन, लोकेषणा, परिस्थिति की विपरीतता या किसी के रोषतोष की परवाह नही की । आप धर्म, श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र, तप में अडोल निर्भीक और निर्मल हैं ।

आज से लगभग ३९ वर्ष पूर्व पूज्य माताजी स्व० परम पूज्य १०८ साधु श्रेष्ठ मुनिराज श्री चन्द्रसागर जी महाराज के साथ संघ सहित नांदगाव (नासिक) में क्षुल्लिका अवस्था में आई थीं । उस समय पहली बार, परमशान्त, निष्कषाय-मूर्ति पूज्य माताजी के पावन दर्शन मैने किये थे । उस समय आप निरन्तर अध्ययनशील रहती थी । उसके बाद पूज्य माताजी के मुझे कई बार दर्शन हुए तथा उनको आहार दान करने का भी सौभाग्य प्राप्त किया । आज भी मैं देखता हूँ कि पूज्य माताजी अपने साथ अन्य तीन आर्यिका-शिष्यो को लेकर उनकी आश्रयता का और सघ सचालन का नेतृत्व अत्यन्त कुशलता के साथ कर रही हैं । उनका समुचित मार्गदर्शन कर उन्हे रत्नत्रय, तप और आगम मार्ग में दृढ रखती है । पूज्य माताजी किसी भी बहाने से आगम मार्ग में किसी भी प्रकार का शैथिल्य या समझौता स्वीकार करने के सर्वथा विरुद्ध हैं ।

आपके संघ की तीनों पूज्य आर्यिकाएँ भी आप ही की तरह अत्यन्त आगम निष्ठ, विदुषी और तप: पूत साध्वी रत्न हैं जिसमें पूज्य १०५ आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी तो केवल आपके संघ की ही नही सारे भारत की एक मुकुटमणि सदृश जिनवाणी भूषण महा विदुषी साध्वी रत्न हैं । आपके जैसी प्रकाण्ड विद्वत्ता, आगम जताने की कोई अन्य मिसाल समाजमें मिलना मुश्किल है । आप जब प्रवचन देती हैं तो जैसे— ज्ञान गंगा का निर्मल प्रवाह बहता दिखाई देता है । सौभाग्य से ही ऐसी महाविदुषी-आगममार्ग-संरक्षिका तप: पूत निष्कषाय साध्वियाँ देखने को मिलती हैं । निश्चय ही, यह जैन समाज का गरिमामय सौभाग्य है, ऐसे आदर्श साध्वी रत्न को तैयार करने का श्रेय पूज्य १०५ श्री इन्दुमती माताजी को ही है । इसके लिए पूज्य माताजी का जैन समाज सदैव ऋणी रहेगा ।

इस आदर्श आर्यिका सघ ने भारत के प्राय: सभी प्रदेशों में पद-विहार कर अपने तप: पूत जीवन, आदर्शचारित्र साधना और विमल ज्ञान गगा के प्रवाह से भारत भूमि को पावन किया है निश्चय ही, वयोवृद्धा, ज्ञानवृद्धा, तपोवृद्धा, पूज्य आर्यिका रत्न शिरोमणि श्री इन्दुमती माताजी इस ससार में अपने नाम के अनुरूप शशि सम तेजस्विता के साथ चमकती है । उनका शान्त, निष्कषाय, निष्कलक जीवन भारत के लिए ललामभूत है ।

पूज्य माताजी का मुझ पर सदैव आशीर्वाद और अनुग्रह रहा है। ऐसी तपः पूत साध्वी के मंगलमय दर्शन कर जीवन में धन्यता प्राप्त कर सकें, मन में सदैव यही तीव्र उत्कण्ठा रहती है। वस्तुतः ऐसे परम आदर्शमय तपस्वी जीवन के दर्शन से ही जीवन के कल्मष दूर कर जीवन में आदर्श रूप बनने की ओर आत्म विकास करने की अन्तःप्रेरणा जागृत होती है।

ग्रन्थ समर्पण करने के इस पावन अवसर पर मैं आर्यिका रत्न शिरोमणि श्री इन्दुमती माताजी के पुनीत चरणों में नम्र अभिवादन कर उनको भाव-भीनी विनयाञ्जलि अर्पण करते हुए श्री १००८ वीर प्रभु से उनके स्वस्थ एवं दीर्घ जीवन की मंगल कामना करता हूँ।

सौहार्दशील माताजी

पण्डित तनसुखलाल काला, बम्बई

पूज्य श्री १०५ इन्दुमति माताजी मेरे मामाजी स्व० चन्दनमलजी पाटनी, डेह की सुपुत्री होने से गृहस्थ अवस्था मे मेरी बहन रही। अपने जन्मस्थान डेह मे जब मैं अपनी धर्मपत्नी (अब स्व०) आदि को लेकर गया तब उनके दर्शन मुझे वहाँ प्राप्त हुए। अतिशान्त प्रकृति की वह मेरी बहन, स्व० प० पू० श्री १०८ चन्द्रसागरजी महाराज के संघ का चातुर्मास जब नादगाँव मे हुआ, तब उनके संघ में थी। वे उसको पढाते थे। उनसे ही आपने क्षुल्लिका की दीक्षा ग्रहण की। उनके चारित्र का प्रभाव इतना जबरदस्त पड़ा कि वे उनकी पूर्ण अनुगामिनी हो गई। उनके स्वर्गवास के बाद प० पू० स्व० श्री १०८ वीरसागरजी महाराज से उन्होंने आर्यिका दीक्षा ली। सम्यक्चारित्र में दक्षता तथा ख्यातिलाभ आदि से रहित वृत्ति ने सारे समाज को मोहित कर लिया। सुयोग से परम विदुषी पूज्य श्री १०५ सुपार्श्वमति माताजी उनके साथ मिल गयी। महाराष्ट्र में सर्वत्र उनका विहार हुआ। कोपर गाँव में स्व० परम पूज्य महाराज चन्द्रसागरजी तथा माताजी इन्दुमतीजी की प्रेरणा से मैंने तथा मेरी स्व० धर्मपत्नी एवं माताजी–सबने एक साथ दूसरी प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। इस प्रकार, एक बार नहीं कितनी बार माताजी का मिलना जुलना होता रहा। करीब नौ वर्ष पहले (स्व०) बड़े पुत्र जयकुमार आदि को साथ लेकर अतिशय क्षेत्र भातकुली, रामटेक, सिद्धक्षेत्र मुक्तागिरी होते हुए मैं जब महान् सिद्धक्षेत्र श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रार्थ पहुँचा तब सन्मार्गदिवाकर प० पू० श्री १०८ आचार्यरत्न श्री विमलसागरजी महाराज के संघ के दर्शन का

लाभ एवं उनको आहारदानादि देने का सौभाग्य मिला। क्षेत्र की वन्दना कर हम सब पूज्य माताजी के संघ के दर्शनार्थ कलकत्ता आये। दैव की बलवत्ता कि उसी दिन शाम को कलकत्ता में मेरे पुत्र जय-कुमार का—पूज्य माताजी का संघ जहां ठहरा था उसी चैत्यालय में संघ के सान्निध्य मे ही एकाएक स्वर्गवास हो गया। अतः चम्पापुर, पावापुर आदि क्षेत्रो की यात्रा करने के जो भाव हमारे थे उससे हमें वंचित होकर शीघ्र बम्बई आना पडा। उस समय पूज्य श्री १०५ इन्दुमति माताजी, पूज्य श्री १०५ सुपार्श्वमति माताजी आदि संघ का सान्निध्य सिर्फ एक दिवस मात्र ही रहा। संसार की इस अनित्यता एवं क्षणभंगुरता के दृश्य ने सबको आश्चर्य चकित कर दिया।

कलकत्ता में संघ के द्वारा भारी प्रभावना होती रही। यह जानकर सबको अकथनीय आनन्द हुआ। पूज्य श्री १०५ इन्दुमति माताजी का संघ के साथ अपूर्व वात्सल्य तथा प्रेमभाव देखने में आया। पूज्य माताजी का संघ कलकत्ता से आसाम की ओर विहार कर गया—जहाँ आज तक किसी दिगम्बर त्यागी, व्रती का विहार नहीं हुआ। उस प्रान्त मे विहार कर माताजी ने जो धर्मप्रचार किया है वह उल्लेखनीय है। वास्तव में, माताजी ही सच्ची माताजी हैं। उनमें अलौकिक साहस तथा रत्नत्रय की सम्पन्नता है। पूज्य श्री १०५ सुपार्श्वमति माताजी की शारीरिक प्रकृति प्रायः अस्वस्थ रहती थी। उनकी संभाल आदि उन्होने अपनी पुत्री के समान की। जिस प्रकार स्व० पूज्य श्री १०८ चन्द्रसागरजी महाराज दृढ़ तथा निरपेक्ष वृत्ति वाले रहे उसी प्रकार की चर्या माताजी की है। इससे सारे भारत मे उन्हें उच्चता प्राप्त होती रही है। अकलूज, कुम्भोज बाहुबली में भी संघ का चातुर्मास हुआ। सघ सदा आगमोक्त चर्या में अविचलरूप से स्थित रहा। पूज्य माताजी किसी के दबाव मे नही आयी बल्कि अपना प्रभाव सबके ऊपर डालते हुए उन्होंने आगम की पूर्ण रक्षा की। लाडनूँ पंच कल्याणक प्रतिष्ठा के अवसर पर संघ विद्यमान था। उस समय प्रायः बडे-बड़े विद्वान् पूज्य श्री सुपार्श्वमति माताजी की विद्वत्ता एवं पूज्य इन्दुमती माताजी की धर्म निष्ठा तथा विशुद्ध प्रेमभाव देखकर चकित हो गये थे।

पूज्य माताजी को अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने का जो विचार किया गया है वह अत्यन्त स्तुत्य है। मैं उनके दीर्घायुष्य और आरोग्यता एव सुन्दर स्वास्थ्य की कामना करते हुए उनके चरणों में अपनी हार्दिक भावाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

अद्वितीय आर्यिका संघ

डा० सुशीलचंद दिवाकर M.A. B.Com., LL. B. Ph. D. जबलपुर

आदि तीर्थंकर के काल से ही आर्यिकाओं के अस्तित्व का पता चलता है। श्री ऋषभदेव की सुपुत्रियों--ब्राह्मी एवं सुंदरी ने अपने पिता से दीक्षा ली थी और धर्मचक्रप्रवर्तन में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान था। अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर के धर्मचक्रप्रवर्तन में चंदना माता का इसी प्रकार अप्रतिम योगदान रहा है। आचार्य विनोबा भावे का मत है कि यह जैनधर्म की अपनी विशेषता रही है कि उसमें पुरुष की भांति नारी को भी धर्मसंघ में निःसकोच रूप से प्रवेश प्रदान किया गया है। जबकि गौतम बुद्ध ने बड़ी हिचकिचाहट के बाद अपने प्रिय शिष्य आनंद की सिफारिस पर एक नारी को संघ में प्रवेश प्रदान करते हुए काफी आशंकाएं अभिव्यक्त की थी।

वर्धमान के निर्वाणोपरांत भी जैनधर्म की यशस्वी पताका को लहराने का कार्य जैन साध्वियों ने किया। असंख्य साध्वियों ने सांसारिक सुख वैभव के प्रति पीठ कर स्व-पर कल्याण हेतु तपस्या धारण की और धर्म तथा संस्कृति के स्वरूप को निखारने में योगदान किया।

इसी देदीप्यमान परिपाटी में प्रातः स्मरणीय इन्दुमति माताजी का संघ आता है। मैं जानबूझ कर इंदुमति माताजी एव उनकी शिष्याओं के सांसारिक जीवन में नही उतरता। साधुत्व अंगीकार करने के बाद के संस्मरण ही इस लेख के माध्यम से प्रस्तुत करूंगा, यद्यपि उनका पूर्व जीवन किसी प्रकार कम आकर्षक और कम उज्ज्वल नहीं रहा है।

१६७० में आर्यिका-रत्न इंदुमतिजी का संघ सिवनी पधारा था। मुझे ज्येष्ठ भ्राता धर्मदिवाकर विद्वत्‌रत्न पं० सुमेरचन्द्रजी दिवाकर ने पत्र द्वारा सूचित किया कि एक दिव्य साध्वी संघ वहां विराजा हुआ है, जिसमे प्रमुख इंदुमति माताजी हैं, जो अत्यन्त भव्य और शांत प्रकृति की हैं, साथ ही सुपार्श्वमति माता भी अद्भुत विदुषी, वक्ता, विरक्त साध्वी हैं। स्वभावतः संघ के दर्शन की भावना बलवती हो उठी थी। कुछ ही दिनो में फाल्गुन मास में जबलपुर के समीप बरगी ग्राम में सम्पन्न हो रहे पचकल्याणक के अवसर पर सिवनी से संघ बरगी आया। आर्यिकाओं को सम्मेदशिखर की वंदना हेतु आगे बढ़ना था। उस दिन तपकल्याणक था। योग था कि तपस्विनियो का शुभागमन हुआ। अपनी आदरणीय गुरुणी इंदुमतिजी से आज्ञा प्राप्त कर सुपार्श्वमतिजी ने वैराग्य और तपस्या पर उद्‌गार प्रकट किये। अपार जनसमूह हर्ष विभोर हो उठा। विरक्ति का वातावरण व्याप्त हो गया। संघ शीघ्र ही जबलपुर आया और लगभग एक सप्ताह यहा रुका।

जबलपुर में धर्म-वर्षा :

प्रतिदिन सुपार्श्वमति माता द्वारा धर्मामृत की वर्षा हुई। उन्होने निश्चय और व्यवहार को आगम के दो अनिवार्य चक्षु निरूपित करते हुए आगमोक्त पद्धति से तत्त्वज्ञान प्रदान किया; जिसने सुना, प्रभावित हुआ। जब वे भाषण देती थी तो लगता था जैसे स्वयं शारदा धर्मोपदेश दे रही हो। उनकी भाषा संबंधी प्रांजलता, भावों की पवित्रता, अभिव्यक्ति की नैसर्गिकता एक निर्मल झरने की भांति अनवरत रूप से बहती रहती है। वे कभी भी कोरी कल्पना का उपयोग नहीं करती। बिना शास्त्रीय आधार के तो वे एक बात भी नही कहतीं। एक दिन मैं अपने एक स्नातकोत्तरीय ब्राह्मण छात्र शिवप्रसाद पाठक को शांतिसागर प्रवचन भवन, जहां माताजी के भाषण होते थे, ले गया। वह बुद्धिमान छात्र चकित हो गया और आज तक उनका स्मरण बड़ी भक्ति से करता है। आखिर, गौतम भी तो वीर प्रभु से ऐसे ही प्रभावित हुए होंगे। सुपार्श्वमति माता अपना भाषण प्रारंभ करने के पूर्व अपनी गुरुणी इंदुमति माताजी से आज्ञा लेती और बड़े माताजी बडी शांति, प्रसन्नता और भक्तिभाव से, जिसमें मां की ममता का मिश्रण रहता, धर्मोपदेश सुनती थी। समाज में कुछ निश्चयवादी धर्माभासी भी रहते हैं किन्तु सभी के मन में माताजी के प्रति अपार आदर भाव पैदा हो गया। उनके उपदेश मार्मिक, तर्क पर आधारित और आगम के अनुकूल होते थे। वे कोरी तत्त्वचर्चा ही नही करती थी अपितु समाज के नर-नारियों, बालक-बालिकाओं के चरित्र निर्माण के प्रति भी उनका विशेष लक्ष्य रहता था। ऐसी विचित्र भाषणकला अन्यत्र दुर्लभ है। धर्म सदृश विषय को वे इतनी मोहकता और आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करती कि सभी मंत्रमुग्ध होकर सुनते रहते। उदाहरणों, श्लोकों और अनुभवो की उनके भाषण में भरमार

रहती है । वे बोलते हुए अनेक शाखाओं और शिखाओं का स्पर्श करते हुए भी कभी मूल विषय को नहीं त्यागती । ऐसा उसी के लिये संभव है जो अत्यन्त दत्तचित्त होकर बोल रहा हो और अपने विशद ज्ञान को सामने बैठे हुए श्रोता के स्तर को समझते हुए प्रस्तुत करने में यत्नशील हो ।

प्रमिला पर प्रभाव :

सभी प्रभावित हुए । किन्तु सबसे अधिक प्रभाव पड़ा प्रमिला नाम की तरुण बालिका पर। उसके जन्म–जन्म के सुसंस्कार जाग उठे और माताजी के दर्शन तथा विचारों का सान्निध्य पाकर वह इंदुमति माताजी के संघ में ही सम्मिलित हो गई। यह प्रमिला जबलपुर में प्रोफेसर्स कालोनी में ही रहती है और रिश्ते मे मेरी भानजी है । इसके माता-पिता परम धार्मिक और गुरु भक्त हैं । प्रमिला के निश्चय से सारे घर मे पवित्र शोक व्याप्त हो गया । किन्तु अपने माता-पिता, भाई-भाभी, बहन और सभी कुटुम्बी जनो को संबोध कर वह सुपथगामिनी बनी–जब कि माता-पिता उसे गृहस्थी के पथ पर लगाने की तैयारी बड़े चाव और लगन से कर रहे थे। किन्तु काललब्धि और भवितव्य का अपना महत्त्व है । सो, निर्मलभाव धारण कर प्रमिला संघ की एक अंग बन गई । अपने सुकुमार हाथो मे वैवाहिक कंगन के बदले में उसने कालांतर में कमडलु धारण करने का मन ही मन निश्चय कर लिया और अब वह जब भी जबलपुर आती है, अपने ही घर में अतिथि बनकर आती है ।

जबलपुर से प्रस्थान :

जिस दिन पूज्य इदुमति एवं सुपार्श्वमति माताजी का संघ जबलपुर से प्रस्थित होने लगा, उस दिन प्रत्येक धार्मिक नर-नारी का मन भारी हो गया । जैसे वे अपनी कोई महान् निधि से वंचित होने जा रहे हो । अपार भीड़ ने अश्रुपूरित नेत्रों से, पुण्यास्रव करते हुए, सघ को विदाई दी । जाते समय जब मैंने माताओ को प्रणाम निवेदन किया तो उस अपार जनसमुदाय में भी सुपार्श्वमतिजी ने मुझसे कहा कि अपने बडे पुत्र के स्वास्थ्य का ध्यान रखना और उनके द्वारा बताए हुए मंत्र को सिखाना तथा जाप करना । मै माताजी की इस ममतापूर्ण कृपा को कभी भी विस्मृत नहीं कर सकता ।

कलकत्ता में पुनः दर्शन :

१९७२ के अक्टूबर मास में भारत की अद्वितीय नगरी कलकत्ता में अद्वितीय आर्यिका-संघ के दर्शन का द्वितीय अवसर प्राप्त हुआ। कलकत्ता का धर्मप्रेमी समाज संघ की वैयावृत्ति, सेवा और वंदना में मन-वचन-काय से संलग्न दृष्टिगत हुआ । माताजी का वहां चातुर्मास हो रहा था । बड़े बड़े यशस्वी व्यापारी, उद्योगपति, वकील, फोफेसर्स, साहित्यकार और अन्य जैन नागरिक प्रतिदिन संघ के दर्शनार्थ आलू-पोस्ता के विद्यालय में आते और सुपार्श्वमति माताजी

की अमृत वाणी से लाभान्वित होते । मैं अपने ज्येष्ठ बंधु प० सुमेरुचन्द्रजी के साथ सपत्नीक सम्मेदशिखर जी की वंदनार्थ निकला हुआ था । अद्वितीय सघ के दर्शनों का द्वितीय बार सौभाग्य प्राप्त कर हम सभी कृतार्थ हुए ।

एक दिन पडित जी ने माताजी से उनके स्वास्थ्य के बारे में पूछा । क्योंकि उन दिनों सुपार्श्वमतिजी का स्वास्थ्य चिंताजनक मोड़ से गुजर रहा था । तुरन्त ही माताजी ने कहा— "साधुओं से कभी उनके शारीरिक स्वास्थ्य के बारे मे नही पूछना चाहिये । उनसे तो केवल इतना ही पूछिये कि धर्म-साधन कैसा चल रहा है । साधु को अपने शारीरिक स्वास्थ्य की तरफ ध्यान ही नहीं रहता । वह तो धर्मानुसार अपने व्रत पालन में निमग्न रहता है।" उन दिनों की उनकी अवस्था के कारण भक्तगण चिंतित रहते थे । एक दिन वे एक प्रख्यात कविराज को माताजी की जाच हेतु लाए । कविराज ने फीस भी ली किन्तु घर पहुंचते ही स्वयं बीमार पड़ गए । तो कह उठे—अरे मुझसे बडी भूल हो गई, जिसका यह परिणाम मुझे भोगना पडा, मुझे मां की जाच की फीस नही लेनी चाहिये थी । इस लेख मे मै माताजी के चमत्कारों का वर्णन जानबूझकर नही कर रहा हू ।

इन्दुमतिमाता के प्रति शिष्या की भक्ति :

जब कभी पूज्य सुपार्श्वमति माताजी के भाषण के उपरान्त मुझ जैसा कोई श्रोता प्रशंसात्मक उद्गार प्रकट करता तो तुरन्त ही वे अपनी गुरुणी इन्दुमतीजी के प्रति इंगित करते हुए कहतीं—यह सब इनकी परमकृपा और आशीर्वाद का सुफल है । इस पर बडे शात भाव से मुस्कराते हुए इन्दुमति माता कहती—नही, तुम स्वयं विदुषी हो, योग्य हो । इन्दुमति माताजी स्वय बड़ी तल्लीनतापूर्वक अपनी प्रिय शिष्या का उपदेश सुनती । धर्मलाभ का इच्छुक वय, पद आदि की दीवारों में विश्वास नही करता । वह तो सभी सुस्रोतों से ज्ञान-लाभ करने को उत्सुक रहता है और फिर विश्व में माता, पिता और गुरु ये तीन ही तो ऐसे जीव हैं जो अपनी संतान और शिष्य की उपलब्धियों और विकास से आतरिक प्रसन्नता का अनुभव करते हैं ।

तीन चार दिन कलकत्ता मे आर्यिकासंघ के चरण सान्निध्य में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । वहा धर्मप्रेमी बंधुओ ने जो अपार स्नेह-भाव दर्शाया, उसे विस्मृत करना असंभव है। यद्यपि हम कलकत्ता से रवाना हो गए किन्तु आज भी कानो मे सुपार्श्वमति माता के हितकारी मधुर वचन झंकृत होते रहते हैं और इन्दुमति माता की शरद ऋतु के इदु (चन्द्र) के समान सौम्य मुद्रा अन्तर्नयनों मे झलकती रहती है । श्री जिनेन्द्र भगवान से प्रार्थना है कि ब्राह्मी, सुंदरी, राजुल, चदना द्वारा प्रशस्त यह आर्यिका-पंथ निष्कटक हो, शाश्वत हो और इनके माध्यम से ससार का परम कल्याण हो ।

❖

विनयाञ्जलि

प्रात: स्मरणीय परम पूज्य आचार्यकल्प १०८ (स्व०) श्री चन्द्रसागरजी महाराज का संघ वीर निर्वाण संवत् २४६६ के ज्येष्ठ मास मे श्री मक्सी पार्श्वनाथजी आया था, तब ब्रह्मचारिणी मथुरा बाई (स्व० आर्यिका विमलमती माताजी) व ब्रह्मचारिणी मोहनी बाई (वर्तमान आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी) आपके संघ मे थी। श्री जिनेन्द्र भगवान का प्रतिदिन पञ्चामृताभिषेक करने का आप दोनों के नियम था। जब तक अभिषेक नही कर लेती थी तब तक भोजन ग्रहण नही करती थी।

मक्सीजी से रवाना होकर महाराज श्री का सघ ज्येष्ठ सुदी मे उज्जैन आया। वहाँ पर दोनो ब्रह्मचारिणी बाइयों को पचामृताभिषेक नही करने दिया गया तो दोनों अनशन पर बैठ गई। कुछ संघर्ष का आभास होने पर श्री राजमलजी बिलाला आदि ने पञ्चामृताभिषेक का प्रबन्ध कर दिया, जिससे अनशन व संघर्ष की स्थिति टल गयी।

उज्जैन से सघ चन्द्रावतीगज आया। वहाँ पर भी इसी तरह का वातावरण बना। मन्दिर जी मे ताला लगवा दिया गया था। अभिषेक का साधन न मिलने से दोनो ब्रह्मचारिणी बाइयों को निराहार रहना पड़ा व अन्य भी उपसर्ग सहन करने पडे। फिर एक गृहस्थ के गृह चैत्यालय में अभिषेक की व्यवस्था हुई। वहाँ से आहार करके सघ बड़नगर की ओर रवाना हुआ और आषाढ शुक्ला तीज को वहाँ पहुँचा। बड़नगर मे वर्षायोग सानन्द सम्पन्न हुआ। इन्दौर से श्री मिश्रीलालजी सेठी, श्री कँवरलालजी कासलीवाल, श्री बाबूलालजी जाँझरी, श्री रतनलालजी पाटोदी और मैं बड़नगर गए। वहां पूज्य १०८ श्री चन्द्रसागरजी महाराज एवं ब्रह्मचारिणी मोहनी बाई के हृदयग्राही आत्मबोधक प्रवचन सुनने का लाभ मिला।

बड़नगर में चातुर्मास पूर्ण कर संघ मंगसर बदी १० सं० २४६७ को असावता ग्राम पहुँचा । वहाँ इन्दौर से १०-१२ नवयुवक गये । भोजन की व्यवस्था ब्रह्मचारिणी बाइयों ने की थी । महाराज के दर्शनों से असीम आनन्द हुआ । आशीर्वाद मिला । यहाँ से संघ बनेड़ियाजी अतिशय क्षेत्र पर पहुँचा । दोनों ब्रह्मचारिणी बाइयाँ महाराज को आहार देकर आहारदान का लाभ तो लेती ही थीं, साथ ही आने वाले दर्शनार्थी भक्तों की भी पूरी सार-सँभाल रखती थीं। इन्दौर वालों पर दोनों बाइयों की बड़ी कृपा थी । यहाँ से विहार कर संघ ने मंगसर बदी तीज को इन्दौर नगर में प्रवेश किया।

संघ को मोदीजी की नसियां में ठहराया गया था। यहाँ भी आरती व पञ्चामृताभिषेक बाबत कोई विसवाद न हो जावे, इस वास्ते सेठ श्री विनोदीरामजी बालचन्दजी सेठी तुकोगंज वालों के यहा से श्री १००८ चन्द्रप्रभ भगवान की चाँदी की प्रतिमा लाकर (वेदी में दूसरे जिनबिम्बों के साथ विराजमान नही करने देने की वजह से) एक भण्डारे में अलग विराजमान की गई थी। यहाँ प्रतिदिन पंचामृताभिषेक व आरती होती थी । संघस्था क्षुल्लिका १०५ श्री बुद्धिमतीजी के अस्वस्थ हो जाने से संघ को इन्दौर में तीन मास तक ठहरना पड़ा था । इसी अवधि में दिनांक २२-१२-४० को कतिपय कट्टरपन्थियों द्वारा आचार्यकल्प श्री चन्द्रसागरजी महाराज के बहिष्कार का नाटक किया गया । महाराजश्री व संघ पर कैसे-कैसे उपसर्ग आए, यह सबको विदित ही है। इतना सब होने पर भी महाराजश्री का प्रवचन प्रतिदिन प्रातः एवं मध्याह्न में नियमित रूप से होता था और सैकड़ों नर-नारी सोत्साह श्रवण करते थे । दोनों ब्रह्मचारिणी बाइयों ने सारी असुविधायें झेलते हुए दृढतापूर्वक अपने नियम का पालन कर गम्भीर साहस का परिचय दिया। अस्वस्थ क्षुल्लिका बुद्धिमतीजी की समाधि के बाद फाल्गुन शुक्ला तीज, वीर स० २४६७ को संघ यहाँ से विहार करके तेरस को बड़वानी सिद्धक्षेत्र पहुँचा।

एक दिन ब्रह्मचारिणी मोहनी बाई (वर्तमान इन्दुमती माताजी) ने बताया कि मेरे एक हाथ मे फोड़ा हो जाने से मैं उस हाथ की चूडी उतार रही थी तो महाराज ने कहा कि दूसरे हाथ में फोड़ा नही हुआ क्या ? तुम्हे अब चूडी नही पहनना चाहिए । इसी तरह सिर के बाल कटाने बाबत तथा नमक खाना छोडने के बारे में भी कहा लेकिन मैंने नमक नही छोड़ा तो महाराज ने मेरे हाथ से आहार लेना बन्द कर दिया; इससे मुझे बहुत दुःख हुआ और मैंने खाना-पीना छोड़ दिया । लोगों ने महाराज से कहा कि ब्रह्मचारिणी मर जावेगी तो महाराज बोले—'मर जावेगी तो श्रावक जला देंगे।' महाराजश्री ने मुझे बहुत समझाया।

वीर संवत् २४६६ में संघ कसावखेड़ा पहुँचा । हम लोग भी गए थे; वहीं पर दोनों ब्रह्मचारिणी बाइयों की क्षुल्लिका दीक्षा सम्पन्न हुई । दोनों के नाम क्रमशः मानस्तम्भमतीजी व

इन्दुमतीजी रखे गए। बाद में आपने आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। मानस्तम्भमतीजी विमलमतीजी हुईं। आपका नाम इन्दुमतीजी ही रहा। तब से आज तक आप अनवरत स्व पर कल्याण में रत हैं। पू० आर्यिका सुपार्श्वमतीजी का साथ हो जाने से तो परस्पर बहुत सहयोग मिला है। गत ४-५ वर्षों से आप भारत के पूर्वाञ्चल प्रदेशों में भ्रमण कर रही हैं जहां पिछले कई वर्षों में किसी दिगम्बर साधु ने विहार नहीं किया है। आपके विहार से धर्म की महती प्रभावना हुई है।

आपके श्रीचरणों में शत-शत प्रणाम निवेदन करता हूँ। आप चिरायु होकर भव्यजीवों का इसी भाँति कल्याण करती रहे–ऐसी श्री जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना है।

विनीत : चरणसेवक फूलचन्द कासलीवाल, इन्दौर

प्रणामाञ्जलि

लेखक : पं० सुमेरुचन्द्र दिवाकर, न्यायतीर्थ, शास्त्री, बी.ए., एल एल. बी. सिवनी मध्यप्रदेश

इस दुषमा पचम काल में संयम से विमुख करने की विपुल सामग्री सर्वत्र पायी जाती है। सभी जीव भोगों और विषयों में निमग्न पाये जाते हैं। ऐसी विषम परिस्थितियों में आर्यिका का महनीय चरित्र पालन करने वाली महिला रत्न का दर्शन दुर्लभ है।

श्री १०८ स्व० आचार्य शिरोमणि चारित्र चक्रवर्ती श्री शान्तिसागरजी महाराज के महान् निमित्त से अनेक मनस्वी आत्माओ ने महाव्रत धारण किये तथा दिगम्बर मुनि जीवन की परम्परा प्रवर्धमान की। उन रत्नों में आचार्यकल्प उग्रतपस्वी गुरुदेव १०८ श्री चन्द्रसागरजी महाराज का गौरवपूर्ण स्थान है। उनके द्वारा अगणित भव्यात्माओं का अकथनीय कल्याण हुआ है।

श्री १०५ पूज्य आर्यिका माता इन्दुमतिजी उच्चकोटि की साध्वी हैं। आचार्यकल्प श्री चन्द्रसागरजी महाराज से आपने क्षुल्लिका दीक्षा ली थी तथा आर्यिका दीक्षा नागौर में आचार्य श्री १०८ वीरसागरजी महाराज से ली थी।

माताजी सन् १९७१ मे सिवनी में ससंघ पधारी थीं, उन्होंने केश लोच भी किये थे। संघ में अत्यन्त तेजस्वी विदुषीरत्न माता श्री सुपार्श्वमतिजी का उपदेश सुनकर हजारों जैन–

अजैन बहुत प्रभावित हुए । श्री सुपार्श्वमतिजी को सदा पवित्र मार्गदर्शन इन्दुमति माताजी के द्वारा प्राप्त हुआ करता है।

मैंने जबलपुर में आ० १०५ श्री सुपार्श्वमति माताजी का "आत्म तत्त्व" पर अत्यन्त प्रभावशाली सार्वजनिक भाषण सुना था । हजारो लोग मंत्र-मुग्ध हो गये थे । ऐसा लगता था कि जिनशासन की देवी ही बोलती हो । उनकी आगम की श्रद्धा बड़ी मजबूत है । शंका समाधान के समय उनकी प्रतिभा तथा गहन अध्ययन का पता चलता है।

इन्दुमती माताजी बड़ी अनुभवी, ज्ञानवान साध्वी है । वे सुपार्श्वमति माताजी को जननी सदृश मार्ग दर्शन करती रहती हैं । इनके संघ के द्वारा सर्वत्र जैनधर्म की सुगन्ध फैलती है। बंगाल, आसाम प्रान्त में सैंकड़ों वर्षों से कभी भी दिगम्बर जैन मुनि या साधु-साध्वी का विहार नही हुआ।

कलकत्ता में परमपूज्य गुरुदेव १०८ आचार्य रत्न देशभूषणजी महाराज ने एक बार चातुर्मास किया था तत्पश्चात् माता १०५ श्री ज्ञानमतीजो ने वर्षायोग किया था । इनके अनन्तर उस प्रान्त में, कलकत्ता महानगरी मे आर्यिका १०५ श्री इन्दुमति माताजी ने ससघ विहार तथा चातुर्मास करके अद्भुत उपकार तथा प्रभावना की है।

पूज्य माताजी ने कलकत्ता चातुर्मास के बाद धुलियान में (मुर्शिदाबाद) चातुर्मास किया । बाद मे किशनगंज (बिहार) में चातुर्मास करके धर्म का प्रकाश सम्पूर्ण आसाम में फैलाती हुई आपने गौहाटी नगरी में प्रवेश किया तथा भव्य जीवों को सत्पथ बताकर आत्मकल्याण में लगाया।

भगवान से हमारी यही प्रार्थना है कि इस महान् संघ द्वारा धर्म की प्रभावना सदा होती रहे । माता इन्दुमति जी वृद्ध हो गई हैं तो भी आपकी आत्मशक्ति अभूतपूर्व है। वे दीर्घजीवी हों ऐसी जिनेन्द्र देव से हमारी प्रार्थना है। माताजी के चरणों में हमारी प्रणामाञ्जलि है।

शान्तिमूर्ति माताजी

पं० छोटेलाल बरैया धर्मालङ्कार, साहित्य भवन, नयापुरा, उज्जैन

माननीय ब्रह्मचारी श्री सूरजमलजी सा० तथा श्रीमान् सेठ लखमीचन्दजी सा० छाबड़ा भूतपूर्व अध्यक्ष, श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा की बार-बार प्रेरणा के कारण मुझे विजयनगर (आसाम) की दूसरी पचकल्याणक प्रतिष्ठा मे सम्मिलित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । मैं २७ दिन तक विजयनगर में रहा । यहाँ परम पूज्य प्रात: स्मरणीय १०५ श्री इन्दुमती माताजी अपने सघ सहित विराजमान थी । संघ में परम विदुषी, सिद्धान्तवागीश पूज्य माताजी श्री सुपार्श्वमतीजी, विद्यामतीजी तथा सुप्रभामतीजी व अनेक ब्रह्मचारिणी बाइयों का समुदाय था । निरन्तर तत्त्वचर्चा आदि का समागम रहता था ।

एक दिन प्रसगवश परम पूज्य इन्दुमती माताजी के चरण सान्निध्य मे मध्याह्न मे जा पहुँचा । अनेक धार्मिक और सैद्धान्तिक चर्चाएँ हुई तो वे कहने लगी कि "पण्डितजी ! सम्पूर्ण चर्चाओं का सार यह है कि त्याग और तपस्या के बिना जीवन सुखकर नहीं बन सकता है । इनका अवलम्बन लिये बिना कोरी चर्चाएँ सार्थक नही है ।" उनके ये वाक्य आज भी मेरे कानों में गूंज रहे हैं । उन्होने स्वयं के विषय में भी अनेक बाते बताई जिन्हें भुलाना कठिन है । उन्होने कहा—"चारित्रबल से बढ़ कर और कोई बल है नहीं । उसकी प्राप्ति तभी हो सकती है जब हम सत्य में निष्ठा रखे । त्याग का अस्त्र बनावे तथा जीवन को सादा रंग से रँगते रहें । त्यागधर्म मनुष्य का भूषण है । इसी से सहनशीलता विकसित होगी जो आत्मोन्नति के लिए आवश्यक है ।"

उपर्युक्त वाक्य वास्तव मे मनुष्य जीवन को स्वर्णिम बनाने में सहायक हैं । जिस मनुष्य में चारित्रबल नही है, वह वास्तव में, मनुष्य ही नही है । चरित्रबल का विकास जीवन को सहज और सादा बनाए रखने से ही हो सकेगा ।

माताजी सदैव साधना में निरत दिखाई देती हैं । अहं भाव उनको छू तक नहीं गया है । उनके मधुर वचनों का श्रवण करने से शान्ति का लाभ होता है । वे अपने पदस्थ के योग्य सम्पूर्ण क्रियाओं में सावधानी से रहती हैं । ये सब लक्षण एक तपस्विनी के है और इसीलिए मैं इन्हे एक तपस्विनी कहता हूँ । तब वे कहने लगती हैं कि पण्डितजी ! मुझमें तपस्विनी बनने की कहाँ शक्ति है ? मैं तो गुरुदेव के द्वारा दिए गए संयम की रखवाली करती रहती हूँ । यही मेरा जीवन है ।

माताजी साक्षात् शान्ति की मूर्ति है । ऐसा मुझे उनके प्रत्यक्ष दर्शन से कई बार अनुभव हुआ है । मैं त्याग, तपस्या व शान्ति की इस प्रतिमूर्ति को शत-शत नमोस्तु निवेदन करता हूँ ।

आज पूर्वाञ्चल के ही नही अपितु समस्त भारत के दिगम्बर जैन समाज और विशेषरूप से महिला समाज मे जो धार्मिक चेतना दृष्टिगत हो रही है, उसका बहुत कुछ श्रेय आर्यिका इन्दुमतीजी को व आपके संघ को है । मैं पूज्य माताजी के पावन चरणों में अपनी विनयाञ्जलि समर्पित करते हुए यही हार्दिक भावना भाता हूँ कि पूज्य माताजी शतायु होकर समाज और धर्म की वल्लरी की अभिवृद्धि करती रहें ।

गोलाघाट में साध्वी संघ

श्री लादूलाल बाकलीवाल, गोलाघाट–आसाम

जीवन में कुछ प्रसंग ऐसे घटित होते है जिनकी याद नित नवीन रहती है । अतीत के वे प्रसंग सदैव स्मृति पटल पर ताजा रगो से अकित चित्र की भाँति झिलमिलाते रहते हैं । ऐसा ही एक अतिशय सुखद प्रसग मेरे जोवन मे तब उपस्थित हुआ जब पूज्य आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी अपने सघ सहित, आसाम प्रान्त से विहार कर डीमापुर जाते हुए मेरे तेल डिपो पर विश्राम हेतु ठहरी, वहाँ से चल कर बोकाखाट, नुमालीगढ़ डिपो को भी पवित्र किया । मेरे परिजनों को और मुझे उस अवसर पर जो आनन्दानुभूति हुई, उसकी अभिव्यक्ति हेतु मेरे पास शब्द नहीं हैं । सयोग से उन्ही दिनों धर्मचक्र का भी आगमन हुआ था । अतः सबके हृदय में अपार उत्साह एवं उल्लास था ।

गोलाघाट में प्रवेश करते समय जैनाजैन जनता ने महावीर नगर स्थित पण्डाल में साध्वीसंघ का भावभीना स्वागत किया । एम० डी० ओ० मिश्राजी ने संघ की वन्दना करते हुए उनके पदार्पण को जनता का अहोभाग्य माना । आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी ने श्रोता समुदाय की स्थिति को देखकर अहिंसा, सत्य और एकता पर समयोचित प्रवचन किया जिसे विशाल जनसमूह ने धैर्यपूर्वक सुना ।

एक दिन पूज्य आ० इन्दुमतीजी का केशलोच था; केशलोच की इस क्रिया को देखने हेतु अपार भीड़ उमड़ी थी, पण्डाल छोटा पड रहा था । जिस किसी ने भी माताजी को निर्भीकता पूर्वक अपने हाथों से अपने केश उखाड़ते देखा, वह हक्का-बक्का रह गया, जनता आश्चर्य विमूढ थी । साध्वियों के तप, त्याग और देह से निर्ममता आदि गुणों की चर्चा जन-जन की जिह्वा पर थी । सबके यही भाव थे कि 'साधु हों तो ऐसे ।' इस अवसर पर पूज्य सुपार्श्वमतीजी का केशलोच व त्याग विषय पर प्रवचन हुआ । त्याग की महत्ता श्रवण कर अनेक स्त्री-पुरुषों ने व्रत-नियम भी लिये ।

साध्वी संघ की प्रेरणा से मैंने भी आपके समक्ष गृह-चैत्यालय का शिलान्यास करवाया, अनन्तर निर्माण कार्य पूरा कर ब्र० सूरजमलजी जैन द्वारा प्रतिष्ठा करवाई । माताजी की प्रेरणा के फलस्वरूप आज हम लोगों को भगवान के अभिषेक, पूजन, आरती आदि कार्यों का पुण्य लाभ मिल रहा है, बच्चों में धार्मिक संस्कार जाग्रत हो रहे हैं ।

आपके गौहाटी चातुर्मास में विजयनगर बिम्बप्रतिष्ठा महोत्सव के अवसर पर ग्वाल-पाड़ा के पास, 'सूर्य पहाड़' पर बिखरी दिगम्बर जैन मूर्तियां बहुचर्चित थी । स्वयं आर्यिका सुपार्श्व-मती माताजी ने वहां जाकर उनका अवलोकन कर कहा था कि प्राचीन काल में यह क्षेत्र जैनों का स्थान होना चाहिए, इसकी खोज करना आवश्यक है । 'सूर्य पहाड़' सम्बन्धी खोज का कार्य अब अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा की पूर्वाञ्चल शाखा ने अपने हाथ मे लिया है; विश्वास है कि आसाम मे यह पवित्र क्षेत्र प्रगति करेगा ।

मेरी यही भावना है कि पूज्य इन्दुमती माताजी दीर्घायु हो और इसी तरह निरन्तर स्व-पर कल्याण में रत रहें ।

❖

आर्यिका संघ का——गौहाटी प्रवेश

डा० लालबहादुर शास्त्री, दिल्ली

वि० स० २०३२ आसाढ शुक्ला ३ शुक्रवार ता० ११ जुलाई १९७५ को गौहाटी (आसाम) मे आर्यिका सघ के प्रवेश का 'निमन्त्रण-पत्र' अचानक प्राप्त हुआ । समय थोडा होने से कई तरह की भावनाएँ उठती रही, विचार आया कि साधुओं के दर्शन की तरह आर्यिकाओं के दर्शन भी विशिष्ट पुण्य और निःश्रेयस के कारण होते है, अचानक ही यह पुण्यावसर प्राप्त हुआ है इसका उपयोग कर लेना ही श्रेयस्कर है । फिर कल क्या होगा इसका क्या भरोसा है ? धर्म के प्रभाव मे सब ठीक ही होगा ।

गौहाटी मे जाकर देखा कि जैन समाज का बच्चा-बच्चा बडी उत्सुकता से आर्यिका संघ के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा है, आपातकालीन स्थिति के कारण जुलूस, सभा आदि पर सर्वत्र प्रतिबन्ध थे । यहाँ तक कि पाँच व्यक्ति भी एक जगह खड़े होकर बात नही कर सकते थे। पर इसे धर्म का प्रसाद कहिए कि प्रतिबन्ध के बावजूद भी जैन समाज को आर्यिका माताओ के स्वागत और सम्मान समारोह मे जुलूस निकालने की आज्ञा मिल गई ।

अपार जन समुदाय माताजी के सघ के स्वागत के लिए खड़ा था । बैण्डबाजों एव जय-जयकारो से सर्वत्र कर्ण कुहर मुखरित, गुंजायमान हो उठे । माताओं के पीछे भक्त स्त्री, पुरुषों की अपार भोड थी, अनेक ध्वज और बन्दनवारों से मार्ग सुसज्जित किये गये थे । जैन-अजैन प्राय: सभी इस जुलूस मे शामिल थे । जुलूस एक सुसज्जित नव निर्मित जैन भवन में पहुँचा जहाँ पर नागरिको के स्वागत समारोह में वक्ताओ ने कहा कि—भारत के इस सुदूर प्रान्त आसाम में इस युग मे कभी दि० जैन साधु या आर्यिकाओ का विहार नही हुआ । यह पहला अवसर है जब दि० जैन परम्परानुसार यहाँ साध्वियो का पदार्पण हुआ है जिससे अनेक प्राणियों का आत्मकल्याण होगा । स्वागत समारोह मे हमे भी बोलने का अवसर प्राप्त हुआ एव माताजी के दर्शन का लाभ मिला ।

स्व० रायसाहब श्री चाँदमलजी पाण्ड्या एवं गुरुभक्तों की प्रेरणा न होती और श्री मिश्रीलालजी वाकलीवाल के निरन्तर प्रयत्न न होते तो आसाम की जनता को माताजी के दर्शनों का लाभ न होता, दोनो महानुभावों ने तन, मन, धन लगा कर एक चिर स्थायी यश एवं पुण्य सचय किया । मिश्रीलालजी ने तो व्यापार आदि का त्याग कर कई महिनों तक संघ के साथ सपत्नीक रहकर पुण्योपार्जन किया ।

प्रशंसनीय साध्वी संघ

✡ श्री इन्द्रचन्द पाटनी, सुजानगढ निवासी, मैनागुड़ी

पूज्य १०५ आर्यिका माताजी श्री इन्दुमतीजी का किशनगंज (पूर्णिया) का ससंघ चातुर्मास सम्पन्न होने के बाद पूर्वोत्तर भारत की तरफ विहार हुआ था । उस समय मुझे सिलीगुड़ी से माथाभागा तक साथ रहने का सुअवसर मिला था । सिलीगुडी से मैनागुड़ी पहुँच कर २ दिन का अवसर यहाँ दिया था जिसमे दर्शनार्थी लोग जलपाइगुड़ी, वीरपाड़ा, माथाभागा, चगड़ाबादा आदि जगहो से बराबर आते थे । सुबह एव दोपहर मे प्रवचन पू० १०५ माताजी श्री सुपार्श्वमतीजी, विद्यामतीजो एव सुप्रभामतीजी का होता था जिसमे जैन-अजैन एवं बगाली बहुसंख्यक श्रोतागण आते थे । इनकी वाणी मे जो माधुर्य है उसकी प्रशसा सब समाज ने की है । अजैन माताएँ तो बहुत ही प्रभावित हुई थी । यहाँ पर विक्रम सवत् २०३१ मे २६–१२–७४ को पदार्पण हुआ था । वापस विहार के समय पू० इन्दुमतीजी माताजी ने मुझे कहा कि तुम्हारे यहाँ चैत्यालय नही है सो अच्छी बात नही । जिनेन्द्र दर्शन के बिना रहना उचित नही । सो उन्ही के आशीर्वाद से, जब पूर्वोत्तर प्रान्त से लौटते समय यहाँ फिर पदार्पण हुआ तब विक्रम सवत् २०३५ में आषाढ वदी २ के दिन यहाँ मैनागुड़ी मे चैत्यालय की स्थापना हुई । उस समय यहाँ पर कानकी, किशनगंज, फारबिसगज, दीनहट्टा, माथाभागा से बहुत धर्मप्रेमी बन्धुबान्धव पधारे हुए थे । पू० माताजी के आशीर्वाद के ही कारण आज हम लोगो को यहाँ प्रतिदिन पूजन, स्वाध्याय आदि का सुअवसर मिला है । परम पूज्य आर्यिका संघ मे सघस्थ सभी आर्यिका माताजी को शत-शत वन्दना ।

जो प्रभावना व जैन धर्म की जागृति इनके विहार से इस पूर्वोत्तर प्रान्त में हुई है, वह वर्णनातीत है । अनेक अजैन भाइयो ने भी व्रत नियम ग्रहण किये हैं । अजैन भाई जब कभी मिलते हैं तो पू० माताजी के बारे मे, उनके स्वास्थ्य एवं तपस्या के बारे मे बराबर जिज्ञासा करते रहते हैं । एक बार जो आपके सम्पर्क मे आ गया वह जन्म भर आपको भुला नही सकता । जिनेन्द्र भगवान से प्रार्थना है कि पू० माताजी हम लोगो के बीच शताधिक वर्ष मौजूद रहे । अपने तप ध्यान मे लीन रहते हम ससारी जनों का उपकार होता रहे ।

पू० सुपार्श्वमती माताजी का प्यार व आशीर्वाद ऐसा है कि उसको जीवन में भुलाया नही जा सकता । उनकी स्मरण शक्ति की कथा लिखी जाय तो ग्रन्थ के ग्रन्थ तैयार हो सकते हैं ।

पू० विद्यामती माताजी की भाषण शैली बहुत सुन्दर है । छोटी-छोटी कथाओं से समझाने की शक्ति अद्भुत है ।

पू० सुप्रभामती माताजी की वाणी के माधुर्य की तुलना के लिए कोई पदार्थ नजर नही आता । आप जिनवाणी के जीर्णोद्धार में सतत लगी रहती हैं । ❖

भक्ति कुसुमाञ्जलि

पण्डित मनोहरलाल शाह जैन शास्त्री, रांची

अपने मित्र श्रीमान् पण्डित कुञ्जीलालजी शास्त्री न्याय काव्यतीर्थ, सम्पादक जैन गजट, गिरिडीह के पत्र से श्री पूज्य १०५ आर्यिका इन्दुमती माताजी के अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन की बात जान कर मेरा हृदय आनन्द से विभोर हो उठा तथा मुझे उस भेंट का स्मरण हो आया जब मैं प्रवेशिका मे इन्दौर मे पढता था। उस समय एक दिन मल्हारगज में मोदीजी की नसिया के पास ब्रह्मचारिणी अवस्था मे एक अन्य ब्रह्मचारिणी महिला के साथ मार्ग मे मुझे पूज्य माताजी के दर्शन हुए। जब मैंने इन्हे प्रणाम किया तो आपने मुझे आशीर्वाद देते हुए साथवाली महिला से कहा—ये पण्डित मिश्रीलालजी शास्त्री के छोटे भाई हैं। फिर मुझे पूछा—आप क्या पढ़ते हैं? मेरे उत्तर देने पर आपने स्नेहसिक्त वाणी मे कहा—"थे खूब पढ़ो, पढ र विद्वान् बणो, थां का भाई मिश्रीलालजी की ज्यान थे भी खूब समाज सेवा अर धर्म की सेवा करज्यो।" इस स्नेहमयी आशीर्वाद का स्मरण मुझे आज भी निरन्तर होता रहता है। आज मैं जो कुछ भी हू, पूज्य माताजी के आशीर्वाद से हूँ। उस समय कौन जानता था कि उनके अभिनन्दन ग्रन्थ मे मुझे भी लेख लिखने का सौभाग्य प्राप्त हो सकेगा। पर सन्तों का आशीर्वाद सभी भुक्ति मुक्ति के साधनो को मिला देता है, यह ध्रुव सत्य है।

पूज्या इन्दुमती माताजी के सघ में वात्सल्यमयी करुणामूर्ति श्री १०५ आर्यिका सुपार्श्वमतीजी, विद्यामतीजी, सुप्रभामतीजी विद्यमान हैं। इस संघ के द्वारा निरन्तर दिगम्बर जैन धर्म का प्रचार हो रहा है। पूज्य माताजी सुपार्श्वमतीजी जैन शास्त्रो की गहन वेत्ता एवं महान् उपदेष्टा हैं। आपका उपदेश तलस्पर्शी अमृतमयी वाणी मे घण्टो होता रहता है जिसे सुनते जनता नही अघाती। आपके संघ द्वारा बगाल, बिहार, उडीसा, असम, नागालैण्ड में खूब प्रचार हुआ जिन धर्म का। असम प्रान्त मे जहां आज तक कोई संयमी जन न पहुच सका वहा पर पूज्य माताजी संघ सहित पहुंची और आपने जिनधर्म की ध्वजा फहराई। विजयनगर (असम) में एक अतीव रमणीय, भव्य, दर्शनीय जिनमन्दिर का निर्माण वहां की जैन समाज ने कराया है। उसकी पचकल्याणक प्रतिष्ठा आप ही की छत्रछाया एव आशीर्वाद से सम्पन्न हो सकी थी जो आज भी अविस्मरणीय है।

मैं पूज्य माताजी के अभिनन्दन (ग्रन्थ) समारोह के शुभावसर पर उनके चरणों में अपनी हार्दिक भक्ति कुसुमाजलि समर्पित करता हूँ। साथ ही उनके स्वास्थ्य, दीर्घायुष्य एवं रत्नत्रय कुशलता की मंगल कामना वीर प्रभु से करता हूँ तथा भावना करता हूँ कि उनके द्वारा व उनके सघ के माध्यम से चिर काल तक अवनितल पर रत्नत्रय धर्म का प्रचार प्रसार होता रहे।

❖

मितभाषी माताजी

✡ श्री पूनमचन्द गंगवाल, झरिया

मुक्ति की राह पर चलना ही मनुष्य पर्याय का सार है; जो इस पर चले उन्होने मंजिल पाई, जो इस पर चल रहे हैं वे मंजिल पा लेंगे, राह है—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की। त्यागमूर्ति, संसार-शरीर-भोग निर्विण्ण, वयोवृद्ध आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी इसी राह की अद्वीतीय राही है। उनका अभिनन्दन या सम्मान जैन धर्म व जैनाचार का सम्मान है। माताजी के अभिनन्दन-अभिवन्दन की योजना स्तुत्य है, यह कार्य शीघ्र ही निष्पादित किया जाना चाहिए।

भारतीय जैनाजैन समाज तथा विशेषत: भारतीय पूर्वाञ्चल की जनता, माताजी का और इनके सघ का बहुत उपकार मानती है कि आपके अथक प्रयासो से वहाँ मन्दिरो व चैत्यालयों का निर्माण हुआ जो न केवल वर्तमान निवासियो के लिए ही आस्था के केन्द्र है अपितु भाव पीढ़ियो को भी परिणामो की उज्ज्वलता के लिए उत्कृष्ट आलम्बन सिद्ध होगे। पूज्य माताजी के सघ ने इधर के प्रान्तों मे जैन सस्कृति के प्रचार का अद्वितीय कार्य किया है। आपके मधुर उपदेश से प्रेरणा पाकर अनेक मांसाहारी स्त्रीपुरुष पूर्णत: शाकाहारी बने हैं और रात्रिभोजन का त्याग कर दिवाभोजी बने है। अनेक स्त्री पुरुषो ने शक्त्यनुसार छोटे बडे संयम-नियमों का प्रसाद प्राप्त किया है।

माताजी की सौम्य मुद्रा, शान्त-प्रशान्त मुखमण्डल दर्शक से बिना बोले ही बहुत कुछ कह जाता है। दर्शनलाभ प्राप्त करने वाला भक्त साक्षात् सयममूर्ति को श्वेत शाटिका मे अपने सम्मुख विराजे देख श्रद्धाभिभूत हुए बिना नही रह पाता। मितभाषी माताजी को अपने क्षणों का उपयोग धर्मध्यान, स्वाध्याय व धर्मचर्चा मे करते हुए किसी भी समय देखा जा सकता है। प्रमाद इस अवस्था में भी आपके पास अब तक नही फटक सका है। सघ का संचालन आप बड़ी कुशलता से कर रही हैं यह छोटा संघ अपने ढग का देश मे एक ही सघ है।

इस अद्वितीय संघ के और इसकी प्रधान गणिनी श्री १०५ इन्दुमती माताजी के चरण कमलों मे सविनय नमोस्तु निवेदन करता हुआ यही भावना भाता हूँ कि पूज्य माताजी अपनी साधना का उत्कृष्ट फल प्राप्त करे।

मैं उनकी इस संयम पर्याय मे सुदीर्घजीवन पाने की शुभ कामना करता हूँ जिससे इस प्रभावशाली गरिमामय व्यक्तित्व के दर्शन और प्रवचन के श्रवण का लाभ भव्यजीवों को बहुत समय तक मिलता रहे।

एक बार पुन: श्री चरणों में नमोस्तु निवेदित करता हूँ।

❃

धन्य धन्य है जग की माता !

✿ श्री सागरमल सबलावत, डीमापुर

नारी जीवन के सम्बन्ध में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है –

"अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी ।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी ॥"

किन्तु इन्दुमतीजी सदृश जैन आर्यिकाओं के दर्शन-वन्दन और उपदेश-श्रवण के बाद यही कहने को रह जाता है कि—

अबला जीवन धन्य तुम्हारी अमर कहानी ।
जीवन में है त्याग जिन्होंके, उनकी अमिट कहानी ।
राग रङ्ग निस्सार जान, सब छोड़ दिया,
करूँ आत्मकल्याण यही सङ्कल्प लिया,
धन्य धन्य है जग की माता,
अमर रहेगी इस धरती पर तेरी गौरव गाथा,
इन्दुमति ! तेरे चरणों में अपना शीष नवाता !

पूज्य मातेश्वरी इन्दुमतीजी ने अपने त्याग-तपस्या पूर्ण जीवन से औरो के लिए एक अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत किया है। भारतीय नारी मात्र अबला ही नही अपितु दृढ सङ्कल्पशीला भी है। पूज्य माताजी ने अपने छोटे से सघ के साथ मरुभूमि से नागालैण्ड और दिल्ली से सुदूर दक्षिण प्रान्तों तक साहस पूर्वक पैदल विहार कर जैनधर्म की अभूतपूर्व प्रभावना की है और सर्वत्र 'धर्मवृद्धि' का आशीर्वाद प्रदान किया है।

पूर्वाञ्चल के आसाम और नागालैण्ड प्रदेशों में स्थान-स्थान पर गृह चैत्यालयों की स्थापना आपके सदुपदेशों से ही हुई है। इन प्रदेशों में केवल जैन समाज ने ही नही अपितु बौद्ध धर्मावलम्बियों व ईसा के अनुयायियो ने भी आपके उपदेशों को यथाशक्ति ग्रहण किया है।

पूज्य माताजी अपने संघस्थ अन्य आर्यिकाओं सहित अपनी वाणी और चर्या से जिनवाणी का दिव्य सन्देश प्रचारित प्रसारित कर रही हैं, यह हम सब भारतवासियों के लिए गौरव की बात है। आधुनिक भौतिक युग में सम्पूर्ण सांसारिक वैभव का परित्याग कर ये विभूतियाँ उपसर्गों और परीषहों को सहन करते हुए पूरे देश मे भगवान महावीर का कल्याणकारी उपदेशामृत पिला रही हैं। धन्य है आपका जीवन ! धन्य है आपकी चर्या !

मैं पूज्य माताजी के श्रीचरणों में शतशः नमन निवेदित करता हूँ। ❖

जोरहाट में आर्यिका-संघ

[लेखक : श्री पूसराज पाटनी, मंत्री, दि० जैन पंचायत, जोरहाट, आसाम]

परम पूज्य १०५ आर्यिका श्री इन्दुमतीजी ने संघ सहित दिनाक ७ मार्च १९७६ को जोरहाट मे प्रवेश किया। संघ का आबालवृद्ध सभी ने हार्दिक स्वागत किया। उसी समय पूर्वांचल के धर्मचक्र का भी आगमन हुआ था।

स्वागत समारोह में जोरहाट नगरपालिका के अध्यक्ष श्री राधानाथ बरठाकुर ने पूज्य आर्यिका संघ के श्रीचरणो में अभिनन्दन पत्र समर्पित किया। सघस्थ ब्र० प्रमिला बाई तथा धर्मचक्र के साथ आए हुए पं० बाबूलालजी जैन जमादार तथा अन्य विद्वानों के भाषण हुए। दिगम्बर जैन समाज का मंत्री होने के नाते मुझे भी आर्यिका संघ का अभिनन्दन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। स्थानीय जे० बी० कॉलिज के प्रिंसिपल तथा काग्रेस के प्रमुख नेता श्री दीनानाथजी राजखोवा द्वारा आर्यिका संघ के समक्ष "अभिनन्दन स्मारिका" का विमोचन किया गया।

स्वागत सभा के अध्यक्ष गड़मूड़िया सत्राधिकार श्री कृष्णचन्द्रदेव गोस्वामी ने गद्‌गद् होते हुए अपने वक्तव्य में यह कहा कि मुझे इस बात से महान् गौरव की अनुभूति हो रही है कि आज हमारे प्रान्त में दिगम्बर जैन आर्यिकाओं का निर्बाध विहार हो रहा है, इससे इस प्रांत की जनता को अधिकाधिक लाभ होगा।

स्वागत समारोह के बाद सघ नगर के प्रमुख मार्गों से होता हुआ मारवाड़ी ठाकुरबाड़ी स्थित श्री दिगम्बर जैन मन्दिरजी में पहुंचा। मार्ग में जगह-जगह संघ की मंगल आरती उतारी गई अनेक प्रमुख स्थानों पर स्वागत द्वार बनाए गए थे।

१८ मार्च को आर्यिका विद्यामतीजी का केशलोच हुआ। पण्डाल जनसमूह से खचाखच भर गया था। जनता—जैन, अजैन सब उमड़ी पड़ती थी। केशलोच की क्रिया देखकर सबको अपार आश्चर्य हुआ, सबकी यही धारणा बनी कि वास्तव मे ये ही त्यागी तपस्वी साधु हैं, इन्हें तो अपने शरीर से भी मोह नही है। इस अवसर पर आर्यिका १०५ श्री सुपार्श्वमतीजी ने जैन साधुओं की चर्या पर प्रकाश डालते हुए केशलोच का महत्त्व बताया तथा जीवन में तप और त्याग की महत्ता पर विशद प्रकाश डाला। इस महोत्सव के विशिष्ट अतिथि श्री मित्रदेव महन्त ने जैन सस्कृति की प्राचीनता सम्बन्धी कई महत्त्वपूर्ण बातें कही।

संघ के सान्निध्य में वृहत् चारित्रशुद्धि विधान, शान्तिविधान आदि विशिष्ट पूजाये आयोजित की गई। स्थानीय जिला पुस्तकालय के सभाकक्ष, मन्दिरजी के पण्डाल, सरावगी इण्डस्ट्रियल एंड एंजीनियरिंग वर्क्स के प्रांगण तथा घनश्यामदासजी बाकलीवाल व सागरमलजी बाकलीवाल के गृह प्राङ्गण में माताजी के प्रवचन आयोजित किये गये। आर्यिका संघ के सदुपदेश एवं सत्प्रेरणाओं से अनेक नर नारियों ने मद्य, मास, मधु व रात्रि भोजन का त्याग किया। त्याग के इन नियमो की चर्चा स्थानीय समाज मे कई दिनो तक होती रही।

जोरहाट से संघ की प्रस्थान बेला मे दिनांक .... को विदाई समारोह आयोजित किया गया जिसमे अनेक वक्ताओं ने अपनी विनयांजलि प्रस्तुत की। श्वेताम्बर जैन समाज के प्रमुख कार्यकर्ता श्री भूलचन्दजी बेंद तथा शाकाहार कल्याण समिति, दिल्ली के प्रचारक श्री माधवप्रसादजी जैन ने भी अपने विचार व्यक्त किये। समस्त दिगम्बर जैन समाज की ओर से कृतज्ञता ज्ञापित करने का अवसर मुझे भी मिला।

आर्यिका सुपार्श्वमतीजी ने अपने प्रवचन मे उपस्थित जन समूह को शुभाशीर्वाद प्रदान करते हुए धर्मवृद्धि की कामना की।

गिरिडीह (बिहार) में पूज्य आर्यिका इन्दुमतीजी

☼ ज्ञानचन्द बड़जात्या, मंत्री, दिगम्बर जैन समाज, गिरिडीह

गिरिडीह नगर परम पूज्य तीर्थाधिराज श्री सम्मेदशिखरजी के पादमूल में बसा हुआ है। श्री चम्पापुर, पावापुरी आदि तीर्थ स्थानों से आते जाते यात्री संघो एवं त्यागी संघों के दर्शन, सेवा और सत्संग आदि का लाभ सहज ही इस नगर को प्राप्त होता रहता है। परम पूज्य आर्यिका इंदुमतीजी का प्रभावक सघ भी एक-दो बार ऐसे ही अपरिचित की भांति यहां से निकल गया जिससे यहां के निवासियों को बड़ा पश्चाताप था। अबकी बार पूर्वाञ्चल की पदयात्रा से लौटते हुए एवं तीर्थराज पर मधुबन में चातुर्मास करने के बाद गिरिडीह वासियों का भाग्य जागा। गिरिडीह की जैन समाज की प्रार्थना को स्वीकार कर पूज्य माताजी ने फाल्गुन की अष्टाह्निका के पूर्व लगभग दो मास तक सघ सहित इस नगर को अपनी चरण रज से पवित्र किया। इस लघु अवधि में गिरिडीहवासियों को पूज्य माताजी की सरलता, धर्मानुशासनप्रियता, सघ शासननिपुणता, वात्सल्य, परदुःखकातरता, सहृदयता एवं सदाचार के प्रचार-प्रसार के लिए आन्तरिक लगन आदि अनुपम सद्गुणों का सातिशय परिचय हुआ। बिना मुख से बोले भी अन्तरंग रत्नत्रय का परिचय कैसे दिया जाता है इसे भी यहां के श्रद्धालुओं ने प्रत्यक्ष देखा। अनेक ऐसे जैन जिनसे

किसी भी प्रकार की प्रतिज्ञा-ग्रहण की आशा करना अशक्य सा लगता था, माताजी के प्रभाव से वे भी सहज ही इस ओर आकृष्ट हुए। संघ के नगर प्रवेश के समय जिसप्रकार सोल्लास स्वागत किया गया था, मंगल विहार के समय उसी प्रकार भावभीनी विदाई दी गई। अनेक भक्त १८ मील पैदल चलकर भी संघ को पहुँचाने मधुवन तक गये।

दो माह की अवधि बहुत शीघ्र व्यतीत हुई जान पड़ी। आबाल वृद्ध सभी अतृप्ति का अनुभव करने लगे। एक अदृश्य भूख जाग्रत हो गई थी जिसके शमन के लिए लोगों में प्रबल आकाक्षा पैदा हुई। अत: सघ के मधुबन पहुँचने के साथ ही यहां के भक्तो ने आगामी चातुर्मास के लिए पूज्य माताजी के चरणो मे श्रीफल भेट करते हुए अपना निवेदन प्रस्तुत कर दिया। क्योंकि पूज्य माताजी की शारीरिक अवस्था जीर्ण होती जा रही है। अत: वे अपने अन्तिम समय मे, परम पावन निर्वाण भूमि का आश्रय नही छोड़ना चाहिये, इस विश्वास से प्रतिदिन अनेक बार गिरिराज की पुण्य प्रदायिनी पापनाशिनी टोकों के दर्शन कर अपने जीवन को कृतार्थ करना चाहती हैं, अत: उन्होंने हमारी प्रार्थना को अत्यन्त उपेक्षा के साथ अनसुना कर दिया।

गिरिडीह की तरह ही पार्श्ववर्ती नगरो के भक्त जन भी आर्यिका संघ के पुनीत समागम के प्रबल आकांक्षी थे अत: वे भी आ-आकर पूज्य माताजी के चरणो मे बार-बार निवेदन करते ही रहते थे परन्तु गिरिडीह वासियों की भावना कुछ अद्भुत थी। हमारी प्रार्थना की आवृत्ति अनेकश: हुई। आखिर वह पुण्य घड़ी आ ही गई जब माताजी ने हमे अपनी अनुमति प्रदान की। अद्भुत भावुकतापूर्ण स्थिति थी वह। एक ओर परम पावन सिद्धभूमि से चार माह के वियोग की आन्तरिक खिन्नता एवं दूसरी ओर गिरिडीह समाज की असाधारण भक्ति की ओर माता का वात्सल्य। द्वन्द्व में वात्सल्य की विजय हुई। अनुमति पाकर गिरिडीह वासियो के आनन्द का ठिकाना न रहा।

आषाढ़ शुक्ला तीज के दिन संघ ने मधुबन से विहार किया। गिरिडीह समाज का बहुभाग साथ मे था। मार्ग मे बड़ाकर नदी के तट पर रात्रि विश्राम कर पंचमी के दिन नगर में बड़ी धूमधाम एवं सातिशय प्रभावना पूर्वक संघ का मगल प्रवेश हुआ।

परम पूज्य माताजी का संघ अनुपम रत्नभण्डार है। जहां संघ का समागम होता है वहां के धार्मिक सौभाग्य का वर्णन कौन कर सकता है।

परम प्रभाविका, विदुषी रत्न, विद्यावारिधि आर्यिकारत्न सुपार्श्वमतीजी इस संघ की चूडालंकार है। आपका अथाह शास्त्रीयज्ञान एव बहुजनहिताय प्रवचन की सरलता, सरसता एवं आन्तरिक कारुण्य ऐसे सद्गुण हैं जो किसी भी प्रकार की जिज्ञासा लेकर आने वाले और किसी भी मान्यता वाले व्यक्ति को न केवल शास्त्रीय समाधान देते है अपितु मोहिनी मंत्र से मोहित किये हुए

की भाँति अनन्य भक्त भी बना लेते है। प्रतिदिन आपके दो सार्वजनिक प्रवचन लगातार चार माह तक होते रहे। इनके माध्यम से उन्होंने श्रावकाचार और प्रथमानुयोग के ग्रन्थों की समीचीन व्याख्या कर श्रावकों की श्रद्धा और सदाचार को दृढता प्रदान की। कुसंस्कारों को दूर कर सुसंस्कारों का वपन किया। इन प्रवचनों के अतिरिक्त आर्यिका संघ एवं विद्वानों के साथ दिन मे तीन बार उच्च कोटि के ग्रन्थों (करणानुयोग और द्रव्यानुयोग सम्बन्धी) का धाराबाही विवेचन एव विमर्श किया गया। पूज्य माताजी ने संघस्थ बालब्रह्मचारिणी सुश्री प्रमिला जैन, एम० ए० शोधस्नातिका को तथा कुमारी नयना बाई व कुमारी जयश्री को धर्मशास्त्र, न्याय, साहित्य एवं व्याकरण का अध्ययन भी कराया।

पूज्य आर्यिका विद्यामती माताजी तथा आर्यिका सुप्रभामती माताजी ने चार माह तक नगर की क्षयोपशम शीला श्राविकाओ को सर्वार्थसिद्धि आदि ग्रन्थो का अध्ययन कराया तथा किशोर बालक-बालिकाओ को धर्म की प्रारम्भिक शिक्षा प्रदान की। आप दोनो ही माताजी अत्यन्त सरल है, सदैव ध्यान-स्वाध्याय मे सलग्न रहती है। किसी भी प्रकार की विकथा एव प्रमादाचरण से सर्वथा दूर रहती हैं तथा श्राविकाओ व बच्चो मे स्वाध्याय, व्रत-नियम एव सुसस्कारों का प्रचार किस प्रकार हो इसके लिए निरन्तर केवल विचार ही नही करती अपितु तदर्थ सावधानी पूर्वक चेष्टा रत भी रहती है।

माताजी के संघ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह सघ किसी पर भी अपने विचार थोपता नही है। महर्षियों के सिद्धान्तों के आलोक में आगम पक्ष का उपदेश होता है; यही कारण है कि सारे पूर्वांचल मे जहाँ सभी प्रकार की मान्यताओं वाले श्रावक है, यह संघ न केवल निर्विघ्नतया विचरण कर रहा है अपितु सातिशय धर्म प्रभावना भी कर रहा है। सभी स्थानों के जैन बन्धु इसके लिए प्रबल आकाक्षी रहते हैं कि किसी भी प्रकार उनका नगर माताजी का विहार क्षेत्र बन जाए।

गिरिडीह में संघ के निवास काल मे ऋषि मण्डल विधान, शान्तिविधान, रत्नत्रय-विधान, दश लक्षण विधान, सोलह कारण विधान, पञ्च परमेष्ठी विधान आदि अनेक विधि विधान, अनुष्ठान सम्पन्न हुए। बाहर से भी अनेक धर्मबन्धुओं ने आकर माताजी के सान्निध्य का लाभ लिया। पूजन के दौरान पूज्य आर्यिका सुपार्श्वमतीजी प्रत्येक अर्घ एवं जयमाला का अत्यन्त सरल एवं सुबोध भाषा में विवेचन करती थी जिससे पूजन के साथ-साथ- आन्तरिक भाव भी तन्मय हो जाते थे। बीच में एक दिन कर्णाटक संघ के आने से भक्ति की ऐसी सरस एव मधुर संगीत गगा बही कि सभी भक्त जन आकण्ठ उसमे डूब गए।

नवीन पिच्छिका प्रदान समारोह भी सोत्साह सम्पन्न हुआ। विविध दातारों ने आर्यिकाओं को पिच्छिका दी। श्रीमती पार्वतीबाई सरावगी एवं श्री पण्डित कुंजीलालजी शास्त्री

ने माताजी को जिनवाणी भेंट की। इस अवसर पर सुपार्श्वमती माताजी ने स्पष्ट किया कि इसप्रकार पीछी देने का कोई शास्त्रीय आधार नहीं है। यह समाज की अपनी व्यवस्था है। वास्तव में पीछी तो गुरु द्वारा दी जाती है। हमारी गुरु परम पूज्य इन्दुमती माताजी यहां विराजमान हैं। हाँ, यह अवश्य सत्य है कि पिच्छिका-निर्माण हेतु मयूर पंख गृहस्थ ही जुटाते हैं। परम पूज्य माता इन्दुमतीजी के प्रति अपनी आन्तरिक श्रद्धा और भक्ति व्यक्त करते हुए माता सुपार्श्वमतीजी भावविह्वल हो गईं। उन्होंने बताया कि जितने वात्सल्यपूर्ण अनुशासन से माँ अपनी पुत्री की भी रक्षा नही कर पाती उससे भी अधिक वात्सल्यपूर्ण अनुशासन से माताजी ने मुझे पाला है, मेरे अध्ययन में वे घण्टों पास बैठी रही हैं। उनकी अहर्निश चिन्ता आज भी पूर्ववत् है, मैं इसे अपने जीवन में किसी भी प्रकार से विस्मृत नहीं कर सकती।

मंगसिर कृष्णा ५ सोमवार को संघ ने मधुवन के लिये विहार किया। इसके एक दिन पूर्व गिरिडीह समाज ने कृतज्ञता ज्ञापन के रूप में पूज्य माताजी से विगत ४॥ मास में समाज की किसी अज्ञानता, प्रमाद एवं असावधानी के लिए क्षमा याचना की तथा इतने समय तक लगातार धर्म-ध्यान का सुअवसर देने के लिये सघ के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की।

विहार के समय गिरिडीह समाज के सेंकडों स्त्री-पुरुष जयजयकार करते हुए ८ मील दूर बड़ाकर तक गए, वहा संघ ने रात्रि विश्राम किया। दूसरे दिन प्रातःकाल साथ होकर संघ को सकुशल मधुवन पहुँचाया।

इसप्रकार यह चातुर्मास गिरिडीह जैन समाज के लिए अतिशय पुण्य का निमित्त बना। निश्चय ही, संघ का सान्निध्य धर्म प्रेरणा का अजस्र स्रोत है।

कोटि-कोटि नमन !

श्री राजकुमार सेठी, डीमापुर

भारत की पावन भूमि में मरुधर देश अपनी शूरवीरता के लिए तो सदैव विख्यात रहा ही है किन्तु धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में भी इस प्रदेश का अपना विशिष्ट स्थान है। ब्राह्मण और श्रमण संस्कृतियों का यहां सुमधुर विकास हुआ है फलतः शुष्क मरुधरा पर वीरता और वैराग्य, ज्ञान ध्यान और भक्ति का सुन्दर समन्वय सर्वत्र दृष्टिगत होता है।

इस क्षेत्र की नारियाँ भी पुरुषों से पीछे नहीं रही हैं। रानी पद्मिनी का जौहर यहाँ वीरता की कसौटी है तो प्रेम दीवानी मीरा के पद भक्ति का अनन्य आदर्श। मीरा के पद सम्पूर्ण

भारत में सानन्द गाये जाते हैं। श्रमण संस्कृति में भी अनेक नारी-रत्नों ने वैराग्य प्राप्त कर श्रेयो-मार्ग का विकास किया है वह परम्परा आज भी प्रवहमान है। इस वैराग्य साधना पद्धति में अधुना वर्तमान अनेक सती-साध्वियों में परम पूज्य प्रातः स्मरणीय इन्दुमती माताजी का नाम विशेष सम्मान पूर्वक उल्लेखनीय है।

डेह ग्राम में जन्मी मोहनी बाई का विवाह १२ वर्ष की आयु में ही सम्पन्न कर दिया गया था परन्तु विवाह के तीन चार माह बाद ही पति की मृत्यु से आप पर वैधव्य का पहाड़ टूट पड़ा। इस दारुण घटना ने आपको संसार की नश्वरता का दिग्दर्शन कराया और अब तो जीवन की दिशा ही बदल गई। अन्तर्मन मे वैराग्य ने जन्म लिया। चर्या धर्ममय हो गई, जीवन त्यागमय हो गया।

आचार्यकल्प श्री चन्द्रसागरजी महाराज के दर्शन और उपदेश से आपकी वैराग्य भावना दृढ हुई और आपने दीक्षा धारण कर वैराग्य की कठिन पगडण्डियो पर चलना प्रारम्भ कर दिया। क्षुल्लिका से आर्यिका इन्दुमति बनी और तब से अनवरत साधना रत है।

पूज्य माताजी ने नागौर से नागालैण्ड और दिल्ली के श्रवणबेलगोला तक सर्वत्र पैदल विहार करते हुए जिनेन्द्र भगवान की कल्याणकारी वाणी का उपदेश दिया है; "जैनं जयतु शासनम्' का उद्घोष किया है और 'जीवो और जीने दो' का सन्देश सुनाया है।

मुझे भी आपका उपदेश सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। आपके उपदेश की एक झलक देखिए—

"अरे भाई! बडे पुण्य से, बडे भाग्य से यह मनुष्य जन्म भारतवर्ष मे प्राप्त किया है। मनुष्य भव मे भी श्रावक कुल मे उत्पन्न होना और जैन धर्म प्राप्त करना अत्यन्त दुर्लभ है। यह जन्म चिन्तामणि रत्न के समान दुर्लभ है अतः इस समय का सदुपयोग करो और अपनी आत्मा का कल्याण करो। ससार असार है, सम्यक् पन्थ पर चलो, मोक्षमार्ग मिलेगा, मोक्ष निकट आएगा।

"श्रावक भाइयों! परस्पर अनुकूल रह कर वात्सल्यपूर्वक जीवो, प्रभावना अंग का पालन करो; सम्यग्दृष्टि होकर जिनधर्म का पालन करो, कल्याण होगा। धर्मवृद्धि"

मैं यही कामना करता हूँ कि पूज्य माताजी दीर्घायु हो।

पूज्य माताजी के चरणों में कोटि-कोटि नमन।

वन्देऽहम् इन्दुमातरम्

(आर्यिका सुपार्श्वमती)

मरुवाटसुदेशेऽस्मिन्, डेहग्रामः सुशोभनः ।
तत्र चन्दनमल्लस्य, भार्या नाम्ना जडावती ॥१॥

कन्यारत्न तयोर्जातं, मोहिनी नाम शोभनम् ।
पितरौ ता प्रपश्यन्तौ, नितरां प्रीतिमापतुः ॥२॥

जिनधर्मसमासक्ता, धर्माचरणतत्परा ।
आरूढा शास्त्रपोतं सा, तरितुं भवसागरम् ॥३॥

चन्द्रसागरमाश्रित्य, कर्णधारमिवोत्तमम् ।
निराशं विषयातीतं, ग्रन्थिहीन महागुरुम् ॥४॥

विक्रमे द्विसहस्राब्दे, दशम्यामाश्विने सिते ।
ग्रामे कसावखेडेऽभूत्, पूता क्षुल्लकदीक्षया ॥५॥

विक्रमाब्दे तया लब्धा, द्विसहस्रे षडुत्तरे ।
आश्विनशुक्लरुद्राङ्के, शुभा दीक्षा जिनेश्वरी ॥६॥

वीरसागरमासाद्य, नागौरे ग्रामसुन्दरे ।
नाशाय भवदुःखानां, तपश्चरितुमुद्यता ॥७॥

क्षमासारां परार्थज्ञां, नारीणां च प्रबोधिनीम् ।
तपः पूतां महाप्राज्ञां, वन्देऽहमिन्दुमातरम् ॥८॥

विहृत्यानेकदेशेषु, निखिलान् जनपादपान् ।
सिञ्चन्ती ज्ञाननीरेण, वन्देऽहमिन्दुमातरम् ॥९॥

इन्दुमती माताजी का हम सभी आज करते अभिनन्दन

विश्वमोहिनी नाम मोहनी, जिसका अन्तःकरण पवित्र,
आज लेखनी लिख दे उसका परम प्रभावक पुण्यचरित्र ।
इस परिवर्तनशील जगत में कौन बन्धु-बान्धव, अरि-मित्र,
इसी भावना का है जिसके अन्तस्तल में चित्र-विचित्र ।
डेह ग्राम में जनम लिया है पिता पाटनी नाम था चन्दन,
इन्दुमती माताजी का हम सभी आज करते अभिनन्दन ।।१।।

जब बारह की उम्र हुई तो धूम–धाम से किया विवाह,
स्वर्गवास हो गया पती का, छह महिने के भीतर आह ।
सेठी चम्पालाल पती ने स्वर्गलोक की पकड़ी राह,
अहो बालविधवा की सारी मिटीं उमङ्गें, इच्छा, चाह ।
आयु कर्म आधीन चराचर रोक सके ना करुणाक्रन्दन,
इन्दुमती माताजी का हम सभी आज करते अभिनन्दन ।।२।।

चारों भाई दुःखित हो गए, रिद्धकरण गिरधारीलाल,
और केसरीमल पूनमचन्द, रोकर हुए हाल-बेहाल ।
किन्तु मोहनीबाई ने तो सोचा भूठा जग का जाल,
जिसमें फँसकर दुःखी हो रहे क्या अमीर और क्या कगाल ।
बाल युवा और वृद्ध सभी का होता बन्द श्वास का स्पदन,
इन्दुमती माताजी का हम सभी आज करते अभिनन्दन ।।३।।

जड़ावदेवी माताजी ने घर पर ही दिलवाई शिक्षा,
शिक्षा पा कर भाव हो गया मैं लूंगी जैनेश्वरी-दीक्षा ।
पूरा यौवन खड़ा सामने लेने आया कठिन परीक्षा,
शूरवीर जब रण में उतरे नहीं माँगते जीवन भिक्षा ।

मन में द्वादश अनुप्रेक्षा थी, देव स्वर्ग से बोले धन-धन,
इन्दुमती माताजी का हम सभी आज करते अभिनन्दन ।।४।।

जब होता है योग तभी संयोग सामने आ जाता है,
बड़ा कठिन वैराग्यभाव भी भावुक मन को भा जाता है ।
परम तपस्वी चन्द्रसिन्धु महाराज-सघ जब 'डेह' आता है,
इस वैरागिन की नस-नस मे नशा धर्म का छा जाता है ।
एक सहस नौ सौ बराणूँ (१९९२) विक्रम सवत् को कर वन्दन,
इन्दुमती माताजी का हम सभी आज करते अभिनन्दन ।।५।।

जहाँ जहाँ भी संघ गया था वहाँ वहाँ पर पहुँची आप,
मन मे थी वैराग्य भावना सप्तम प्रतिमा की थी छाप ।
सात वर्ष तक फिरते-फिरते, करते-करते प्रभु का जाप,
दीक्षा लेकर बनी क्षुल्लिका, छोड़ जगत का दुःख सन्ताप ।
दो हजार में कसावखेड़ा गुरू चन्द्रसागर दुःखभञ्जन,
इन्दुमती माताजी का हम सभी आज करते अभिनन्दन ।।६।।

परम पूज्य आचार्य वीर सागरजी का जब चातुर्मास,
हुआ नगर नागौर आप भी संघ साथ थी लेकर आस ।
संवत् दो हजार छह ले ली उच्च आर्यिका दीक्षा खास,
नाम 'इन्दुमति' गुरु ने रक्खा केश उखाड़े जैसे घास,
धन्य-धन्य नागौर नगर का बोल उठा था सारा जन-जन,
इन्दुमती माताजी का हम सभी आज करते अभिनन्दन ।।७।।

सारे भारत भर मे जिनकी पद यात्रा की अङ्कित गाथा,
जिनके दिव्य तेज के आगे सभी झुकाते अपना माथा ।
किया जैनियो को उद्बोधन, अजैन भी जिनके गुण गाता,
कई तरह के नियम और व्रत लेकर भी जो आज निभाता ।
जिनके उपकारों से उपकृत भारत का है सारा कण-कण,
इन्दुमती माताजी का हम सभी आज करते अभिनन्दन ।।८।।

आप गईं बङ्गाल और आसाम जहा है मांसाहारी,
कितने ही ऐसे लोगों को बना दिया फिर शाकाहारी ।

बनवाये उपदेश प्रभावित लोगों ने जिनमन्दिर भारी,
जिनचैत्यालय अरु जिनप्रतिमा हुई प्रतिष्ठित अति सुखकारी।
जहाँ जहाँ भी चरण पड़े हैं वहीं हो गया उपवन नन्दन,
इन्दुमती माताजी का हम सभी आज करते अभिनन्दन ॥९॥

विद्यामती, सुपार्श्वमतीजी और सुप्रभामती 'अनूप',
चारों का है सघ अनोखा परम शान्तिमय सौम्य स्वरूप।
मिथ्यातम के अन्धकार को दूर कर रही जैसे धूप,
जिनका है चारित्र उच्चतम नेमिप्रिया राजुल अनुरूप।
ऐसी परम साध्वी को है 'डूंगरेश' का शत-शत वन्दन,
इन्दुमती माताजी का हम सभी आज करते अभिनन्दन ॥१०॥

☆

माताजी को प्रणाम है !

(रचयिता : श्री हजारीलाल जैन 'काका' पो० सकरार, झाँसी)

त्याग तपस्या सदुपदेश से जिनका जग मे नाम है,
पूज्य आर्यिका इन्दुमति माताजी को प्रणाम है।

कुछ ऐसी ही निधियाँ तो, इस जैन धर्म की शान है,
स्वयं साधना करके जो, पर का करती कल्याण हैं,
भूलों को सद्‌मार्ग दिखाना ही अब जिनका काम है,
पूज्य आर्यिका इन्दुमति माताजी को प्रणाम है।

इस चारित्र-पतन के युग में जिनने सद्‌उपदेश दिया,
दीक्षित कर भाई बहिनों को आतम हित मे लगा दिया,
कई आर्यिका मुनी बनाकर किया धर्म का काम है,
पूज्य आर्यिका इन्दुमति माताजी को मेरा प्रणाम है।

अड़तीस वर्षों से वर्षा की जिनने आत्मोपदेश की,
सतत साधनों से रक्षा की सदा तपस्वी वेष की,
'काका' वन्दनीय यह गुरुजन सदा सुबह अरु शाम है,
पूज्य आर्यिका इन्दुमति को सौ सौ बार प्रणाम है।

सौ सौ बार नमन है !

(रचयिता : श्री छम्मनलाल 'सरस' सकरार, झाँसी, यू. पी.)

जिनके दर्शन से जन-जन का, होता निर्मल मन है,
ऐसी इन्दुमती माता को, सौ सौ बार नमन है।

(१)

जिसको अब तक डिगा न पाई, वर्षा सर्दी गर्मी,
पिता चनणमल जो-जड़ाव देवी के घर मे जन्मी,
जिसका नाम मोहनीबाई, रखके जग हर्षाया,
मगर मोहनीबाई को यह मोह-मोह न पाया,
सम्वत् उन्नीससौ बासठ का यह प्रिय परम रतन है,
इन्दुमति माता को युग का, सौ सौ बार नमन है।

(२)

आगे की क्या कहें ? वेदना का यह वेद पुराना ?
हुआ अल्प आयु मे परिणय-पर दुर्भाग्य न माना,
हो न सके छह माह पूर्ण, विध ने यो आफत डारी,
होकर शादी-सुदा रह गई, जो कुँवारी की कुँवारी,
पति सुरपुर को गये अचानक, मुरझा गया चमन है,
इन्दुमति माता को युग का सौ सौ बार नमन है।

(३)

अल्प आयु मे परिणय का, परिणाम बना नादानी,
कैसे काटेगी यह जीवन, थी सबको हैरानी ?
उन्नीस सौ बानवे सम्वत् में जय बोले तारे,
डेह नगर में मुनि चन्द्रसागर महाराज पधारे,
तब से अब तक क्रमशः व्रत ले, बना आर्यिका मन है,
इन्दुमति माता को युग का सौ सौ बार नमन है।

(४)

डेह्-गेह तज चली तभी से, डग-डग पर जग हर्षा,
बाग लगाती है विराग के, कर सयम की वर्षा,
क्षण-क्षण जिसको नभ नमता है, कण कण गाता कीरत,
जिसके चरण बनाते जाते, इस धरती को तीरथ,
पाप सिहर जाता जिसको लख, करता पुण्य नमन है,
इन्दुमति माता को युग का सौ सौ बार नमन है।

(५)

आज उन्ही के मूल्याकन का यह कैसा दर्पण है ?
चन्द शब्द कोरे कागज पर, करते हम अर्पण है,
जिस माता ने लाखो का मन सयम से जोडा है,
त्याग-तपस्या का जिसने अध्याय नया जोडा है,
जितना भी जस गायं थोड़ा, कहे 'सरस' का मन है,
इन्दुमति माता को युग का सौ-सौ बार नमन है।

पूज्य आर्यिका इंदुमति को शत-शत बार प्रणाम !

(रचयिता : श्री कल्याणकुमार जैन 'शशि' रामपुर)

भरा तुम्हारे उपदेशो में, आत्मशांति का कोष,
सन्तोषी बन प्राणी मात्र, बरसाया सन्तोष ।
मुक्त मार्ग पर बढता जीवन, परम शान्त निर्दोष,
आश्रयहीन भाग्य पर तुमने, किया न किंचित् रोष ।।
लगने दिया न जीवन को, निष्क्रियता भरा विराम ।
पूज्य आर्यिका इन्दुमति को शत शत बार प्रणाम ।

सञ्चालिका सघ की बनकर, वहन किया गुरुभार,
आत्मार्थी के लिये खुल गये, आत्मोन्नति के द्वार ।
धर्मशून्य प्रागण मे करके, मंगलमयी विहार,
अकथनीय हुआ आपके, द्वारा जो उपकार ।।
बना लिये सम्पूर्ण प्राण, निष्कामी सेवाग्राम ।
पूज्य आर्यिका इन्दुमति को शत शत बार प्रणाम ।

ज्ञानार्जन से प्राप्त कर लिया, आत्म विकास महान् ।
रही आप उपसर्गो मे भी, निश्चल मेरु समान ।
होती अथिर मनस्थितियों की, संकट में पहिचान,
त्याग, तपस्या, द्वारा जीवन, बनता ज्योतिर्मान ।।
आत्मा में गतिशील रहे, आध्यात्मिक प्राणायाम ।
पूज्य आर्यिका इन्दुमति को, शत शत बार प्रणाम ।

जिनके मन में रोष नही, आकांक्षाओं की चाह,
लक्ष्य प्राप्ति के लिये हो रहा, जीवन का निर्वाह ।
आत्म साधना की निधियों से, जीवन बना अथाह,
तुम अपनी जीवन नैया की, आप बनी मल्लाह ।।
पूर्ण परिग्रहरहित, तपोनिधि, द्वन्द्वरहित निष्काम ।
पूज्य आर्यिका इन्दुमति को, शत शत बार प्रणाम ।।

शत-शत वन्दन, शत-शत वन्दन !

(रचयिता : श्री लाड़लीप्रसाद जैन पापड़ीवाल, सवाईमाधोपुर)

हे माँ तुम्हारे चरणों में—
शत-शत वन्दन शत-शत वन्दन ।।

श्री चन्द्रसिन्धु गुरुवर से तुम
जब धर्मामृत का पान किया ।
संसार असार लखा तब ही
सारे वैभव का त्याग किया ।।

क्षुल्लिका की दीक्षा कर ग्रहण
संयम से नाता जोड़ लिया ।
संयम साधन करते–करते
फिर वीर सिन्धु का दर्श किया ।।

जिनवाणी श्रवण करी उनसे,
शेष परिग्रह भी छोड़ दिया ।
आर्यिका की दीक्षा लेकर के,
मुक्ति का मारग जोड़ लिया ।।

निज पर हित में लीन सदा,
रत्नत्रय का करती अर्चन ।
हे माँ तुम्हारे चरणों में
शत-शत वन्दन शत-शत वन्दन ।।

इन्दु शुभ नाम है, धर्मध्यान में लीन ।
लाड निर्मला का नमन, देवो बुद्धि प्रवीन ।।

माता इन्दुमती को मेरा सौ-सौ बार प्रणाम !

(रचयिता : पण्डित कुञ्जीलालजी शास्त्री, सम्पादक-जैन गजट, गिरिडीह)

(१)

बाल वयस् में ही पा लीने वे उत्तम सस्कार,
नारी जीवन धन्य बन गया, कर सयम स्वीकार,
अति पुनीत नवनीत सुकोमल ऐसा हृदय विशाल,
जिसको पा आधार, भक्त हो जाते सहज निहाल।
शान्तमूर्ति अवलोकन करते, होते शुचि परिणाम,
माता इन्दुमती को मेरा सौ सौ बार प्रणाम ।।

(२)

कितनी पावन छांह तुम्हारी, शीतल होता मन,
पुलकित रोम-रोम हो जाता, निरखत मुदित वदन।
हो साकार पूत रत्नत्रय, वात्सल्य की मूर्ति,
पावन दर्शन से मिट जाती नयनो की चिरभूख।
उनका है सौभाग्य, पा गये चरणो मे विश्राम,
माता इन्दुमती को मेरा सौ सौ बार प्रणाम ।।

(३)

जग का शरण छिन गया जिनका, उनको शरण दिया,
भोगों के कर्दम से तुमने, बाहर खीच लिया।
संयम के सुरभित उपवन में उनको बिठा दिया,
अक्षय मधु निज आत्मसुधा का तुमने पिला दिया।
बना दिया माँ तुमने उनको पावन सुयश निधान,
माता इन्दुमति को मेरा सौ सौ बार प्रणाम।

(४)

माँ सुपार्श्वमति तुमको पाकर चमक गई हीरा सम,
देखो कैसा योग मिल गया, मणि-काञ्चन यह अनुपम।
आज झर रहा जिन-वचनामृत जिससे झर-झर-झर-झर,
पीकर भव्य कर रहे शीतल, अपना सन्तापित उर।

चाह-दाह मिट गई, मिल गई सुखकर तृप्ति महान,
माता इन्दुमती को मेरा सौ सौ बार प्रणाम ।।

(५)

आज तुम्हारा यश लिखकर के अक्षर अमर हुए,
धुलकर कलुषभाव अन्तर के निर्मल सरल हुए ।
आज तुम्हारा अभिवादन कर, अभिनन्दित मन है,
माँ तेरी पद-रज मेरे माथे का चन्दन है ।
पाने को आशीष झुके हैं अगणित भाल ललाम,
माता इन्दुमती को मेरा सौ सौ बार प्रणाम ।।

✡

हे इन्दुमती !

(रचयिता : कुमारी कल्पना जैन, बी० ए०, खुरई, सागर)

हे इन्दुमती ! तुम राजमती बन जाओ ।
निज व्रत सयम की विजय ध्वजा फहराओ !!
तुम बनो चन्दना आर्य गणी आदर्शी !
तुम बनो स्वानुभव दशा मोक्ष स्पर्शी !!
नर ही क्या ? सुर भी करे भव्य अभिनन्दन !
तुम बनो आर्ये ! जिनवाणी का चन्दन !!
स्वीकारो मेरी यह प्रशस्ति हे माता !
निज से जुड, पर से टूट जाय जग नाता !!
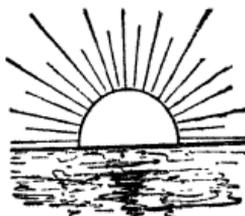
मां इन्दु शत-शत अभिनन्दन !

(रचयिता : संघस्था कुमारी प्रमिला, एम० ए० शास्त्री, शोध छात्रा)

स्वीकारो मां इन्दु अभिनन्दन !
अभिनन्दन शत शत अभिनन्दन !!

तुम सत्य अहिंसा दया धर्म, तप और त्याग की वृहद् पुंज,
वात्सल्य प्रेम निश्छल ममता, संयम साहस की सुरभि कुंज,
तुम आत्म शक्ति की अमिट स्रोत गंगा सा पावन निर्मल मन,

स्वीकारो मा इन्दु अभिनन्दन ।
अभिनन्दन शत शत अभिनन्दन !!

इन्दु सम शान्त सरल रह कर, सुधा तरल बरसाती तुम,
बाटी समता की शान्ति-सुधा, पी गई विषमता का विष तुम,
हे मात ! तुम्हारी कीर्ति गंध, जग मे फैली, ज्यों चन्द्र किरण,

स्वीकारो मा इन्दु अभिनन्दन !
अभिनन्दन शत शत अभिनन्दन !!

तुम चरित्र की उज्ज्वल प्रतिमा, ज्ञानप्राप्ति की दिव्य साधना,
सम्यक्त्व-शील की अमित कोष तुम, और व्रत पालन सजग भावना,
तुम पद कमल मे विश्वास अडिग, 'प्रमिला' का अर्पण तन-मन-धन,

स्वीकारो मा इन्दु अभिनन्दन !
अभिनन्दन शत शत अभिनन्दन !!

कोटि नमन है माता !

(रचयिता : सौ० पुत्रीदेवी, जबलपुर)

इन्दु किरण सी चमके जग मे, इन्दुमतीजी माता ।
कोटि नमन है तुम चरणो में, कोटि नमन है माता ।।

चन्दनमलजी तात तुम्हारे, जड़ावबाईजी माता ।
उनके घर-आंगन में खेली, सब जन-मन सुख साता ।।

डेह ग्राम मे बजी बधाई, जब तुम जन्मी माता ।
कोटि नमन है तुम चरणों मे, कोटि नमन है माता ।।

✤

नाम मोहिनी सब जग मोहे, मूरत सुखद सुहानी ।
बारह वर्ष की लख बाबुल ने, ब्याह करन की ठानी ।।

डेहनिवासी चपालालजी सुन्दर सा वर पाया ।
परिजन, पुरजन, सब हर्षित हो मंगल साज सजाया ।।

छह महीना तुम रही सुहागन, बदले भाग्यविधाता ।
कोटि नमन है तुम चरणो में, कोटि नमन है माता ।।

✤

सतप्त, शोक मे डूबी तुम, गुरु 'चन्द्र' ग्राम मे आये ।
हर्षित होकर नमस्कार कर, चरणन शीश नवाये ।।

विमुख कषायो से होकर, त्यागव्रत तुम धार लिया ।
पंच प्रतिमा धारण करके, व्रती-जीवन स्वीकार किया ।।

साधु जगत में अनुपम सुख है, सग चलो तुम माता ।
कोटि नमन है तुम चरणो में, कोटि नमन है माता ।।

✤

क्षणभगुर इस जग को समझा, सयम से अनुराग भया ।
छोड़ उदासी, गृह की फासी, मन वैराग्य समाय गया ।।

'चन्द्र' गुरु से दीक्षा धारी, बनी आर्यिका माता ।
कोटि नमन है तुम चरणों में, कोटि नमन है माता ।।

ब्रह्मचारिणी थी जब माता, साहस की एक कथा बड़ी ।
जंगल बीच गुफा के माँहि, ध्यान किया गुरु उसी घड़ी ।।

✤

बहुत समय हो गया श्रीगुरु, वापस अभी नही आए ।
चिंतित संघ हुआ तब ही, मन ही मन में सब घबराये ।।
सिंह गर्जना करती माता, तुम जंगल की ओर बढ़ी ।
साहस साथी कर में लाठी, पीछे पीछे भीड़ चली ।।
मंत्रोच्चारण कर गुरुवर ने, संकेत किया तुम्हे माता ।
कोटि नमन है तुम चरणों मे, कोटि नमन है माता ।।

✤

नर-नारी गद्‌गद हो जाते, जो भी दर्शन पाते ।
अज्ञान नसे मिथ्या अंधियारी, सम्यक् श्रद्धा लाते ।।
मातुश्री के सद्‌वाक्यों को हृदयंगम कर लेते ।
मूक केवली, श्रुत केवली, जैसी उपमा देते ।।
संघ तुम्हारे अद्‌भुत ज्योति, सुपार्श्वमतीजी माता ।
कोटि नमन है तुम चरणों में, कोटि नमन है माता ।।

✤

कर बिहार तुम नगर-नगर में धर्म की वर्षा करती ।
जैन-अजैनो के हृदयों में धर्म के अंकुर भरती ।।
बजा दिया जिनधर्म का डंका, जन-जन में चहुं दिश में ।
बीस जिनेश्वर मोक्ष पधारे, आय गई मधुवन में ।।
कुशल पूर्वक संघ संचालन करती हो तुम माता ।
कोटि नमन है तुम चरणो मे, कोटि नमन है माता ।।

उन्ही आर्यिका इंदुमतीजी का अभिनंदन है

(रचयिता : श्री पवन पहाड़िया, डेह)

पाकर जिनकी शुभ्र चाँदनी, शीतल होता मन है ।
उन्ही आर्यिका इन्दुमतीजी का अभिनन्दन है ।।

यथा नाम तथा गुण वाली कहावत यहाँ सच पाते ।
उपदेशामृत का एक बार जो पान यहाँ कर जाते ।
कैसा प्रेम, शितलता कैसी इनके समझाने में,
बड़े-बडे भी अँगुलियो को दाँतों बीच दबाते ।

चरण शरण अनेको आते जान-जान चन्दन है ।
उन्ही आर्यिका इन्दुमतीजी का अभिनन्दन है ।।१।।

इतनी वय में भी चर्या मे, कभी प्रमाद न फटका,
असम प्रांत तक के विहार मे. रहा न कोई खटका ।
इससे पहले जैनधर्म का वहा प्रचार नही था,
वह भी भक्त बना चरणो का था अब तक जो भटका ।

दुखियो का दुख मेट शात करती उनका क्रन्दन है ।
उन्ही आर्यिका इन्दुमतीजी का अभिनन्दन है ।।२।।

जैनधर्म की जड आपको पाकर विकसी फैली,
इनको हरी-भरी रखने मे बहु विपदाएँ झेली ।
तन-मन न्योछावर है इस पर ये नित बढती जाएँ,
ताकी इसकी उजली चादर कभी न होवे मैली ।

आत्म-उद्धार, धर्म प्रचारा हरषे देख पवन है ।
उन्ही आर्यिका इन्दुमतीजी का अभिनन्दन है ।।३।।

श्री १०५ इन्दुमती माताजी के प्रति

(रचयिता : श्री जयचन्दलाल पांड्या, मेनसर वाला)

मारवाड नागौर जिला मे "डेह" नगर है भारी ।
है ऐतिहासिक जगह अठैरी शोभा है न्यारी ।।

"चम्पावती" नगरी नाम पुराणो सुणने में आवे ।
कुवा बावड़ी भरया नीर सूं सबरे मन भावे ।।

बीच शहर के बण्या दो मन्दिर इक नसियां भारी ।
मूरति पारसनाथ प्रभु री लागे घणी प्यारी ।।

इसी गाव मे बंश "पाटनी" "चन्दनमलजी" तात ।
बांके घर में जन्म लियो थे, "जड़ाव" देवी मात ।।

जन्म नाम थारो बाई "मोहनी" जाणे सगला लोग ।
कर्म रेख पर मेख न लागै, होग्यो पति वियोग ।।

घर-गृहस्थी मे मन नहिं लाग्यो, छोड दियो घर-बार ।
कुटुम्ब कबीला सब स्वारथ रा ओ ससार असार ।।

"चन्द्रसिन्धु" मुनिवर से क्षुल्लिका-दीक्षा लीनी धार ।
गांव गांव और नगर नगर मे करता रह्या विहार ।।

"वीर सिंधु" आचारज को सघ नागौर नगर मे आयो ।
सुदि आसोज दशम के दिन, व्रत अरजका धारयो ।।

"इन्दुमतिजी" नाम आपको गुरुवर ने बतलायो ।
पंच महाव्रत धार आपने, आछो नाम कमायो ।।

गांव गांव में कर विहार, थे जैन धरम चमकायो ।
भूल्या भटक्या राही ने थे साचो मार्ग बतायो ।।

आवागमन नही मुनियांरो, बंग विहार के माही ।
कर विहार इस भूमि पर थे सिह वृत्ति दिखलाई ।।

कर विहार बंगाल प्रान्त में करयो अनोखो काम ।
चौमासो "धुलियान" नगर कर, करयो अमर थे नाम ।।

फेर बठै से बारसोई और गांव कानकी आया ।
चौमासो "किसनागंज" कर थे सबके मन भाया ।।

सुपार्श्वमति और विद्यामतिजी श्री सुप्रभामति मात ।
सघ संचालिका थे, थारी अे रेवै हरदम साथ ।।

करे विनती हाथ जोड कर "जय" हो माता थारी ।
करदयो बेडो पार म्हारो थे अरज सुणो हो म्हांरी ।।

(रचयिता : श्री शांतिलाल बडजात्या, अजमेर)

अहो भाग्य इस भरतक्षेत्र का, जन्मी इन्दुमती माता ।
रत्नत्रय की जीवित मूरत, प्रबल प्रभावक विख्याता ।।

स्वकीय वंश को कर पावन, वैधव्य का जिसने लाभ लिया ।
चन्द्रसिन्धु से प्रेरित होकर, संयमपथ को साध लिया ।।

बडभागिन ने निज जीवन मे, निज-पर के उपकार किये।
पढो अश कुछ उसके भविजन, इसी ग्रन्थ मे, मुदित हिये ।।

अजयमेरु पावन माटी भी, इन चरणो से हुई पवित्र ।
'सुपार्श्वमती' 'विद्यामती' आर्या, मूरत ज्ञान और चारित्र ।।

'सुप्रभा' फिर जुडी आपसे, पुण्योदय था हम सबका ।
सकलराष्ट्र मे कर विहार, तब ध्वज लहराया जिनवर का ।।

पूर्वाञ्चल में वीर प्रभु के, बाद गये ये गणिनीजी ।
हुई प्रभावना अति ही भारी, बना काल वह स्वर्णिमजी ।।

यह पुनीत अभिनन्दन करने, सकल जैन जन नमते हैं ।
दीर्घायु हो बने यशस्वी, विनय प्रभू से करते हैं ।।

शत-शत अभिनन्दन पद वन्दन !

(रचयिता : श्री मांगीलाल सेठी 'सरोज' सुजानगढ़)

इन्दुमती माताजी का शत-शत अभिनन्दन पद वन्दन !

दुहिता मात 'जडावदेवि' की डेहनिवासी पितु 'चन्दन' ॥

ममतामयी 'मोहनी' कन्या, बारह वर्ष वयस दी ब्याह ।

तीव्र पाप के उदय रूप हो, पतिवियोग का दुःख अथाह ॥

मात्र मास छह रही सुहागिन, भोग-राग सब दिये बिसार ।

तात मात भाई परिजन के, दुःख का रहा न कोई पार ॥

जीवन मे संयम अपनाया, श्री जिनभक्ति अपार हिये ।

काललब्धि वश आ सुजानगढ, 'चन्द्रसिन्धु' गुरु दरश किये ॥

शत वन्दन कर गुरु चरणों में, दूजी प्रतिमा के व्रत लेय ।

तब फिर सप्तम प्रतिमा क्रमशः, बनी क्षुल्लिका 'इन्दुमतेय' ।

शरीरान्त जब 'चन्द्रसिन्धु' का हुआ शरण गुरु 'वीर' गहेय ।

तप-जप में निशदिन तत्पर रह, संयम साधन कठिन करेय ॥

अश्विन मित दशमी संवत् द्वय सहस रु छह 'नागौर' मँझार ।

भिन्दन कर्मशत्रुगण गुरु ढिग, बनी आर्यिका शिव सुखकार ॥

नंदिनि 'हरकचन्द' की 'भँवरी', पतिवियोग से व्यथित महान ।

दग्ध हृदय, पति गुम होने से 'शान्ति' सुता 'नेमीचन्द' जान ॥

नव जीवन हित बनीं आर्यिका, प्रेरक इन्दुमती गुणखान ।

पहली दीक्षित 'वीरसिन्धु' से माँ 'सुपार्श्वमति' अति विद्वान ।।

दलन कर्म अरि 'शिवसागर' से 'शान्ति' बनी 'विद्यामति' माय ।

वंदन कर माँ इन्दुमती को 'सुप्रभमति' संघ साथ रहाय ।।

दत्त चित्त रत्नत्रय पाले, सघ विशिष्ट आर्यिका चार ।

नव हितमित उपदेश सु-रवि से, वृष-'सरोज' विकसे हितकार ।।

❖

काव्याञ्जलि

(रचयिता : श्री निर्मल आजाद, प्रधान सम्पादक, विद्यासागर पत्रिका; जबलपुर)

पश्चिमाञ्चल मे उदय हुआ
मध्य मे हुआ सबेरा;
पूर्वाञ्चल मे कीर्ति फैली
देश बना सब चेरा ।

जिनवाणी प्रचार हो घर-घर
यही लक्ष्य था मन में;
तन कोमल भावना दृढ थी
श्री इन्दुमती के मन मे ।

नारी ! जिसे कहते अबला सब
बनी गुणो की आर्यिका, माता;
स्याद्वाद का बिगुल बजाया
सारा जग जिसके गुण गाता ।

फूल सी कोमल काया से ही
जन-जन का उपकार किया;
भटकों को भी राह दिखाकर
संयम मार्ग प्रशस्त किया ।

इसीलिये हम नमन कर रहे
इन्दुमती हे गुणों की खान;
जिसने जैनधर्म का डंका
बजाया, भारत देश महान ।

❖

अभिनन्दन !

(रचयिता : श्री पवन पहाड़िया, डेह)

आर्यिका इन्दुमतीजी,
कहता जिन्हे समाज ।
उनके अभिनन्दन के लिए,
बना ग्रन्थ यह आज ।।१।।

मधुरभाषिणी धैर्यशालिनी,
संघ सचालिनी आप ।
दिशाबोधिनी हो जन-जन की,
धरम पथ पर आप ।।२।।

सद्उपदेश सभी भटकों-
को देकर राह दिखाती ।
धर्म ज्योति प्रज्वलित करने,
जलती बनकर बाती ।।३।।

बच्चे बूढे हों युवा,
सबकी बनी सहायक ।
जन-जन का उपकार किया,
इसमे है न जरा भी शक ।।४।।

प्यारी इनको एकता,
सकल विश्व हो एक ।
जगती में हो शांति फिर,
बने सभी जन नेक ।।५।।

बस आलस से दुश्मनी,
क्षण भी जाए न व्यर्थ ।
आतमहित तत्पर रहे,
तब जीवन का अर्थ ।।६।।

सादा जीवन संयमी,
त्यागी सा हो भेष ।
धर्मध्यान की अधिकता,
है इनका उपदेश ।।७।।

त्याग तपों में आपके,
जाते दिन औ रात ।
क्षण भी सुमिरण के बिना,
निकल जाय क्या बात ।।८।।

सबसे पहले आप ही,
पहुँची थी आसाम ।
जैन धर्म प्रचार का,
वहाँ यह पहला काम ।।९।।

सकल जगत है जानता,
आज आपका नाम ।
श्रद्धा से तव चरण में,
करते सभी प्रणाम ।।१०।।

"पवन" अभिनन्दन करे,
लेकर सबको साथ ।
चढ़ती बढती ही रहे,
मातेश्वरि दिन रात ।।११।।

हे अम्ब ! तुम्हारा है शत-शत वन्दन !

(रचयिता : पं० फूलचन्द जैन शास्त्री, जोरहाट—आसाम)

हे इन्दु तुम्हारा है, शत-शत वन्दन !
पग तर नत हो हम करते हैं अभिनन्दन !

यौवन वय में तुमने संयम को अपनाया ।
विषय भोग वैभव सुख को तुमने ठुकराया ।।
असिधारा की तेज धार पर, अपना कदम बढ़ाया ।
पुनीत किया मानव-जीवन चन्द्र-सूर्य चकराया ।।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरण का करती है चिन्तन ।
हे इन्दु तुम्हारा है शत-शत वन्दन ।।१।।

असम देश की धरा आज पुलकाती ।
निर्ग्रन्थ भेष लखि अति मन हरषाती ।।
आबाल वृद्ध सब जनमानस पग तर आये ।
श्रद्धा के दो सुमन समर्पित करने लाये ।।

निज-पर हित मे तुमने सर्वस्व किया अर्पण ।
हे अम्ब ! तुम्हारा है शत-शत वन्दन ।।२।।

मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चरण दुःख देते ।
देवों तक भी तो देखो खुद वे रोते ।।
पिता पुत्र भगिनी पत्नी सुत पोते ।
क्या कभी ये सब आतम-सुख देते ।।

आतम-सुख पाने को तुमने किया तत्त्व मन्थन ।
पग तर नत हो हम करते है अभिनन्दन ।।३।।

पद-विहार कर जनमानस को सम्यग्बोध कराती ।
सत्य-अहिंसा-भ्रातृ-प्रेम अरु सदाचार सिखलाती ।।
सदियों से असमदेश की जनता थी अति प्यासी ।
इसीलिए तो घूम रही हो अमृतपान कराती ।।

हे अम्ब ! जिओ सदियों तक, हम करते हैं अभिवादन !
हे इन्दु ! तुम्हारा है शत-शत वन्दन ।।४।।

अभिनन्दन

(रचयिता : श्री दुलीचन्द पाटनी, डेह)

माताजी श्री इन्दुमतीजी को अभिनन्दन बारम्बार ।
अल्प वयस मैं ही थे जाण्यो काई है जीवन को सार ।।

बचपन सूं ही थामैं माता धर्म-कर्म को गाढ़ो नेह ।
चन्द्रसागरजी का उपदेसा को बरस्यो (जद) मरुधर मे मेह ।।
दुनियां सब मतलब की है अर नाता झूठा हुयो विचार ।
दीक्षा लेकर तप मै तपग्या, छोड दिया सारा घर-बार ।।

म्हारे मनमें विचार हुयो, माताजी क्यू छोडचो परिवार ?
ए काई चावै है जो करड़ो व्रत लियो मन मै धार ।

माताजी का कथन—

'मोटर ना बगला चावूं, झूमका न हार चावूं ।
बस तप मैं लीन होकर, आतम रो ज्ञान चावूं ।।
कर्मा नै काट कर मैं शिवपुर मुकाम चावूं ।
जनम-मरण होवे नहीं, सबको कल्याण चावूं ।।

साँची पूंजी धरम की है और सब कुछ बेकार ।
वीर का पथ पर चाल, र करो स्व-पर उपकार ।।"

धन्य ! धन्य ! हो माताजी थे, धन्य है तपस्या थारी ।
मेटो सबकी दुःख की घड़िया, करमा रो बोझ भारी ।।
वन्दना है आपनै माताजी ! अभिनन्दन करै नर-नारी ।
आगम को दीप जलतो रेवै, जिनभक्ति है गुणकारी ।।

इ० सु० वि० सु० को संघ गाव-गाव मैं करै धर्मप्रचार ।
ज्ञान-गगा बहती रेवै, 'दुलेश' को करो बेडो पार ।।

वैधव्य हो गया धन्य-धन्य, जब धरा आर्यिका का स्वरूप।

(आर्यिका सुपार्श्वमती)

शशि सम शीतल मां इन्दुमती, है नाम तुम्हारा अतिसुखकर।
सन्तापित जन पा लेता है शीतलता उर में निज हितकर ॥१॥

गुणगान करूं किस मुखसे मैं तुम गङ्ग-सलिल की धारा हो।
हिय का हरने सन्ताप सभी, पीयूषोपम सुखकारा हो ॥२॥

तुम हो करुणा की शुभ मूरत, हो मूर्तिमान शुचि रत्नत्रय।
नवनीत पुनीत हृदय कोमल, मिट जाते जिससे सारे भय ॥३॥

तेरे विहार से हे जननी, यह पूत हो गई वसुन्धरा।
जिसने तेरा दर्शन पाया, उसका कल्मष सब गया हरा ॥४॥

पा 'चन्द्रसिन्धु' गुरु की आशिष, तुम निर्मल चन्द्र समान हुई।
धोकर सारे कालुष उर के, तुम रत्नत्रय स्नात हुई ॥५॥

है धन्य आपका निर्मल तप, अति भव्य तुम्हारा वर्तन है।
युग-युग तक याद करेंगे भवि, ऐसा पवित्रतम जीवन है ॥६॥

तेरी करुणा का पा कटाक्ष, मेरी पर्याय हुई पावन।
बन गई पथिक शिवपथ की मैं, सब काट दिए ममता बन्धन ॥७॥

जो जीवन का अभिशाप रहा, बन गया वही वरदान रूप।
वैधव्य हो गया धन्य-धन्य जब धरा आर्यिका का स्वरूप ॥८॥

दुर्भाग्य, तुम्हारी करुणा से, सौभाग्य बन गया मां मेरा।
इसलिये तुम्हारे चरणों में, है बार-बार वन्दन मेरा ॥९॥

मेरे माथे पर मां तेरा शुभ वरद हस्त चिरकाल रहे।
तेरे आशिष की पूत सुधा, वर्षा करती शत साल रहे ॥१०॥

☆

शीलधर्म समलंकृत नारी जीवन पूजा जाए।

(रचयिता : श्री वीरेन्द्रप्रसादजी जैन, सम्पादक : 'अहिंसा–वाणी' अलीगंज (एटा) उ० प्र०

सेवा-शील व सहनशीलता की प्रतिमा जो न्यारी।
स्नेह-सुधा की जीवन-धारा-उद्‌गम-स्रोत सु-नारी।।

शोभा का शृंगार, प्रकृति ने जिसका रूप रचाया।
तथा नीति ने शीलाभूषण जिसको है पहनाया।।
धर्म-काम पुरुषार्थ प्रसाधक, मानव-शक्ति प्रदात्री।
एकाकी नर के जीवन को बन जाती सह-यात्री।।

सत्श्रद्धा कल्याण मानवी-सुन्दरता-फुलवारी।
सेवा-शील व सहनशीलता की प्रतिमा जो न्यारी।।

रूप-राशि, मानवी-प्रेरणा, ललित कल्पना-कविता।
नाना रूप दिखाते जिसके, पत्नि-भगिन[1]-मां-ममता।।
सूर्योदयकर प्राची-दिशि-सी, महाजनों की जननी।
रत्न-खानि रत्नारी रत्ना, महिमा की क्या कथनी ?

गरिमा की यह गौरव गाथा, महतादर्श-विहारी।
सेवा-शील व सहनशीलता की प्रतिमा जो न्यारी।।

चारित-हीन भले अबला हो, वह ससार बढ़ाये।
पर चरित्र-दृढ महिलाओं का सबला रूप दिखाये।।
ब्राह्मि-सुन्दरी और अंजना, सीता-चन्दनबाला।
सुदृढ अनन्तमती मैना भी, रूप-चरित-गुणमाला।।

सत्सतीत्व नारीत्व पूज्य है, स्वर्ग-भूमि-अवतारी।
सेवा-शील व सहनशीलता की प्रतिमा जो न्यारी।।

---

१. भगिनी।

कोमलांगि ने शौर्य-वीर्य का सत्स्वरूप दर्शाया ।
साहस-हीन कायरों को भी अति साहसी बनाया ।।
संघर्षों-उपसर्गों को जय कर उत्सर्ग दिखाया ।
त्याग-तपस्या प्रखर बनाकर, निज आदर्श जमाया ।।

श्रमकी सफल साधिका नारी, परम धर्म-धी-धारी ।
सेवा-शील व सहनशीलता की प्रतिमा जो न्यारी ।।

है अतीत जिसका यश गाता, गाए नहीं अघाये ।
शीलधर्म समलकृत नारी जीवन पूजा जाये ।।
गृहीधर्म-धात्री गृह-लक्ष्मी, गृह को स्वर्ग बनाये ।
दान-धर्म की धुरी, मनुजता का विकास पनपाये ।।

धन्य श्राविका-आर्या-व्रत-रत, पावनता बलिहारी ।
सेवा-शील व सहनशीलता की प्रतिमा जो न्यारी ।।

स्वागत !

✽ श्री फूलचन्द सेठी, मंत्री श्री दिगम्बर जैन समाज, डीमापुर✽

अपरिग्रह और अनासक्ति की अद्वितीय उपासिका, त्याग और तपस्या की सजीव मूर्ति, मुक्तिपथ की अनुगामिनी परम पूज्य आर्यिका रत्न १०५ श्री इन्दुमती माताजी के संघ सहित डीमापुर प्रवेश से जैन समाज के इतिहास में एक नये अध्याय का श्रीगणेश हुआ है। यह हम सब नगरवासियों का परम सौभाग्य है जो हमें पूरे चार माह तक जिनवाणी का अविरल रस पान करने को मिलेगा।

विहार करते हुए आपने मार्ग में अगणित भव्य जीवों का उपकार किया है। आपकी सौम्य मुखमुद्रा भौतिकता से सन्तप्त ससारी प्राणियों का सही मार्गदर्शन करती है।

डीमापुर एवं आस-पास के निवासियों का यह परम सौभाग्य है कि पूज्य आर्यिकाओं के पावन उपदेशों से उन्हे भी समीचीन मार्ग की ओर अग्रसर होने का अवसर प्राप्त होगा।

मैं देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि आर्यिका संघ का डीमापुर चातुर्मास एव प्रवास सबके लिये मंगलकारी हो एवं विश्वशान्ति के लिए समर्पित हो।

पूज्य आर्यिका श्री के चरणों में नमोस्तु।

✽ दिनाक २ अक्टूबर १९७६ को सभास्थल पर पूज्य माताजी का उपदेश सुनते-सुनते श्री फूलचन्दजी सेठी ने अपने नश्वर शरीर का त्याग कर दिया।

✽

अभिवन्दन !

✽ दशम प्रतिमाधारी ब्र० लाडमल जैन

पूज्य आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती जी से मेरा परिचय काफी पुराना है। संवत् ९४ में जब आ० क० चन्द्रसागरजी महाराज का आगमन जयपुर में हुआ था तब मैंने शुद्ध जल के नियम लिये थे। ब्र० मोहनी बाई (वर्तमान आर्यिका इन्दुमतीजी) चौका लगाया करती थीं। मुझ पर उनका बड़ा वात्सल्य भाव था। उन्हीं की प्रेरणा से मैं संयम के पथ पर अग्रसर हुआ हूँ। ब्र० मोहनी बाई ने बडी जल्दी-जल्दी संयम मार्ग पर कदम बढ़ाए और आज वे जैन समाज की आदर्श आर्यिका रत्न हैं।

उनके द्वारा भारत के सुदूर पूर्व में जिनधर्म की महती प्रभावना हुई है। सम्पर्क में आने वाला कोई भी स्त्री पुरुष उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। प्रारम्भ से ही वे कठोर संयमी रही हैं शिथिलाचार उन्हें स्वीकार नही। आज वृद्धावस्था में भी वे अपनी चर्या में सजग हैं।

ऐसी आदर्श आर्या के दीर्घजीवन की कामना करता हूँ और वन्दामि निवेदन करता हूँ।

प्रतिष्ठा और प्रभावना

(श्री वीरकुमार जैन, क्षेत्रीय मंत्री, श्री दिगम्बर जैन बीसपंथी कोठी मधुवन, शिखरजी)

बहुत दिनों से मेरा विचार मधुवन बीसपन्थी कोठी में एक जिनबिम्ब स्थापित करने का था। मैं उसको पंचकल्याणक प्रतिष्ठा भी मधुवन में ही करना चाहता था। मेरे भाव हुए कि यह पुनीत कार्य यदि परम पूज्य इन्दुमती माताजी के संघ के सान्निध्य में हो तो अति उत्तम रहे। मैं इसी भावना को लेकर पूज्य माताजी के पास भागलपुर आया। मैंने पू० आर्यिका श्री सुपार्श्वमती माताजी के समक्ष अपना मनोगत निवेदन किया; उन्होंने सहर्ष स्वीकृति प्रदान की और तुरन्त ही पूज्य इंदुमती जी के सामने मेरा विचार प्रकट किया। पूज्य माताजी ने भी मुझे आश्वस्त किया तो मैं लौट कर पत्रिका आदि छपाने व अन्य आवश्यक कार्यों में जुट गया।

इस बीच गयाजी व कोडरमा के श्रावक बन्धुओं ने माताजी व संघ को अपने यहां ले चलने के प्रस्ताव किये परन्तु माताजी का एक ही उत्तर होता था कि साधु सत्यमहाव्रतधारी होते है अत: उन्हे अपने वचनों का पालन अवश्य करना चाहिये। वे अन्य सभी आग्रहों को टाल कर प्रतिष्ठा की तिथि १९ जनवरी, १९८० के ५ दिन पूर्व ही संघ सहित मधुवन पधार गईं। अपार हर्षोल्लासपूर्वक बड़ी धूमधाम के साथ संघ को लाकर बीसपंथी कोठी में ठहराया।

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में भगवान के माता-पिता बनने के लिये आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण करना अनिवार्य होता है। अत: प्रतिष्ठा समारोह से पूर्व ही हम दोनों (पति-पत्नी) ने पूज्य माताजी के श्रीचरणों मे सहर्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया। अगाध विद्वत्ता के साथ साथ सरलता, सौम्यता और वात्सल्य–माताजी के इन गुणो का परिचय मुझे उस अवसर पर विशेष रूप से हुआ।

विधि-विधान का सम्पूर्ण कार्य आर्यिका संघ के सान्निध्य मे प्रतिष्ठाचार्य पण्डित मुन्नालाल जी सिवनी वालों ने विशेष धर्मप्रभावना पूर्वक सम्पन्न करवाया। प्रतिष्ठाकार्य में गया, कोडरमा और हजारीबाग की जैनसमाज का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ था।

पूज्य माताजी अपने संघ सहित महोत्सव पर पधारी; यही सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण बात रही और इसी से यह प्रतिष्ठा विशेष प्रभावनापूर्वक सम्पन्न हुई। सम्पूर्ण संघ से मुझे अपार वात्सल्य मिला जिसके लिए मैं सबका चिरकृतज्ञ हूं।

पूज्य माताजी की प्रेरणा से मैंने दूसरी प्रतिमा के व्रत भी ग्रहण किये है और उनके आशीर्वाद से सयम के इस पुनीत मार्ग पर आगे बढ़ने की भावना भी है।

पूज्य माताजी अपनी तपस्या के साथ बढ़ती हुई ज्ञान ज्योति से जन जीवन को दीर्घकाल तक प्रकाशित करती रहे, यही कामना करता हूं। नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु।

वात्सल्यमूर्ति माताजी

—पण्डित रतनचन्द जैन शास्त्री, ईसरी बाजार

परम पूज्य १०५ आर्यिका श्री इन्दुमती माताजी ने कलकत्ता चातुर्मास के अनन्तर, आसाम प्रान्त के कुछ बन्धुओं के अनुरोध पर वहां के दुर्गस्थलों में संघ सहित विहार करने की स्वीकृति प्रदान कर अदम्य उत्साह का परिचय दिया था। क्योंकि इस प्रदेश की नाना विषमताओं को ज्ञात कर कोई भी त्यागी-तपस्वी इस प्रान्त में विहार करने का साहस नहीं करता था। माताजी ने जनकल्याण की भावना से प्रेरित हो इस प्रदेश में विहार करने का साहसिक निर्णय लिया और लगातार छह वर्षों तक इस क्षेत्र में परिभ्रमण किया।

इन छह वर्षों में आपने संघ सहित भारत के पूर्वी सीमान्त में बसे हुए डिब्रूगढ़, तिनसुकिया, जोरहाट, शिवसागर, गौहाटी, विजयनगर, धुबड़ी आदि शहरों में एवं सम्पूर्ण ग्रामांचल में पदयात्रा करके महती धर्मप्रभावना की। यहाँ सदियों से बसे हुए जैन व जैनेतर समाज को अपने नगर में सन्मार्गदर्शक आर्यिका संघ के पदार्पण से असीम आनन्द एवं उल्लास हुआ। आर्यिकाओं के प्रवचनों में हजारों की संख्या में उपस्थित होकर सबने धर्मश्रवण का लाभ लिया और अपने जीवन को धर्ममय बनाया।

पूज्य इन्दुमती माताजी को जिनेन्द्रभाषित चारों अनुयोगों का साधिकार विशद ज्ञान है। संघ में सतत स्वाध्याय चलता रहता है। पूज्य माताजी अत्यन्त वृद्धावस्था के कारण अब अधिक देर तक बोल नहीं पाती हैं। अतः आपके आदेशानुसार आपकी प्रमुख शिष्या १०५ श्री सुपार्श्वमती माताजी अपने सरल, हृदयग्राही और दृष्टान्तों से परिपूर्ण आगमोक्त कल्याणकारी प्रवचनों द्वारा जनता को सम्बोधित करती हैं। अन्य शिष्याएँ श्री १०५ विद्यामती माताजी और श्री १०५ सुप्रभामती माताजी भी समय-समय पर प्रवचनों द्वारा जनमानस को चिन्तन की सही दिशा का परिज्ञान कराती हैं।

इस प्रान्त में आपके प्रभाव से जनता में अपूर्व धर्मप्रभावना प्रकट हुई है। फलस्वरूप, नवीन मन्दिर निर्माण, चैत्यालयस्थापन, वेदी प्रतिष्ठा और पंच कल्याणक जैसे महान् कार्य भी सम्पन्न हुए हैं। सभी जगह प्रवासी जैन समाज ने तथा स्थानीय समाज ने संघ के स्वागत में अपूर्व उत्साह दिखलाया है। मुझे आसाम प्रान्त में होने वाले प्रत्येक वर्षायोग में माताजी की चरणसेवा में रहने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है।

मुझे आर्यिका संघ की खण्डगिरि-उदयगिरि की यात्रा के समय चार माह तक साथ रहने का भी अवसर प्राप्त हुआ था। संघ मधुवन शिखरजी से रवाना होकर एक माह में खण्डगिरि पहुंचा

था। खण्डगिरि में एक माह तथा कटक मे एक माह रुक कर वापिस एक माह मे मधुवन पहुंचा था। वापसी में बोकारो चास में आपके सान्निध्य में नवीन जिन मन्दिर का शिल्यान्यास भी हुआ था।

इस यात्रा में मैंने देखा कि वृद्धा इन्दुमती माताजी रुग्ण होने पर भी तीर्थ भक्ति की भावना से प्रेरित होकर सबसे आगे चलती थीं। प्रतिदिन १८–२० किलोमीटर चलने पर भी आपके उत्साह में किसी प्रकार का अन्तर नही आता था। खण्डगिरि के समीप पहुंच कर तो आपने २२ किलोमीटर की यात्रा पूर्ण करके जिनेन्द्र भगवान के दर्शनोपरान्त ही विश्राम ग्रहण किया था।

इसी यात्रा में मुझे माताजी के स्वभाव का भी निकट परिचय प्राप्त हुआ। माताजी का स्वभाव बालकवत् अत्यन्त सरल है। उत्तम क्षमा की आप साक्षात् मूर्ति है। आपके चेहरे पर कभी उद्वेग नहीं दिखाई देता। आपका मुखमण्डल सदैव प्रसन्न ही दिखाई देता है। आपकी सरलता और सौम्यता आपके अन्तर्मन की स्वच्छता का दर्पण है। आपकी ज्ञान वैराग्यमयी मूर्ति को देख कर सहज ही ज्ञान वैराग्य की भावना प्रादुर्भूत होती है, मस्तक श्रद्धा से झुक जाता है। परम निश्छल वात्सल्य देख कर मन 'माता' कहने को स्वयं उत्कण्ठित होता है।

मैं पूज्य माताजी के त्यागतपस्यामय दीर्घ जीवन की कामना करता हूँ। उनकी समाधि पूर्ण रूपेण निर्विघ्न, उत्तम और शान्तिमय हो। ऐसी भावना करता हुआ मैं पूज्य माताजी के चरणों में अपनी विनयाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

☼

जहां श्रद्धा से मस्तक झुक जाता है !

इस वर्ष (१९८२) पुन: पूज्य १०५ आर्यिका रत्न इन्दुमती माताजी का ससघ चातुर्मास श्री सम्मेदशिखर दिगम्बर जैन बीस पंथी कोठी मधुवन–शिखरजी में हो रहा है। पूज्य इन्दुमती माताजी, पूज्य सुपार्श्वमती माताजी, पूज्य विद्यामती माताजी और पूज्य सुप्रभामती माताजी चारों ही निराडम्बर, शान्त, गम्भीर एवं सरलमना हैं। उनके दर्शनों हेतु श्रद्धालु भक्तों का तांता लगा ही रहता है। उनके चरणों में परमानन्द प्राप्त होता है। संघ के विराजने से क्षेत्र की रौनक में चार चांद लग गये हैं। ऐसी विभूतियां दीर्घकाल तक हम संसारी प्राणियों का मार्गदर्शन करती रहे—यही कामना है। मैंने जबसे दर्शन किये हैं तबसे आपके सान्निध्य लाभ की ही भावना बनी रहती है।

आर्यिकाओं के चरणों में शत–शत वन्दन !

गुरुचरण सेवक : **सुरेशकुमार जैन, मैनेजर**
श्री दिगम्बर जैन बीस पन्थी कोठी, शिखरजी

डीमापुर में अभूतपूर्व धर्मप्रभावना

आज से लगभग छह वर्ष पूर्व परम पूज्य १०५ इन्दुमती माताजी का संघ सहित यहां चातुर्मास हुआ था। आपके यहां आगमन से पूर्व डीमापुर में १५० जैन परिवारो के होते हुए भी केवल दो–तीन घरों में ही शुद्ध भोजन की व्यवस्था थी। बाहर से किसी व्रती के आ जाने पर बडी असुविधा होती थी। माताजी के उपदेशामृत का पान कर करीब १५० स्त्री पुरुषों ने शुद्ध खान–पान की प्रतिज्ञा की व अनेक व्रत नियम भी ग्रहण किये। तब से प्रायः सभी घरों में शुद्ध भोजन बनाने की परिपाटी प्रारम्भ हो गई है। यह अद्भुत धर्म प्रभावना माताजी की ही देन है।

पूज्य आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी का आत्मबल भी अद्भुत है। वे यहां अस्वस्थ हो गई थीं, विहार करने की शक्ति शरीर में बिल्कुल नही थी। विहार की वेला निकट आने पर कुछ धर्मप्रेमी श्रावको ने बिना पूछे ही भक्तिवश डोली की व्यवस्था कर ली, किन्तु डोली को देखते ही पूज्य इन्दुमतीजी ने कडक कर कहा—यह किसके लिये लाये हो ? उपस्थित श्रावकों ने हाथ जोड कर सविनय प्रार्थना की कि 'मातेश्वरी ! आपके शरीर मे चलने की शक्ति नही है, मार्ग मे विहार में असुविधा न हो इसके लिये यह व्यवस्था की गई है।' माताजी ने सिंह गर्जना करते हुए फटकार लगाई कि "इसे तुरन्त मेरे सामने से हटा दो; मैं इस पर कभी नहीं बैठूंगी, पैदल ही विहार करूंगी" और इतना कह कर न जाने उनमे कौन सी शक्ति प्रकट हुई कि वे तुरन्त चल पड़ी। और देखते-देखते सारे सघ के आगे निकल गयीं।

मैं त्याग, तपस्या और आत्मबल की उस निर्भीक ज्योति के दीर्घ जीवन की कामना करता हुआ उनके चरणो में बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

—जयचन्दलाल पाण्डया 'मन मौजी', डीमापुर

☼

अद्भुत प्रभाव

पूज्य आर्यिका १०५ इन्दुमतीजी एव संघ का मैं अत्यन्त अनुगृहीत हूँ कि आपके सम्पर्क से मेरा जीवन ही बदल गया। पूज्य आर्यिका माताओं की सद्शिक्षा से सच्चे देवशास्त्र–गुरुओं पर मेरी श्रद्धा दृढ़ हो गई। मुनि संघों व आर्यिका सघों के दर्शन वन्दन करने से पापों का नाश होता है। साधूनां दर्शनं पुण्य, तीर्थभूता हि साधवः।

तीर्थराज सम्मेदशिखरजी में पूज्य माताजी के सान्निध्य में दो वर्ष पूर्व फाल्गुन की अष्टाह्निका मे आयोजित इन्द्रध्वज विधान में सपरिवार सम्मिलित होने का मुझे अवसर मिला था, अपूर्व आनन्द की अनुभूति स्मृति रूप में आज भी विद्यमान है।

फाल्गुन की अष्टाह्निका में जहां पूज्य माताजी का संघ विराजमान रहता है वहां पहुंच कर मेरी भण्डारा करने की भावना रहती है। साधर्मी भाइयों के साथ मिल बैठ कर भोजन करने से धार्मिक वात्सल्य का विकास होता है। पूज्य आर्यिका माताओं का ऐसा अद्भुत प्रभाव है कि श्रद्धालु भक्तजन निरन्तर उनके सान्निध्य लाभ की कामना करते हैं।

मैं परम तपस्विनी आर्यिका शिरोमणि पूज्य इन्दुमतीजी व अन्य माताओं के चरणों में नमोस्तु निवेदन करता हूं और यही कामना करता हूं कि आप नीरोग दीर्घ जीवन प्राप्त करें।

—गुरुचरणसेवक : पन्नालाल सेठी, डीमापुर

☼

शुभ कामना !

पूर्वाञ्चल भारत में दिगम्बर जैन साधुओं का शताधिक वर्षों से आगमन नहीं हुआ था अतः भावना थी कि समीप आए हुए आर्यिका संघ को गौहाटी (आसाम) लाने का प्रयत्न किया जाए। सम्पूर्ण समाज की ओर से निर्णय लेने के बाद हम लोग किसनगंज पहुंचे जहां माताजी संघ सहित विराज रही थीं। पूज्य माताजी ने हमारी प्रार्थना स्वीकार कर ली, विहार की व्यवस्था हुई जिसका सम्पूर्ण श्रेय रायसाहब चांदमलजी पाण्डया एवं मिश्रीलालजी बाकलीवाल को है। विहार का समस्त व्यय भार आपने वहन किया। आपकी उदारता स्तुत्य है।

मार्ग में अभूतपूर्व धर्मप्रभावना हुई। स्थान-स्थान पर मण्डल विधान आयोजित हुए। गृह-चैत्यालयों की स्थापना हुई। अनेक नर-नारियों ने शक्त्यनुसार व्रत-नियम ग्रहण किए। विहार की समस्त रिपोर्ट श्री डूंगरमलजी सबलावत को भेजते रहते थे।

गौहाटी वर्षायोग के अवसर पर भगवान महावीर का २५०० वां निर्वाण महोत्सव विशेष धर्मप्रभावनापूर्वक मनाया गया। विजयनगर में संघ के सान्निध्य में दो बार बिम्बप्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न हुए। 'सूर्य पहाड़' भी प्रकाश में आया, स्वयं आर्यिका संघ ने वहां पधार कर अतीत के उस बिखरे वैभव का अवलोकन किया। आर्यिका संघ के आगमन से आसाम के जन-जीवन में बहुत परिवर्तन आया। वे दिन अविस्मरणीय बन कर रह गए हैं।

पूज्य आर्यिका इन्दुमतीजी अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित करने की योजना बनी है; मैं इस योजना की पूर्ण सफलता की कामना करता हूं। पूज्य माताजी दीर्घायु हों, यही भावना है।

—लक्ष्मीचन्द छाबड़ा, भू० पू० अध्यक्ष, महासभा

नारी समाज की गौरव : आर्यिका इंदुमतीजी

परम पूज्य १०५ आर्यिका श्री इन्दुमती माताजी ने संघ सहित पुण्याभिलाषिणी नागाभूमि के डीमापुर नगर में वर्षायोग स्थापित कर अहिंसा प्रधान श्रमण संस्कृति का जो प्रचार-प्रसार किया, उसके लिए हम सभी डीमापुर निवासी आपके चिर कृतज्ञ हैं। आर्यिका संघ के सान्निध्य से डीमापुर में मानो अध्यात्म सूर्य का ही उदय हुआ हो। डीमापुर के इस वर्षायोग में मुझे आर्यिका सघ के निकट रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। संघ के आदर्श को मैं किन शब्दों में अभिव्यक्त करूं? मैं तो इतना ही कह सकता हूं कि जिस तरह इस काल में पुरुष वर्ग में आचार्य शान्तिसागरजी महाराज जैसे अद्वितीय तपस्वी हुए है उसी तरह स्त्री समाज मे आर्यिका इन्दुमतीजी जैसी अद्वितीया नारी रत्न हुई हैं जिन्होने भारत के सुदूर पूर्वांचल मे—आसाम, नागालैण्ड आदि क्षेत्रों में-जैनधर्म की अभूतपूर्व प्रभावना की है। मैं पूज्य माताजी के श्रीचरणों में अपनी विनयाञ्जलि अर्पित करता हूं और कामना करता हू कि माताजी दीर्घायु होकर सदैव हमारा मार्गदर्शन करती रहें।

—चैनरूप बाकलीवाल, डीमापुर
अध्यक्ष, अ० भा० दि० जैन महासभा–पूर्वांचल शाखा

☼

धन्य जीवन

आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी ने सघ सहित भारत के पूर्वांचल में पैदल विहार कर जैन शासन की अभूतपूर्व प्रभावना की है। आपके उपदेशों से प्रेरणा पाकर अनेक स्त्रीपुरुषों ने आजीवन–पंच पापों का त्याग, मद्य मांस मधु का त्याग आदि नियम लिए हैं। प्रतिदिन देवदर्शन की प्रतिज्ञा की है। घर में चैत्यालय होते हुए भी पहले मुझे अभिषेक-पूजन करने की रुचि नहीं थी। परन्तु माताजी के प्रभाव से नित्य अभिषेक पूजन करना अब मेरा स्वभाव बन गया है। मैं नौगांव, गोलाघाट, जीमलीगढ़ आदि स्थानों तक आर्यिका संघ के साथ रहा। इन पुण्यात्माओ के ससर्ग से मुझे अभूतपूर्व आनन्द का लाभ हुआ। गोलाघाट में संघ के सार्वजनिक स्थलों पर प्रवचन, केशलोचन आदि को सुन कर व देख कर अजैन जनता इतनी प्रभावित हुई कि मुक्तकण्ठ से इनकी प्रशंसा करने लगी और कहने लगी कि वास्तव में तप और त्याग की सच्ची मूर्तियाँ ये ही हैं। मैं पूज्य आर्यिकाओं के निरापद दीर्घजीवन की कामना करता हू। चरणों में शत शत वन्दन!

—पूसराज बाकलीवाल, गोलाघाट (आसाम)

विनयाञ्जलि

[बाल० ब्र० कु० माधुरी शास्त्री, हस्तिनापुर]

सुनते हैं चन्दा की शीतल किरणों से अमृत झरता है।
चांदनी स्वयं विकसित करके जग को आलोकित करता है॥
कुछ मन्द-मन्द मुस्कान लिए निशि में प्रकाश दिखलाता है।
जग को शीतलता देने का वह पाठ हमें सिखलाता है॥१॥

ये चन्द्रवदन सम चन्द्रसिन्धु गुरु शुभ्र ज्योत्स्ना से संयुत।
निज ज्ञान किरण से सुधाबिन्दु के शीतल सहज समीरण युत॥
उस चन्दा की शीतल छाया माँ इन्दुमती को प्राप्त हुई।
गुरु के गुण की सौरभता भी उनके मानस में व्याप्त हुई॥२॥

लोहा यदि पारस को छू ले तो सोना वह बन जाता है।
शशि के प्रभाव से सूरज भी खुद ही शीतल हो जाता है॥
इसके प्रतिफल में मोहिनि ने जब वरदहस्त गुरु का पाया।
नारी जीवन की सार्थकता को इन्दुमती बन दरशाया॥३॥

निज प्रखर कान्ति से शिष्यों को शीतल छाया देने वाली।
आर्यिका संघ युत कर विहार मिथ्यातम हर लेने वाली॥
मैं केवल शब्दों के द्वारा अभिनन्दन क्या कर सकती हूं।
युग-युग तक मिले प्रकाश "माधुरी" अभिवन्दन मैं करती हूं॥४॥

आर्यिका इन्दुमती अभिनन्दन ग्रन्थ

द्वितीय खण्ड
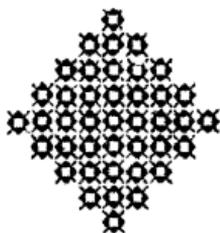
चित्रमाला

❖ शिखरजी वर्षायोग में आर्यिका संघ—

卐 परम पूज्य आर्यिकाश्री इन्दुमती माताजी, आ० सुपार्श्वमतीजी, आ० विद्यामतीजी, आर्यिका सुप्रभामतीजी; ब्र० कैलाशचन्द्र

卐卐 ब्र० हरकी बाई, ब्र० देवकी बाई, ब्र० मट्टो बाई, ब्र० प्रमिला, ब्र० जै श्री, ब्र० नयना, ब्र० रतनी बाई

आर्यिका शिरोमणि, प्रमुख गणिनी

卐 श्री १०५ पूज्य माता इन्दुमतीजी 卐

यस्यारस्त्यमितप्रबोधगरिमा सा किं स्वयं भारती,
सम्भूताथ विरागतामुपगता किं वा नु लक्ष्मीरियम्।
चारित्रप्रतिमूर्तिरस्ति किमियं सञ्चिन्त्यमाना जनै-
रित्थं श्री गणिनीन्दुमत्यनुदिनं कुर्याज्जगन्मङ्गलम्॥

अर्थ—जिसके ज्ञान की गरिमा अपार है ऐसी क्या यह स्वयं सरस्वती ही उत्पन्न हुई है ? अथवा लक्ष्मी ही वैराग्य को प्राप्त हो गई है ? अथवा कहीं यह चारित्र की प्रतिमूर्ति ही तो नहीं है ? इस तरह लोग जिसके बारे में अनेक विकल्प रखते हैं, वह पूज्य प्रमुख गणिनी इन्दुमती माता जगत का सदा कल्याण करे।

डा० लालबहादुर शास्त्री एम. ए., पी एच. डी. साहित्याचार्य
न्याय–काव्य तीर्थ
सम्पादक, जैन दर्शन साप्ताहिक

आर्यिका इन्दुमतीजी आर्यिका विमलमतीजी के साथ
(डेह् वि० सं० २००६)

आहार से लौट कर विचार लीन
आर्यिका श्री

सामायिक रत आर्यिका श्री

प्रवचन करती हुई आर्यिका श्री
(गिरीडीह् वि० सं० २०३८)

ब्र० मोहनीबाई
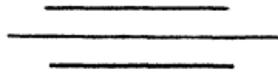
क्षुल्लिका इन्दुमतीजी

क्षुल्लिका इन्दुमतीजी

क्षु० इन्दुमतीजी को आर्यिका दीक्षा
प्रदान करते हुए आ. वीरसागरजी म०

आशीर्वाद मुद्रा में आर्यिका श्री
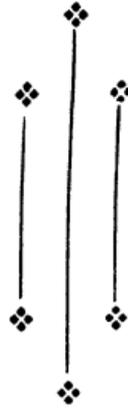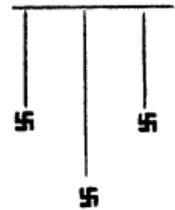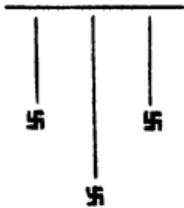
आर्यिका श्री चिन्तन मग्न
(बड़पेटा वि० सं० २०३२)

स्वाध्याय लीन आर्यिका श्री

आर्यिका

आर्यिका इन्दुमतीजी और आर्यिका सुपार्श्वमतीजी

आर्यिका संघ

आ. सुपार्श्वमतीजी आ. इन्दुमतीजी
आ. विद्यामतीजी

संघ

आर्यिकावृन्द

दीक्षा प्रसंग
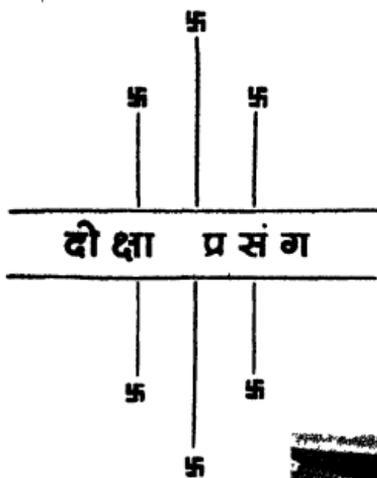
आ० विद्यामतीजी को दीक्षा देते हुए
आचार्य श्री शिवसागरजी म०

केशलौंच

आ० इन्दुमतीजी केशलौंच करते हुए
(गोलाघाट–आसाम)

आ० सुपार्श्वमतीजी केशलौच करते हुए

卐 सु प्र भा म ती जी की दी क्षा 卐

केशलौच करते हुए आर्यिकात्रय

दीक्षा प्रदान करते हुए आचार्य श्री समन्तभद्र महाराज

नागपुर में सार्वजनिक भाषण वि० सं० २०२७

विविध स्थानों पर

आर्यिका संघ की देशना

बारसोई मे आर्यिका सघ का प्रवचन वि.सं. २०३०

कानकी में स्वागत समारोह : ८–५–७४

卐 गौहाटी में आर्यिका संघ 卐

प्रवेश के समय शोभायात्रा के अवसर पर

केशलोंच समारोह

जैन संस्कृति की प्राचीनता के द्योतक अवशेष :—
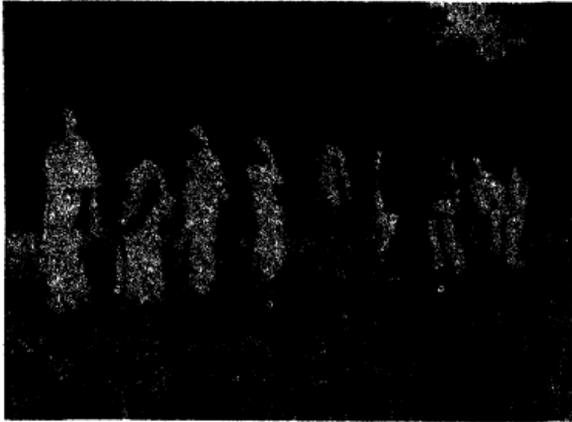
गोहाटी के निकट सूर्य पहाड़ के अवलोकनार्थ जाते हुए
विकट सघन वन मे आर्यिका संघ

सूर्य पहाड़ पर बिखरी मूर्तियां
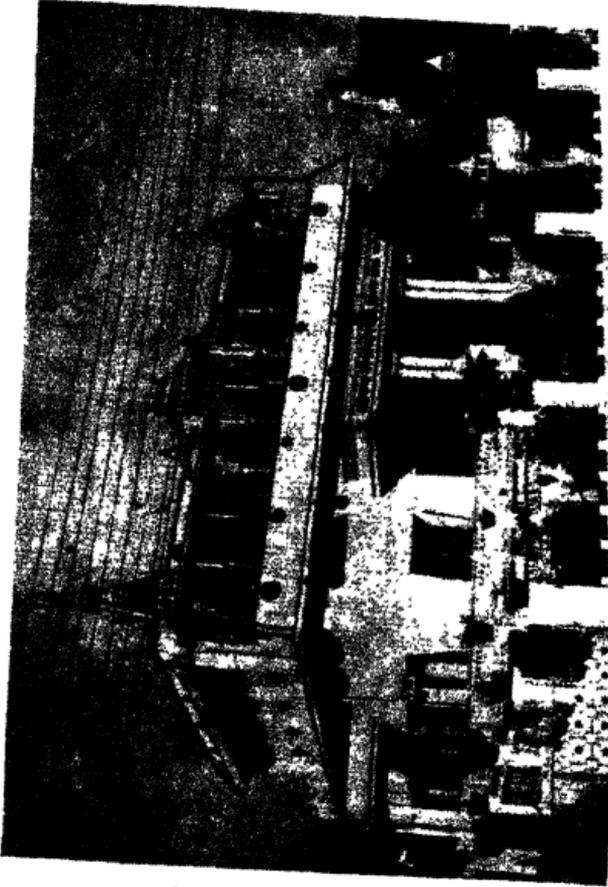
आसाम में अभूतपूर्व एवं अद्वितीय प्रथम पंचकल्याणक बिम्ब प्रतिष्ठा महोत्सव
श्री दिगम्बर जैन मंदिर विजयनगर (आसाम)

जो
र
हा
ट
में
आ
र्यि
का
सं
घ

दिनांक ७ मार्च ७६ को प्रवेश के समय स्वागत तत्पर जन समुदाय

नगरपालिकाध्यक्ष संघ का आरती उतार कर स्वागत करते हुए
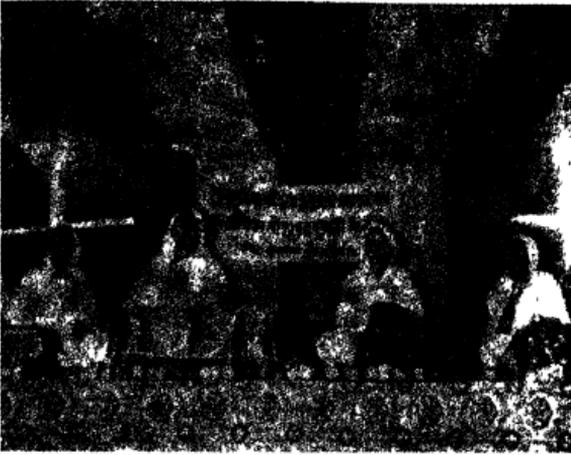
卐 जोरहाट में आर्यिका संघ 卐

आर्यिका संघ का प्रवचन

जोरहाट से विहार

卐 डीमापुर में आर्यिका संघ 卐
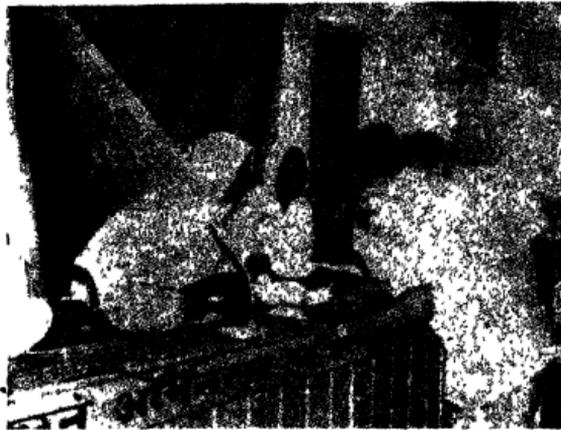
जिज्ञासुओं की शंका का समाधान करते हुए आर्यिका संघ

सभागार मे आर्यिका संघ का प्रवचन
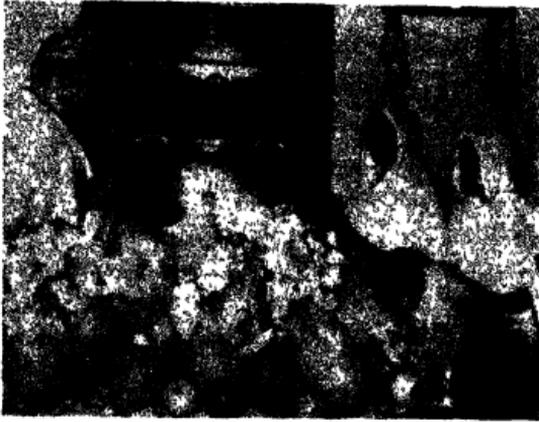
卐 डीमापुर में आर्यिका संघ 卐

श्री किशनलालजी सेठी डीमापुर द्वारा गृह चैत्यालय का निर्माण

आर्यिका संघ का विदाई समारोह

卐 गोलाघाट में आर्यिका संघ 卐

नगर प्रवेश

स्वागत करते हुए एस डी. ओ श्री मिश्रा
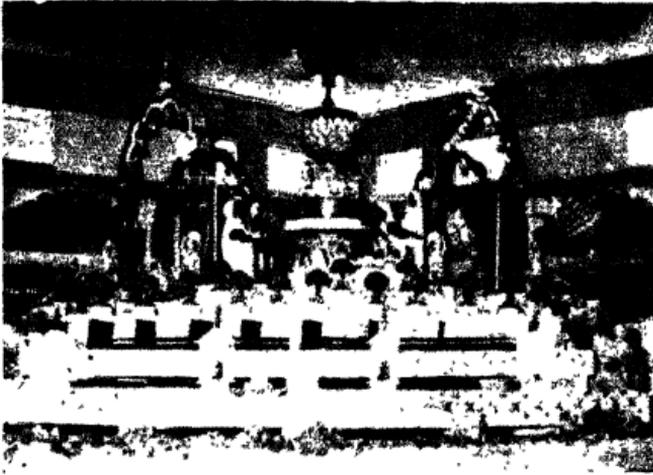
समवशरण रचना का प्रभावक दृश्य

महिला समाज से चर्चा करते हुए आर्यिका संघ

卐
इ
न्द्र
ध्व
ज
मण्डल
वि
धा
न
शि
ख
र
जी
वि० सं०
२०३७
卐
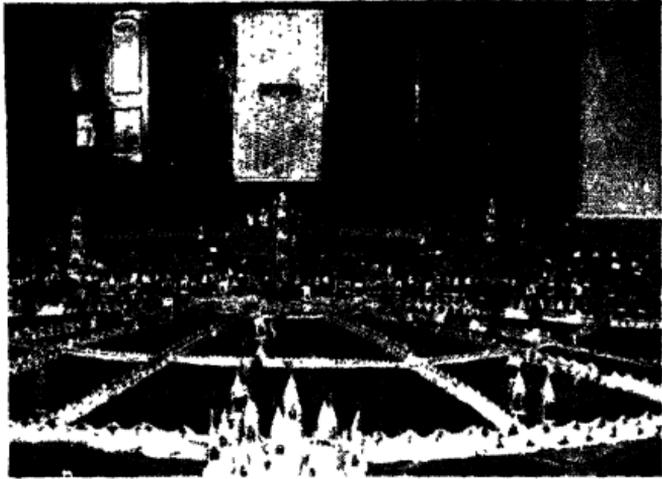
मंडल रचना

मंडल विधान के आयोजक
श्री निर्मलकुमार सेठी, श्री पारसमल बड़जात्या एवं श्री पन्नालाल सेठी
सपत्नीक

विशाल मुनिसंघ

[वि० सं० २०१६ लाडनूं वर्षायोग ❋ आचार्य श्री शिवसागरजी विशाल संघ सहित]

डेह में विशाल मुनि संघ (वि० सं० २००६) :
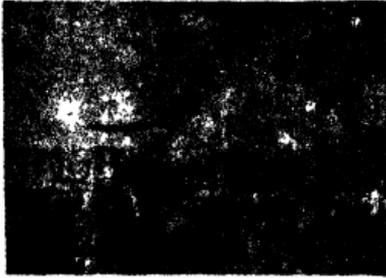
श्री दि० जैन चन्द्रप्रभ मंदिर (प्राचीन मंदिर) डेह :

मूलनायक श्री चन्द्रप्रभ भगवान का मनोज्ञ बिम्ब

भगवान बाहुबली (९ वीं शताब्दी)

मुख्य वेदी

श्री शांतिनाथ भगवान का मंदिर (नया मंदिर) डेह :
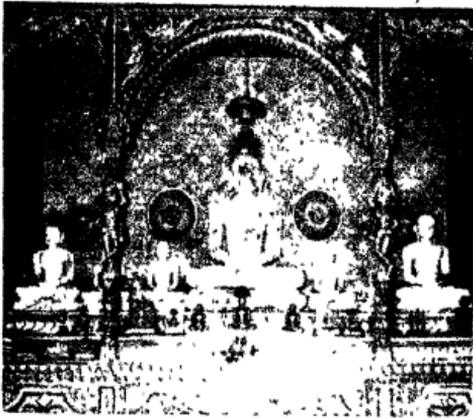
मुख्य वेदी

श्री पार्श्वनाथ भगवान का
मनोज्ञ जिन बिम्ब (शिखर में)

श्री मंदिरजी का बाहरी दृश्य

डेह के अन्य जिनायतन :

श्री पद्मप्रभ चैत्यालय
ब्र० मोहनीबाई (आ० इन्दुमती) द्वारा निर्मित

मुख्य वेदी, नमियाजी
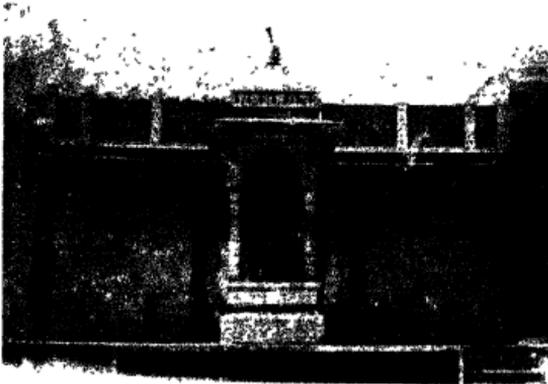
श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ नसिया

श्री पद्मावती बिम्ब
श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ नसियां

जिनशासन प्रभाविका
परम पूज्य गणिनी आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी

जन्म :	क्षुल्लिका दीक्षा :	आर्यिका दीक्षा :
वि० स० १९६२	वि० सं० २०००	वि० सं० २००६
डेह (नागौर)	कमाबखेडा	नागौर (राज०)
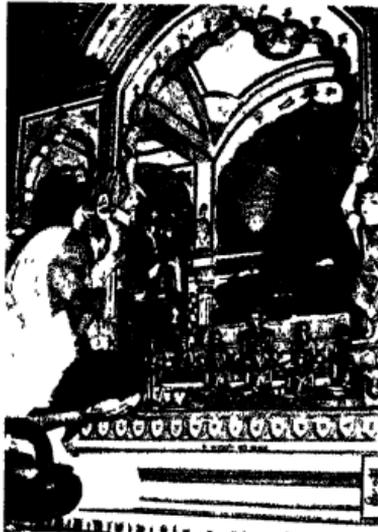
तीर्थराज सम्मेदशिखरजी में
बीस पंथी मन्दिर
की
मूल वेदी मे
विराजमान
जिन बिम्बो के दर्शन
करती हुई
आर्यिका श्री इन्दुमती माताजी

आहार को जाते हुए आर्यिका संघ

आहार ग्रहण करती हुई आर्यिका श्री इन्दुमतीजी

स्वाध्यायरत आर्यिकाश्री

पिच्छिका बनाती हुई आर्यिकाश्री
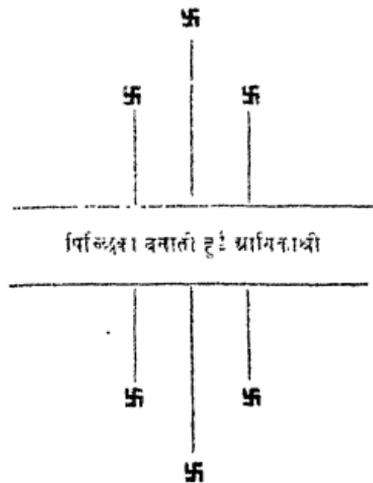
आर्यिका इन्दुमती अभिनन्दन ग्रन्थ

तृतीय खण्ड

¤

जीवनवृत्त

¤

लेखिका :

ब्र० सुपार्श्वमती माताजी

ॐ ह्रीं अ सि आ उ सा नमः ।।
ॐ ह्री महावीराय नमः ।।
ॐ ह्री श्री क्ली ऐं सरस्वति ! मम जिह्वाग्रे आगच्छ ! आगच्छ !!
ॐ ह्री शान्ति-वीर-चन्द्र-महावीरकीर्ति गुरुभ्यो नमो नमः !!

१

स्त्री : सृष्टि का गौरव

स्त्री और पुरुष सृष्टि के दो गौरवशाली स्तम्भ है । इन्ही पर सारे जगत का भार है । इनमें भी स्त्री प्रथम है, पुरुष बाद में । ससार मे स्त्री की महत्ता सर्वोपरि है क्योंकि स्त्री जाति जगत की जननी है, ससार के महान् पुरुषों की जन्मदात्री है ।

स्त्रीतः सर्वज्ञनाथः सुरनतचरणो जायतेऽबाधबोधः,
तस्मात्तीर्थंश्रुताख्यं जनहितकथकं मोक्षमार्गावबोधः ।
तस्मात्तस्माद्विनाशो भवदुरिततते: सौख्यमस्माद्विबाधं,
बुध्वैवं स्त्रीं पवित्रां शिवसुखकरणीं सज्जनः स्वीकरोति ।।

"जिनके चरणों में देव नमस्कार करते हैं, जो अनुपम अबाध ज्ञान के धारी हैं, जिनसे श्रुत नाम के तीर्थ की उत्पत्ति होती है, जो मनुष्यों के हित का कथन करने वाले हैं, मोक्षमार्ग के उपदेशक हैं; जिनकी दिव्य वाणी के प्रभाव से जीवों की भवदुरित की सन्तति नष्ट हो कर बाधा-रहित सुख की प्राप्ति होती है; ऐसे वीतराग, सर्वज्ञ एव हितोपदेशी तीर्थङ्करो का जन्म स्त्री से होता है; ऐसा जानकर सज्जन पुरुष शिवसुख-प्रदान करने वाली पवित्र स्त्री को स्वीकार करते हैं ।"

नारी-नारी मत कहो, नारी रत्न-सुखान ।
नारी से पैदा हुए, चौबीसों भगवान ।।

महिला जाति जगज्जननी है । तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण, बलभद्र और कामदेव आदि महापुरुषों की जन्मदात्री नारी ही है । जननी ही अपनी उदरस्थ सन्तान को अपने पुनीतभावो से सद्‌गुणो की शिक्षा देती है । माता के परिणाम जिस प्रकार के होते है, उदरस्थ बालक के सस्कार भी वैसे ही हो जाते है अत· सन्तान की प्रथम शिक्षिका उसकी जननी ही है ।

स्त्री : पुत्री, भगिनी

प्रथम अवस्था मे स्त्री, पुत्री और भगिनी के रूप मे अपने पिता और भाई के प्रति जो निर्मल, अगाध प्रेम अपने हृदय मे रखती है, उसकी उपमा संभार मे कही नही मिलती ।

"पुनाति पूयते, पितरं त्रायते इति पुत्रः ।"

पुन्नाम्नोनरकात् यस्मात् पितरं त्रायते सुतः ।
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा ।।

नरकादि से वा दु·खो से माता-पिता की रक्षा करे, उनको पवित्र करे, उसे पुत्र कहते है । 'पुत्र' शब्द मे इन् प्रत्यय जुडने से 'पुत्री' शब्द बनता है अर्थात् कुल को पवित्र करने वाली पुत्री कहलाती है । 'कन्या' कनति, कन् दीप्तौ अर्थात् जो कुल को देदीप्यमान करे उसे कन्या कहते है ।

कन्या, भाई की भगिनी कहलाती है । भग कल्याण इच्छति भ्रातुः असौ भगिनी । जो भाई का कल्याण चाहती है उसे भगिनी कहते हैं ।

स्त्री : पत्नी

पत्नी रूप में पति की सहधर्मिणी, अर्धांगिनी बनकर स्त्री जो सेवा करती है, उसकी तुलना जगत मे किसी से नही की जा सकती है । जिस प्रकार छाया हमेशा साथ रहती है, सम्पत्ति मे विपत्ति मे किसी भी अवस्था मे साथ नही छोड़ती है उसी प्रकार पत्नी भी अपने पति के सुख-दु·ख मे उसका साथ देती है और अपने स्वामी को प्रसन्न और तुष्ट रखने के लिए अपना सर्वस्व तक देने में नही हिचकती । वह पति की सेवा दासी की भाँति करती है । उसको प्रत्येक कार्य में सम्मति देने के लिए मत्रीवत् व्यवहार करती है । माता के समान अपने हृदय की शुभ भावना से पति को भोजन कराती है और पति को प्रसन्न रखने के लिए अपना शरीर भी पति को सौप देती है; इस प्रकार अनेकानेक महती सेवाएँ वह अपने पति के लिए जीवनपर्यन्त निष्पादित किया करती है ।

स्त्री : जननी

जननी बन कर नारी जिस भाव से सन्तान का पालन-पोषण करती है वह अवर्णनीय और अनिर्वचनीय है । "फूलात फूल जाइ ये प्रेमात प्रेम आई चा ।" फूलों मे सर्वोत्कृष्ट फूल जाई

का है और प्रेम में सर्वोत्कृष्ट प्रेम माता का है। मातृ-हृदय का वात्सल्य अन्यत्र नही पाया जाता। माता स्वयं भूखी-प्यासी रह कर भी अपनी सन्तान का पालन करती है। अपनी सन्तान के लिए सर्दी-गर्मी आदि के अनेक कष्ट सहन करती है। कितनी बाधाओं के बीच रहकर भी सन्तान की मगल-कामना करती है; माता के अनुभवों का अनुमान माता बनकर ही लगाया जा सकता है अन्यथा नही।

पूज्य समन्तभद्राचार्य ने सम्यग्दर्शन को स्त्री के विविध रूपों से उपमित किया है—

सुखयतु सुखभूमिः कामिनं कामिनीव,
सुतमिव जननी मां शुद्धशीला भुनक्तु।
कुलमिव गुणभूषा कन्यका संपुनीतात्,
जिनपतिपदपद्मप्रेक्षिणी दृष्टिलक्ष्मीः॥

जिस प्रकार शीलवती नारी अपने पति को सुख देती है, उसी प्रकार सप्त शीलो से युक्त सम्यग्दर्शनरूपी लक्ष्मी मुझे सुख देवे। जैसे सुतवत्सला माता अपने पुत्र का लालन-पालन करती है वैसे ही हे सम्यग्दर्शनरूपी माता! तू मेरी रक्षा कर। जिस प्रकार गुणवती कन्या अपने पिता के वश को समुज्ज्वल बनाती है—उसी प्रकार अष्टमूलगुण सहित सम्यग्दर्शन रूपी कन्या तू मुझे पवित्र कर।

इस प्रकार विविध अवस्थाओं मे स्त्री जाति की सेवा समस्त जगत में असाधारण महत्त्व की है। और क्या कहें, जब मनुष्य पर सङ्कट आता है तब वह पिता का स्मरण न करके 'माँ' को ही पुकारता है। अतः गौरवशालिनी स्त्री जाति सम्माननीय है, उपेक्षणीय नही। मनु ने कहा है—

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।"

जहाँ नारियों का सम्मान होता है, वहाँ देवता रमण करते हैं। जननी और जन्मभूमि को स्वर्ग से भी बढ कर कहा गया है—"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।" जननी और जन्मभूमि में भी जननी का स्थान प्रथम है। जननी, माता, माँ की समानता खोजने पर भी नहीं मिल सकती। धन्य है मातृस्वरूप!

गौरवशाली अतीत :

अतीत में अनेक स्त्रियो ने अपने व्यक्तित्व और सत्कार्यों से जो अमर ख्याति अर्जित की है, वह आज भी हमारा मार्ग-दर्शन कर रही है। जिन महासतियो के सच्चरित्र के प्रभाव से यह भूतल सुशोभित हुआ है, उनका पवित्र नाम कौन नही जानता!

सती सीता, अञ्जना, द्रौपदी, अनन्तमती, प्रभावती, मैनासुन्दरी, मनोरमा, चेलना आदि अनेक महाशील शिरोमणि महिलाओं ने अपने शील तथा व्रतों के प्रभाव से असम्भव कार्यों को भी सम्भव कर दिखाया है। इनके चरित्र के प्रभाव से अग्नि का जल, जल का स्थल और स्थल का रमणीक भवन बनने जैसे विलक्षण कृत्य सम्पन्न हुए; इनकी महिमा का वर्णन करना समुद्र को भुजाओं से तैरने के समान है।

यद्यपि स्त्री-पर्याय से अव्याबाध सुख का स्थान मोक्षपद प्राप्त नही हो सकता क्योकि स्त्री की पर्याय पराधीन है; आचार्यों ने मुक्ति का वर्णन करते हुए स्त्रीपर्याय को निन्द्य कहा है तथापि स्त्री के शील का माहात्म्य बताते समय उसकी भूरि-भूरि प्रशसा भी की है।

नारी केवल भोगेषणा की पूर्ति का साधन नही—उसे भी स्वतन्त्र रूप से विकसित होने के पूरे सुअवसर हैं। वह स्वय अपने भाग्य की विधायिका है। वह जीवन मे पुरुष की अनुगामिनी बनती है दासी नही, उसका भी अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व है। चेलनादि महासतियो ने आपत्तिकाल आने पर भी अपना धर्म नही छोड़ा। ब्राह्मी, सुन्दरी और राजुल जैसी नारियो ने आजन्म ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन कर समाज का और अपना उद्धार किया था। मुस्लिम काल मे रत्नावती आदि अनेक नारियों ने अपने प्राण देकर भी शीलधर्म की रक्षा की। उनके कल्याण या आत्मोत्थान में कोई बाधक नहीं बन सका था। स्त्रियाँ पुरुषों की भाँति अनेक प्रकार के कला-कौशल में भी निष्णात होती थी। कैकेयी युद्धभूमि में अपने पति की सहायक बनी थी।

स्त्रियां विद्याएँ सीखने मे भी प्रवीणता प्राप्त करती थी। 'आदिपुराण' मे आद्य तीर्थङ्कर ऋषभदेव अपनी पुत्रियो को शिक्षित होने की प्रेरणा करते हुए कहते हैं—

विद्यावान् पुरुषो लोके, सम्मानं याति कोविदैः।
नारी च तद्वती धत्ते, स्त्रीसृष्टेरग्रिमं पदम्॥

जैसे लोक में विद्यावान व्यक्ति पण्डितो के द्वारा सम्मान को प्राप्त होता है, वैसे ही विद्यावती स्त्रियां भी सर्वश्रेष्ठ पद को प्राप्त करती हैं।

'आदि पुराण' मे नारी के जननी रूप को बड़ा आदर प्रदान किया गया है। इन्द्राणी ने जननी रूप मे मरुदेवी की स्तुति इस प्रकार की है—

"हे माता! तू तीन लोको की कल्याणकारिणी माता है, तू मंगल करने वाली है। तू ही महादेवी है। तू ही पुण्यवती है और तू ही यशस्विनी है। जो माता तीर्थङ्कर और चक्रवर्तियों को जन्म देती है उस माता के महत्त्व का मूल्याङ्कन कौन कर सकता है! गृहस्थावस्था में तीर्थङ्कर ने जिस जननी की कोख पवित्र की है, उसकी पवित्रता वचनातीत है।"

इस प्रकार नारी जाति का अतीत अनेकानेक नारीरत्नो—सीता, अञ्जना, चेलना, राजुल, अनन्तमती, प्रभावती—के महिमामय पतिव्रतधर्म, अखण्ड ब्रह्मचर्य, अदम्य उत्साह, अडिग धैर्य और प्रशंसनीय वैदुष्य के कारण गौरवान्वित रहा है; स्त्रीसमाज का नाम उन्नत एवं उज्ज्वल करने वाली वे आदर्श महिलाएँ धन्य है।

अनुकरणीय वर्त्तमान :

जिस प्रकार भूतकाल मे भारत की महिमामयी महिलाओं ने अपने उदात्त जीवन से जगत को सन्मार्ग दिखलाया है, उसी प्रकार वर्त्तमान भोगप्रधान इस कलियुग मे भी उत्तम आर्यिका-व्रत धारण कर गौरवशालिनी, आदर्श एव विश्ववन्द्य महिलाओ ने अध्यात्म का उत्तम पथ प्रशस्त किया है। उनके आत्मतेज और कठोर तपस्या से महिला-समाज का मस्तक उन्नत है। वे स्व-पर कल्याण करने में निशि-दिन तत्पर हैं। मैं ऐसी ही कतिपय आर्याओ का यहाँ नामोल्लेख करने का लोभ संवरण नही कर पा रही हूँ।

प्रातःस्मरणीय, परम पूज्य चारित्रचक्रवर्ती, ३६ दिन का अनशन कर शास्त्रोक्त विधि से सल्लेखना मरण करने वाले, निस्पृही, वर्तमान काल की पापप्रवर्तिनी एवं धर्म-विमुख जनता को धर्ममार्ग में लगाने वाले सूर्यतुल्य दिगम्बर सन्त आचार्य १०८ श्री शान्तिसागरजी महाराज का नाम कौन नही जानता! आपने दक्षिणायन और उत्तरायण सूर्य के समान दक्षिण और उत्तर प्रान्त के कोने-कोने मे धर्म का प्रकाश विकीर्ण किया था। वर्तमान सदी में दिगम्बर साधुओं के निर्बाध विहार-मार्ग के पुरस्कर्ता, समस्त भारत की हजारों मीलों की पद-यात्रा कर संख्यात जीवों को त्याग एवं चरित्र के विमल पथ पर अग्रसर होने के लिए अपने समुज्ज्वल चरित्र के पावन प्रभाव से प्रेरित कर जैनत्व की आभा को विकसित करने वाले परमोपकारी, अन्तरंग-बहिरंग परिग्रह के त्यागी, चारित्रचक्रवर्ती १०८ श्री शान्तिसागरजी महाराज के अनेक शिष्य हुए। परम पूज्य १०८ मुनिराज श्री वीरसागरजी, मुनिश्री चन्द्रसागरजी, मुनिश्री नेमीसागरजी, मुनिश्री कुन्थुसागरजी, मुनिश्री सुधर्मसागरजी, मुनिश्री धर्मसागरजी आदि अनेक तपस्वी दिगम्बर सन्तो ने सहर्ष आपका शिष्यत्व स्वीकार कर मुनिमार्ग को गति प्रदान की है।

धन्य है, परम तपस्वी, शान्तस्वभावी, परम पूज्य १०८ पट्टाधीश आचार्यश्री वीरसागरजी महाराज! जिन्होंने ब्रह्मत्व की उपलब्धि के लिए राग-द्वेष आदि अन्तरंग तथा वस्त्रादि बहिरंग परिग्रह का त्याग कर विशुद्ध दिगम्बरत्व को स्वीकार किया; जो भोगाकांक्षा, यशोलिप्सा आदि प्रवृत्तियों से विरत हो आत्मशोधन की मङ्गल साधना में संलग्न रहते थे; जो संसार-परिभ्रमण से मुक्ति पाने के लिए विवेकपूर्वक धर्म और मोक्ष पुरुषार्थ में तत्पर थे और जिन्होंने अतीतकालीन आचार्यों श्री कुन्दकुन्द, अकलङ्क, समन्तभद्र सदृश रत्नत्रय-ज्योति के पद-चिह्नों पर

चलकर वर्तमान शताब्दी मे अपने ज्योतिर्मय जीवन से दिगम्बरत्व की दिव्य आभा देदीप्यमान की थी। आप संवत् २०१४ की आश्विन कृष्णा अमावस्या के दिन जयपुर नगर में खानियांजी नामक स्थान पर विशाल चतुर्विध संघ के सान्निध्य में सल्लेखनापूर्वक भौतिक शरीर का परित्याग कर स्वर्गवासी हुए। परम पूज्य १०८ आचार्यश्री शिवसागरजी, मुनिश्री आदिसागरजी, आचार्यश्री धर्मसागरजी, मुनिश्री श्रुतसागरजी, मुनिश्री जयसागरजी, मुनिश्री सन्मतिसागरजी, मुनिश्री सुमतिसागरजी आदि अनेक निर्ग्रन्थ साधुओं को आपका शिष्य होने का गौरव प्राप्त है। आचार्य १०८ श्री वीरसागरजी महाराज ने जिस प्रकार पुरुष वर्ग को दिगम्बरी दीक्षा देकर उसे कल्याण-मार्ग में प्रवृत्त किया था उसी प्रकार उन्होंने स्त्री वर्ग को भी क्षुल्लिका-आर्यिका के व्रत प्रदान कर उसे कल्याण-पथ में अग्रसर किया। आपकी प्रथम शिष्या होने का गौरव आर्यिका १०५ श्री वीरमती माताजी को है। आपने अल्पवय मे ही आर्यिका-दीक्षा ग्रहण कर बहुत समय से अवरुद्ध आर्यिका-मार्ग को आत्मकल्याणार्थी महिलाओं के लिए उन्मुक्त कर स्त्रीवर्ग का महदुपकार किया। आप परम तपस्विनी, शान्तस्वभावी एवं वात्सल्य-मूर्ति है।

आर्यिका १०५ श्री सुमतिमती माताजी ने निर्दोषरीत्या आर्यिका के व्रतो का पालन करते हुए लाडनू नगर में चतुर्विध सघ के सान्निध्य में समाधिमरणपूर्वक णमोकार मंत्र का उच्चारण करते हुए देहोत्सर्ग किया।

परम पूज्य आर्यिका १०५ श्री विमलमती माताजी ने आचार्य शान्तिसागरजी महाराज के द्वितीय शिष्य, परम तपस्वी, दृढ़ श्रद्धानी, निर्भीक वक्ता, जिनधर्म के रहस्य के प्रकाशक पूज्य १०८ श्री चन्द्रसागरजी महाराज के सदुपदेशों से प्रेरित होकर कसावखेड़ा नामक ग्राम में उनसे क्षुल्लिका के व्रत ग्रहण किए थे। अशुभ कर्मोदय से उन्हे अल्पकाल मे ही गुरुवियोग के असह्य दुःख का सामना करना पड़ा। आपने गुरुवियोग के सन्ताप को ज्ञान-जल द्वारा शान्त कर झालरापाटण नामक नगर में पूज्य आचार्य १०८ श्री वीरसागरजी महाराज से आर्यिका के व्रत ग्रहण किए। माताजी ने अपना सम्पूर्ण जीवन मरुप्रदेश की महिलाओं को सुशिक्षित करने मे व्यतीत किया। आपका यह उपकार चिरकाल तक स्मरणीय रहेगा। ज्ञान-दान के समान कोई दान नही है। माता के उदर से पशुतुल्य ज्ञानशून्य शिशु जन्म लेता है। गुरुजन ज्ञान प्रदान कर उसे सच्चे अर्थों में मानव बनाते हैं।

पूज्य १०८ श्री वीरसागरजी महाराज से अनेक नारीरत्नों—आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी, श्री सिद्धमतीजी, श्री शान्तिमतीजी, श्री अनन्तमतीजी, श्री वासमतीजी, श्री ज्ञानमतीजी, क्षुल्लिका जिनमतीजी, चन्द्रमतीजी, पद्मावतीजी—ने क्षुल्लिका आर्यिका के व्रत ग्रहण कर आत्मकल्याण करते हुए भव्यजनों को धर्ममार्ग में लगाया है। इन्हीं में से एक नारीरत्न पूज्य आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी का जीवन-चरित आज इस लेखनी का विषय है।

❖

२

मोहनी से इन्दुमती

जन्मभूमि : डेह (नागौर)

भारतवर्ष के मरुदेश मध्य राजस्थान, जोधपुर मण्डल के अन्तर्गत नागौर में अमरसिंह राठौर जैसे पराक्रमी राजा हो चुके है। नागौर से १२ मील पूर्व दिशा की ओर डेह नामका गाँव है। यह ग्राम धन-धान्य से परिपूर्ण है तथा अनेक कूप-वापिकाओं से सुशोभित है। वहाँ कई मील दूर तक बालू का विशाल टीला बना हुआ है। किसी समय में इस टीले में गाँव बसा हुआ था, जिसके चिह्न आज भी दृष्टिगोचर हो रहे हैं। गाँव मे सभी तरह के साधन उपलब्ध हैं। गाँव की आवश्यकताओं के अनुरूप राजकीय सेकेण्डरी स्कूल, राजकीय प्राथमिक विद्यालय, राजकीय प्राथमिक बालिका विद्यालय, राजकीय पशु चिकित्सालय, प्राइमरी हेल्थ सेण्टर, श्री अनाथ गोरक्षा समिति, (जिसके अन्तर्गत असहाय व अपङ्ग गायों, बछड़ो आदि की देखभाल व पोषण आदि की व्यवस्था है।) कबूतरखाना, श्री वीर युवक मण्डल, जैन पाठशाला आदि कई संस्थाये हैं। एक सुन्दर तालाब है जिसके चारों ओर सघन वृक्ष-पंक्तियाँ हैं। राजा, जागीरदारो एव जैन भट्टारको के स्मृति-स्थान हैं। अनेक देवस्थान हैं तथा श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ की अतिशययुक्त एक दर्शनीय नसियांजी भी हैं।

धर्मप्रिय, अहिसाप्रेमी जागीरदार के कोट (गढ)के सामने एक विशाल चौक है जिसके चारों ओर दुकानें बनी हैं। एक समय था जब यहाँ गुड़, नमक आदि की विशाल मण्डी थी और प्रतिदिन सैंकड़ों ऊँटगाड़ियाँ आया करती थीं। किसी कारणवश व्यापार कम हो गया अतः वहाँ के धनीमानी वणिक् आजीविका एवं व्यापार हेतु अन्यत्र चले गए।

वर्तमान में यहाँ दिगम्बर जैन धर्मानुयायी खण्डेलवाल श्रावकों के करीबन १०० घर है। समस्त श्रावक-श्राविकाएँ सदाचार-रत एवं सच्चे देवशास्त्रगुरु के परम निष्ठावान भक्त हैं। यहाँ धर्माराधना के लिए कलापूर्ण, मनोज्ञ मूर्तियों से युक्त उन्नत शिखरों वाले विशाल जिनमन्दिर एव एक चैत्यालय है। इनमें से एक मन्दिर तथा एक नसियाजी अत्यन्त प्राचीन है। मन्दिरों में चित्ताकर्षक अत्यन्त प्राचीन जिनबिम्ब हैं तथा अकृत्रिम जिनमन्दिरों के समान उन मन्दिरों में भी यक्ष-यक्षिणी तथा शासनदेवताओं की बहुत प्राचीन प्रतिमाएँ हैं। इनके दर्शन करने से अकृत्रिम जिनमन्दिरों का स्मरण हो आता है। ये जिनालय भगवान के अभिषेक, पूजन, वन्दना, स्वाध्यायादि के शब्दों से निरन्तर गुंजायमान रहते हैं।

जन्म :

इस ग्राम में खण्डेलवाल जातीयोत्पन्न श्रीमान् चन्दनमलजी पाटनी नामक एक सद्गृहस्थ थे; जिनके शीलवती, शान्तस्वभावी श्रीमती जड़ावबाई नाम की भार्या थी; जिनके कारण परिवार के समस्त कुटुम्बीजनों की रुचि धर्मध्यान में प्रवृत्त हुई है।

आपकी कुक्षि से चार पुत्रों श्री रिद्धकरण जी, श्री गिरधारीमल जी, श्री केशरीमलजी और श्री पूनमचन्द जी एवं तीन पुत्रियों गोपीबाई, केसरबाई एव सबसे छोटी मोहनी बाई (चरितनायिका) ने जन्म लिया।

विक्रम संवत् १९६२ के श्रावण मास की शुभ घड़ी में चरितनायिका का जन्म हुआ। आनन्द-मंगल छा गया। माता मुख देख कर संतुष्ट हुई। दसवे दिन नामकरण विधि के अनुसार कन्या का नाम मोहनी बाई रक्खा गया। मोहनी बाई यह सार्थक नाम था। जैसा नाम वैसा गुण अर्थात् यह बाल्यावस्था मे तो कुटुम्बीजन के मन को मोहित करने वाली थी ही, साथ ही उसका नाम यह प्रकट कर रहा था कि यह बालिका भविष्य मे भी जन-जन के मन को मोहित करने वाली होगी। दिन-पर-दिन व्यतीत होने लगे। पुरातन रीति-रिवाज के अनुसार बालिका अक्षराभ्यास से वंचित रही। क्योंकि वर्षों पूर्व घर की वृद्धा स्त्रियों की धारणा थी कि बालिका को घर के बाहर निकालना ही खतरा है। पढ़-लिखकर पुरुषों को बाहर का राजा बनना चाहिये और वनिताओं को बिना पढ़े ही घर की रानी। ललनाओं को तो अपनी गृहस्थी का कार्य ही सिखाना चाहिये। विनय, सेवा, सुश्रूषा, गृहकार्य की निपुणता ही स्त्रियों का शृंगार है। यह भी कहा जाता था कि एक घर में दो कलमें नही चलतीं इसलिए इस बालिका का शिक्षण नहीं हो पाया।

विवाह :

शनैःशनैः बालिका १२ वर्ष की हो गई । माता-पिता को विवाह की चिन्ता हुई । कन्या के विवाह की चिन्ता होना स्वाभाविक भी है—

गृहस्थानां हि तद्दौस्थ्य–मतिमात्रमरुन्तुदम् ।
कन्यानामप्रभावेन, रक्षणादिसमुद्भवम् ।।३२९।। क्षत्र चूड़ामणि ।।

गार्हस्थ्य जीवन मे सबसे बड़ा दुःख है युवति-कन्या के रक्षण की चिन्ता । एक दिन चन्दनमल जी के घर में बधाइया बजने लगी । सर्व कुटुम्बी जन का हृदय हर्षोल्लसित हो गया। सौभाग्यवती ललनायें नृत्य-गान करने लगी । शहनाइयो की मधुर ध्वनि बारात के आगमन की सूचना दे रही थी । अनेक बारातियों के साथ डेह निवासी श्री चम्पालाल जी सेठी दूल्हा बन कर तोरण पर आये । वादित्रों की ध्वनि से दिशाये गूंज उठीं । सौभाग्यवती वनितायें मंगलगीत गाने लगी । सज्जन गण एक दूसरे पर गुलाल उछालने लगे । आषाढ़ मास की शुभ बेला में मोहनी बाई का श्री चम्पालाल जी के साथ पाणिग्रहण हो गया । गृहस्थी के बंधन में बंध कर मोहनी बाई ससुराल चली गई ।

वैधव्य :

अभी विवाह में बजने वाली शहनाइयों की प्रतिध्वनि भी समाप्त नही हो पाई थी, विवाह में आये मेहमान अपने घरों को लौट भी नही पाये थे और विवाह-बंधन के बोझिल दायित्व की अनुभूति भी न हो पाई थी, कि शादी के मात्र तीन-चार माह बाद ही इनके पति श्री चम्पालाल जी की इहलीला समाप्त हो गई । सच है कर्म की गति बडो विचित्र होती है । कहते हैं कि चन्द्रमा एवं सूर्य को राहू और केतु नामक ग्रह विशेष से पीड़ा, सर्प तथा हाथी को मनुष्यों के द्वारा बंधन और विद्वद्गणो की दरिद्रता देखकर अनुमान लगाया जाता है कि नियति बलवान है[1] और फिर काल ! काल तो किसी को नहों छोड़ता । जो अपने प्रताप से छहों खण्डों का अधिराजा बना हुआ है और ब्रह्माण्ड में बलवान होकर बड़ा भारी राजा कहलाता है ऐसा चतुर चक्रवर्ती भी ऐसे चला गया मानो उसका कोई अस्तित्व ही नहीं था । इसलिये मन में निश्चय करना चाहिये कि काल किसी को भी नही छोड़ता ।

बारह वर्ष की बाल अवस्था; न विवाह की अनुभूति और न वैधव्य का बोध, न मन में किसी प्रकार का विषाद और न पतिवियोग से आंखों मे अश्रुधारा । हो भी क्या सकता था इस

---

१. शशिदिवाकरयोः ग्रहपीडनं, गजभुजंगमयोरपि बन्धनम् ।
मतिमतां च विलोक्य दरिद्रतां, विधिरहो बलवानिति मे मतिः ।। नीति ।।

अल्पवय में ? परंतु मोहनी बाई के माता-पिता के हृदयों पर तो वज्रपात हुआ था। पुत्री के वैधव्य की मर्मान्तिक पीड़ा से रोगग्रस्त होकर पिताजी तो छह महीने के बाद ही स्वर्गवासी बन गये। अभी तक भी मोहनी बाई को अपनी अवस्था की कोई सुध नही थी । बालपन था, अपनी अवस्था का विचार करने योग्य ज्ञान का विकास भी नही हुआ था।

जैसे-जैसे वय बढ़ती गई वैसे-वैसे मोहनी बाई को कुछ-कुछ आभास होने लगा अपनी अवस्था का, स्मरण होने लगा स्त्रीपर्याय की पराधीनता और संसार की असारता का। इस पराधीन पर्याय का नाश करने का एक ही अमोघ उपाय है संयम और सयम-पालन का साधन है ज्ञान। बस, मोहनी बाई संयम-शील की रक्षा करती हुई ज्ञानार्जन करने लगी । यद्यपि शिशु अवस्था में लौकिक शिक्षा प्राप्त करने का अवसर न मिलने से अक्षरज्ञान विशेष नही था फिर भी भाविक ज्ञान का विकास विशेष रूप से हो गया जिसस वे बड़े-बड़े विद्वानों के साथ चर्चा करने मे भी भयभीत नही होती थी । मोहनी बाई का समय प्रतिक्षण सयम की आराधना की भावना करते हुए व्यतीत हो रहा था।

आचार्य शान्तिसागर महाराज के संघ का दर्शन :

विक्रम संवत् १९८४, फाल्गुन मास में दक्षिण प्रान्त से १०८ आचार्यवर्य श्री शान्तिसागरजी महाराज का सघ परम पावन तीर्थ श्री सम्मेदशिखर जी (मधुबन) आया । इस महातपस्वी के दर्शनार्थ देश-देशान्तरों के यात्रियों की भीड़ उमड़ पड़ी । शिखरजी के कोने-कोने में यात्रिगण ठहरे हुए थे । जब मोहनी बाई ने सुना कि दिगम्बर साधुओं का संघ आया है तो उनका हृदय पुलकित हो उठा। शीघ्र ही अपने भ्रातृ परिवार के साथ वे भी सम्मेदशिखर जी आयी।

दिगम्बर साधुओं का स्वरूप शास्त्रों में तो पढ़ा था, अग्रजों से सुना भी था परंतु साक्षात् दर्शन का लाभ तथा उनकी चर्या का अवलोकन करने का शुभावसर प्रथम ही प्राप्त हुआ था । इन दिगम्बर साधुओं की चर्या देखकर इनके मन की यह भ्रांति नष्ट हो गई कि पंचम काल में निर्दोष चारित्र के पालक दिगम्बर साधु नही होते।

दिगम्बर साधुओं के दर्शन, प्रवचन-श्रवण तथा उनकी दिनचर्या के अवलोकन से मोहनी बाई के अतरंग में भावना जाग्रत हुई तथा उहोंने यह दृढ निश्चय किया कि मेरे जीवन के क्षण इन महापुरुषों के चरण-सान्निध्य मे ही व्यतीत होवे।

सयम के प्रति झुकाव :

श्री सम्मेदशिखरजी में मुनिराजों के दर्शन से अंकुरित संयमभावना को पल्लवित करने के लिए मोहनी बाई ने दिल्ली, जयपुर, ब्यावर, कुचामन आदि अनेक चातुर्मासों में आचार्य संघ में जाकर आहारदान व धर्म-श्रवण का लाभ प्राप्त किया।

संघस्थ मुनिश्री चन्द्रसागर महाराज के प्रति आपका विशेष आकर्षण हुआ। उनके उपदेश से प्रभावित होकर विक्रम संवत् १९९१ में सुजानगढ़ चातुर्मास में आपने द्वितीय प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। सत्य है, साधु की संगति सदा सुखकर होती है। कहा भी है कि—

कबिरा संगति साधु की, ज्यों गंधी की बास।
जो कुछ गंधी दे नहीं, तो भी बास-सुबास।।

संयम की ओर बढ़ती हुई मोहनी बाई चन्द्रसागर महाराज के संघ में रहकर लाडनूँ, लालगढ, मैनसर, डेह आदि ग्रामों में भ्रमण करके सघ के साथ नागौर में आई।

सप्तम प्रतिमा ग्रहण :

नागौर एक प्राचीनतम नगर है। जहाँ पर विशाल जिनमन्दिर है। श्रद्धालु संयमी श्रावकगणों का बड़ा निवास है। मोहनी बाई की सहेली मथुरा बाई भी नागौर मे जैन कन्या पाठशाला मे अध्यापिका थी। श्री चन्द्रसागर महाराज ने बार-बार धर्मोपदेश कर मोहनी बाई एवं मथुरा बाई को सचेत किया। देखो, यह मानव-पर्याय अत्यन्त दुर्लभता से प्राप्त होती है। इसका सार है सयम–'नरस्य सार किल व्रतधारण'। आहार सज्ञा, भय संज्ञा, मैथुन संज्ञा और निद्रा लेना, कलह करना यह सब तो मानव और पशुओं के समान है।[1]

ब्र० मोहनी बाई

महाराज श्री के मधुर वचनामृत के पान से बाईजी ने असंयम का वमन कर सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। अब कुटुम्बियों से आपका ममत्व टूट गया। आज तक तो अकेली थी, अब मथुरा बाई और आप दो हो गईं–दो ही नहीं, ग्यारह हो गई अर्थात् एक-एक पृथक्-पृथक् रहते हैं तब तो उनकी जोड़ दो होती है और एक-एक मिल जाने से ग्यारह हो जाते हैं। आप दोनों ही शरीर से दो होते हुए भी मन से एक थीं। इसलिये ग्यारह के समान शक्ति वाली हो गई थीं।

१–आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो, धर्मेण हीनः पशुभिः समानाः।।

धैर्यशालिनी :

संयम-नियम से शून्य हृदय वाले भव्यों को धर्मामृत का पान कराते हुए श्री चन्द्रसागरजी महाराज ब्यावर पहुंचे । ब्यावर चातुर्मासानन्तर जयपुर आये ।

मुनिराज का आगमन सुनकर जनता का हृदय वैसे ही नाच उठा जैसे वर्षाकाल के आगमन को सुनकर मयूर नाच उठता है । जयपुर निवासियों ने महाराज का भव्य स्वागत किया तथा चातुर्मास करने की प्रार्थना की । भव्यों के भाग्य से महाराज ने चातुर्मास करना स्वीकार कर लिया । चातुर्मास निर्विघ्न पूरा हो गया । महाराज श्री विहार करके खानिया मे आ गये ।

बालू और पत्थर के टीलो के समीप खानिया (जिन मंदिर) है तब उसके चारों ओर भयकर अटवी थी ।

परम तपवस्वी, निर्भीक वक्ता श्री चन्द्रसागर महाराज आहार करने के बाद जगल में चले जाते और तरुतल में बैठ कर आत्मचिंतवन करते । चारों तरफ से आने वाली सिह की दहाड सुनकर भी वे साहसी पुरुष आकुल नहीं होते ।

एक दिन जब उपदेश का समय हुआ तब मोहनी बाई तथा श्री चान्दमल जी बड़जात्या आदि श्रावक महाराजश्री की खोज करने को निकले । थोड़ी दूर गये थे कि जंगल से लकडियां बटोरने वाले किसी किसान ने कहा–तुम लोग जंगल में मत जाओ, अभी-अभी एक सिंह इधर से निकला है और जहा पर नागा बाबा बैठा है वहा पर गया है । शायद तुम्हारे नागा बाबा को सिह ने भक्षण कर लिया है ।

किसान की वार्ता को सुनकर सर्व श्रावको का हृदय दहल गया और वे भयभीत होकर बोले–बाई जी ! अपन तो इधर नही जायेगे ।

मोहनी बाई ने कहा–आप लोग सुखपूर्वक घर पर जाकर विश्राम कीजिये । मैं तो अपने गुरुवर के समीप जाऊंगी । जहां पर चन्द्रसागर महाराज के चरण कमल पड़ते हैं उस क्षेत्र में आपत्ति नहीं आ सकती । चन्द्रसागर महाराज की जय ! ऐसा उच्चारण करके मोहनी बाई ने जगल में प्रवेश किया । पीछे-पीछे श्रावकों की भीड़ थी । एक सघन छायादार वृक्ष के नीचे गुरुदेव को सकुशल विराजमान देख कर सबका हृदय आनन्दित हो गया । महाराजश्री को नमस्कार करके सबने पूछा–स्वामिन् ! यहां पर सिह आया था । गुरुदेव ने मुस्कुराते हुए कहा–आया था, दर्शन करके चला गया । श्रावकों ने इधर-उधर दृष्टि डाली, शेर जा रहा था और महाराज श्री के स्थान के पास उसके पाँवों के चिह्न अंकित थे । इस घटना से अनुमान लगाया जा सकता है कि

पूज्य चन्द्रसागरजी महाराज कितने तेजस्वी तपस्वी थे[१] आज भी जिनके यशोगान से जन-जन का मुख मुखरित है—

मिथ्या तम आच्छादित जग में फैला भ्रष्टाचार।
धनमद के अत्याचारों से पीड़ित हुआ जैन संसार ।।
ऐसे विकट समय में जिसने बन्द किया पाखण्ड प्रसार।
उन गुरुवर श्री चन्द्र सिन्धु को नमस्कार हो बारंबार ।।

महाराज श्री के साथ अनेक नगरों में भ्रमण करती हुई तथा नैनवाँ नगर में चातुर्मास करके वीर संवत् २४६५ में महाराज के सघ में आहारदान के लाभ से तथा धर्मोपदेश से अपने जन्म को सार्थक करती हुई ब्र० मोहनी बाई सवाईमाधोपुर पहुंची।

धर्म–प्रभावना :

सवाईमाधोपुर के चातुर्मास में मोहनी बाई ने एक विशाल विधान की योजना की। १०८ कलशों से भगवान का अभिषेक करके सारे नगरवासियो को एक-एक कलश और सौभाग्यवती स्त्रियों को एक-एक शाटिका प्रदान की। रथयात्रा निकाली गई। श्री अमृतचन्द्र आचार्य ने लिखा है कि—

आत्मा प्रभावनीयो, रत्नत्रयतेजसा सततमेव।
दानतपोजिनपूजा, विद्यातिशयैश्च जिनधर्मः ।।

रत्नत्रय तेज के द्वारा अपनी आत्मा की शुद्धि करना अंतरंग प्रभावना है तथा दान, तप, पूजा और विद्याओं के अतिशय के द्वारा जिनधर्म का उद्योत करना बहिरग प्रभावना अंग है। यह सम्यग्दृष्टि का चिह्न है क्योंकि अंग के बिना अगो सम्यग्दृष्टि रह नही सकता।

क्षुल्लिका व्रत ग्रहण :

श्री चन्द्रसागरजी महाराज के धर्मोपदेश को सुनकर मोहनी बाई के हृदय में वैराग्य के अंकुर फूटने लगे। उन्होंने संसार की असारता का विचार कर महाराजश्री से क्षुल्लिका के व्रत प्रदान करने की याचना की।

इनकी संयम, तप, त्यागमय प्रवृत्ति को देखकर महाराजश्री ने क्षुल्लिका व्रत की स्वीकृति दे दी। महाराजश्री के मुखारविन्द से स्वीकृति सुनकर बाईजी का हृदय आनन्द से ओत-प्रोत हो गया। हर्ष के आंसुओं से आंखे छल-छला उठीं।

१—ये समाचार स्व० श्री चान्दमल जी. बड़जात्या नागौर वालों ने सुनाये थे जो उनकी प्रत्यक्ष देखी हुई घटना है।

क्षु० इन्दुमती जी

आश्विन शुक्ला १० की शुभ बेला में बाईजी ने एक शाटिका, एक चादर तथा एक थाली-कटोरी के सिवाय सर्व परिग्रह का त्याग कर दिया। अपनी सर्व सम्पदा तीर्थक्षेत्रों में एवं अन्य धर्मकार्यों में वितरित कर दी। आज शरीर से परिग्रह का भार उतर जाने से लाघव आ गया तथा गुणों में गुरुत्व।

महाराजश्री ने इनके गुणानुसार इन्दुमती नाम रखा अर्थात् इन्दु के समान निर्मल मति (बुद्धि) होने से यह नाम सार्थक था।

अब मोहनी बाई इन्दुमती बन गई। जब इनकी सखी मथुरा बाई ने देखा कि मेरी सहेली ने क्षुल्लिका के व्रत ग्रहण कर लिये हैं तो उनका मन भी गृहस्थाश्रम से उदासीन हो गया। वे विचारने लगीं कि मानव-पर्याय को एक क्षण भी बिना संयम व्यतीत नही करना चाहिये। मैंने तो इतना काल व्यर्थ ही खो दिया। कौन जाने किस समय यमराज कण्ठ पकड़ कर ले जाये। संसारी प्राणी व्यर्थ ही मोह-माया में फंसकर आत्मकल्याण से वंचित रहता है। मुझे सुअवसर मिला है—मानव-पर्याय, सद्विचार और गुरुओं का सान्निध्य। इस सुअवसर में आत्मकल्याण करना ही श्रेयस्कर है। इस प्रकार से उत्पन्न हुई संयम की प्रबल भावना से प्रेरित मथुरा बाई ने भी कार्तिक कृष्णा पंचमी के दिन क्षुल्लिका के पद को स्वीकार किया। इन दोनों मे परस्पर अटूट धार्मिक स्नेह था। प्रतिक्षण स्वाध्याय ध्यान करते हुए उनका समय व्यतीत होने लगा।

अनुगन्तुं सतां वर्त्म कृत्स्नं यदि न शक्यते।
स्वल्पमप्यनुगन्तव्यं मार्गस्थो नावसीदति॥

३

आर्यिका दीक्षा

दिगम्बर सम्प्रदाय में स्त्री वर्ग की दो दीक्षाएँ सम्पन्न होती हैं—१ क्षुल्लिका और २ आर्यिका । क्षुल्लिका जी पीछी-कमण्डलु, श्वेत साड़ी और श्वेत चादर के अतिरिक्त सर्व परिग्रह की त्यागी होती हैं, आर्यिका दीक्षा होने पर श्वेत चादर भी छूट जाती है, अब केवल पीछी-कमण्डलु और श्वेत साड़ी मात्र परिग्रह रह जाता है ।

ब्रह्मचारिणी मोहनी बाई जब क्षुल्लिका इन्दुमती बनी तब उन्होंने भी व्रत धारण कर पीछी-कमण्डलु, श्वेत साड़ी और श्वेत चादर के अतिरिक्त सब प्रकार के सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग कर दिया । आपके पास जो कुछ धन-राशि थी, उसमें से कुछ तो आपने पहले ही डेह ग्राम में महिलाओं के पूजनादि करने हेतु चैत्यालय के निर्माण में लगा दी । दीक्षा के प्रसंग पर शेष सारी राशि भी अनेक धार्मिक संस्थाओं को प्रदान कर आपने इस परिग्रह रूपी पिशाच से अपना पीछा छुड़ाया और सुख-शान्ति के पथ की अनुगामिनी बन गईं ।

द्वितीय वर्षायोग :

कसावखेड़ा का वर्षायोग पूर्ण होने पर संघ ने कुन्थलगिरि की यात्रा की जहाँ समाधि सम्राट् चारित्र चक्रवर्ती १०८ श्री शान्तिसागरजी महाराज विराज रहे थे । गुरु दर्शन के लिए ही पूज्य चन्द्रसागर महाराज कुन्थलगिरि पधारे थे । अपने गुरु के एवं परम पावन सिद्ध क्षेत्र के—देशभूषण कुलभूषण मुनिराज ने इसी पर्वत पर तपस्या कर मुक्ति रमा का वरण किया था—दर्शन कर क्षु० इन्दुमतीजी और क्षु० मानस्तम्भमतीजी कृतकृत्य हो गईं । उनका हृदय पुलकित हो उठा । गुरुओं के, सिद्ध क्षेत्रों के एवं वीतराग प्रभु के दर्शन से जिस आनन्द की अनुभूति होती है वह

अनिर्वचनीय है। कुछ दिन वहां रुककर संघ आडूल आया। वि० सं० २००१ का चातुर्मास वहीं सम्पन्न हुआ। संघ के चातुर्मास से अभूतपूर्व धर्म प्रभावना हुई। नैनवां निवासी श्री कजोड़ीमलजी की क्षुल्लकदीक्षा गुरुदेव के हाथों सम्पन्न हुई। आपका नाम क्षु० धर्मसागर रखा गया, आप यथानाम तथा गुण वाले सरल प्रकृति के भद्र परिणामी है जो वर्तमान में विशाल संघ के नायक आचार्य धर्मसागरजी महाराज के नाम से प्रसिद्ध हैं।

चातुर्मास के बाद संघ का विहार मुक्तागिरि की ओर हुआ। मुक्तागिरि से साढ़े तीन करोड़ मुनियो ने मुक्ति-पद प्राप्त किया है। पर्वत पर अति मनोज्ञ पावन जिन मन्दिर हैं जिनमें विशाल जिन प्रतिमाएँ है, उनके दर्शन से पाप-कालिमा का नाश होता है। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। पर्वत पर केशर की वृष्टि होती है, निर्मल नीर का झरना बहता है, पर्वत पर जाने के बाद वापस आने की भावना नही होती है।

गुरु वियोग :

मुक्तागिरि सिद्धक्षेत्र की यात्रा करके महाराज संघ सहित सनावद होते हुए सिद्धवरकूट पहुँचे। फाल्गुन का महीना था। झंझावात के शीतल झकोरों से समस्त संघ ज्वराक्रान्त हो गया। ज्वरग्रस्त होकर सघ संचालक श्री प्रतापमलजी बगड़ा ने सिद्धवरकूट से ही स्वर्ग को प्रयाण किया। सिद्धवरकूट से ऊन पहुँचते ही श्री १०८ हेमसागरजी महाराज तथा क्षुल्लक बोधसागरजी महाराज का स्वर्गवास हो गया। श्री १०८ चन्द्रसागरजी महाराज भी अत्यन्त ज्वरग्रस्त हो गए। इसी स्थिति में संघ बड़वानी पहुँचा। आपके तत्त्वावधान में सुजानगढ़ निवासी श्री चाँदमल धन्नालाल द्वारा निर्मापित मानस्तम्भ की प्रतिष्ठा सानन्द सम्पन्न होकर फाल्गुन शुक्ला दशमी के दिन भगवान विराजमान हो गए। चारित्र शिरोमणि चन्द्रसागर महाराज का शरीर प्रतिक्षण कृष्णपक्ष के चन्द्रमा के समान क्षीण होता गया। ज्वर ने निकलने का नाम नही लिया तो महाराजश्री को निश्चय हो गया कि अब यह शरीर टिकने वाला नहीं है। तब तीन दिन की समाधि के साथ इस भौतिक शरीर का त्याग कर स्वर्गवासी बन गए। गुरु का वियोग किसके लिए असह्य नही होगा अपितु सबके ही हृदय का विदारक था। नवीन दीक्षिता क्षु० इन्दुमतीजी, क्षु० मानस्तम्भमतीजी एवं क्षुल्लक धर्मसागरजी को गुरु वियोग की असह्य वेदना सहन करनी पडी। कर्मों की गति विचित्र है, इसके आगे किसी का वश नहीं चलता, यही सोचकर आपने गुरुवियोग से व्यथित हृदय को शांत किया। महाराज की समाधि के समाचार सुनकर समस्त जैन समाज में सन्नाटा छा गया। घोर अन्धकार प्रतीत होने लगा क्योंकि एक अलौकिक दीपक सदा के लिए बुझ गया था।

परमपूज्य चन्द्रसिन्धु :

जिस समय सारा विश्व मिथ्यात्व अन्धकार से आच्छादित था, सुख के इच्छुक प्राणी अज्ञान के गहन कूप में गिरकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो अपने लक्ष्य की प्राप्ति की असफलता का अनुभव

कर रहे थे, मोह की मदिरा का पान करके मानव सन्मार्ग को भूल रहे थे, ऐसे घोर विकट समय में इस भारत वसुन्धरा के महाराष्ट्र प्रान्तान्तर्गत नादगांव निवासी खंडेलवाल पहाड़्या गोत्रोत्पन्न श्रीमान् नथमलजी श्रेष्ठी की धर्मपत्नी सीता देवी की कुक्षिका रूपी उदयाचल पर प्रकाशपुंज, मिथ्यान्धकार-नाशक, सन्मार्गप्रकाशक, पुत्र रूपी चन्द्र का उदय हुआ। जिसने अपने महामहिमाशाली जीवनकाल में लक्ष लक्ष आत्माओं को अपने सद्ज्ञान रूपी प्रकाश द्वारा पथ प्रदर्शन कर सन्मार्ग में लगा दिया। वही प्रकाशपुंज चारित्रचक्रवर्ती शांतिसागर महाराज के शिष्य स्वामी चन्द्रसागर के रूप में प्रकट हुआ।

श्री चन्द्रसागर वास्तव में चन्द्र थे। उनका शरीर चन्द्रवत् उज्ज्वल था। मन इन्दु-किरण सम शीतल एवं शान्त था। मुख की आभा चन्द्रकिरण सम सौम्य और सुखद थी। जिस भव्य प्राणी ने उसकी शीतल चान्दनी का आश्रय लिया, उसका ससार-ताप दूर हो गया। यद्यपि कितनी ही विपत्तियो के कृष्ण मेघ उनके सामने मंडराये, उनके स्व-पर हितार्थ कार्य मे बाधा पहुँचाने का प्रयत्न किया पर फिर भी उन्होंने अपने भक्त रूपी मोक्ष के पथिको को अपने वचन रूपी किरणों के द्वारा सन्मार्ग का दिग्दर्शन कराया।

वे समदर्शी थे। समस्त प्राणियो पर उनकी ज्ञान रश्मिया बराबर बिखरती थी। चाहे कोई गरीब हो या अमीर। वे अत्यत शीतल एवं कोमल हृदयी थे। अत्यंत काले बादलों के समान आई हुई विपत्तियो को हसते-हसते सहन करने वाले थे। वे आपत्तियों में मेरुवत् अचल तथा सागर के समान गंभीर रहे। स्व-पर-कल्याण करना उनका धर्म था। भटके हुए को राह बताना उनका कर्म था। उनकी त्याग और तपस्या आज के जड़वादी संसार के लिये एक अलौकिक आदर्श है। उनके वचन आध्यात्मिक उन्नति के पथ पर प्रकाश डालने वाले थे। वे भोगाकांक्षा, यशोलिप्सा से कोसों दूर थे।

किसी प्रकार का प्रलोभन, ख्याति, पूजा-लाभ की प्रबल वायु उनके मेरुवत् हृदय को नहीं हिला सकी। सत्य जिनागम के रहस्य का उद्घाटन करने के लिये उनके विरोधी दलों ने उनका विरोध किया परंतु सत्पथदर्शक ने अपने ध्येय को नही छोडा।

उन्होंने संयम के अमृत से भव्य चातको के असयम के ताप को दूर किया, संसार रूपी समुद्र के भंवरों में गोते खाने वाले भव्यों को व्रतों का हस्तावलंबन देकर बाहर निकाला तथा भव्य प्राणियों के अज्ञान अंधकार से व्याप्त चक्षुओं को ज्ञान शलाका से खोला। उनकी प्रशंसा आचार्य शांतिसागरजी महाराज भी करते थे। एक बार भी जिन्होंने इनके दर्शन किये हैं वह इनको भूल नहीं सकता। आपका एक एक वचन अमूल्य था। ऐसे परम तपस्वी स्पष्टवादी, निष्परिग्रही, कुंदकुंदादि आचार्यों के पद चिह्नों पर चलने वाले गुरुदेव के चरणों मे सर्व लोगों ने असंख्यात बार वन्दन नमस्कार किया तथा उनके गुणों का स्मरण करके आंखो में अश्रु धारा बहने लगी।

मिथ्यात्व अन्धकारनाशक सूर्य, भव्य भवरोग नाशक धन्वन्तरी, ज्ञानध्यान के दीप्तिमान पुंज, करुणासागर गुरुदेव के शरीर का दाह संस्कार भक्त गणों ने बड़े व्यथित हृदय से किया एवं सर्व जैन समाज ने अश्रुभरे नयनों से श्रद्धांजलि अर्पित की।

गुरु का वियोग किसके लिये असह्य नहीं होगा अपितु सबके हृदय का विदारक था। गुरुदेव के वियोग से इन्दुमतीजी तिलमिला गई। जिस प्रकार वृक्ष के उखड़ जाने पर फल, कलियां आदि मुरझा जाती हैं उसी प्रकार चन्द्रसागर रूपी वृक्ष के उखड़ जाने पर उनके शिष्य रूपी पुष्प और इन्दुमतीरूपी कली मुरझा गई। असह्य दुःख का पर्वत अकस्मात् आ पड़ा। किसने सोचा था कि असमय में ही गुरुदेव का वियोग हो जायेगा।

इस अघटित घटना से इन्दुमतीजी के हृदय में भारी चोट पहुंची। वज्रपात के समान उनका हृदय विदारित हो गया परतु उपाय क्या था अश्रुधारा बहाने के सिवाय। गुरुदेव का आश्रय सदा के लिये छूट गया। "होनहार होतव्य को टाल सके ना कोय"। अन्त मे श्री गुरु के वचनों को हृदय मे धारण करके धैर्य धारण किया। जैसे सरोवर के सूख जाने पर पक्षीगण इधर-उधर चले जाते हैं उसी प्रकार चन्द्रसागर रूपी सरोवर के सूख जाने से उनके शिष्यगणरूपी पक्षी इधर-उधर विहार कर गये।

तृतीय वर्षायोग :
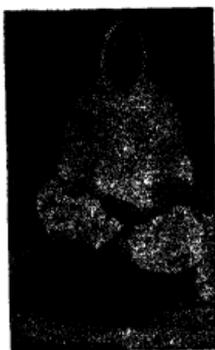
विमलमतीजी

स्वर्गीय गुरुदेव को हृदय में धारण कर क्षु० इन्दुमतीजी, क्षु० मानस्तम्भमतीजी और क्षु० धर्मसागरजी के साथ विहार करते हुए राजस्थान के पिड़ावा नगर में पधारीं जहां पूज्य १०८ श्रा वीरसागरजी महाराज विराज रहे थे। आपके दर्शनों से सबको अतीव आह्लाद हुआ। यहां क्षुल्लिका मानस्तम्भमतीजी की आर्यिका दीक्षा सम्पन्न हुई। अब वे विमलमतीजी हो गईं। क्षुल्लिका इन्दुमतीजी संघ के साथ विहार करती हुई झालरापाटण पहुँची, वहाँ परम पूज्य वीरसागरजी महाराज का चातुर्मास हुआ। आपने भी वि० सं० २००२ का यह चातुर्मास संघ में ही रहकर धर्माराधनापूर्वक सम्पन्न किया। झालरापाटण में शान्तिनाथ भगवान का विशाल बिम्ब है जिसके दर्शन करने से मन विभोर हो जाता है, वाणी गद्गद हो जाती है, मस्तक अपने आप नम जाता है तथा कर वन्दना के लिए जुड़ जाते हैं। यहाँ विशेष अवसरों पर मनों दूध-दही आदि विपुल सामग्रियों सहित अभिषेक पूजन होता था जिससे काफी धर्म प्रभावना हुई। चातुर्मास-समाप्ति पर मार्गस्थ ग्राम-नगरो में धर्म की प्रभावना करता हुआ सघ टोडारायसिंह पहुंचा।

चतुर्थ वर्षायोग :

गुरुभक्त श्रद्धालु श्रावकों की विशेष प्रार्थना पर गुरुदेव श्री वीरसागरजी महाराज ने यहां चातुर्मास करने की स्वीकृति प्रदान की। वि० सं० २००३ का चातुर्मास क्षुल्लिका इन्दुमतीजी ने

भी संघ के साथ टोडारायसिंह में ही किया। यहाँ पर विशाल सात मन्दिर हैं। जैन धर्म पर दृढ़ आस्था रखने वाले खण्डेलवाल और अग्रवालों के लगभग १५० घर हैं। संघ के चातुर्मास से समाज में विशेष जागृति आई। अनेक श्रावक-श्राविकाओं ने व्रत ग्रहण किये। श्री मोहनलालजी छाबड़ा व उनकी पत्नी ने पंचम प्रतिमा के व्रत लिए। अनन्तर श्री मोहनलालजी ने पू० १०८ मुनिश्री सन्मति-सागरजी के रूप में महाव्रत अंगीकार कर २५ नवम्बर १९८० को उदयपुर में श्रेष्ठ समाधिमरण किया है। श्री शंकरलालजी बाकलीवाल व उनकी पत्नी ने दूसरी प्रतिमा के व्रत लिये। श्रीमती नवला बाई व श्री गुलाबचन्दजी टोंग्या की धर्मपत्नी ने भी व्रत धारण किये। श्री गुलाबचन्दजी आगे बढकर मुनि जयसागरजी होकर भव्य प्राणियों को सन्मार्ग में लगाते हुए आत्म कल्याण कर रहे हैं। इनके अतिरिक्त भी अन्य कई श्रावक-श्राविकाओ ने शक्त्यनुसार व्रत-नियम लिये। महिला-समाज हेतु अभिषेक-पूजन के लिए एक पृथक् चैत्यालय भी स्थापित किया गया जो आज अपने विशाल रूप मे विद्यमान है। टोडारायसिंह का समाज अच्छा धर्मपरायण गुरुभक्त समाज है। वहाँ प्राय त्यागियों, व्रतियों, साधु-सन्तों का समागम बना रहता है।

पंचम वर्षायोग :

टोडारायसिंह से विहार कर संघ राजस्थान की राजधानी गुलाबीनगरी जयपुर में पहुँचा। संवत् २००४ का चातुर्मास चरितनायिका ने वीरसागरजी महाराज के सघ के साथ यही सम्पन्न किया। क्षुल्लिकाजी को आर्यिका कीर्तिमतीजी का सान्निध्य भी प्राप्त हुआ। जयपुर जैनपुर है, यहाँ अनेक मन्दिर, चैत्यालय, नसियाजी हैं। मुनिवृन्द एव आर्यिकाजी क्षुल्लिकाजी की प्रेरणा से अनेक स्त्री-पुरुषों, बालक बालिकाओं ने देवदर्शन, जल छानकर पीना, रात्रिभोजन त्याग आदि के नियम लिये। महिला समाज में पुरुषो से भी अधिक उत्साह व उमंग थी। संघ के सान्निध्य से, बिखरती धार्मिक आस्था पुन: सुदृढ़ एवं गतिशील हुई। सदाचार की ओर प्रवृत्ति हुई। इस तरह जन समूह में एक नयी धार्मिक चेतना प्रकट हुई।

छठा वर्षायोग :

वि० सं० २००५ का वर्षायोग क्षुल्लिका इन्दुमतीजी ने आर्यिका १०५ श्री विमलमतीजी के साथ नागौर में सम्पन्न किया था। पूज्य १०८ गुरुदेव श्री चन्द्रसागरजी के वि० सं० १९९२ में यहां आने से पहले कई वर्षों तक यहाँ किसी त्यागी वर्ग का चातुर्मास तो दूर आगमन तक नहीं हुआ था। इसके बाद त्यागी वर्ग का आगमन तो हुआ पर चातुर्मास नही। वि० सं० २००५ में यह पहला ही अवसर था जब 'माताजी' का चातुर्मास हुआ अत: समाज में आशातीत उत्साह था; इसकी कल्पना इसी बात से की जा सकती है कि माताजी दो थीं और चौके लगते थे बहत्तर। सर्व प्रथम नागौर में इन्हीं आर्यिका द्वय के सान्निध्य मे सिद्धचक्र मण्डल विधान आयोजित हुआ था। जिसमें कुचामन शहर से सेठ गम्भीरमलजी पाण्ड्या द्वारा निर्मापित 'रजत रथ' लाया गया था। उस अवसर पर अभूतपूर्व धर्मप्रभावना हुई।

मेरी (सुपार्श्वमती) तीव्र भावना थी कि मैं भी नागौर जाकर आर्यिका श्री के दर्शन कर अपने को पवित्र करूँ परन्तु अशुभ कर्म के उदय व स्त्री-पर्याय की पराधीनता के कारण मेरी भावना क्रियान्वित नही हो सकी। आर्यिका श्री के नागौर चातुर्मास करने की सूचना जब से मिली थी तभी से उनके दर्शनो की उत्कट अभिलाषा लगी थी; यद्यपि सात वर्ष की आयु में मैंने श्री चन्द्रसागरजी महाराज के संघ के दर्शन अवश्य किये थे तथापि आर्यिका-माताओं की चर्या से मैं सर्वथा अनभिज्ञ थी। प्रत्यक्ष तो दर्शन किये ही नही थे, शास्त्रीय ज्ञान भी नही था कि आर्यिका किसे कहते हैं ? उनकी चर्या कैसी होती है ? चातुर्मास के दिन बीतते जा रहे थे, आर्यिका श्री के दर्शन की उत्कण्ठा बलवती होती जा रही थी; वीतराग प्रभु से प्रतिदिन प्रातः और सन्ध्या समय यही प्रार्थना करती कि हे प्रभो ! मुझे भी कभी पूज्य पुरुषों के दर्शन होंगे, उनके सान्निध्य में रहने का अवसर मिलेगा। मेरे पूज्य पिताजी एवं भाईजी सिद्धचक्र महोत्सव के अवसर पर माताजी के दर्शन कर आए थे और सबके समक्ष प्रभावना अङ्ग की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा किया करते थे, जिसे सुनकर मेरा हृदय गद्गद हो जाता था हृदय में आर्यिका-दर्शन की प्रवल इच्छा तरंगे उठती और यो ही विलीन हो जातीं। अपने कार्य की सिद्धि के लिए मैंने मंत्रराज 'णमोकार मत्र' का अवलम्बन लिया जिसकी महिमा पिता श्री के मुख से मैं कई बार सुन चुकी थी। वास्तव मे णमोकार महामंत्र की महिमा अतुल है। इसके प्रभाव से दुष्कर से दुष्कर कृत्य भी सुसम्पन्न हो जाते है।

लेखिका को प्रथम दर्शन :

मेरा विश्वास सफल सिद्ध हुआ। णमोकार मंत्र के प्रभाव से अप्रत्याशित बात हुई; चातुर्मास के बाद आर्यिका द्वय का डेह ग्राम जाना सुनिश्चित था परन्तु मेरे नवकार-स्मरण से पूज्य श्री इन्दुमतीजी का विचार मैनसर ग्राम में आने का हुआ। पौष का भयङ्कर शीत ! परन्तु उसकी परवाह न कर २६ मील के मरुदेशीय रेतीले मार्ग को दो दिन में पार कर माताजी मैनसर आ पहुँची। आर्यिकाजी का आगमन सुन कर एव दर्शन पाकर भव्य जीवों के मन कमल खिल उठे। १३ वर्ष पूर्व की स्मृति सजीव हो उठी जब आचार्य कल्प महान् तपस्वी योगिराज १०८ श्री चन्द्र-सागरजी महाराज ने इस क्षेत्र मे विहार कर अपने चरणकमलों से यहाँका कण-कण पवित्र किया था। पूज्य माताजी के प्रथम दर्शन से मुझे जिस अनुपम आनन्द की अनुभूति हुई, उसे मेरी लेखनी लिपिबद्ध करने में अशक्त है।

प्रथम आहारदान और सदा के लिए नमक त्याग :

पूज्य माताजी के साथ गट्टू बाई, दाखा बाई, केशर बाई आदि ब्रह्मचारिणी बाइयाँ थीं। संध्या काल था। सबके यथायोग्य स्थान पर ठहर जाने के बाद मैं अपने घर आई। पूज्य पिताश्री बोले—"तुम्हें जो कुछ करना है, सो कर लो; यह स्वर्ण अवसर बार-बार नही मिलता।" मैंने मुख से तो कुछ नहीं कहा परन्तु रातभर यही विचार उठते रहे कि क्या करूँ ? क्या जीवन भर

के लिए इनका साथ स्वीकार कर लूँ ? प्रात. काल अशुद्ध जल का परित्याग कर माताजी को आहार दिया। प्रथम आहार-दान के लाभ से जिस आनन्द की अनुभूति हुई वह वचनातीत है। माताजी ने बिना नमक का आहार लिया। उनके आहार कर चले जाने के बाद जब मै साग-भाजी में नमक मिलाने लगी तो पिताजी ने कहा—"क्या तुम बिना नमक के नहीं खा सकती ? क्या वह शक्ति तुममें नहीं है ?" उनके वचन सुनकर हृदय में एक अपूर्व साहस जागृत हुआ। "क्या मैं नमक नही छोड़ सकती ? माताजी भी तो मेरी जैसी ही हैं। क्या उन जैसी शक्ति मुझमे नही है ?" ये विचार आते ही मेरी नमक खाने की इच्छा समाप्त हो गई। उस दिन से फिर कभी मेरी जिह्वा ने नमक का स्पर्श नहीं किया।

मध्याह्न में माताजी का प्रवचन होता था, सुनने के लिए समस्त जैन-अजैन बन्धु-भगिनी एकत्र होते थे। उनकी मधुर वाणी एवं मारवाड़ी भाषा मे समझाने की शैली बहुत प्रिय लगती थी, कथा प्रसंग रोचक होने से उठने की इच्छा नही होती थी। सध्या समय मै माताजी के पास चौबीस ठाणा, भक्ति पाठ आदि का अध्ययन करने भी जाती थी। एक माह पूर्ण हुआ परन्तु माताजी ने यह कभी नही कहा कि तुम व्रत ग्रहण करो। मेरे मन मे सर्वदा यही भावना बनी रहती थी कि कब मुझमे इतनी योग्यता आ सकेगी कि जिसे देखकर स्वयं माताजी के मुखारविन्द से ये शब्द निस्सृत हों कि तुम व्रती बनो। मैने सोचा—दो दिन बाद माताजी का विहार हो जाएगा; मैंने तो अभी कुछ संयम–त्याग लिया ही नही। माताजी के साथ हो लेने की मेरी प्रबल इच्छा थी तो मैंने स्वयं ही माताजी से निवेदन किया कि आप मुझे क्षुल्लिका के व्रत देकर अनुगृहीत कीजिए। माताजी बोली—मै स्वयं क्षुल्लिका हूँ, तुम्हे क्षुल्लिका व्रत नहीं दे सकती, तुम सातवी प्रतिमा के व्रत ग्रहण करो और विद्याध्ययन में चित्त लगाओ। वात्सल्यपूर्ण वाणी श्रवण कर मुझे अपरिमित हर्ष हुआ। मैंने शीघ्र ही सप्तम प्रतिमा के व्रत लिये। मैं माताजी के वात्सल्य में इतनी बँध चुकी थी कि अब उनसे एक मिनट भी अलग होने की भावना नही होती थी। दो दिन बाद माताजी का विहार लालगढ़ की ओर हुआ। यह मैनसर से छह मील दूर है। वहाँ उस समय श्रावकों के लगभग २०-२५ घर थे। वहाँ एक घटना घटी—कुछ दिनों से प्रतिदिन मध्याह्न में गाँव में अग्नि का प्रकोप होता था जिससे कितने ही घर जलकर भस्म हो जाते थे, सामान नष्ट हो जाता था। माताजी को जब यह बात बताई गई तो उन्होंने शान्ति धारा मंत्र का मंत्रपूत जल छिड़कने को कहा। ऐसा करने से प्रतिदिन का अग्नि प्रकोप दूर हो गया जिससे वहाँ के निवासी माताजी से बहुत प्रभावित हुए।

विशाल संघ का चातुर्मास (नागौर) :

लालगढ़ में दो माह ठहर कर माताजी डेह पहुँची। डेह आपकी जन्म भूमि है। वहां आपके मधुर प्रेरणास्पद उपदेश से अनेक भाई-बहनों ने व्रत नियम अंगीकार किये। डेह से भदाना

होते हुए वि० सं० २००६ में आप फिर वर्षा-योग के निमित्त से नागौर पहुँची। परम पूज्य प्रातः स्मरणीय गुरुदेव १०८ श्री वीरसागरजी महाराज भी वहाँ संघ सहित पधारे थे। विशाल संघ के दर्शन से जन-जन का मन प्रफुल्लित था। दो मुनिराज–१०८ श्री वीरसागरजी, १०८ श्री आदिसागरजी, तीन क्षुल्लकजी— १०५ श्री धर्मसागरजी, १०५ श्री शिवसागरजी एवं १०५ श्री सिद्धसागरजी चार आर्यिकाजी—१०५ श्री वीरमतीजी, १०५ श्री सुमतिमतीजी, १०५ श्री विमलमतीजी एवं १०५ श्री पारसमतीजी—तथा तीन क्षुल्लिकाजी—क्षु. इन्दुमतीजी, सिद्धमतीजी, शान्तिमतीजी–इस प्रकार कुल बारह पीछी थी। ब्र० सूरजमलजी, ब्र० पण्डित भूरामलजी (स्व० १०८ आचार्य श्री ज्ञान-सागरजी) ब्र० मोहनलालजी (अधुना १०८ मुनि श्री सन्मतिसागरजी), ब्र० नेमीचन्दजी (अधुना, १०८ आचार्य श्री विमलसागरजी), ब्र० चाँदमलजी, ब्र० धूलजी (१०८ मुनि श्री पद्म सागरजी), ब्र० कजोड़मलजी, ब्र० कस्तूरीबाई, ब्र० हीराबाई, ब्र० भँवरीबाई (अधुना आर्यिका-पार्श्वमतीजी), ब्र० सोनाबाई, ब्र० मुकनीबाई आदि अनेक व्रतीजन थे। इस विशाल सघ का सान्निध्य पाकर जैन समाज का प्रत्येक सदस्य आह्लादित था। १४ वर्ष पूर्व प्रातः स्मरणीय गुरुदेव १०८ श्री चन्द्रसागरजी महाराज जो धर्म बीज बो गये थे उसे ही पल्लवित पुष्पित करने मानो इस विशाल संघ सहित पूज्य १०८ श्री वीरसागरजी महाराज का पधारना हुआ था। उस समय नागौर नगर मे पानी का अभाव था। अनावृष्टि के कारण कुए, तालाब सब सूख गये थे। बहुत दूर-दूर से पानी लाना पड़ता था। अजैन लग कहते थे ये नग्न साधु आए है अतः वर्षा ही नही हो रही है, ये दर्शन करने योग्य भी नही हैं। आदि अनेक प्रकार की चर्चा होने लगी थी परन्तु नीति वाक्य है कि—

पद्मिनी राजहंसाश्च, निर्ग्रन्थाश्च तपोधनाः।
यं देशमुपसर्पन्ति, सुभिक्षं तत्र जायते ॥

(पद्मिनी स्त्री, राजहंस और निर्ग्रन्थ तपस्वी जिस क्षेत्र में चले जाते हैं वहाँ सुभिक्ष होकर परम शान्ति प्राप्त होती है।) इस बात को सत्यार्थ करने के लिए ही मानो अकस्मात् इतनी मूसलाधार वृष्टि हुई कि जिससे समस्त तालाब कूप आदि जल से परिपूर्ण हो गए। अब तो नागरिक बन्धु जैन तपस्वियों की मुक्तकण्ठ से प्रशसा करने लगे। आषाढ शुक्ला एकादशी को १०५ क्षुल्लक श्री शिवसागरजी महाराज की मुनि दीक्षा का भव्य समारोह हुआ। वैराग्य के इस अद्भुत प्रसंग के अवलोकनार्थ डेह, लाडनूं, सुजानगढ, मेड़ता सिटी, मेड़ता रोड आदि स्थानों के सेकड़ों स्त्री पुरुष सम्मिलित हुए थे। इसी अवसर पर मूलतः डेह निवासी महाराष्ट्र प्रान्तीय, ४५ वर्षीय श्री चन्दूलालजी कासलीवाल की भी क्षुल्लक दीक्षा सम्पन्न हुई थी। बाद में आपने फुलेरा के पंचकल्याणक महोत्सव के अवसर पर प० पू० १०८ श्री वीरसागरजी महाराज के करकमलों द्वारा विशाल चतुर्विध संघ के समक्ष दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण की थी। अपने दूसरे ही चातुर्मास में समाधिमरण कर आप स्वर्गवासी हुए। आपका नाम सुमतिसागरजी था।

इस नागौर चातुर्मास में पूज्य श्री वीरसागरजी महाराज की पीठ में एक अदीठ फोड़ा हो गया था इस कारण समाज तो आकुल-व्याकुल था परन्तु महाराजश्री के मुख पर लेशमात्र भी व्यग्रता नही थी। शरीर के प्रति उनका पूर्ण निर्ममत्व भाव था। धन्य है उनकी निस्पृहता।

आर्यिका दीक्षा :

आ० इन्दुमतीजी का दीक्षा समारोह

चरितनायिका क्षु० इन्दुमतीजी ने पूज्य गुरुदेव से आर्यिका दीक्षा प्रदान करने की विनय की। संसार, शरीर और भोगों से माताजी की पूर्ण विरक्ति देखकर गुरुदेव ने उन्हे आर्यिका दीक्षा प्रदान करने की स्वीकृति दे दी। आसोज शुक्ला दशमी सं० २००६ को पूज्य क्षुल्लिका जी की आर्यिका दीक्षा पूज्य गुरुदेव के कर कमलो द्वारा सम्पन्न हुई। इस अवसर पर क्षु० सिद्धमतीजी व क्षु० शान्तीमतीजी को आर्यिका दीक्षा तथा अनन्तमतीजी की क्षुल्लिका दीक्षा भी हुई थी।

सघ के सान्निध्य मे नागौर में अनेक दीक्षा समारोह, शिखर निर्माण व प्रतिष्ठा समारोह तथा सिद्धचक्र मण्डल विधान आदि महोत्सव सोत्साह, धूमधाम से सम्पन्न हुए थे। इससे जैनधर्म की महती प्रभावना हुई। अनेक लोगों ने आचरण की शुद्धि का महत्व समझकर यथाशक्ति व्रत-नियम भी अंगीकार किये। धर्म जीवन का अभिन्न अंग बना।

बस, चल पड़ी इन्दुमती माताजी की जीवन यात्रा— अंगीकार किया एक व्रतिनी की दिनचर्या को।

व्रतिनी अर्थात् पञ्च महाव्रत, पञ्च समितियाँ, पञ्च इन्द्रिय निरोध, छह आवश्यक और सात शेष नियमों का दृढ़तापूर्वक पालन करना। (२८ मूलगुण)

पाँच महाव्रत : (१) अहिंसा : मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना से हिंसा का त्याग।

(२) सत्य : मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना से असत्य का त्याग।

(३) अस्तेय : मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना से चोरी का त्याग।

(४) ब्रह्मचर्य : मन, वचन, काय, कृत, कारित अनुमोदना से ब्रह्मचर्य पालन करने का नियम।

(५) अपरिग्रह : सर्व प्रकार के परिग्रह का नौ कोटि से त्याग।

पाँच समितियाँ : (१) ईर्या समिति--४ हाथ आगे की जमीन देखकर निर्जीव मार्ग से चलना ।

(२) भाषा समिति--मात्र स्वपर कल्याणक वचन बोलना ।

(३) एषणा समिति-- बत्तीस अन्तराय, ४६ दोष टाल कर रागद्वेष रहित समभाव से बिना निमंत्रण के श्रावक के घर पर जाकर दातार के पड़गाहन करने पर निर्दोष आहार ग्रहण करना ।

(४) आदाननिक्षेपणसमिति : कमण्डलु आदि उपकरणों को रखते उठाते समय सावधानी रखना, और

(५) प्रतिष्ठापन समिति : निर्जन्तु, एकान्त और लोकनिन्दा रहित स्थान में मल-मूत्र क्षेपण करना ।

स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण इन पांच इन्द्रियो के मनोज्ञामनोज्ञ विषयों मे रागद्वेष नही करना (५) इन्द्रिय विजय है ।

१ **भूमिशयन** : जमीन पर सोना, बिस्तर आदि नही बिछाना ।

२ **केशलोच** : निर्भीक होकर हँसते-हँसते अपने हाथों से मस्तक के केशों को उखाड़ना ।

३ **एकभुक्ति** : दिन मे एक बार अपने हाथो मे (कर पात्र) दातार गृहस्थ द्वारा दिया हुआ रूखा सूखा आहार ग्रहण करना ।

४ **अचेलकत्व** : वस्त्र मात्र का त्याग करना भी अचेलकत्व है और ईषत् चेल (थोड़ा वस्त्र) भी अचेलकत्व है । आर्यिका स्त्री है । स्त्री शरीर की रचना विकृत है इसलिये पूर्ण वस्त्र का त्याग तो शक्य नही है, १६ हाथ की एक शाटिका रखना ही आर्यिकाओं का अचेलकत्व गुण है ।

५ **अदन्तधावन** : दाँतो का मञ्जन आदि नही करना ।

६ **स्थित भोजन** : अपनी अञ्जुलि मे समपाद खड़े होकर नियमित भोजन करना ।

७ **अस्नान** : स्नान, अञ्जनादि का त्याग करना ।

छह आवश्यक : १. सामायिक : समभाव का पालन २. चतुर्विशतिस्तव : तीर्थकरो का स्तुतिपाठ

३. वन्दना : देव गुरु को नमस्कार ४ प्रतिक्रमण : दोषों का शोधन और प्रकटीकरण

५. प्रत्याख्यान : अयोग्य के त्याग का नियमन और व्रत पालन

६. कायोत्सर्ग : नियत काल के लिये देह से ममत्व त्याग कर खड़े होना ।

इन अट्ठाईस मूलगुणों का पूर्णतया पालन तो महाव्रती नग्न दिगम्बर महापुरुष ही करते हैं । आर्यिकाओ के उपचार महाव्रत होते हैं क्योंकि वे पूर्णतया परिग्रह का त्याग नही कर सकतीं । जब परिग्रह का त्याग पूर्ण नही है तब शेषव्रत भी पूर्ण नही होते ।

उपचार महाव्रतिनी--अपने व्रतों का निर्दोष रीत्या पालन करती हुई तथा ग्रामों एवं नगरों में ज्ञान की गंगा प्रवाहित करती हुई इन्दुमती माताजी मंगल विहार करने लगीं । ❖

तीर्थराज की ओर

नागौर में आर्यिका दीक्षा ग्रहण करने के बाद चरितनायिका माताजी इन्दुमतीजी आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज के विशाल संघ के साथ भदाना होते हुए वि० सं० २००६ माघ वदी दूज को डेह ग्राम पहुँचो। संघ में आचार्य श्री वीरसागरजी, मुनिश्री आदिसागरजी, मुनिश्री शिवसागरजी, क्षुल्लक १०५ श्री धर्मसागरजी (वर्तमान आचार्य श्री धर्मसागरजी), क्षुल्लक सिद्धि-सागरजी, क्षुल्लक सुमतिसागरजी तथा ब्रह्मचारी सूरजमलजी, ब्रह्मचारी राजमलजी (वर्तमान मुनिश्री अजितसागरजी), ब्र० भूरामलजी (स्व० आचार्य श्री ज्ञानसागरजी), ब्र० कालूरामजी, ब्र० जुहार-मलजी, ब्र० चांदमलजी, आर्यिका १०५ श्री वीरमतीजी, आ० सिद्धमतीजी, आ० विमलमतीजी आ० पारसमतीजी, आ० इन्दुमतीजी (चरितनायिका), आर्यिका शान्तिमतीजी, आर्यिका सुमति-मतीजी, क्षुल्लिका अनन्तमतीजी तथा ब्रह्मचारिणी-बाइयां आदि मिला कर कुल २८ त्यागी-व्रती थे। विशाल संघ के डेह में प्रवेश करते ही आकाश में बादल छाकर प्रकृति ने भी मानो वर्षा की बूंदों से आप सबका हार्दिक स्वागत किया। समस्त जैनाजैन नागरिकों का स्वागतोत्साह दर्शनीय था। संघ ने पहले प्राचीन मन्दिर के जिनबिम्बों के दर्शन किए, अनन्तर ग्राम में प्रवेश कर नये मन्दिर का अवलो-कन किया। संघ के विराजने से विशेष धर्म प्रभावना हुई। केश लोंच व प्रवचन आदि के कार्यक्रम सार्वजनिक स्थानों पर आयोजित हुए जिनसे प्रेरणा पाकर अनेक लोगों ने अपनी-अपनी शक्त्यनुसार व्रत-नियम आदि ग्रहण किए। संघ के सान्निध्य में प्रतिदिन आगमोक्त पञ्चामृताभिषेक व पूजन आदि की क्रियायें सम्पन्न होती थीं। समय-समय पर सिद्धचक्र आदि अनेक माङ्गलिक विधान भी निर्बाध सम्पन्न हुए। पूज्य गुरुदेव के उद्बोधन से २६ नर-नारियों ने सदैव के लिये अशुद्ध जल का परित्याग

किया। कुछ ने पंचाणुव्रत ग्रहण किये। श्रीमान् बालचन्दजी पाटनी एवं उनकी श्रीमतीजी ने दूसरी प्रतिमा के व्रत ग्रहण किए।

आठवां वर्षा-योग :

संघ डेह से पुनः नागौर आया। भदाना पहुँचा। यहाँ पर १२ वीं शताब्दी का निर्मित एक प्राचीन भव्य जिनमन्दिर है जिस पर श्री मोहनलालजी पहाड़िया ने शिखर बनवाया है। इसकी प्रतिष्ठा पूज्य वीरसागरजी महाराज के सान्निध्य में हुई। वहां से विहार कर संघ डेह, लाडनूं होता हुआ सुजानगढ़ पहुँचा। कुछ वर्ष पूर्व इस नगर में—बहुत दिनों से मिथ्यात्व की गहरी निद्रा में सुप्त मरुभूमि की जनता को सर्वप्रथम सद्ज्ञान के जल से सिञ्चन कर सचेत करने वाले उद्भट विद्वान मुनि श्री चन्द्रसागरजी महाराज ने चातुर्मास किया था। आज पुनः विशाल संघ के दर्शन से भव्य जीव अपूर्व आनन्द का अनुभव करने लगे। इस चातुर्मास में सिद्धचक्रादि अनेक महत्त्वपूर्ण विधान तथा दीक्षासमारोह आदि अनेक धार्मिक महोत्सव आयोजित किए गए। अभूतपूर्व धर्मप्रभावना हुई।

वर्षायोग समापन के बाद परम पूज्य वीरसागरजी महाराज ने संघ सहित कुचामन होते हुए फुलेरा की ओर विहार किया। आर्यिका १०५ श्री विमलमती माताजी एवं १०५ श्री इन्दुमती माताजी लाड़नूं होते हुए पुनः डेह ग्राम पहुँचीं। ज्येष्ठ मास चल रहा था। डेह के समाज की तीव्र इच्छा थी कि चरितनायिका वही वर्षायोग स्थापित करे परन्तु आपने स्वीकृति नहीं दी। कारण वहाँ आपकी जन्मदात्री मातेश्वरी मौजूद थीं। परिवार मे शोक-सन्ताप था। उनके भ्रातृ-पुत्र श्री कँवरी-लालजी का युवावस्था में निधन हो गया था। भ्राता पूनमचन्दजी रुग्ण थे। इसलिये इनकी मातेश्वरी बहुत व्याकुल थी। प्रत्यक्ष अशान्त वातावरण का प्रभाव मन पर पड़े बिना नही रहता है अतएव चरितनायिका ने वहाँ चतुर्मास करने की स्वीकृति प्रदान नहीं की। समाज के लोगों ने बहुत आग्रह किया; श्री रिद्धकरणजी सबलावत ने तो इतना कहा कि आप चातुर्मास की स्वीकृति देंगी तभी मैं अन्न जल ग्रहण करूंगा। किन्तु माताजी ने दृढतापूर्वक उत्तर दिया कि आप कुछ भी करें, मैं यहाँ चातु-र्मास नही करूंगी। श्री रिद्धकरणजी दिन भर खडे रहे परन्तु माताजी अपने विचारों पर अटल रही। ठीक भी है, यदि इस प्रकार के आग्रहों से साधु लोग अपना ध्येय छोड़ दे तो उनका घर छोड़ना भी कठिन हो जाएगा। डेह के समीप नागौर था परन्तु वहाँ माताजी को जाना नही था। इसके आस-पास ४० मील तक जैन-श्रावकों के घर नही थे और डेहवासी विहार कराने के इच्छुक नहीं थे अपितु विहार का विरोध कर रहे थे। परन्तु माताजी ने किसी ओर ध्यान नहीं दिया। साधुओं के हृदय में ममता नहीं होती। चरितनायिका इन्दुमती माताजी मरुभूमि के ज्येष्ठ मास की तपती भूमि और बहती लू की परवाह न करती हुई तीन ही दिन में मेड़ता रोड़ आ पहुँची। आर्यिका १०५ श्री विमलमती माताजी डेह में ही रह गयीं।

नवम वर्षायोग :

डेह में—इन्दुमतीजी—आर्यिका विमलमतीजी
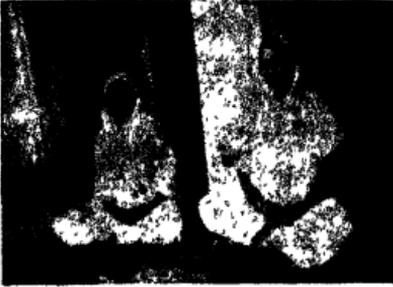
मेड़ता रोड़ में रेलवे स्टेशन के समीप ही एक दिगम्बर जैन मन्दिर है। वहाँ पार्श्वनाथ भगवान का मनोज्ञ बिम्ब है। यहाँ से कुछ दूरी पर श्वेताम्बर तीर्थ—पार्श्वनाथ फलवृद्धि तीर्थ—है जिसमें पार्श्वनाथ भगवान की प्राचीन मूर्ति है। मूलतः यह मन्दिर भी दिगम्बर-जैनो का था परन्तु उनकी कमजोरी से श्वेताम्बर जैन समाज ने इस पर अपना अधिकार कर लिया। दिगम्बर समाज की कमजोरी से न जाने ऐसे कितने ही क्षेत्र दूसरों के अधिकार में चले गए हैं। माताजी के पुनीत पदर्पण से स्थानीय दिगम्बर जैन समाज अतीव हर्षान्वित हुआ। समाज के अनुरोध पर माताजी ने संवत् २००८ का वर्षायोग वहीं सम्पन्न किया।

णमोकार मंत्र का चमत्कार :

इस चातुर्मास में मैंने (ब्र० भँवरी बाई) 'सूर्यप्रकाश ग्रन्थ' का स्वाध्याय किया। इसमें श्री सम्मेदशिखरजी की पैदल यात्रा की बड़ी महत्ता लिखी है। इसे पढ़कर मेरे मन में ऐसी भावना हुई कि एक बार साधुओं के साथ तीर्थराज की यात्रा करूँ। मैंने अपना मनोभाव माताजी के समक्ष प्रकट किया। माताजी बोली—अभी तो असम्भव है। मैंने अपने मन में दृढ निश्चय किया कि जब णमोकार मंत्र की आराधना से असाध्य कार्य भी सिद्ध हो जाता है तो फिर मेरी मनोकामना पूरी क्यों नही होगी ? यह महामंत्र समस्त कार्यों को सिद्ध करने वाला है, मुक्ति पद-दाता है, इससे मेरी मनो-कामना अवश्य पूर्ण होगी। यह दृढ़ विश्वास था; उसी दिन से मैंने णमोकार मन्त्र तथा "ॐ ह्रीं अनन्तानन्तपरमसिद्धेभ्यो नमः", "नमोस्तु सर्वसिद्धेभ्यः" मंत्रों का जाप करना प्रारम्भ कर दिया। चातुर्मास के बाद माताजी विहार करके रेण आईं। वहां एक जिन मन्दिर है, श्रावकों के पन्द्रह घर हैं। वहाँ से माताजी मेड़ता सिटी पहुँची। मेड़ता रोड़ निवासी श्रावक गण चातुर्मास में माताजी से बहुत प्रभावित हुए थे, वहाँ के श्री मोहनलालजी सेठी तथा रतनलालजी सेठी साथ ही थे। मैंने उनसे कहा कि एक बार साधु संघ के साथ तीर्थराज सम्मेदशिखरजी की यात्रा करने की प्रबल इच्छा है तो रतनलालजी बोले—"यदि माताजी चलें तो मैं चलने को तैयार हूँ परन्तु इतनी दूर का प्रवास सहज नहीं है। माताजी की इच्छा भी नहीं है।" अस्तु।

मेड़ता सिटी में दो प्राचीन मन्दिर हैं। एक मन्दिरजी में आदिनाथ भगवान की खड्गासन प्राचीन प्रतिमा है जिसके दर्शन करने पर वहाँ से अन्यत्र जाने की इच्छा ही नहीं होती।

सहस्रकूट चैत्यालय भी प्राचीन है। आदिनाथ प्रभु के सम्मुख बैठना और मध्याह्न में जाप करना तथा यही भावना भाना कि 'प्रभो ! मेरा भी कभी कर्मोदय होगा जिससे दिगम्बर साधु-सध्वियों के साथ तीर्थराज की वन्दना हो सकेगी'—मेरा यही क्रम चलता रहा वहाँ।

दस-पन्द्रह दिन बाद ही फुलेरा से ब्र० चाँदमलजी का एक तार आया "MAHARAJ-JEE VIRSAGARJI'S SANGH GOING SHIKHARJI PLEASE YOU ALSO ATTEND POSITIVELY" "महाराज श्री वीरसागरजी का संघ शिखरजी जा रहा है। आप भी जरूर साथ में चलें।" तार पढ़ कर मेरा मन मयूर नृत्य करने लगा। एक बार तो माताजी ने अवश्य कहा—"१२०० मील की यात्रा है।" इतनी दूर चलना सरल नहीं परन्तु फिर थोड़ी ही देर में उनकी भावना सम्मेदशिखरजी की यात्रा करने की हो गई। इससे उस समय मुझे जिस आनन्द की अनुभूति हुई वह व्यक्त नही की जा सकती। महामंत्र का माहात्म्य अचिन्त्य है, इसके प्रभाव से जब मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है तो फिर यदि क्षुद्र कार्य सिद्ध हो जाए तो इसमे कौनसे आश्चर्य की बात है ?

तीर्थराज की ओर :

मेड़ता सिटी से विहार कर डेगाना, उगरियावास, बोरावड़, मकराना, पलाड़ा, मीठड़ी, गुढ़ा, साँभर, फुलेरा, हिरणोदा, बगरू, भाँकरोटा आदि ग्रामों के जिनमन्दिरो के दर्शन तथा तत्रस्थ नागरिक एवं ग्रामीण नर-नारियों को धर्मामृत का पान कराती हुई माताजी जयपुर पहुँचीं। वहाँ परम-पूज्य वीरसागरजी महाराज संघ सहित विराजमान थे। गुरुदेव के दर्शन एवं संघ की वन्दना से जो आनन्द मिला वह अपूर्व था। आचार्य १०८ श्री वीरसागरजी, मुनि शिवसागरजी, श्री धर्मसागरजी, आर्यिका १०५ श्री वीरमतीजी, सुमतिमतीजी, पारसमतीजी, इन्दुमतीजी, सिद्धमतीजी, शान्तिमतीजी, सुनन्दाजी (कुन्थुमतीजी), ऐलक पदमसागरजी, क्षुल्लिका अनन्तमतीजी, गणमतीजी, अजितमतीजी आदि साधु-साध्वी तथा ब्र० चाँदमलजी, सूरजमलजी, राजमलजी, कालूरामजी, वासुदेवजी, लाड़-मलजी, मदनलालजी, कजोड़मलजी, गणेशमलजी, ब्रह्मचारिणी भँवरी बाई, मुकनी बाई, सोनी बाई, गोपी बाई, हीरा बाई, कस्तूरी बाई, भंवरी बाई आदि व्रती व अन्य ७५ श्रावक-श्राविकाओं सहित विशाल संघ ने तीर्थराज की वन्दना के लिए विहार किया।

जयपुर से संघ सांगानेर आया। यहाँ प्राचीन विशाल सात जिनालय हैं। सभी जिना-लयों में विशाल एवं प्राचीन हजारों जिनप्रतिमाएँ स्थित हैं जिनके दर्शन करने से स्वानुभूति का विकास होता है।

सांगानेर से शिवदासपुरा होते हुए संघ पद्मपुरी पहुँचा। यहां पर छठे तीर्थङ्कर पद्मप्रभु की चमत्कारी मूर्ति है। एक विशाल मन्दिर का निर्माण हुआ है। वहाँ से निमोड़ा, रूपाड़ी, कोट-खावदा, लालसोट, ब्राह्मणवास, गंगापुर, मण्डावरी आदि के जिनमन्दिरों के दर्शन करते हुए तथा

तत्रस्थ जैन-अजैनेतरों को धर्मामृत का पान कराते हुए आचार्य श्री संघ सहित प्रसिद्ध ऐतिहासिक अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी–चाँदनपुर ग्राम में पहुँचे। यहां पर इतिहास प्रसिद्ध, चरम तीर्थङ्कर, अहिंसा धर्म के उद्योतक श्रीमद्देवाधिदेव १००८ भगवान महावीर का प्राचीन बिम्ब है जो भूतल से निकला हुआ है, जिसके स्मरण से दीवान जोधराज का उपसर्ग दूर हुआ था। उन्होंने जिनधर्म से प्रभावित होकर जैन मन्दिर में तीन शिखर बनवाए थे जो बहुत दूर से ही दृष्टिगोचर होते हैं। इन शिखरों पर निरन्तर ध्वजाएँ फहराती रहती है, इससे ऐसा प्रतीत होता है मानो ये भव्य जीवों को जिनेन्द्र दर्शन के लिए बुला रही हैं। इस मन्दिर में नव तत्त्व का ज्ञान करवाने स्वरूप नव वेदियाँ हैं। एक ओर जिनशासनरक्षक मणिभद्र नामक क्षेत्रपाल स्थित है। महावीर प्रभु के दर्शन करने से समस्त मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं। कृष्णाबाई और कमलाबाई के आश्रम में भी जिन मन्दिर है। श्री महावीरजी की धर्मशाला, बगीचे आदि की शोभा दर्शनीय है।

वहाँ से आचार्यश्री का संघ हिण्डोन, बयाना, भरतपुर, फरिया आदि के जिनभवनों के दर्शन करता हुआ आगरा पहुँचा। यहाँ अनेक जिनमन्दिर हैं। यमुना नदी के समीप बेलनगञ्ज में एक अत्यन्त सुन्दर जिनमन्दिर है जिसकी शोभा कहने में नही आती। मोती कटला मे मन्दिरजी में शीतलनाथ भगवान की काले पाषाण की भव्य मूर्ति है। मूलभूत यह प्रतिमा दिगम्बर है, प्रतिष्ठा भी दिगम्बराम्नाय से हुई है, उस पर लेख भी दिगम्बर है, परन्तु अब उस पर श्वेताम्बर बन्धुओं ने अधिकार कर लिया है। यद्यपि इस मूर्ति का प्रक्षालन-पूजन श्वेताम्बर भाई करते हैं तथापि इस पर आभूषण, अंगिया, चक्षु नहीं लगा सकते, यह इस बिम्ब का अतिशय है। श्वेताम्बर भाइयों ने इस पर चक्षु लगाने के प्रयत्न किए थे परन्तु जो चक्षु चढाता था वही अन्धा हो जाता था, अन्तत: चक्षु नहीं चढ़ाये गये।

आगरा से संघ मथुरा पहुँचा जहाँ से अन्तिम केवली जम्बू स्वामी ने निर्वाण प्राप्त किया है। यहाँ सप्त ऋषियों की प्रतिमाएँ विराजमान हैं। मन्वादि सप्त ऋषियों के आगमन से यहाँ का मरी रोग दूर हुआ था। मथुरा शहर में तीन मन्दिर हैं।

मथुरा से संघ फिरोजाबाद आया। यहाँ १४ जिनमन्दिर हैं। एक चन्द्रप्रभ जिनभवन है जिसमें डेढ़ फुट ऊँची स्फटिक मणि की चन्द्रप्रभु की सातिशय पद्मासन मूर्ति है। इसके बारे में कहा जाता है कि यह मूर्ति एक नदी में थी। एक सेठ को स्वप्न आया कि इस नदी में पुष्प भर कर एक टोकरा छोड़ दो। जहाँ जाकर टोकरा ठहर जाएगा वहाँ पर जिन प्रतिमा होगी। वैसा ही किया गया। कहते हैं टोकरा छोड़ने पर नदी का अथाह पानी घुटने-घुटने भर हो गया। नदी के बीच में प्रतिमा प्रत्यक्ष दिखने लगी। लोगों के जय निनाद से आकाश गूंज उठा। मस्तक पर विराजमान कर प्रतिमा लायी गई। नदी का पानी पूर्ववत् लबालब हो गया। वहाँ पर एक स्वर्ण निर्मित सिंहासन भी था,

वह नहीं लाया जा सका। स्फटिक मणि की इतनी बड़ी एवं मनोज्ञ प्रतिमा अन्यत्र देखने में नहीं आई। फिरोजाबाद पण्डितों एवं त्यागियों का जन्म स्थान है। इस स्थान को परम पूज्य १०८ श्री महावीरकीर्तिजी महाराज जैसे आचार्य और पण्डित माणिकचन्दजी न्यायाचार्य जैसे प्रतिभा के धनी पण्डित को जन्म देने का गौरव प्राप्त है।

यहाँ से संघ शिकोहाबाद, मैनपुरी, कुम्हारी, कानपुर, लखनऊ, इलाहाबाद होता हुआ बनारस पहुँचा। बनारस नगरी सातवें तीर्थङ्कर सुपार्श्वनाथ भगवान और तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के जन्म से पवित्र हुई है। यहीं पर मिथ्यावादियों के मान को खण्डन करने वाले, मिथ्यात्वरूपी अन्धकार को दूर करने के लिए सूर्य के समान तेजस्वी, पञ्चमकाल के महातपस्वी स्वामी समन्तभद्र ने जिनधर्म का उद्योत किया था।

स्वामी समन्तभद्र को भस्मक व्याधि हो गई थी जिससे वे जितना अन्न खाते थे वह सब भस्म हो जाता था। मुनिपद में इतना आहार दुष्प्राप्य था इसलिये गुरु-आज्ञा से मुनिपद छोड़कर भ्रमण करते हुए बनारस पहुँचे। यहाँ पर शिवकोटि राजा द्वारा निर्मित शिवमन्दिर में प्रचुर मात्रा में मिष्ठान्न का भोग लगता था। उन्होंने राजा से कहा—राजन् आपके पण्डे स्वय प्रसाद खा जाते हैं, भगवान को भूखा रखते हैं। आपकी आज्ञा हो तो मैं यह सारा प्रसाद भगवान को खिला सकता हू। राजा की अनुमति पाकर समन्तभद्र मन्दिर में रहने लगे और शिव के बहाने सारा मिष्ठान्न स्वयं खाने लगे। कुछ दिनों के बाद रोग शान्त हो गया तो मिष्ठान्न बचने लगा। यह देखकर राजा के मन में शंका हुई। अन्वेषण करने पर ज्ञात हुआ कि शिव को मिष्ठान्न खिलाने के बहाने से यह व्यक्ति स्वयं खा जाता है और पाँव फैलाकर सोता है। इस क्रिया से इसने देवता शिव का अपमान किया है। अतः इसे दण्डित किया जाना चाहिए। क्रुद्ध होकर राजा शिव कोटि ने समन्तभद्र से कहा कि तुम शिव के उपासक नहीं हो, तुमने अपनी क्रियाओं से देवता का अपमान किया है अतः तुम्हें सबके समक्ष शिव लिंग को नमस्कार करना होगा, ऐसा न करने पर तुम्हे प्राणदण्ड दिया जाएगा।

निर्भीक समन्तभद्र स्वामी ने कहा—"ऐसा विषयासक्त देव मेरा नमस्कार सहन करने में समर्थ नही है।" राजा ने कठोर आदेश दिया तो समन्तभद्र स्वामी बोले—"कल प्रात काल नमस्कार करूंगा।" उसी समय स्वामी को एक कमरे में बन्द कर दिया गया। वे जिनेन्द्र-भक्ति में लीन हुए। रात्रि में जिनशासन रक्षक ज्वालामालिनी देवी ने स्वप्न दिया—गुरुदेव! चिन्ता न करें; आपका कार्य सफल होगा। दूसरे दिन प्रातःकाल नगरी के नर-नारी शिवमन्दिर में होने वाला यह तमाशा देखने के लिए एकत्र हुए, अपार भीड़ लग गई। राजा ने स्वामी समन्तभद्र को कमरे से निकाल कर सीधे शिवमन्दिर में शिव लिंग को नमस्कार करने के लिए भेज दिया।

स्वामी समन्तभद्र राजा और विशाल जन समूह के समक्ष शिवपिण्डी के आगे बैठ कर वीतराग प्रभु की भक्ति में लीन हुए–स्तुति करने लगे। ज्योंही उन्होंने आठवें तीर्थंकर श्रीचन्द्रप्रभु भगवान की—

चन्द्रप्रभं चन्द्रमरीचिगौरं चन्द्रं द्वितीयं जगतीव कान्तम् ।
वन्देऽभिवन्द्यं महतामृषीन्द्रं जिनं जितस्वान्तकषायबन्धम् ।।

स्तुति कहते हुए नमस्कार किया त्योंही शिवलिंग टुकड़े-टुकड़े हो गया और उसमें से चन्द्रप्रभु भगवान की चतुर्मुखी प्रतिमा प्रकट हुई। जय-जयकार शब्द से आकाश गूंज उठा। राजा शिवकोटि ने भी दिगम्बर-दीक्षा ग्रहण की। आज भी बनारस में उस स्थान पर भग्न महादेव के नाम से प्रसिद्ध शिवलिंग है।

तीर्थङ्कर द्वय के जन्म से पुनीत बनारस नगरी से विहार कर संघ आरा पहुँचा। आरा नगरी जैनियों की काशी कहलाती है; यहाँ ४० जिनालय हैं। अनेक छोटे-बडे चैत्यालय हैं। अग्रवाल जैन समाज के १०० घर हैं। अनेक जैन धर्मशालायें हैं। समाज अत्यन्त धार्मिक रुचि सम्पन्न है। जिनालयों मे यक्ष-यक्षिणी सहित विशाल एवं मनोज्ञ प्राचीन जिन बिम्ब हैं। यहाँ से तीन मील दूर धनुपुरा नामक ग्राम है जहाँ चन्दाबाई का आश्रम है। उसमें बाहुबलि भगवान की विशाल भव्य मूर्ति है जिसके दर्शन से जन्म-जन्मान्तर के उपार्जित पापकर्म नष्ट हो जाते है। यहाँ बालिकाएँ और विधवा बहने ज्ञानोपार्जन कर आत्मकल्याण मे सतत तत्पर रहती हैं। आश्रम के बाह्यभाग में तीन प्राचीन मन्दिर हैं।

यहाँ से संघ सुदर्शन सेठ के निर्वाण से पुनीत पाटलीपुत्र (पटना) पहुँचा। यहाँ पर चार-पाँच प्राचीन जिनमन्दिर हैं। उनकी वन्दना करता हुआ संघ वीरप्रभु के जन्म स्थल कुण्ड ग्राम पहुँचा। यही से कुछ दूरी पर नालन्दा है। इतिहास बताता है कि यहाँ बौद्धो का प्राचीन मठ था। खुदाई में भूगर्भ से निकला हुआ कुछ भाग आज भी विद्यमान है। अकलङ्कदेव ने यहीं विद्याध्ययन किया था और बौद्धो के साथ विवाद कर उन्हें परास्त कर जिनधर्म का उद्योत किया था।

यहाँ से संघ भगवान मुनिसुव्रतनाथ के जन्म स्थल और भगवान महावीर के आगमन से पवित्र स्थल राजगृहनगर पहुँचा। यहाँ अत्यन्त रमणीक पाँच पहाड़ हैं। इन पर विशाल जिन-मन्दिर हैं। तीसरे पर्वत पर महावीर प्रभु का खड्गासन जिनबिम्ब है व प्राचीन चरणपादुका स्थित है। पाँचवें पर्वत पर भी प्राचीन जिनबिम्ब हैं। पर्वतों के जल से परिपूर्ण जलकुण्ड हैं, उनमें सदा उष्णजल भरा रहता है। इस जल-स्नान से अनेक रोग दूर हो जाते हैं। अतः यहाँ अनेक जैन-अजैन यात्री आते रहते हैं। प्राचीन काल में राजगृही राजा श्रेणिक की राजधानी थी। यहाँ विपुलाचल पर्वत पर अनेक बार भगवान महावीर के समवसरण में धर्म-देशना का श्रवण कर तथा ६०,०००

साठ हजार प्रश्न पूछ कर राजा श्रेणिक ने क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त किया था तथा तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध कर अपने आपको पवित्र बनाया था। राजा श्रेणिक का जीव भावी चौबीसी में प्रथम तीर्थङ्कर होगा।

राजगृही से संघ सुलतानगञ्ज पहुँचा। श्रावकों के वहाँ दस घर थे परन्तु जिनमन्दिर नहीं था। आचार्य श्री ने श्रावकों को सम्बोधित करते हुए कहा कि जिस प्रकार मद्य-मांस-मधु, पञ्च उदुम्बर फलों का त्याग, रात्रि भोजन त्याग, जल छानकर पीना आदि श्रावकों के अष्टमूलगुणों के अन्तर्गत हैं उसीप्रकार प्रतिदिन जिनबिम्ब के दर्शन करना भी एक मूल गुण है—

दर्शनं देव देवस्य, दर्शनं पापनाशनम् ।
दर्शनं स्वर्ग सोपानं, दर्शनं मोक्षसाधनम् ।।
दर्शनेन जिनेन्द्राणां, साधूनां वन्दनेन च ।
न चिरं तिष्ठते पापं, छिद्रहस्ते यथोदकम् ।।

(जिनेन्द्र भगवान का दर्शन पापों का नाश करने वाला है, स्वर्ग जाने के लिए सीढ़ी के समान है एवं मोक्ष का साधन है। जिसप्रकार छिद्रित हाथ मे पानी नहीं ठहर सकता है उसी प्रकार जिनेन्द्र भगवान के दर्शन से और साधुओं के दर्शन से भवभवान्तर में उपार्जित किए हुए पाप नष्ट हो जाते हैं।)

श्रीमुखालोकनादेव श्रीमुखालोकनं भवेत् ।
आलोकनविहीनस्य, तत्सुखावाप्तयः कुतः ।।

(श्रीमुख अर्थात् जिनेन्द्र भगवान के मुख का अवलोकन करने से श्री अर्थात् मुक्ति एवं सांसारिक लक्ष्मी के मुख का अवलोकन होता है अतः उनकी प्राप्ति होती है। जो जिनेन्द्र भगवान का दर्शन नहीं करते उनको तत्सम्बन्धी सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है।)

जन्मजन्मकृतं पापं, जन्मकोटिसमार्जितम् ।
जन्ममृत्युजरा रोगं, हन्यते जिनदर्शनात् ।।

जन्म-जन्म में उपार्जित पाप और जन्म-जरा-मृत्यु रूप रोग भगवान जिनेन्द्र के दर्शन से क्षण में नष्ट हो जाते हैं। "जिनेन्द्र भगवान का दर्शन करूँ" ऐसी भावना मात्र से सहस्र उपवास करने का फल प्राप्त होता है। लक्ष उपवास करने से जितने कर्मों की निर्जरा होती है, उतने कर्मों की निर्जरा जिनेन्द्र दर्शन के लिए गमन करने से हो जाती है। जिनेन्द्र का दर्शन करने से कोटि उपवास का फल प्राप्त होता है। जिनबिम्ब के दर्शन की महिमा अगम्य है। जिस ग्राम में जिनमन्दिर नहीं है, वहाँ तज्जन्य परिणाम विशुद्धि से होने वाली पुण्यराशि की प्राप्ति कैसे हो सकती है। जिनबिम्ब का दर्शन सम्यक्त्वोत्पत्ति का कारण है अतः श्रावकों को जिनमन्दिर का निर्माण अवश्य करना चाहिए। गृहस्थ-सम्बन्धी पापों का नाशक जिनमन्दिर का निर्माण है।

आचार्यश्री के उद्‌बोधन से प्रबुद्ध होकर तत्रस्थ श्रावकों ने आचार्यश्री की उपस्थिति में ही वहाँ एक चैत्यालय स्थापित किया। आज वहाँ एक भव्य जिन-भवन बन गया है।

सुलतानगञ्ज से विहार कर संघ वासुपूज्य भगवान के पञ्च कल्याणकों से पवित्र स्थल नाथनगर-भागलपुर पहुँचा। वहाँ स्थित वासुपूज्य भगवान के बिम्ब, प्राचीन चरण एवं प्रतिमाओं के दर्शन से नेत्र अघाते नहीं है। जिस प्रकार इक्षु रस से दूध अधिक मधुरता को प्राप्त होता है उसी प्रकार मृत्युञ्जयी प्रभु के पंच कल्याणकों से पवित्र क्षेत्र भी अधिक अतिशय को प्राप्त होते हैं। नाथ-नगर और भागलपुर के दर्शन कर संघ ने मन्दारगिरि की ओर प्रस्थान किया।

धर्मो रक्षति रक्षितः :

संध्या हो जाने के कारण त्यागी गण भागलपुर से कुछ दूरी पर स्थित एक गांव में ठहर गए। श्रावक-श्राविका कुछ आगे जाकर एक पाठशाला में ठहरे। पाठशाला लगभग वन-प्रदेश में ही थी। निकटवर्ती ग्रामीणों ने वहाँ आकर संघ के श्रावकों से कहा कि आप लोगों को यहाँ रहना उचित नहीं है, क्योंकि यहाँ चोर-डाकुओं का भय है। यह जान कर संघस्थ श्रावकगण ब्र० चाँदमलजी, ब्र० वासुदेवजी आदि ने विचार किया कि अब इस समय कहाँ जा सकते हैं, समीप में कोई गाँव भी नहीं है। मैं बोली—जो कुछ हाना होगा वह होगा; अब इस समय आगे नहीं जा सकते। सब वहीं पर ठहर गये। रात्रि को लगभग नौ बजे सिपाही वेशधारी एक मनुष्य आया और पाठशाला के बाहर कुर्सी पर आसीन हो गया। उसके बाद समस्त संघ को निद्रा ने घेर लिया। प्रातः चार बजे जब सब उठे तो देखा कि वह मनुष्य वहीं पर बैठा हुआ है। विचार हुआ कि इसे कुछ इनाम अवश्य देना चाहिए परन्तु कुछ ही क्षणों में वह मनुष्य न जाने कहाँ अन्तर्ध्यान हो गया, कुछ पता नहीं लग सका। उसकी बहुत खोज भी की पर पता नहीं पा सके। समीपवर्ती ग्रामीण कहने लगे कि यहाँ पर कोई सिपाही या चौकीदार वगैरह नहीं रहता है। उससे यह अनुमान लगा कि आचार्यश्री के शुभाशीर्वाद एवं पुण्यो-दय से संघ की रक्षा हेतु कोई देव आया था सो अपना काम कर प्रातःकाल चला गया। तपस्वियों का प्रभाव अचिन्त्य होता है। वहाँ से मन्दारगिरि के लिए प्रस्थान किया।

मन्दारगिरि :

उत्तरपुराण में रजतमौलि के समीप मन्दारगिरि पर्वत का उल्लेख है। यह नदी आज-कल रजतनदी के नाम से प्रसिद्ध है। मन्दागिरि को मन्दारगिरि कहते हैं। यह पर्वत लगभग ७०० फुट ऊँचा है। पर्वत पर दो प्राचीन मन्दिर शिखर समन्वित हैं। बड़े मन्दिर में दो चरणयुगल हैं। छोटे मन्दिर में तीन चरण युगल हैं। इस क्षेत्र को प्रकाश में लाने का श्रेय स्वर्गीय बाबू देवकुमारजी, आरा; स्व० केसरेहिन्द रायबहादुर सखीचन्दजी जैन, डिप्टी इन्सपेक्टर जनरल पुलिस, कलकत्ता

तथा बाबू हरनारायणजी भागलपुर को है। अनेक बार वहां के पण्डों के साथ मुकदमेबाजी हुई थी। वहाँ के महन्त को जेल की सजा हुई। वे लोग वासुपूज्य भगवान के चरणों को अपने धर्म के चरण बताते थे। बड़े प्रयत्न व परिश्रम के बाद यह अनुपम निधि दिनाङ्क २० अक्टूबर १६११ को रजिस्ट्री द्वारा सम्बलपुर के जमींदारों से दिगम्बर जैनों के अधिकार में आई।

एक किंवदन्ती यह भी है कि सागरमन्थन के समय देवों ने मन्दारगिरि को मथानी बनाया था। वहाँ मकरसंक्रान्ति के अवसर पर तीन दिन पर्यन्त हिन्दुओं का बड़ा मेला लगता है। यहां के सीताकुण्ड, शङ्खकुण्ड को एवं पापहारिणी नाम के तालाब को तथा गुफा के मन्दिर को हिन्दू लोग पूज्य मानते हैं। भादवा सुदी ग्यारस से पूर्णिमा तक यहाँ मेला भरता है। यह क्षेत्र भागलपुर शहर से ३० मील की दूरी पर स्थित है।

मन्दारगिरि की वन्दना करके संघ वि० सं० २००८ आषाढ़ कृष्णा छठ को अनन्तानन्त तीर्थङ्करों के परम पावन निर्वाण क्षेत्र अनादिकालीन श्रीसम्मेदशिखरजी पहुँचा। गिरिराज के दर्शन से प्राप्त अपूर्व आनन्द वचनातीत था। संघस्थ सभी त्यागी गण, श्रावक-श्राविकाएँ वन्दनार्थ पर्वत-राज पर पहुँचे। जब श्रीपार्श्वनाथ टोंक की सीढ़ी से उतर रहे थे, तो आगे-आगे पांच दिगम्बर साधु, उनके पीछे श्वेत साड़ी पहने आर्यिकायें और क्षुल्लिकाएं, ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणी वृन्द तथा अन्य लोग क्रम से उतर रहे थे, उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानो चारण ऋद्धिधारी मुनि ही उतर रहे हों। उस समय परम पूज्य आचार्यश्री एवं अन्य मुनि-आर्यिकाओं के साथ वर्तमान विंशति तीर्थंकरों के निर्वाण से पवित्र तीर्थराज की वन्दना से जो आनन्द हुआ वह मेरे जीवन में अपूर्व था। जब से यह सुना था कि दिगम्बर साधुओं के साथ सम्मेदशिखरजी की वन्दना करने से सात-आठ भव में भव्य प्राणी मुक्ति रमा को प्राप्त हो जाते हैं तभी से यह इच्छा हुई थी कि "कभी जीवन में ऐसा पुण्योदय होगा जिससे मैं भी दिगम्बर साधुओं के साथ गिरिराज की वन्दना का सौभाग्य प्राप्त कर सकूंगी। बहुत दिनों से इच्छित वस्तु की प्राप्ति से जो आनन्द आया उसका वर्णन करना अशक्य है।

दसवां वर्षायोग :

यहाँ से आचार्यश्री संघ सहित आषाढ़ शुक्ला सप्तमी को ईसरी (हजारीबाग) पहुँचे। वि० सं० २००६ का चातुर्मास यहीं पर सम्पन्न हुआ था। इस चातुर्मास में श्रावकों का उत्साह कल्पना-तीत था। वहां आहार के समय का दृश्य चतुर्थकाल की स्मृति कराता था। दूर-दूर से यात्री गण आते थे। दर्शन करने वालों एवं आहार दाताओं की अपूर्व भीड़ सदा लगी रहती थी। अभिषेक, पूजन, आहारदान, स्वाध्याय, अध्ययन आदि में दिन का व्यतीत होना पता ही नहीं लगता था। अनेक विद्वानों के समागम से तत्त्वचर्चा का भी विशेष लाभ मिला था। जीवन में ऐसे शुभावसर बार-बार नहीं मिलते।

स्व० १०८ मुनि श्री सुमतिसागरजी महाराज :

इस वर्षायोग में पूज्य मुनि १०८ श्री सुमतिसागरजी महाराज का स्वर्गवास हो गया था। आप औरंगाबाद जिले के अन्तर्गत पिपली गाँव के थे। आपके पूर्वज डेह गाँव के खण्डेलवाल जातीय कासलीवाल गोत्र में उत्पन्न हुए थे। आपने नागौर में वि० सं० २००६ की आषाढ़ शुक्ला एकादशी के दिन क्षुल्लक दीक्षा एवं वि० सं० २००८ के फुलेरा (राजस्थान) के पंचकल्याणक महोत्सव के अवसर पर कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी के दिन मुनि दीक्षा ग्रहण की थी। आप दृढ़ श्रद्धानी परम तपस्वी थे।

स्व० १०८ मुनि श्री आदिसागरजी महाराज :

वर्षायोग—समाप्ति पर पौष कृष्णा सप्तमी के दिन संघ विहार कर पुनः मधुवन पहुँचा। शीत का अत्यन्त प्रकोप था। संघ पर्वत पर वन्दना हेतु गया था। पर्वत पर शीतल वायु के झकोरे दिगम्बर साधुओं के नग्न तन पर हिम वर्षा-सी कर रहे थे किन्तु धैर्यशाली, मेरुवत् अडोल अकम्प तपस्वी पर्वतराज की वन्दना कर रहे थे। वन्दना के बाद पूज्य १०८ श्री आदिसागरजी महाराज को भीषण ज्वर आ गया, उनका शरीर क्षीण हो गया। शरीर में तीव्र वेदना थी तब भी आप अपने ध्यान में मग्न रहते थे। आपकी मुद्रा परम शान्त और गम्भीर थी। अन्त समय में आपने आत्मध्यान में लीन होकर पौष शुक्ला पञ्चमी के दिन देहोत्सर्ग किया।

आपका जन्म खण्डेलवाल जातीय अजमेरा गोत्र में हुआ था। आप मूलतः दाँता (सीकर, राजस्थान) के निवासी थे। आप आचार्य १०८ श्री वीरसागरजी महाराज के प्रथम सुशिष्य थे। छोटों के प्रति वात्सल्य भाव और बड़ों के प्रति विनम्रता का व्यवहार आपका स्वभाव था। आपकी गुरुभक्ति अद्वितीय रही। आप हमेशा कहा करते थे कि बड़ा बनने की चेष्टा मत करो। बड़ा बनना सरल नहीं है। पहले मूँग की दाल बनती है, फिर पानी में डाल कर उसके छिलके उतारे जाते हैं, अनन्तर चक्की में पीसी जाती है, फिर नमक मिर्च मसाला मिलकर गर्म-गर्म उबलते तेल में तला जाता है तब कहीं बड़ा बनता है। इसी प्रकार जो समस्त शिष्यों के कार्य-अकार्य, मान-अपमान को समभाव से सहन करता है वह बड़ा बनता है। गुरु छत्र है, जो गुरुओं की छत्रछाया में रहता है उसका संसार-ताप नष्ट हो जाता है।

किं ध्यानेन भवत्यशेषविषय–स्त्यागैस्तपोभिः कृतं,
पूर्णं भावनयालमिन्द्रियदमैः पर्याप्तमाप्तागमैः।
किन्त्वेकं भवनाशनं कुरु गुरुप्रीत्या गुरोः शासनं,
सर्वे येन विना विनाथबलवत् स्वार्थाय नालं गुणाः॥

"ध्यान, त्याग, तप, इन्द्रिय विजय आदि गुण एक तरफ हैं और गुरुभक्ति एक तरफ है। अतः संसार-नाश की कारणभूत गुरु भक्ति सोल्लास करनी चाहिए। जिस प्रकार सेनापति के बिना सेना शत्रुओं का नाश करने में समर्थ नहीं है उसी प्रकार गुरुभक्ति के बिना जप-तप सार्थक नहीं है।" पूज्य आदिसागरजी महाराज की अध्ययन की रुचि बड़ी तीव्र थी। इतनी अवस्था हो जाने पर भी आप निरन्तर व्याकरण, न्याय आदि के ग्रन्थों का अध्ययन करते थे। आप कहा करते थे—"मनुष्य को ज्ञानार्जन करने के लिए मैं अजर-अमर हूं, ऐसा विचार करना चाहिए और व्रत धारण करते समय मैं अभी यमराज के मुख में पहुँच जाऊंगा, इस जलबुदबुदवत् क्षणभंगुर शरीर का क्या विश्वास, अगला श्वास आये कि नहीं ? ऐसा विचार कर व्रत लेने की शीघ्रता करनी चाहिए।"

"आत्मकल्याण और विद्यार्जन करने में कभी आलस्य नहीं करना चाहिए। क्षणत्यागे कुतो विद्या, कणत्यागे कुतो धनं।"

"कान दो हैं और जीभ एक, इसलिए सुनना अधिक और बोलना कम चाहिए।"

"मानव-जीवन को सार्थक करने के लिए व्रत धारण करने चाहिए।"

आप न केवल निरन्तर आध्यात्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय ही करते थे अपितु उनका सार प्राप्त कर आत्मा का सच्चा अनुभव भी करते थे।

जब भीषण ज्वर से आपका शरीर क्षीण हो गया और शरीर में तीव्र वेदना थी तब भी आप ध्यान में लीन, परम शान्त और गम्भीर थे।

पूज्यपाद स्वामी ने लिखा है—

गुरुमूले यतिनिचिते, चैत्यसिद्धान्तवार्धिसद्घोषे।
मम भवतु जन्मजन्मनि, सन्यसनसमन्वितं मरणम्॥

(गुरु के चरण-सान्निध्य में, यतिओं के समूह में, जिन प्रतिमा के समक्ष एवं जहां जिन-सिद्धान्त रूपी समुद्र का सम्यक् घोष होता हो वहां मेरा मरण हो।)

आबाल्याज्जिनदेवदेव ! भवतः श्रीपादयोः सेवया,
सेवासक्तविनेयकल्पलतया कालोऽद्य यावद् गतः।
त्वां तस्याः फलमर्थये तदधुना प्राणप्रयाणक्षणे,
त्वन्नामप्रतिबद्ध वर्णपठने कण्ठोऽस्त्वकुण्ठो मम॥

(हे भगवन् ! जन्म से लेकर आज तक मैंने आपके चरणों की सेवा की है। उस सेवा रूपी कल्पवृक्ष का फल यदि प्राप्त हो तो मरण के समय आपका नाम उच्चारण करने के लिए मेरा कण्ठ कुण्ठित नहीं होवे अर्थात् मैं आपका नामोच्चारण करता हुआ प्राणविसर्जन करूं)

इस प्रकार की भावना का सार पूज्य मुनिश्री को प्राप्त हुआ था। आप प्रातःकाल चार बजे स्वयमेव उठकर पद्मासन लगाकर बैठ गये जिससे ऐसा प्रतीत होता था मानो निर्भीक होकर यम-राज का सामना कर रहे हों।

आपने भव-भवान्तर से प्राणियो के पीछे लगने वाली ममता की जंजीर को समता के शस्त्र से क्षीण कर दी थी और यमनाशक संयम को स्वीकार किया था अतः ममता की सखी मृत्यु का आगमन सुनकर भी आप भयभीत नहीं हुए। वही सच्चा योद्धा है जिसने त्रिलोकविजयी 'काम' का नाश किया है और वही सच्चा वीर है जिसे मृत्यु का भय भी विचलित नहीं कर सकता, अन्यथा—

झूठी करणी आचरे, झूठे सुख की आस।
झूठी भक्ति हृदय धरे, झूठो प्रभु को दास॥

जिसे मृत्यु का भय लगता है वह वीर नहीं कहा जा सकता है। ख्याति, पूजा, लाभ के लिए युद्ध में प्राणों की आहुति देने वाले तो बहुत होते हैं परन्तु समाधि मरण कर वीर गति को प्राप्त होने वाले बहुत कम होते हैं। सब कुछ सीखा परन्तु जब तक मरने की कला नही सीखी तब तक कुछ नही सीखा।

पूज्य १०८ मुनिराज श्री आदिसागरजी महाराज ने हँसते-हँसते णमोकार मन्त्र का जाप करते हुए अन्त: समाधि में लीन होकर गुरुवर्य १०८ पूज्य श्री वीरसागरजी महाराज के सान्निध्य में अनन्तानन्त सिद्धों के सिद्धि के क्षेत्र, परम पावन सम्मेदशिखर पर भौतिक शरीर का परित्याग कर देवपद प्राप्त किया।

सुमेरु पर्वत की दृढता, सागर की गम्भीरता, वसुधा की क्षमाशीलता, व्योम की विशालता, वायु की निर्लेपता, तरणि की तेजस्विता, शशि की शीतलता और नवनीत की कोमलता—जिसके समक्ष सदैव श्रद्धा से नत रहती थी ऐसी अध्यात्म मूर्ति पूज्य श्री १०८ आदिसागरजी महाराज के चरणारविन्द में शत-शत वन्दन, शत-शत वन्दन!!

—::o::—

५

संघ सान्निध्य

श्री सम्मेदशिखरजी से विहार करके संघ चम्पारन, डेहरी ग्रोन सोन के जिन-मन्दिर के दर्शन करता हुआ बनारस लौटा। यहाँ से कुछ दूरी पर श्रेयांसनाथ भगवान का जन्म क्षेत्र श्रेयांसपुरी है जिसका ग्रपर नाम सारनाथ है। यहाँ एक मनोज्ञ जिन मन्दिर है जिसमें काले पाषाण की श्रेयांसनाथ भगवान की विशाल प्रतिमा है। प्रतिमा ग्रतीव ग्राकर्षक ग्रौर प्रभावशाली है। यहाँ पर जैन ग्राम्नाय का एक विशाल स्तूप भी बना है जिस पर बौद्ध लोगों ने ग्रपना ग्रधिकार जमा रखा है।

श्रेयांसपुरी से कुछ दूरी पर भगवान चन्द्रप्रभ के जन्म से पवित्र चन्द्रपुरी नामक स्थान है। यहाँ गंगा नदी के किनारे पर एक सुन्दर जिनमन्दिर है जिसमें मूलनायक चन्द्रप्रभ भगवान का बिम्ब है। इस मन्दिर में प्रवेश करने मात्र से सूर्य का सन्ताप एवं मार्ग का श्रम नदी के शीतल जल से स्नात पवन के प्रवाह से दूर हो जाता है तथा जिनबिम्ब के ग्रवलोकन से भव्यजीवों का संसार ताप नष्ट हो जाता है।

इन पवित्र क्षेत्रों के दर्शन करता हुग्रा संघ भगवान ग्रादिनाथ, भगवान ग्रजितनाथ ग्रादि तीर्थंकरों के जन्म से पुनीत ग्रनादिनिधन ग्रयोध्या (साकेतपुरी) पहुँचा। यहाँ भगवान ग्रादिनाथ, भरत एवं बाहुबलि के मनोज्ञ एवं विशाल बिम्ब हैं। चारों ग्रोर भगवान ग्रजितनाथ, सम्भवनाथ, ग्रभिनन्दननाथ ग्रादि तीर्थंकरों के चरण स्थापित हैं। यहाँ से थोड़ी दूर पर भगवान धर्मनाथ का जन्मक्षेत्र धर्मपुरी ग्राम है, यहाँ भी विशाल जिनमन्दिर है। किसी समय ग्रयोध्यानगरी की रचना इन्द्र की ग्राज्ञा से कुबेर ने की थी।

यहां से फिरोजाबाद, टिकैतनगर, दरियाबाद आदि नगरों के जिनमन्दिरों के दर्शन करते हुए संघ बाराबंकी पहुँचा। यहाँ अतिशय युक्त जिनालय है जिसमें चन्द्रप्रभ भगवान का मनोज्ञ चमत्कारी बिम्ब है। बाहुबलि भगवान की भी सुन्दर प्रतिमा है तथा मानस्तम्भ आदि की भी सुन्दर रचना है। यहां से लखनऊ, कानपुर, कालपी, चिरगाँव आदि स्थानों के जिनालयों के दर्शन करता हुआ संघ झाँसी पहुँचा। झाँसी इतिहास प्रसिद्ध शहर है। यहाँ बड़े विशाल जिनमन्दिर हैं। यहां से संघ नङ्ग-अनङ्ग आदि साढ़े पाँच करोड़ मुनियों की निर्वाण स्थली सोनागिरि क्षेत्र में पहुँचा।

सोनागिरि सिद्धक्षेत्र :

णंगाणंगकुमारा, कोडिपंचद्धमुणिवरा सहिया।
सवणागिरिवरसिहरे, णिव्वाणगया णमो तेसिं॥

सोनागिरि सिद्धक्षेत्र की महिमा अचिन्त्य है और शोभा अवर्णनीय। यहाँ शिखरबन्ध १७ विशाल जिनमन्दिर हैं। एक अतिशय रमणीय छोटा-सा पर्वत है जिस पर ५७ मन्दिर हैं। चन्द्र-प्रभ भगवान का एक प्राचीन जिनमन्दिर है जिसमें चन्द्रप्रभ भगवान का विशाल खड्गासन बिम्ब है। इसके दर्शन करने से हृदय गद्‌गद् हो जाता है। मन्दिरजी के बाहरी भाग में बाहुबलि की उन्नत एवं मनोज्ञ मूर्ति है जिसके दर्शन से स्वानुभव जाग्रत होता है, अनन्त संसार का नाशक सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है। जिस समय आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज का संघ सोनागिरि पहुँचा उस समय यह शुभ समाचार मिला कि यहाँ आचार्यश्री महावीरकीर्तिजी महाराज भी पधारने वाले हैं। यह जानकर संघ में नवीन उत्साह उत्पन्न हुआ। गुरुदेव के दर्शनों के अभिलाषी श्रावको के मन-मयूर नृत्य करने लगे।

मेरी भी बहुत दिनों से यह इच्छा थी कि अनेक भाषाओं के ज्ञाता, दृढ विश्वासी आचार्य १०८ श्री महावीरकीर्तिजी महाराज के दर्शन करूं। सम्मेदशिखरजी से प्रस्थान करते समय भी यह भावना थी कि एक बार परम पूज्य महावीरकीर्तिजी महाराज के संघ में पुनः पर्वतराज के दर्शनों का लाभ हो। आज यह भावना फलित हुई थी—

किसलयितमनल्पं त्वद्विलोकाभिलाषात्,
कुसुमितमतिसान्द्रं त्वत्समीपप्रयाणात्।
मम फलितममन्दं त्वन्मुखेन्दोरिदानीं,
नयनपथमवाप्ताद्देव पुण्यद्रुमेण॥

दर्शन की अभिलाषा मात्र से जो पुण्य रूपी द्रुम (वृक्ष) किसलयित हुआ था, उनके समीप आने से जो कुसुमित हुआ था आज वही हमारा पुण्य रूपी तरु उनके मुख रूपी चन्द्रमा के दर्शन

करने से फलित हो गया। उस समय आचार्य द्वय का मिलन तथा पूज्य वीरसागरजी महाराज के प्रति महावीरकीर्तिजी महाराज की अपूर्व भक्ति देखकर शरीर का रोम-रोम पुलकित हो उठा। आचार्य महावीरकीर्तिजी महाराज ने तीन प्रदक्षिणा देकर आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज को नमस्कार किया। उनके दोनों कर कमल मुकुलित थे, नेत्रों से आनन्दाश्रु प्रवाहित हो रहे थे, वाणी में गद्‌गदपना था; इस प्रकार भक्ति के अपूर्व दृश्य को देखकर किस का हृदय आह्लादित नहीं हुआ था अपितु समस्त दर्शक भावविभार हो उठे थे।

वहाँ आचार्य १०८ श्री विमलसागरजी महाराज ने आचार्य द्वय के सान्निध्य में दिगम्बर दीक्षा ग्रहण की थी तथा अजितमतीजी ने आर्यिकादीक्षा ग्रहण की थी। २१ दिन वहाँ रह कर प्रातः स्मरणीय पूज्य १०८ आचार्यश्री विमलसागरजी महाराज का संघ वहाँ से विहार करके आगरा की ओर गया। पूज्य १०८ आचार्यश्री महावीरकीर्तिजी महाराज का विचार बुन्देलखण्ड जाने का था। आर्यिका १०५ श्री इन्दुमति माताजी एवं पूज्य महावीरकीर्तिजी महाराज कुछ समय पूर्व १०८ श्री चन्द्रसागरजी महाराज के संघ में थे। दोनों का पूर्व का परिचय था अतः माताजी ने भी महावीर-कीर्तिजी महाराज के संघ के साथ विहार किया।

सोनागिरि से झांसी, भुंवारा, पृथ्वीपुर, बरुआ, सागर आदि अनेक नगरों के विशाल-विशाल जिनमन्दिरों के दर्शन करते हुए महाराजश्री संघ सहित टीकमगढ पहुँचे। यहां भी अनेक विशाल जिनमन्दिर हैं, श्रावकों के भी कई घर हैं। यहाँ से तीन मील दूर पपौरा नामका अतिशय क्षेत्र है जहाँ के ७५ विशाल जिनमन्दिर गगनचुम्बी शिखरो से संयुक्त है। इन भव्य जिनालयों के दर्शन से मिथ्यात्वान्धकार दूर हो जाता है। यहां से विहार कर बम्बोरी आदि के दर्शन करते हुए संघ आहारक्षेत्र पहुँचा।

आहारक्षेत्र अतिशय क्षेत्र है। किसी समय वहां पर अनेक जिनमन्दिर थे। प्रमाण स्व-रूप आज भी वहाँ सहस्रों खण्डित प्रतिमाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। भगवान शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरहनाथ के विशाल बिम्ब हैं। भगवान शान्तिनाथ के बिम्ब के दोनों हाथ खण्डित हैं, पुनः जुड़े हुए हैं। ऐसी किंवदन्ती है कि शत्रुओ ने इस बिम्ब को खण्डित कर दिया था। बिम्ब को यहां से हटाने के भी प्रयास हुए परन्तु सफलता नहीं मिली अतः यहीं पर इसकी स्थापना कर दी गई। बिम्ब अत्यन्त मनोज्ञ है।

आहार क्षेत्र के जिनमन्दिरों के दर्शनों से जो अपूर्व आनन्द आया वह वचनातीत है। वहां से क्षेमपुरी, शाहगढ़, बिलगाँव, तालेका, मरवाना, गिशागण, धुवारा, बड़गांव आदि स्थानों के जिनमन्दिरों के दर्शन करते हुए तथा धर्मपिपासु भव्य चातकोंको धर्मामृत का पान कराते हुए आचार्य-श्री द्रोणगिरि पहुँचे।

फलहोडीबरगामे पच्छिमभायम्मि दोणगिरिसिहरे।
गुरुदत्ताई मुणिंदा, णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥

यह फलहोड़ी नदी और बड़गांव की पश्चिम दिशा में है। बड़गांव में भी एक छोटी-सी पहाड़ी पर जिनमन्दिर है। वहां से फलहोड़ी नदी के उस पार द्रोणगिरि पर्वत है, पर्वत के नीचे एक जिनमन्दिर है। ऊपर ३५ जिनमन्दिर हैं। सिद्धक्षेत्रों के दर्शन से पुण्यराशि का बन्ध होता है, पापकालिमा दूर होती है और परम्परा से मुक्ति की प्राप्ति होती है।

यहां से तिगोड़ा आदि अनेक ग्रामों में विचरण करते हुए संघ नैनागिरि (रेशिन्दीगिरि) पहुँचा। इस पर्वत पर ३६ जिनमन्दिर हैं। यहाँ भगवान पार्श्वनाथ का समोसरण आया था। वरदत्तादि पाँच ऋषियों ने यहीं से निर्वाण पद प्राप्त किया था। पर्वत की तलहटी में तालाब के मध्य में एक अत्यन्त मनोज्ञ जिनमन्दिर है। वहां की शोभा अनुपम है।

पासस्स समवसरणे, गुरुवरदत्त पंचरिसिपमुहा।
रेसिंदीगिरिसिहरे, णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥

यहां से आचार्यश्री बंधाजी क्षेत्र गये। इस स्थान पर भगवान आदिनाथ, अजितनाथ एवं सम्भवनाथ का एक मन्दिर तलघर में है। अतिशयकारी प्रतिमाएं हैं। कुछ खण्डित प्रतिमाएं भी हैं।

गन्धोदक महिमा :

गर्मी के दिन थे। यहां की भीषण गर्मी से क्षेत्र के सभी कुए सूख गए थे। एक मील दूर नदी से पानी लाना पड़ता था। मैंने एक दिन आचार्यश्री से कहा—"गुरुदेव! यहां पानी का अभाव है। विहार करके अन्यत्र चलना चाहिए।" महाराजश्री बोले—"कुआ तो तुम्हारे कमरे के पास में ही है। पानी दूर से क्यों लाते हो?" मैंने कहा—"गुरुदेव! उसमें पानी नहीं है।" महाराजश्री स्वल्प मुस्करा कर चुप हो गए। दूसरे दिन प्रातःकाल मैंने जिनेन्द्रदेव का अभिषेक किया। पूज्य गुरुवर ने संकेत दिया कि यह गन्धोदक कुए में डाल दो। मैंने महामन्त्र णमोकार का जाप करते हुए भगवान के पावन शरीर से स्पर्शित पवित्र गन्धोदक कुए में डाल दिया। कुछ देर बाद देखा तो कुआ पानी से पूरा भरा था। गन्धोदक की महिमा अचिन्त्य है। गुरुदेव के इस चमत्कार को देखकर वहां के नर-नारी हर्षित होकर महाराजश्री का जय-जयकार करने लगे, मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करने लगे।

यहाँ से हट्टेरा आदि मार्गस्थ ग्रामों में विहार करता हुआ संघ कुण्डलपुर पहुँचा। कुण्डलपुर में एक छोटा-सा पर्वत है जिस पर सत्तावन जिनमन्दिर हैं। उनमें विशाल-विशाल जिनबिम्ब हैं। पर्वत पर भगवान महावीर का जिनमन्दिर है जिसे 'बड़े बाबा' का मन्दिर कहते हैं। उस मन्दिर में स्थित महावीर प्रभु का पद्मासन जिनबिम्ब कहीं पास की अटवी में था। किसी महाशय को

स्वप्न आया कि घासफूस की गाड़ी बना कर, उस गाड़ी में भगवान को बिठा कर अन्यत्र ले जा सकते हो परन्तु वह गाड़ी अपने आप चलेगी, तुम पीछे मुड़ कर नही देखना। घूम कर देखते ही गाड़ी वहीं पर रुक जाएगी।

निद्रा खुली तो महाशय स्वप्न का विचार करने लगे—इतनी विशाल प्रतिमा घास की गाड़ी पर कैसे आ सकती है? तथापि स्वप्न की परीक्षा करने हेतु वहां गए। बिम्ब को स्पर्श किया, दोनों हाथों से बिम्ब को उठाया तो बिम्ब फूल के समान हल्का प्रतीत हुआ। महान् विशालकाय जिनबिम्ब को फूल के समान हाथ से उठाकर फूस की गाड़ी पर विराजमान कर महाशय आगे-आगे चलने लगे। कुछ दूर जाने के बाद उनके मन में विचार आया कि गाड़ी पीछे आ रही है या नहीं? ज्योंही उन्होंने पीछे घूमकर देखा तो गाड़ी वहीं पर रुक गई। एक तिल मात्र भी आगे नहीं बढी। अन्ततोगत्वा, उसी पर्वत पर भगवान को विराजमान किया गया। उस बिम्ब के अंगूठे से दूध की धारा निकलती थी। इस दूध से अनेक रोग दूर हो जाते थे। एक बार यवनराज अपने साथियों के साथ प्रतिमा को खण्डित करने के लिये आया तो वहा मधुमक्खियों के समूह के समूह दृष्टिगोचर होने लगे और प्रतिमा खण्डित करने वालों को कष्ट देने लगे जिससे उन्हें वहां से भागना पड़ा।"

पर्वत के नीचे निर्मल जल से भरा हुआ विकसित कमलों से सुशोभित एक तालाब है। उसके समीप एक रमणीय जिनमन्दिर है। तालाब का नाम कुण्डलगिरि है। पूज्य महावीरकीर्तिजी महाराज ने कहा था कि यह अन्तिम केवली श्रीधर का सिद्धक्षेत्र है—

कुंडलगिरिम्मि चरिमो, केवलणाणिसु सीधरो सिद्धो।
चारणरिसिसु चरिमो, सुपासचंदाभिधाणीय ॥

निं० चउत्थो महाधियारो गा० १४७६

केवलज्ञानियों में अन्तिम श्रीधर केवली कुण्डलगिरि पर सिद्धपद को प्राप्त हुए हैं। ऐसा तिलोय-पण्णत्ति में वर्णन है। इस पर्वत का नाम भी कुण्डलगिरि है इससे सिद्ध होता है कि यह श्रीधर केवली का सिद्धक्षेत्र है। यहाँ की भूमि परम पवित्र है। चारों ओर फल-फूलों की गन्ध से क्षेत्र सुवासित रहता है।

'बड़े बाबा' के अतिशय प्रभावशाली बिम्ब का अवलोकन कर मन-मयूर नाच उठता है। जिस प्रकार चाँदनपुर के श्रीमहावीरजी क्षेत्र में अनेक यात्री अपनी मनोकामनाएँ लेकर आते हैं और पुण्य योग से उनकी कामनाएं पूर्ण होती हैं, उसी प्रकार यहां भी यात्रीगण अपनी कामनाएँ पूर्ण हुई पाते हैं। यहां से कुल्हाकुमारी होते हुए आचार्य महावीरकीर्तिजी कटनी पहुँचे। कटनी में कुछ वर्ष पूर्व आचार्यश्री शान्तिसागरजी महाराज ने चातुर्मास किया था। वहां की समाज अत्यन्त साधुभक्त एवं धर्मिष्ठ है।

११वां वर्षायोग :

विक्रम संवत् २०१० का चातुर्मास आर्यिका इन्दुमतिजी ने पूज्य श्री महावीरकीर्तिजी के साथ कटनी में किया। धर्म की विशेष प्रभावना हुई, अनेक चमत्कारी घटनाएं घटी।

कटनी से सम्पूर्ण संघ रींवा पहुँचा। यहाँ शान्तिनाथ भगवान का विशाल खड्गासन जिनबिम्ब है। यहां दक्षिणप्रान्तीय १०५ पूज्य श्री पुष्पदन्त क्षुल्लकजी का स्वर्गवास हो गया।

रींवा से मिर्जापुर, बनारस, सिंहपुरी, चन्द्रपुरी, आरा, पटना, राजगृही, कुण्डलपुर, महावीर प्रभु का निर्वाण क्षेत्र पावापुर, आदि की वन्दना करता हुआ समस्त संघ भागलपुर पहुँचा। वहां पर पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव था।

वासुपूज्य भगवान के पञ्च कल्याणकों से पवित्र चम्पापुर की वन्दना करके मन्दारगिरि, गिरीडीह, पालगंज के जिनालयों के दर्शन करता हुआ संघ बीस तीर्थङ्करों के निर्वाण क्षेत्र परम पावन सम्मेदशिखरजी पहुँचा। परम पूज्य १०८ श्री महावीरकीर्तिजी महाराज ने मधुवन में ही चातुर्मास करने का निश्चय किया।

महाराजश्री का निश्चय ज्ञात कर बिहार एवं बंगाल वासी समस्त श्रावकगण चिन्तित हुए क्योंकि उस समय मधुवन के पानी से मनुष्य मलेरिया ज्वर से पीड़ित हो जाते थे। कोई भी वहाँ चातुर्मास काल में रहने का साहस नहीं करता था। आचार्यश्री को भी चातुर्मास के पूर्व ही भीषण ज्वर आने लगा था। कलकत्ता, ईसरीवासी श्रावकों ने विनयपूर्वक निवेदन किया कि गुरुदेव ! यहां वर्षायोग स्थापित करना योग्य नहीं है क्योंकि यहां की जलवायु वर्षा मे अस्वास्थ्यकर हो जाती है। चातुर्मास ईसरी में करना योग्य नही है। किन्तु आचार्यश्री ने श्रावको के निवेदन पर ध्यान नहीं दिया और वे अपने निश्चय पर अटल रहे। चातुर्मास मधुवन में ही किया। उन तपोनिधि के तप-त्याग और जप के प्रभाव से मधुवन की जलवायु को वह गुण प्राप्त हो गया कि अब वह रोगकारक न होकर रोगनाशक हो गई। तपस्या का प्रभाव अचिन्त्य है। उनके इस चातुर्मास के बाद यहाँ पर कितने ही त्यागियों ने निर्विघ्न चातुर्मास किये हैं।

१२ वां वर्षायोग :

वि० सं० २०११ का चातुर्मास आर्यिका इन्दुमतिजी ने आचार्यश्री विमलसागरजी के साथ ईसरी में सम्पन्न किया। चातुर्मास के बाद गिरिराज सम्मेदशिखरजी की वन्दना करके आचार्य महावीरकीर्तिजी के संघ के साथ खण्डगिरिजी की वन्दना करने के लिए विहार किया। मार्ग में धन-बाद और पुरलिया के बीच में पूज्य महावीरकीर्तिजी महाराज पर कुछ लोगों ने लाठियों आदि के

प्रहार से घोर उपसर्ग किया। उससमय महाराजश्री के साथ क्षुल्लक शीतलसागरजी, क्षुल्लक सम्भव-सागरजी थे। श्रावकों में श्री केसरीमलजी बड़जात्या, श्री चाँदमलजी बड़जात्या, श्री झूमरमलजी बगड़ा, श्री नेमीचन्दजी बगड़ा आदि थे। अज्ञानी दुर्जनों ने महाराजश्री पर लाठियों से प्रहार किया, उसे दूर करने के लिए श्रावकों ने प्रयत्न किया। नागौर निवासी गुरुभक्त चांदमलजी बड़जात्या ने अपनी जान जोखम मे डाल कर आचार्यश्री पर पड़ने वाली लाठियों को अपने हाथों पर झेला। आचार्यश्री बैठ गए थे उन्होंने अपने शरीर से आचार्यश्री का शरीर आच्छादित कर लाठियां पीठ पर सहीं। उन्हे काफी चोट लगी। तभी पुलिस की एक जीप आगई और उपसर्ग दूर हुआ। श्री चांद-मलजी ने असीम साहस एव गुरुभक्ति का परिचय दिया, आज के युग में विरले ही व्यक्ति ऐसे होते है।

यहा से पुरलिया, चाइवासा होते हुए आचार्यश्री कटक पहुँचे। यहां दो प्राचीन जिन-मन्दिर हैं। प्राचीन प्रतिमाएँ एव प्राचीन यन्त्र भी है। पूर्वकाल में यह कलिङ्गदेश कहलाता था यहां राजा खारवेल ने अनेक प्रतिष्ठाएँ करवाई थी। कटक से अठारह मील दूर पर खण्डगिरि उदयगिरि नामक सिद्धक्षेत्र है—

जसहररायस्स सुआ, पंचसयाइं कलिंगदेसम्मि।
कोडिसिलाकोडिमुणी णिव्वाणगया णमो तेसिं॥

कलिङ्ग देश में यशरथ राजा के पाच सौ पुत्रों एवं कोटि मुनियो को मुक्ति प्राप्त हुई है। यहां पर्वत पर भगवान आदिनाथ का एक प्राचीन बिम्ब है और आधुनिक प्रतिष्ठित पार्श्वनाथ भगवान का खड्गासन बिम्ब है। और भी अनेक जिनबिम्ब हैं। पर्वत के मध्य में पत्थर पर खड्गासन प्रतिमा उकेरी हुई है। अनेक शिलालेख हैं; पर्वत पर अनेक गुफाएं भी हैं। नीचे भी एक छोटा सा मन्दिर है। यहाँ अनेक जैनेतर बन्धु भी उसकी प्राचीनता देखने के लिए आते हैं। वहा की प्राकृतिक छटा मनमोहक है। सिद्धक्षेत्र के दर्शन से पापपक का प्रक्षालन होता है। महाराज यहां पर बीस दिन रहे। श्रीमान् सुगनचन्दजी लुहाड़िया ने सिद्धचक्र विधान कराया। कटक निवासी केशरीमल निहालचन्द्रजी के यहां कलकत्तावासियों के आवागमन का सदा ताता सा लगा रहता था। यहा से विहार कर पुन: उसी रास्ते से कटनी, जहाजपुर होता हुआ आचार्यश्री का संघ निमियाघाट से पर्वतराज की वन्दना हेतु पर्वत पर चढ कर वन्दना करके मधुवन पहुँचा। कुछ दिन यहा रह कर सघ ईसरी में आया।

१३ वाँ वर्षायोग :

विक्रम संवत् २०१२ का वर्षायोग आर्यिका इन्दुमतिजी ने आचार्य महावीरकीर्तिजी के संघ के साथ ईसरी में सम्पन्न किया।

आचार्य १०८ श्री वीरसागरजी महाराज सोनागिरि से आगरा, मुरेना होते हुए निवाई, टोडारायसिह में संघ सहित चातुर्मास कर जयपुर पहुँचे। आचार्य १०८ श्री शान्तिसागरजी महाराज

के द्वारा प्रदत्त आचार्य पद जयपुर खानिया चातुर्मास में पूज्य श्री वीरसागरजी महाराज को विधि पूर्वक प्रदान किया गया। आचार्यश्री वीरसागरजी महाराज की वृद्धावस्था थी, स्वास्थ्य भी नरम रहने लगा था। पूज्य आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतिजी ने जब आचार्यश्री के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में सुना कि गुरुवर्य अस्वस्थ्य रहने लगे हैं तो वे आचार्यश्री के दर्शन की उत्कट अभिलाषा से वहां से विहार कर गिरिडीह, कोडरमा, नवादा, गुणावा, राजगिरि, पावापुरी, कुण्डलपुर, पटना, आरा, बनारस, अयोध्या, फिरोजाबाद, सुमेरगञ्ज, दरियाबाद, बाराबंकी, लखनऊ, कानपुर, एटा, यशवन्तगढ़, सुरेरा, शिकोहाबाद, फिरोजाबाद, टुण्डला, आगरा, भरतपुर, एत्मादपुर, हिण्डौन, श्री महावीरजी, गंगापुर, ब्राह्मणवास, मंढारा, लालसोट, कोटखावदा, निमोडा, पदमपुरा, शिवदासपुरा, चनलाई आदि स्थानों के जिनमन्दिरों के दर्शन करती हुई एव धर्मपिपासु भव्य जीवों को धर्मामृत का पान कराती हुई खानिया पहुंची। वहा आचार्यश्री विशाल संघ सहित विराज रहे थे। तीन वर्ष बाद पुन: गुरुवर्य एवं समस्त संघ के दर्शन से मन हर्षित हो गया। नेत्रों में आनन्दाश्रु छलक रहे थे। गुरुदेव एवं संघ के अप्रतिम वात्सल्य से हृदय गद्गद हो गया तथा शरीर रोमाञ्चित हो उठा।

१४ वां वर्षायोग :

पूज्य माताजी ने वि० सं० २०१३ का चातुर्मास खानिया (जयपुर) में आचार्यश्री वीरसागरजी महाराज व संघ के साथ किया। सघ का धर्मस्नेह अपूर्व था। सघस्थ साधुओं की तत्त्व-चर्चा व विद्वानों के समागम से विशेष ज्ञानाराधना हुई थी। नियमित और व्यस्त दिनचर्या के कारण चातुर्मास का काल इतना शीघ्र समाप्त हो गया जैसे दो दिन ही बीते हों।

वर्षायोग समाप्ति पर आचार्यश्री शारीरिक अशक्तता के कारण समीप ही खजाञ्ची की नसियाँ, जयपुर पधार गए। संघ के साधुगण समीपवर्ती ग्रामों में चले गए। आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतिजी ने आमेर, सांगानेर, पिपालिया, माँजी का रेणवाल, माधोराजपुरा आदि गांवों में बिहार किया। आषाढ माह में परम पूज्य १०८ आचार्यश्री महावीरकीर्तिजी महाराज संघ सहित जयपुर पहुँचे। आचार्य वीरसागरजी महाराज के सघस्थ समस्त साधुगण भी लौट आए। उस समय ३० साधुओं का विशाल संघ था। अनेक ब्रह्मचारी व ब्रह्मचारिणिया थी। उस समय का वातावरण चतुर्थकाल की स्मृति दिलाता है।

एक दिन परम पूज्य १०८ श्री श्रुतसागरजी महाराज शास्त्रस्वाध्याय कर रहे थे। उस समय वे क्षुल्लक अवस्था में थे। उन्होंने मुझसे कहा—"तुमसे तो एकेन्द्रिय अच्छा है, उसमें प्रतिवर्ष विकास स्वरूप कुछ नवीनता तो आती है, तुमने आज तक इतने वर्षों में कुछ भी उन्नति नहीं की। क्या यह तुम्हारे लिए शोभादायक है ?" महाराजश्री का संकेत मेरे हृदय को स्पर्श कर गया। वास्तव में

जिस ध्येय से साधु समागम में रहना स्वीकार किया था, वह अभी तक पूर्ण नहीं हुआ था। एक वर्ष पूर्व जब आचार्यश्री वीरसागरजी महाराज टोडारायसिंह में विराज रहे थे तब मैं आचार्यश्री के दर्शनार्थ श्री सम्मेदशिखरजी से आई थी। उस समय पूज्य १०८ श्री श्रुतसागरजी महाराज की क्षुल्लक-दीक्षा का समारोह था। इस अवसर पर पूज्य १०८ श्री शिवसागरजी महाराज ने मुझसे कहा था—"अब तो तुम्हारी सारी तीर्थयात्राएँ हो गईं, फिर व्यर्थ में क्यों समय नष्ट करती हो; आर्यिका के व्रत ग्रहण करो।" महाराजश्री के इन वचनों को सुनकर परम पूज्य १०८ आचार्य गुरुदेव श्री वीरसागरजी महाराज बोले—"भैया! मैं अब बूढ़ा हो गया हूं। यह मुझसे दीक्षा नहीं लेगी।"

इन दिनों पूज्य महावीरकीर्तिजी महाराज श्री सम्मेदशिखरजी में विराज रहे थे। आर्यिका इन्दुमती माताजी भी वहीं थी। आचार्यश्री वीरसागरजी महाराज विशेष ज्ञानी थे, वे बाह्य क्रियाओं से मनुष्य के अन्तरंग को पहचानने वाले थे। वे यह समझते थे कि मैं (भंवरी बाई) आर्यिका इन्दुमति माताजी की उपस्थिति के बिना दीक्षा लेने वाली नही हूं अतः उनकी उपस्थिति में श्री महावीरकीर्तिजी महाराज से ही दीक्षा लू गी। इसीलिए उन्होंने संकेत किया। मैं गुरुदेव का संकेत समझ गई। मैंने तत्काल उत्तर दिया—"गुरुदेव! जिस समय आपकी और महावीरकीर्तिजी की तथा इन्दुमतीजी आदि सभी आर्यिकाओ की उपस्थिति होगी तभी दीक्षा लूंगी।"

आचार्यश्री ने मधुर मुस्कान बिखरते हुए कहा—"न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी।" पूज्य शिवसागरजी महाराज भी वहीं थे। मैंने कहा—"गुरुदेव! ऐसा कौनसा अद्भुत और असम्भव कार्य है जो नहीं होगा।" महाराजश्री ने कहा—"समुद्र के एक तरफ जूवा है और दूसरी तरफ गाड़ी" दोनों का मिलना असम्भव है। इसी प्रकार एक ओर वृद्धावस्था एव क्षीण शरीर प्राप्त गुरुदेव श्री वीरसागर जी महाराज राजस्थान मे हैं तो दूसरी ओर सुदूर बिहार में श्री सम्मेद-शिखरजी में श्री महावीरकीर्ति जी और आर्यिका इन्दुमतिजी हैं, दिल्ली मे वीरमतिजी आदि आर्यिकाओं का संघ है। इन सबका एकत्र होना असम्भव तो नही है तथापि दुस्साध्य अवश्य है।"

मैंने कहा—"गुरुदेव! णमोकार मन्त्र के प्रभाव से (अघटितं घटत्येव, घटितं विघटत्येव च) दुस्साध्य से दुस्साध्य कार्य भी सुसाध्य हो जाते हैं। आपके समक्ष ही मेरी अभिलाषा पूर्णता को प्राप्त करेगी।" अपनी भावना को इस तरह अभिव्यक्त कर मैं तब शिखरजी (मधुवन) चली आई थी। दो वर्ष की अवधि में ही मेरी मनोकामना पूर्ण हुई।

परम पूज्य श्रुतसागरजी महाराज के उद्बोधन ने मुझे अपने विस्मृत कर्त्तव्य का स्मरण करा दिया था। उस समय पूज्य श्रुतसागर महाराज क्षुल्लक अवस्था में थे। मैंने कहा—"महाराज! आप भी तो दो साल से वहीं पर खड़े हैं। मुझे क्षुल्लिका नहीं बनना है, मैं आर्यिका बनूंगी। क्या आप क्षुल्लक रह कर मुझे नमस्कार करेंगे।"

वे बोले—"नहीं।"

"तो क्या आप दिगम्बर दीक्षा लेंगे ?"

"देखेंगे समय पर, तुम तो कुछ करके दिखाओ।"

पू० इन्दुमतीजी की देन : आर्यिका दीक्षा—१५ वाँ वर्षायोग :

खानिया (जयपुर) वि० सं० २०१४। भाद्रपद का मंगल मास। विशाल सघ का सान्निध्य। दो आचार्यों—श्री वीरसागर जी महाराज, श्री महावीरकीर्ति जी महाराज—की उपस्थिति। प्रतिदिन विद्वानों का आगमन। परम पूज्य आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज के दर्शनार्थ आने वाले यात्रियों का न टूटने वाला क्रम। आचार्यश्री का भौतिक शरीर क्षीण होता जा रहा था मगर आत्मिक बल वृद्धिगत था।

विचारो की उत्तुङ्ग लहरे मेरे मानस को आन्दोलित कर रही थी कि यह स्वर्ण अवसर हाथ से नही खोना। संध्या समय मैंने अपने मन के भाव पूजनीया मातृतुल्य गुरुवर्या परम परोपकारिणी इन्दुमती माताजी के समक्ष अभिव्यक्त किये। सुनते ही वे बड़ी प्रसन्न हुई और उन्होंने तत्काल मेरी भावना समस्त आर्यिकाओं पर प्रकट कर दी।

प्रात:काल आर्यिका सुमतिमती माताजी व इन्दुमती माताजी ने मेरी मनोभावना आचार्यश्री वीरसागरजी महाराज के सम्मुख व्यक्त कर दी। आचार्यश्री ने सुनने के साथ ही अपनी स्वीकृति दे दी।

विक्रम संवत् २०१४ भाद्रपद शुक्ला षष्ठी के दिन मेरी दीक्षाविधि आयोजित हुई। नाम सुपार्श्वमती[1] रखा गया और मुझे आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी को सौंप दिया गया।

卐

---

१. आर्यिका दीक्षा समारोह बड़े ठाट-बाट के साथ सम्पन्न हुआ था। अपार जनसमूह के समक्ष आचार्यश्री वीरसागरजी द्वारा आचार्य महावीरकीर्ति जी, आर्यिका इन्दुमती जी व अन्य आर्यिकाओं व मुनिराजों के सान्निध्य में यह दीक्षा दी गई। सुपार्श्वनाथ भगवान का गर्भकल्याणक का दिन होने से नाम सुपार्श्वमती रखा गया। परम पूज्य आचार्यश्री वीरसागरजी महाराज के कर-कमलों द्वारा सम्पन्न होने वाली यह अन्तिम दीक्षा थी। पूज्य श्रुतसागरजी महाराज एवं सन्मतिसागरजी महाराज ने भाद्रपद शुक्ला तृतीया को दिगम्बर दीक्षा—मुनिपद धारण किया था।—सं०

६

गुरु वियोग

"जातस्य हि ध्रुवो मृत्युध्रुवं जन्म मृतस्य च", जन्म के साथ मरण और मरण के बाद जन्म यह अनादि का क्रम है; सारा पुरुषार्थ जीव का इसी ओर होना चाहिए कि वह जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाए। जन्म भी उसी का सार्थक कहा जाना चाहिए जो मुक्ति की ओर अग्रसर हो। ऐसे ही वीर पुरुष थे आचार्य वीरसागर महाराज जिन्होंने जीवन के प्रत्येक क्षण को सार्थक व्यतीत किया और आसोज कृष्णा अमावस्या की मध्याह्न वेला मे आत्मध्यान में निमग्न हो कर ३१ साधु-साध्वियों के समक्ष अन्तरङ्ग विशुद्धिपूर्वक नश्वर भौतिक देह का विसर्जन कर उत्तम गति के लिए प्रयाण किया।

मैं (सुपार्श्वमति) आपकी अन्तिम दीक्षित शिष्या हूं। मेरी दीक्षा के कुछ दिनों बाद ही आचार्यश्री हम सबको छोड़ कर चले गए। गुरु-वियोग असाध्य होता है। छठे गुणस्थानवर्ती साधुओं के भी इष्ट-वियोग होने से किञ्चित् आर्त्तध्यान हो सकता है। विशाल सघ के कुशल संचालक, वात्सल्य भाव की मूर्ति, परम तेजस्वी, शिष्यों के प्रतिपालक, करुणा से ओतप्रोत शान्त स्वभावी गुरु का वियोग किसे हृदय-विदारक नहीं था। मरुस्थल जैसे शुष्क प्रदेश के शुष्क-मानव-तरुवरों को श्री चन्द्रसागर जी महाराज ने सींचा था। आपने पुनः दीर्घकाल तक धर्मामृत पिला कर उन्हें अंकुरित, पुष्पित एवं फलित किया था। कितने ही प्राणियों को संयम का सहारा देकर संसार-समुद्र में डूबने से बचाया था। जैन समाज आपका उपकार कभी नहीं भूल सकेगी।

पूज्य श्री वीरसागर जी महाराज, आचार्यश्री शान्तिसागर जी महाराज के प्रथम शिष्य थे। आचार्यश्री शान्तिसागर जी महाराज ने अपनी सल्लेखना के समय कुन्थलगिरि में आपको

आचार्य पद प्रदान करने की घोषणा की थी और पिच्छिका व कमण्डलु भिजवाए थे। ये पिच्छिका-कमण्डलु आपको शास्त्रोक्त विधि-विधान पूर्वक खानिया जयपुर में विशाल जनसमुदाय के समक्ष भेंट किए गए थे और आपको 'आचार्य पद' से गौरवान्वित किया गया था। आपके पास अनेक विद्वान आते थे, अपने प्रश्नों के सन्तोषजनक समाधान सुन कर आपके ज्ञान, तपश्चरण एवं सरलता से मुग्ध होकर नतमस्तक हो जाते थे।

आ० वीरसागरजी

आपका 'वीर' नाम यथार्थ था। आप काम रूपी योद्धाओं को जीतने वाले होने से 'वीर' थे। आपने अपने जन्म से खण्डेलवाल जातीय गंगवाल गोत्रोत्पन्न रामलालजी की भार्या भागुबाई की कुक्षि को पवित्र किया था। अल्पायु में ही ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण कर लिया था। अपने सहपाठी खण्डेलवाल गोत्रोत्पन्न श्री खुशालचन्दजी पहाड़िया (श्री चन्द्रसागर जी महाराज) के साथ में आचार्यश्री शान्तिसागर महाराज के दर्शन से आपने संसार, शरीर और भोगों से विरक्त होकर व्रत प्रतिमा ग्रहण की थी। फिर निरन्तर गुरु सान्निध्य में रह कर आचार्यश्री से दिगम्बर दीक्षा ग्रहण की थी।

दिगम्बर अवस्था में आपने दो बार परम पुनीत श्री सम्मेदशिखरजी तीर्थक्षेत्र की पैदल-यात्रा की थी। आपने अपने चरणारविन्द से अटक से कटक तक समस्त भारतभूमि को पवित्र किया था।

वि---विशेषेण, ई---अन्तरङ्ग-बहिरङ्ग, रं --श्रियं शान्तिं गृह्णाति, ददाति असौ वीरः। आपने स्वयं सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र रूपी सर्वोत्कृष्ट लक्ष्मी को ग्रहण किया था एवं अनेक भव्य जीवों को रत्नत्रय रूप निधि प्रदान कर समृद्धिशाली बनाया था अतः आप वास्तव में सार्थक नाम वाले थे। आपके द्वारा निर्मल वीतराग शासन का उद्योत हुआ था।

आपने गृहस्थावस्था में भी कचनेर में गुरुकुल स्थापित किया था तब आपका नाम हीरालाल जी गंगवाल था, आप गुरुजी के नाम से ख्यात थे। गुरुकुल का संचालन स्वयं कर आपने अनेक भव्य जीवों का अज्ञानान्धकार दूर किया था। मुनि अवस्था में आपने अनेक भव्य जीवों को शिव-राह बता कर कल्याण किया। आज जितना त्यागी वर्ग दृष्टिगोचर हो रहा है वह विशेषतः आपकी ही देन है।

आचार्यश्री वीरसागरजी के वचनों में 'गागर में सागर' भरा था, ऐसा कहना अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं होगा। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

❀ यदि गागर फूटी है तो नीर का परिधारण नही होगा, धागा टूटा होगा तो टुकड़ों का सन्धान नहीं होगा ।

❀ लक्ष्य के बिना चलना पैरों का अभिशाप है ।

❀ विश्वास देकर ठगना सबसे बड़ा पाप है ।

❀ विज्ञान के द्वारा बाहरी खोज करना सरल है । भेद विज्ञान के द्वारा अन्तरंग की खोज करना कठिन है ।

❀ आँख-नाक मूँद कर समुद्र में प्रवेश किये बिना रत्नों की प्राप्ति नहीं होती है, वैसे ही इन्द्रिय निरोध कर अन्तरंग आत्मा में प्रवेश किये बिना स्वात्मनिधि की प्राप्ति नहीं होती है ।

❀ सुई का काम करो, कैंची का काम मत करो ।

❀ भीतर काले बाहर उजले मत बनो ।

❀ अपनी भूल का विचार करो, दूसरों की भूल मत देखो ।

❀ गुणग्राही हंस बनो, दुर्गुणग्राही जोंक मत बनो ।

❀ खरा है सो मेरा है । मेरा है सो ही खरा है—ऐसा मत कहो ।

❀ काँचली छोड़ने से सर्प निर्विष नहीं होता, उसी प्रकार बाहरी त्याग मात्र से कर्म रहित नहीं होंगे—भीतर के रागद्वेष का त्याग करो ।

❀ धर्मात्माओं के साथ वात्सल्य भाव रखो ।

❀ "पण्डिताई माथे चढ़ी, पूर्व जन्म को पाप ।
औरन को उपदेश दे, कोरे रह गए आप ।।" अर्थात् चमची सब प्रकार के व्यञ्जनों में जाती है, सब सामग्री परोसती है परन्तु स्वत: उनका स्वाद नही लेती है; उसी प्रकार आत्मानुभव शून्य मनुष्य समस्त ग्रन्थ पढ़ता है, दूसरों को भी समझाता है परन्तु स्वयं आत्मानुभव रस का स्वाद नहीं लेता है ।

❀ पर निन्दा के लिए मूक बनो । दूसरों के दोष देखने के लिए अन्धे बनो ।

❀ साधु का घर दूर है जैसे पेड खजूर ।
ऊपर चढ़े तो रस चखे, नीचे चकनाचूर ।।

❀ ऊपर उठना है तो पतंग के समान व्रत की एवं गुरु की आज्ञा रूप डोरी में बंधे रहो ।

❀ भोगों के समय नीचे की ओर देखो, त्याग के समय ऊपर की ओर देखो ।

आचार्यश्री वचन से कम बोलते थे, आपका व्यक्तित्व ही मोक्षमार्ग का निरूपण करता था ।

संघस्थ साधु-साध्वियों का संक्षिप्त परिचय

(१) प्रथम शिष्य, पूज्य १०८ श्री आदिसागरजी महाराज :

आपका जन्म दाँता रामगढ (सीकर, राजस्थान) में हुआ। जन्म नाम चांदमलजी अजमेरा था। आपकी दीक्षा प्रतापगढ़ में वि० स० १६६० फाल्गुन सुदी ग्यारस को हुई थी। आप परम तपस्वी, शान्तिप्रिय, अध्यात्मयोगी थे। श्री सम्मेदशिखरजी में आपका स्वर्गवास हुआ।

(२) परम तपस्वी १०८ आचार्यश्री शिवसागरजी महाराज :

आपका जन्म अड़गाँव में खण्डेलवाल जातीय रांवका गोत्रोत्पन्न श्री नेमीचन्द जी के घर माता दगड़ाबाई की कोख से हुआ था। नाम हीरालाल था। बाल्यकाल में ही आपके माता-पिता का स्वर्गवास हो गया था जिससे सम्पूर्ण कुटुम्ब के भरण-पोषण का भार आप पर आ पड़ा। आपने बाल्यावस्था में ब्र० हीरालाल जी गगवाल (पू० वीरसागरजी महाराज) के सान्निध्य में कचनेर के गुरुकुल में कुछ समय तक अध्ययन किया था। जिस समय श्री वीरसागरजी महाराज ने मुनि-अवस्था में कचनेर मे वर्षायोग किया तब आपको बाल्यकाल की स्मृति हो आई। आपने विचार किया कि जिन्होंने बचपन में ज्ञान दिया, उन्ही को सच्चा गुरु बना कर आत्मकल्याण करूँ। आप गृहस्थी के बन्धन मे नही बँधे, बालब्रह्मचारी रहे। संसार, शरीर और भोगों से विरक्त होकर आप कचनेर से आचार्यश्री वीरसागरजी महाराज के साथ में आ गये।

आपने मुक्तागिरि सिद्ध-क्षेत्र पर वि० सं० १६६६ में सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये तथा सिद्धवरकूट सिद्धक्षेत्र पर क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की। तब ये शिवसागर बने। वि० सं० २००६, आषाढ़ शुक्ला ग्यारस के दिन नागौर नगर में आपने जिनदीक्षा ग्रहण की। वि० सं० २०१४, कार्तिक शुक्ला ग्यारस के दिन आपको स्व० आचार्य वीरसागरजी महाराज का उत्तराधिकारित्व (आचार्य पद) प्रदान किया गया।

यद्यपि गृहस्थावस्था में आपका विशेष अध्ययन नही था परन्तु त्यागी बनने के बाद आपका ज्ञानाभ्यास बढ़ता ही गया। संस्कृत प्राकृत भाषाओं में आपकी गति हो गई।

आचार्यश्री वीरसागरजी महाराज के स्वर्गारोहण के बाद आपने संघ सहित भगवान नेमिनाथ के निर्वाण क्षेत्र गिरनार पर्वत की यात्रा की। संघ संचालक थे निवाई निवासी ब्र० हीरा-लालजी पाटनी, आपने इस पुनीत प्रयोजन में अपने द्रव्य का सदुपयोग किया। अनन्तर ब्यावर, अजमेर, सुजानगढ़, डेह, नागौर, सीकर, लाडनूँ, जयपुर (खानिया), पपौरा, श्रीमहावीर जी, कोटा, उदयपुर, प्रतापगढ़ आदि स्थानों को संघ सहित चातुर्मास कर पवित्र किया। इस विहार काल में

आपने पूज्य अजितसागरजी महाराज आदि अनेक विद्वान व्यक्तियों को एवं जिनमतीजी, विशुद्ध-मतीजी आदि विदुषियों को मुनि एवं आर्यिका पद से विभूषित किया।

श्रीमहावीरजी अतिशयक्षेत्र मे मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविकाओं के चतुर्विध विशाल संघ के समक्ष अल्पायु में ही वि० सं० २०२६, फागुन कृष्णा अमावस्या के दिन आपने प्राणोत्सर्ग किया।

यद्यपि आप शरीर से दुबले-पतले थे परन्तु आपका आत्मबल बहुत दृढ था।

आप हमेशा कहा करते थे—"भक्ति से शक्ति, शक्ति से युक्ति और युक्ति से मुक्ति होती है। जब हम में भक्ति ही नही है तो शक्ति कहां से आएगी। जिस समय (सरसो का दाना भी जिसके शरीर मे चुभता था ऐसे) सुकुमाल के हृदय मे गुरुओं की भक्ति उमड़ पड़ी तब रस्सी के सहारे उतरने की शक्ति और रस्सी बना कर उतरने की युक्ति मिल गई और वे चारित्र धारण कर संसार कारागृह से मुक्त हो गए।"

"चिन्ता से चतुराई घटती है। चिन्तन से चतुराई बढ़ती है। विषय भोगों के चिन्तन से चतुराई घटती है, आत्मचिन्तन से चतुराई बढती है।"

"बुरा जो खोजन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय।।"

आपका एक-एक शब्द अनुकरणीय होता था। आप जैसे तपस्वियों के दर्शन से अनेक भवों की उपार्जित कर्मकालिमा दूर हो जाती है। आप श्री के चरणों में शत-शत वन्दन! शत-शत वन्दन!!

(३) मुनिश्री सुमतिसागरजी महाराज :

वि० सं० १९६४ आसोज सुदी चौथ के दिन खण्डेलवाल जातीय कासलीवाल गोत्रीय श्रीमान् नेमीचन्द जी के घर माता केसरबाई की कोख से पीपरी (औरंगाबाद) में आपका जन्म हुआ। नाम रखा गया चन्दूलाल। आपकी क्षुल्लक दीक्षा वि० सं० २००६ आषाढ सुदी ग्यारस के दिन नागौर में सम्पन्न हुई और मुनि दीक्षा सं० २००८ कार्तिक सुदी चतुर्दशी के दिन फुलेरा में। आपका दीक्षा नाम सुमतिसागर रखा गया। आपके पूर्वज डेह (नागौर) के थे।

आपने ४५ वर्ष की अवस्था में माता-पिता की ममता की जंजीर और वनिता की स्नेह-बेड़ी को तोड़ कर, गृहस्थावस्था रूपी कारागृह से निकल कर समता रूपी पाथेय लेकर, दिगम्बर मुनिमुद्रा रूपी रथ पर सवार होकर मुक्ति-पथ की राह अपनाई थी तथा वि० सं० २००६ भादवा

सुदी १५ के दिन पूर्ण संयम, नियम, उपवास के द्वारा कर्मराशि को लघु कर ईसरी (सम्मेदशिखर) में गुरु सान्निध्य में भौतिक शरीर का परित्याग किया था। आप परम तपस्वी व दृढ़ विश्वासी साधुराज थे। ऐसे साधुराज के चरणों में शत-शत वन्दन।

(४) मुनिश्री धर्मसागरजी महाराज :

मुनिश्री धर्मसागरजी महाराज

परम पूज्य प्रातः स्मरणीय शान्त स्वभावी बाल ब्रह्मचारी १०८ श्री धर्मसागरजी महाराज का जन्म गम्भीरा गांव (बूंदी) में सद्गृहस्थ खण्डेलवाल जातीय छाबड़ा गोत्रीय श्री बख्तावरमल जी के घर माता उमराव बाई की कोख से विक्रम संवत् १९७० पौष शुक्ला पूर्णिमा को हुआ। अशुभ कर्मोदय से आपके बाल्यकाल में ही माता-पिता का प्लेग रोग के कारण स्वर्गवास हो गया। आपकी चचेरी बहन ब्र० दाखाबाई ने आपका लालन-पालन किया। संसार की स्थिति को देखकर आप विरक्त ही रहते थे। बाल्यावस्था में भी आप अत्यन्त उत्साही और वीर थे। एक बार आप आचार्यश्री १०८ महावीरकीर्तिजी से कह रहे थे कि "गुरुदेव ! मैं १०-११ वर्ष की अवस्था में तालाब के किनारे खड़ा हुआ लोगों को पानी में कूद कर तैरते हुए देख रहा था। मेरे मन में विचार आया कि मैं भी तो ऐसा ही हूं, क्या मैं नहीं तैर सकता ? जब सब लोग घर चले गए तो मै तालाब में कूद पड़ा। तैरना तो जानता नहीं था, पानी में डूबने लगा। कुछ पुण्योदय से किनारे के पत्थर का सहारा मिल गया तो निकल कर बाहर आया। कपड़े सुखा कर चुपचाप घर चला आया और किसी से भी कुछ नहीं कहा।" यह घटना आपकी बाल्यावस्था में निर्भीकता की द्योतक है।

आप संसार से विरक्त होकर चन्द्रमा के समान सौम्य व शीतल, सूर्य के समान तपस्वी, निर्भीक वक्ता, शास्त्र मर्मज्ञ, आत्मानुभवी १०८ श्री चन्द्रसागरजी महाराज से सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर संघ में ही रह कर विद्याध्ययन करने लगे। आपको भव्य एवं भद्र परिणामी समझकर चन्द्रसागरजी महाराज ने वालूज (महाराष्ट्र) में वि. सं. २००० में क्षुल्लक दीक्षा प्रदान की। आपके गुणानुसार आपको भद्रसागर (धर्मसागर) नाम से सुशोभित किया गया।

कुछ समय बाद ही गुरुदेव चन्द्रसागरजी महाराज का स्वर्गवास हो गया। संघस्थ मुनिश्री हेमसागरजी महाराज एवं बोधसागरजी महाराज का स्वर्गवास भी कुछ दिन पहले हो गया

था। अब पुरुष वर्ग में आप ही एक मात्र शिष्य रह गये। गुरु वियोग से आपको बहुत दुःख हुआ। परन्तु काल के समक्ष किसी का वश नही चलता, होनहार अमिट होती है। धैर्य धारण कर, वस्तु-स्वरूप का विचार करते हुए आप विहार कर पू० वीरसागरजी महाराज के निकट झालरापाटन पधारे तथा उन्हीके संघ मे रह कर ध्यान-अध्ययन करने लगे। संघ के साथ वि० सं० २००६ को डेह में आये।

आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज से आपने विक्रम संवत् २००८ में कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी के दिन मुनि दीक्षा ग्रहण की। आप मुनिश्री धर्मसागरजी महाराज के नाम से विख्यात हुए। आचार्यश्री के साथ संघ में रह कर आपने सम्मेदशिखर, पावापुर, चम्पापुर आदि अनेक तीर्थों की पैदल यात्रा की। आचार्यश्री की समाधि के बाद श्री गिरनार जी की यात्रा से आपने संघ से पृथक् हो कर अपने विहार से अनेकानेक ग्रामों और नगरों में धर्मामृत की वर्षा की।

आपने मालवा प्रान्त, बुन्देलखण्ड आदि अनेक क्षेत्रों की यात्रा की, धर्म-पिपासुओं को उपदेश-पीयूष का पान कराया तथा अनेक पुरुषों एवं स्त्रियों को मुनि पद एवं आर्यिका पद प्रदान किया।

विक्रम सम्वत् २०२५ की फाल्गुन शुक्ला अष्टमी के दिन श्री महावीर जी अतिशय क्षेत्र में आचार्यश्री शिवसागरजी महाराज के स्वर्गारोहण के कुछ दिन बाद आपको अपार जनसमुदाय के बीच आचार्यपद से विभूषित किया गया। आपका स्वभाव अत्यन्त सरल है। अभिमान तो मानो आपको छू ही नहीं गया। आपकी वाणी में द्राक्षा से भी अधिक मधुरता है। आपके कुछ मधुर वचन यहां प्रस्तुत हैं—

❀ दूसरा नै काई देखै छै, आपणो देखणो सीख। दूसरा थारो भलो कोनी कर सकै। तू ही थारो शत्रु है और तू ही थारो मीत।

❀ धोबी को काम करतां घणां दिन हुया है अब तो आपणो कपड़ो धोवण को जतन कर।

❀ घणा दिनां रो खोटो स्वभाव पड्यो है पराई निन्दा-करण रो। ई नै छोड़ो। आपरी निन्दा करै जका नै चोखो जाण।

❀ "निन्दक तू मत मरजे रे! म्हारी निन्दा कुण कर सी रे!" प्रशंसा करणे वाले स्यूं निन्दक नै चोखो जाणो। निन्दक आपणी निन्दा कर आपा नै सचेत करै है। प्रशंसा करणे वालो तो खुद रो भलो करे—आप रो तो भलो कोनी करै।

❀ साधु कै एक गांव एक घर थोड़ो ही है। जठै जावैगो घणां भांत का आदमी मिलै—

"साधु थारै सौ गांव, कोई भाई पटै, कोई भाई नटै ।
सगलाई नटै तो जावां कठै, सगलाई पटै तो मेलां कठै ।।"

❀ हे आत्माराम ! तूं थारो भलो चावै तो सास्त्र रूपी आरस में थारो मूण्डो देख र थारी कालिमा उतार ।

❀ जको जिस्यो करै विस्यो ही भरै ।

❀ करै जका नै करणे द्यो, आपरा मन नै संभाल र राखो ।

आचार्यश्री आगम के दृढ़ विश्वासी हैं । आगम विरोधी चर्चा आपको सहन नहीं होती । आपका कहना है कि जितना कर सकते हो उतना तो अवश्य करो । नहीं कर सकते हो तो श्रद्धान करो । श्रद्धान से विमुख मत बनो । आपकी प्रतिभा के समक्ष दर्शक, श्रोता नतमस्तक हो जाते हैं । आपकी गुणगरिमा अवर्णनीय है ।

सब जग मे है फैल रही, नर-नारी यश का गान करे,
गुणसुवास जगत में महक रही ।
पदरज से भूतल पवित्र हुआ ।
गुरुवर की महिमा भारी है ।
नतमस्तक हो गुरुचरणों में, प्रतिदिन धोक हमारी है ।।

(५) मुनिश्री श्रुतसागरजी महाराज :

मुनिश्री श्रुतसागरजी महाराज

आप बीकानेर के हैं, ओसवाल झाबर जाति में आपका जन्म हुआ । संसार, शरीर और भोगों से विरक्त हो आपने युवावस्था में वनिता का बन्धन तोड़ दिया; भगिनियों के प्यार को छोड़ दिया तथा छोटी-छोटी पुत्रियों की ममता भी आपको नहीं जकड़ सकी । कहा जाता है कि स्नेह की डोर वज्र से भी अधिक दृढ़ होती है परन्तु आपने उसे कच्चे धागे के समान तोड़कर फेंक दिया । आपके तीन सुपुत्र और तीन सुपुत्रियों में से सबसे छोटी पुत्री सुशीला ने तो पिता के मार्ग का अनुसरण किया । वह बाल ब्रह्मचारिणी होकर तत्त्वाभ्यास करने लगी तथा अब तो आर्यिका के व्रत भी ग्रहण कर लिये हैं ।

महाराजश्री की तत्त्वचर्चा इतनी गम्भीर और विशद होती है कि उसके सामने बड़े-बड़े न्यायतीर्थ पण्डित भी दांतों तले उंगली दबाते हैं। निश्चय एवं व्यवहार नय को विशेष दृष्टान्तों के द्वारा समझाने का आपका तरीका अपूर्व है। आपकी वाणी मधुरता से परिपूर्ण एवं जोश भरी है। आपकी प्रतिभामय आकृति को देखकर भव्यों का मन मुग्ध हो जाता है। आपके समझाने के तरीके से तत्त्व सीधे हृदय में उतर जाता है। आपका 'बेटा' शब्द तो इतना प्यारा है कि सुनने के साथ ही हृदय गद्‌गद हो जाता है। आपने अनेक भव्य जीवों को दीक्षा-शिक्षा प्रदान कर शिवमार्ग में लगाया है। आपने जिनेन्द्र कथित श्रुत का अभ्यास कर अपने हृदय को श्रुत से भरा है इसलिए आप सच्चे अर्थों में श्रुतसागर हैं। आपके पावन पद कमलों में प्रतिदिन मेरा सविनय प्रणाम !

पूज्य मुनिश्री १०८ पदमसागरजी महाराज (खण्डेलवाल : बाकलीवाल), पूज्य मुनिश्री जयसागरजी महाराज (खण्डेलवाल) और पूज्य मुनिश्री सन्मतिसागरजी महाराज (खण्डेलवाल : छाबड़ा; टोडारायसिंह) भी आपके (आचार्यश्री वीरसागरजी) के सुशिष्यों में हैं।

आर्यिका वृन्द

आर्यिका १०५ श्री सुमतिमती माताजी (खण्डेलवाल : विलाला; जयपुर); आर्यिका १०५ श्री विमलमती माताजी (जन्म मुंगावली-ग्वालियर; परवार) : आपका अधिकांश समय डेह, नागौर में विशेष धर्मध्यानपूर्वक व्यतीत हुआ। आप नागौर में ही समाधिमरणपूर्वक स्वर्ग-वासिनी हुई।

आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी : इन्ही का जीवनचरित प्रस्तुत अभिनन्दन ग्रन्थ है। आर्यिका १०५ श्री सिद्धमती माताजी (अग्रवाल : दिल्ली); आर्यिका १०५ श्री शान्तिमती माताजी (अग्रवाल) आर्यिका १०५ श्री वासुमती माताजी (खण्डेलवाल, बड़जात्या)

आर्यिका १०५ श्री ज्ञानमती माताजी : आपका जन्म टिकैतनगर (उ० प्र०) में अग्र-वाल वंश में हुआ। आपने बाल ब्रह्मचारी आचार्यश्री १०८ देशभूषणजी से क्षुल्लिका दीक्षा एवं आचार्य श्री १०८ वीरसागरजी से आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। समग्र देश में आपके ज्ञान की महिमा फैल रही है। आपने अनेकानेक ग्रन्थों की सरल भाषा में टीका एवं रचना कर जिज्ञासुओं का बहुत हित किया है। आप इस समय ऐतिहासिक हस्तिनापुर में 'जम्बूद्वीप' की रचना का महान् अद्वितीय कार्य सम्पन्न कर रही हैं।

आर्यिका १०५ श्री कुन्थुमती माताजी

आर्यिका १०५ श्री अजितमती माताजी

आर्यिका १०५ श्री सुपार्श्वमती माताजी : प्रस्तुत जीवन चरित्र की लेखिका हैं। आप आचार्यश्री १०८ वीरसागरजी महाराज की अन्तिम शिष्या हैं।

अन्य त्यागी समुदाय

क्षुल्लक १०५ श्री सिद्धसागरजी, क्षुल्लक १०५ श्री सुमतिसागरजी; क्षुल्लिका श्री अनन्तमतीजी, क्षुल्लिका श्री गुणमतीजी, क्षुल्लिका श्री जिनमतीजी, क्षुल्लिका पद्मावतीजी, क्षुल्लिका चन्द्रमतीजी।

ब्रह्मचारी सूरजमलजी, ब्र० राजमलजी (वर्तमान मुनिश्री १०८ अजितसागरजी महाराज) ब्रह्मचारी दीपचन्द जी बड़जात्या, ब्रह्मचारी चांदमल जी चूड़ीवाल, नागौर आदि अनेक त्यागी-व्रतियों का विशाल संघ था।

इस विशाल संघ के नायक आचार्य १०८ श्री वीरसागरजी महाराज ने ६ दिगम्बर मुनियों, १२ आर्यिकाओं, ६ क्षुल्लिकाओं ३ क्षुल्लको अनेक ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणियों तथा हजारों श्रावक-श्राविकाओं के समक्ष स्वर्गप्रयाण किया। मृत्यु के मुख से बचाने वाला कोई नही।

आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय।
यूँ कबहू इस जीव का साथी सगा न कोय।।

गुरु रूपी सूर्य के अस्त हो जाने से संघ के समस्त साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाओं के मुख रूपी कमल म्लान हो गए। गुरु वियोग के अपार दु:ख से किसका हृदय आकुलित नही होता? गुरुदेव के पार्थिव शरीर के संस्कार के बाद विविध भक्तियों का पाठ किया गया।

कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी के दिन आचार्यश्री १०८ महावीरकीर्तिजी के समक्ष श्री शिव-सागरजी महाराज को 'आचार्य' पद प्रदान किया गया।

चातुर्मास की समाप्ति के बाद संघ ने कुछ दिन जयपुर शहर में रह कर गिरनार सिद्ध-क्षेत्र की यात्रा हेतु सौराष्ट्र की ओर प्रस्थान किया। आचार्यश्री १०८ महावीरकीर्तिजी अपने संघ सहित पद्मपुरी अतिशय क्षेत्र पहुँचे।

आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी भी कुछ कारणवश कुछ दिनों तक जयपुर में रही फिर भांकरोटा, बगरू होते हुए मौजमाबाद पहुँची। यहां एक प्राचीन विशाल मन्दिर है जिसमें सहस्रों प्राचीन जिनबिम्ब हैं। तलघर मे भगवान आदिनाथ, भगवान अजितनाथ एवं भगवान सम्भवनाथ के विशाल प्राचीन भव्य बिम्ब है जिनके दर्शन से नेत्र तृप्त होते हैं तथा गर्मी के दिनों में भी उनके समीप बैठने पर उष्णता का आभास नही होता।

मौजमाबाद से विहार कर माताजी भाग, दूदू और नरैना पहुँची। नरैना में जमीन से निकली हुई कई प्राचीन मूर्तियां हैं; कितनी ही मूर्तियाँ खण्डित अवस्था में भी हैं। यहां से फुलेरा, साँभर, गुढ़ा, नांवा, मारोठ, मीठड़ी, पदमपुरा, कुचामन शहर होते हुए चातुर्मास–वर्षायोग के लिए नागौर पहुँची। विक्रम संवत् २०१५ का यह वर्षायोग आचार्यश्री १०८ महावीरकीर्तिजी महाराज ने भी संघ सहित यहीं स्थापित किया। ❖

७

नागौर से मांगीतुंगी

सोलहवां वर्षायोग :

राजस्थान प्रान्तान्तर्गत जोधपुर जिले में नागौर एक प्राचीन नगर है। इसके चारों तरफ परकोटा और खाई है। पुरातन काल में यह नगर राजाओं की राजधानी रहा है। यहां स्वच्छ जल से परिपूरित अनेक विशाल तालाब हैं और कई जिनमन्दिर हैं।

भगवान आदिनाथ जिनमन्दिर में श्री केसरीमल जी बड़जात्या द्वारा निर्मित एक विशाल मानस्तम्भ है। श्री मन्दिरजी पर तीन शिखर हैं। शिखर में श्री पार्श्वनाथ भगवान का विशाल मनोज्ञ बिम्ब है। नीचे भगवान आदिनाथ का बिम्ब तथा अनेक वेदियां हैं। नीचे ही हॉल में वृद्ध स्त्री-पुरुषों द्वारा सुविधापूर्वक पूजा-पाठादि क्रियाएँ सम्पन्न हो सकें एतदर्थ श्री ज्ञानीराम, मांगीलाल, सिकरीलाल बड़जात्या ने वेदी बनवा कर श्री शान्तिनाथ भगवान का बिम्ब विराजमान किया है।

शहर के बाहर दो नसियांजो अति प्रसिद्ध हैं। ये धर्मशाला, उपवन कूपादि से सुशोभित हैं। तेरह पंथी तथा बीस पंथी नसियाँ के नाम से जानी जाती हैं।

बीस पंथी प्राचीन दो जिनमन्दिर अति विख्यात हैं। इनमें अति प्राचीन, विशाल-विशाल जिनबिम्ब हैं जो यक्ष-यक्षिणी सहित हैं। अकृत्रिम जिनमन्दिरों की भाँति अनेक यक्ष-यक्षिणियों की शास्त्रोक्त विधि से निर्मित कई मूर्तिया हैं। बीस पंथी बड़े जिनमन्दिर में प्राचीन काल से, भट्टारकों द्वारा स्थापित, एक शास्त्रभण्डार है जिसमें प्राचीनकाल के हस्तलिखित एवं स्वर्णांकित शास्त्र भरे

पड़े हैं। प्राचीन आचार्यों ने कितने परिश्रमपूर्वक उनकी रचना कर उन्हें लिपिबद्ध किया होगा। आज के नर-नारी उनकी कीमत नहीं जानते—"भीलनी क्या जाने मोतियों का मूल्य" कहावत के अनुसार उस भण्डार में अनेक ग्रन्थ जीर्ण-शीर्ण हो गए हैं; जो शेष हैं उनका भी—यदि यही स्थिति रही तो—नाम मात्र शेष रह जाएगा।

वस्तु परिवर्तनशील है, उसको अक्षुण्ण बनाए रखने का एक ही उपाय है। यदि वे शास्त्र किसी प्रकाशन-योजना का अंग बन सकें या फिर उनकी फोटो कापी या नकल रखने की कोई योजना बने तो वे सुरक्षित रह पायेंगे अन्यथा उनका नष्ट होना तो स्वाभाविक है।

जैन समाज मे धन की कमी नहीं है; लाखों रुपए अनावश्यक कार्यों में खर्च होते हैं। अनेक विद्वान् मौजद है। परन्तु हमारी मूढ़ता एवं आलस्य ने समाज को धर्मविमुख बना दिया है। हम यह नही सोचते कि शास्त्रो की पुनरावृत्ति के अभाव में प्राचीनता कितने दिन तक स्थिर रह सकती है। मन्त्र-तन्त्र सम्बन्धी कितने बहुमूल्य शास्त्र तो नष्ट हो गए। जो कुछ हैं वे भी कुछ काल बाद टिकने वाले नही हैं। प्रत्येक मनुष्य उनका गूढ़ार्थ समझ भी नहीं सकता है—मन्त्र-तन्त्र एवं संस्कृत का विशिष्ट ज्ञाता हो, वही उनके सार को समझ सकता है।

नागौर के इस अति प्रसिद्ध शास्त्र भण्डार में प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग—सभी अनुयोगों के ग्रन्थ हैं। अनेक ग्रन्थ सचित्र हैं। इस भण्डार में ऋषिमण्डल यत्र, कलिकुण्ड यंत्र, मातृक यंत्र, वृहद् सिद्ध यंत्र, गणधर वलय यंत्र, शान्ति यंत्र, पञ्च परमेष्ठी यंत्र, पार्श्वनाथ यत्र, सरस्वती यंत्र, ज्वालामालिनी यंत्र, चिन्तामणि यंत्र आदि अनेक यंत्र हैं।

१५

८	१	६
३	५	७
४	९	२

२०

२	९	२	७
६	३	६	५
८	३	८	१
४	५	४	७

३४

९	१६	२	७
६	३	१३	१२
१५	१०	८	१
४	५	११	१४

भण्डार में एक महान् विजयपताका यंत्र है। जिस प्रकार णमोकार मंत्र में समस्त द्वादशांग गर्भित है उसी प्रकार इस यंत्र में समस्त अंक सम्बन्धित यंत्र गर्भित हैं। इसे साधारण व्यक्ति

नहीं समझ पाता है। जिस प्रकार 'भूवलय' ग्रन्थ से अनेक प्रकार के श्लोक बनते हैं उसी प्रकार उस विजयपताका यंत्र से भी अनेक श्लोक बनते हैं। यह अद्भुत ज्ञान महान् तपस्वी, योगिराज, नाना भाषाओं के ज्ञाता आचार्यश्री महावीरकीर्तिजी महाराज को था।

वि० सम्वत् २०१५ के इस चातुर्मास में साधुशिरोमणि, अद्वितीय, परम तपस्वी, उत्कृष्ट विद्वान् पूज्यश्री महावीरकीर्तिजी महाराज यहीं विद्यमान थे। आचार्यश्री असाधारण महापुरुष थे— आपके समक्ष सुमेरु पर्वत की दृढ़ता, समुद्र की गम्भीरता, वसुधा की क्षमाशीलता, व्योमकी विशालता, वायु की निर्लेपता, तरणि की तेजस्विता, शशिकर की शीतलता, नवनीत की कोमलता और शक्र की सुशासनता भी श्रद्धावनत रहती थी। आप संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, मराठी, कन्नड़, अंग्रेजी, उर्दू, गुजराती, राजस्थानी आदि अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे।

आप भव्य जीवों को भवरोग समाप्त करने के लिए औषधि बताते थे- मन भर दान, दम भर ब्रह्मचर्यव्रत, दिल भर दया को श्रद्धा की शिला पर, चरित्र के लोटे से ज्ञान का पानी मिला कर पी लेना। पथ्य : राग की मिर्च, द्वेष की खटाई, इच्छा का तेल, विषय-भोग का गुड नही खाना; जिससे तुम्हारे समस्त रोग नष्ट हो जायेंगे।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूपी त्रिफला का सेवन करो, इससे मानसिक विभाव परिणति रूप विकार नष्ट हो जायेंगे। ज्ञान ज्योति वृद्धिगत होगी।

अहिंसा का वंशलोचन, सत्य की मिश्री, अचौर्य की पीपल, ब्रह्मचर्य की इलायची, परिग्रह त्याग की दालचीनी इन सबको मिला कर सीतोपलादि चूर्ण बना कर पाँच समिति की चासनी, गुप्ति की मुक्ता पिष्टी मिला कर चाटने से संसार क्षय रोग नष्ट हो जाता है। वे हमेशा कहते थे—

वैद्य हमारे सिद्धजी, औषध जिनवर नाम।
भाव-भक्ति से लीजिए, महारोग नस जाए॥

आचार्यश्री भवरोग नाशक औषधि भी बताते थे और शारीरिक रोग नाशक औषधि के भी श्रेष्ठ ज्ञाता थे। 'कल्याणकारक ग्रन्थ' तो उनको कण्ठस्थ था। अनेक वनस्पतियों के गुणधर्म के वे परीक्षक थे। मार्ग में विहार करते-करते बताते जाते थे कि इस वनस्पति में यह गुण है।

आचार्यश्री परम तपस्वी थे; आगम के अनुसार चलने वाले थे; तीर्थक्षेत्रों के उत्कृष्ट भक्त थे। जरा सी भी चरित्रहीनता उनको पसन्द नहीं थी। यद्यपि असंयमी मनुष्य उनके व्यवहार से कभी रुष्ट हो जाते थे परन्तु उनकी उनको परवाह नहीं थी। आपके वचन अनुकरणीय थे। तत्त्व को समझाने की आपकी शैली इतनी सरल होती थी कि छोटे से छोटा बच्चा भी समझ सकता था।

आपके मन्त्र के प्रभाव से अजमेर में नसियांजी के कुए का खारा पानी मीठा हो गया। वंधा क्षेत्र के सूखे कुओं में पानी भर गया। जयपुर में एक अत्यन्त रुग्ण मनुष्य का रोग भी मन्त्र से दूर हो गया।

आपके प्रभाव की डेह (नागौर) में भी अनेक घटनाएं घटित हुई। क्षेत्रपाल के चमत्कार हुए। आपकी महिमा अकथनीय है। आचार्यश्री ने भण्डार में संगृहीत कई मंत्रों व यंत्रों का अर्थ बताया था; भण्डार से बहुत से शास्त्र लेकर उन्होंने उतरवाये भी थे। शायद उनके संघ में उनके हस्तलिखित अनेक मंत्र-तंत्र होगे। इस समय उन ग्रन्थों की रक्षा की आवश्यकता है। अस्तु !

नागौर चतुर्मास की निरापद समाप्ति के बाद सघ वि० सं० २०१५ मिति मंगसिर सुदी १४ को डेह ग्राम में पहुँचा। आचार्यश्री—अद्भुत विद्वान्, आगम के अटूट श्रद्धानी—शकाओं का समाधान आगम एव युक्तियों से इतनी सरलता से करते थे कि श्रोता मंत्र-मुग्ध हो एकाग्रचित्त से श्रवण लीन होता था। आपके उपदेशामृत से अनेक जैनाजैन बन्धुओं ने स्वशक्त्यनुसार व्रत ग्रहण किए; नियम लिये और इस प्रकार आत्मकल्याण के पथ में प्रवृत्त हुए। आचार्यश्री जहां पर तीर्थ-क्षेत्र, प्राचोन मन्दिर या प्राचीन मूर्तियां होती थी वहां पर घण्टों ध्यानस्थ हो जाते थे। वही बात स्थानीय प्राचीन मन्दिर मे भी घटित हुई।

१७ वां वर्षायोग :

सम्पूर्ण संघ लगभग दो मास तक यहां रहा। अच्छी धर्मप्रभावना हुई। यहां से आचार्यश्री महावीरकीर्तिजी ने और धर्मसागरजी ने मेडता रोड की ओर विहार किया। आर्यिकाश्री इन्दुमतीजी आदि वहां से लालगढ़-मैनसर गये। वहां कुछ दिन रह कर धर्म-प्रचार करते हुए प्राचीन नगर लाडनूं पहुँचे। यहां भूतल से निकला हुआ प्राचीन मन्दिर है। विक्रम सम्वत् १०११ की माथुर संघ की प्रतिष्ठित प्रतिमा है। तोरण सहित एक अन्य विशाल प्रतिमा है। तोरण पर अनेक यक्ष-यक्षिणियों सहित जिन बिम्ब हैं।

सुखदेव आश्रम में संगमरमर से निर्मित जिनालय है जो अतिशय मनोज्ञ और दर्शनीय है। यहां भरत और बाहुबलि की विशाल खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। भगवान आदिनाथ का सप्त धातु का बिम्ब है। बाहर मानस्तम्भ है एवं बाहुबलि की खड्गासन प्रतिमा है। बगीचे व फव्वारे आदि से मन्दिर का प्रांगण अत्यन्त रमणीय प्रतीत होता है।

बड़े मन्दिरजी के समीप ही श्री लालचन्द दीपचन्द बगड़ा द्वारा निर्मापित एक नवीन जिनालय है। आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी ने वि० सं० २०१६ का वर्षायोग संघसहित यहीं लाडनूं में सम्पन्न किया था।

चातुर्मास सम्पन्न होने के बाद वहां के निवासी श्री मांगीलालजी अग्रवाल की भावना श्री चन्द्रसागर स्मारक नाम से नव निर्मित जिनालय के पञ्च कल्याणक बिम्ब प्रतिष्ठा महोत्सव की हुई। उस समय अजमेर से परम पूज्य १०८ आचार्यश्री शिवसागरजी महाराज का विशाल संघ नागौर डेह होता हुआ यहां पहुँचा। श्री महावीर स्वामी के विशाल, मनोज्ञ पद्मासन बिम्ब की प्रतिष्ठा, जिनालय की प्रतिष्ठा, तथा परम पूज्य (स्वर्गीय) १०८ आचार्य श्री शान्तिसागरजी, वीरसागरजी एवं चन्द्रसागरजी के बिम्बों की प्रतिष्ठा हुई। वि० सं० २०१६ मिति माघ शुक्ला चतुर्दशी के दिन जिनालय में बिम्ब-स्थापना आदि अनेक धार्मिक अनुष्ठानों से एवं त्यागी-व्रतियो के उपदेशामृत से महती धर्म प्रभावना हुई। वही पर आर्यिका १०५ श्री सुमतिमती माताजी का णमोकार मंत्र जपते हुए स्वर्गवास हुआ। संघस्थ ब्रह्मचारी दीपचन्द जी बड़जात्या नागौर वालों का स्वर्गवास भी वहीं पर हुआ था। वहा से विहार कर संघ सुजानगढ आया। यहां एक भव्य जिनालय, एक नसियांजी एवं तीन चैत्यालय है।

अठारहवां वर्षायोग :

आ० विद्यामती दीक्षा समारोह

विक्रम संवत् २०१७ का वर्षायोग यही संपन्न हुआ। वर्षायोग में कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी के दिन लालगढ निवासी श्री नेमीचन्दजी बाकलीवाल की सुपुत्री शान्तिबाई ने जिनका विवाह डेह निवासी केसरीमलजी सेठी के सुपुत्र मूलचन्द के साथ हुआ था—२५ वर्ष की वय में वैराग्य को प्राप्त होकर, आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी की प्रेरणा से विशाल सघ एवं जनसमुदाय के समक्ष 'आर्यिका' के व्रत ग्रहण किए, नाम विद्यामतीजी रखा गया।

श्री ऋषभसागरजी, भव्यसागरजी क्षुल्लकों ने मुनि पद एवं क्षुल्लिका नेमामतीजी ने आर्यिका पद ग्रहण किया। वर्षायोग की व्यवस्था करने वाले ज्ञानीराम हरकचन्द्र सरावगी (पाण्डया) थे। चातुर्मास के बाद आचार्यश्री ने संघ सहित सीकर की ओर प्रस्थान किया।

उन्नीसवां वर्षायोग :

आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी लादड़िया आदि गांवों में विहार करती हुई कुचामन शहर पहुँचीं। वहां श्रीमन्त श्रावकों के अनेक घर हैं तथा विशाल-विशाल प्राचीन जिनमन्दिर हैं। कुचामन में रथयात्रा निकाली गई जिससे विशेष धर्मप्रभावना हुई। कुचामन निवासी श्री कुन्दनमलजी काला की सुपुत्री हरको बाई ने पाँचवी प्रतिमा के व्रत ग्रहण किए। तभी से आप संघ के साथ

में हैं। वहां से विहार कर जिल्या, पाचवां, कुकनवाली, इन्दोखा, प्रेमपुरा, चिलखा, अड़गसर, लालारा, टोड़ारा, मुण्डवाड़ा, दूजोद होते हुए सीकर पहुँची। वहां आचार्य श्री १०८ शिवसागरजी महाराज के संघ के साथ विक्रम संवत् २०१८ का वर्षायोग किया। संघ में ६ मुनिराज, १० आर्यिकाएँ एक क्षुल्लक, चार क्षुल्लिकाएँ व अनेक ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणिया थे। यहाँ भव्य दीक्षा समारोह आयोजित हुआ।

आ० विद्यामतीजी का दीक्षा समारोह

संघस्थ बाल ब्रह्मचारी श्री राजमलजी ने यहां मुनि-दीक्षा स्वीकार की थी। क्षुल्लक पद से मुनिपद की दीक्षाएं तो बहुत देखी थीं परन्तु श्रावक से मुनिपद स्वीकार करते हुए देखने का यह प्रथम अवसर था। हजारों दर्शनार्थियों के समक्ष दीक्षा-समारोह सम्पन्न हुआ। आपका नाम श्री अजितसागरजी रखा गया। आप प्राकृत संस्कृत भाषा के प्रौढ़ विद्वान है। साहित्य की गवेषणा करना, उसका प्रकाशन-संरक्षण करना आपका मुख्य ध्येय है। आप शान्त-स्वभावी हैं और अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी है।

आ० विद्यामतीजी की दीक्षा

पूज्य अजितसागरजी महाराज मेरे गृहस्थावस्था के विद्यागुरु हैं। मुझे जो कुछ संस्कृत प्राकृत एवं धर्म-ग्रन्थों का ज्ञान है वह आपकी ही देन है। संस्कृत की पहली पुस्तक से लेकर व्याकरण तक आपने ही पढाया है। धर्म, दर्शन, न्याय और काव्य का ज्ञान भी मुझे आपने ही कराया। आप न्याय, व्याकरण आदि के श्रेष्ठ विद्वान हैं। मैं तो यही कहूंगी कि वर्तमान साधुओं में आपके समान संस्कृत भाषा व व्याकरण के ज्ञाता दूसरे नही है—इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

दीक्षा समारोह में श्री जिनमती, राजमती, सम्भवमती, बुद्धिमती क्षुल्लिकाओं ने एवं श्राविका अंगूरीबाई ने आर्यिका के व्रत ग्रहण किये। इस अवसर पर नागौर, डेह, लाडनूं, सुजानगढ़, तथा आस-पास के नर-नारी हजारों की संख्या में सम्मिलित हुए।

सिद्धचक्र मण्डल विधान आदि अनेक धार्मिक अनुष्ठान भी इस वर्षायोग में सम्पन्न हुए। सीकर में मुनिसंघ के चातुर्मास का यह प्रथम अवसर था अतः श्रावक-श्राविकाओं व बच्चों में विशेष उत्साह था।

लाडनूं में नसियांजी में केसरीचन्द्र निहालचन्द्र सरावगी अग्रवाल की ओर से पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव होने वाला था। संघ से वहां पहुँचने का विशेष आग्रह किया गया था अत: संघ ने लाडनूं की ओर विहार किया। आर्यिका इन्दुमती माताजी धोद के श्रावकों के आग्रह से कासली होते हुए धोद पहुँची। वहां कुछ दिन ठहर कर नागवा हरसोल के मन्दिर के दर्शन कर वहां के श्रावकों को उपदेशामृत से सन्तुष्ट करती हुई रेवासा पहुँची। वहां विशाल मन्दिर है उसके स्तम्भों को गिनते समय गिनती में कभी एक कम और कभी एक ज्यादा गिना जाता है। विशाल जिनबिम्ब हैं। परन्तु श्रावकों के घर नगण्य हैं। यहां के निवासी व्यापार हेतु अन्य प्रान्तों में चले गए हैं। बड़े-बड़े भवन खाली पडे हैं, रहने वाले बहुत कम हैं। वहा से सघ राणोली, कोछोर, जिजोट, कुकनवाली, जिल्या, लादरिया होते हुए लाडनूं पहुँचा।

बीसवां वर्षायोग :

लाडनूं नगर में यह सत्ताइसवी प्रतिष्ठा थी। आचार्यश्री शिवसागरजी महाराज ससंघ पधारे थे। आचार्यश्री की प्रेरणा से निहालचन्द पुष्पराजजी ने मानस्तम्भ का निर्माण करवाया। प्रतिष्ठाचार्य ब्र० सूरजमलजी थे। इस अवसर पर अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महासभा का ६७ वा अधिवेशन सम्पन्न हुआ। श्री शान्तिवीर समिति एव श्री दिगम्बर जैन सिद्धान्त सरक्षिणी सभा के एकीकरण का भी कार्य हुआ। समाज के अनेक श्रीमन्त तथा विद्वान—पं० सुमेरुचन्द्रजी दिवाकर, सिवनी; पं० मक्खनलालजी शास्त्री, मोरेना; प० तनसुखलालजी काला, वम्बई; पं० तेजपालजी काला, नाँदगाँव, पं० इन्द्रलालजी शास्त्री, जयपुर-- भी पधारे थे। विद्वानो के समागम से तत्त्वचर्चा का खूब सुयोग मिला था। विक्रम संवत् २०१९ का वर्षायोग लाडनूं में ही सम्पन्न हुआ। वर्षायोग की समाप्ति के बाद आचार्यश्री शिवसागरजो महाराज ने संघ सहित कुचामन की ओर विहार किया। उसके बाद से हम आचार्यश्री के दर्शनों का लाभ नहीं ले सके।

इक्कीसवां वर्षायोग :

सुजानगढ़, फतेहपुर, दांता रामगढ, चुरु, लक्ष्मणगढ, सीकर, दूजोद, मुंडगांव आदि स्थानों के जिनालयों की वन्दना करते हुए आर्यिका इन्दुमतीजी संघ सहित (आ० सुपार्श्वमतीजी, आ० विद्यामतीजी एवं ब्र० देवकीबाई ब्रह्मचारिणियां) लालास पहुँची। वहाँ समाज ने वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव आयोजित किया। विधिविधान व प्रतिष्ठा का सम्पूर्ण कार्य ब्र० सूरजमलजी ने सम्पन्न किया। वहां से विहार कर जिजोट, भैंसलाना, कांकर, डाँसरोली, श्यामगढ़, मीण्डा, मण्डावर, जोबनेर, किशनगढ-रेनवाल, ड्योढ़ी-कोढ़ी, रोजड़ी, फुलेरा, नरेना, साखूण, बांदरसींदरी, मदनगंज-किशनगढ़, ऊंटड़ा आदि के ख्यात मन्दिरो के दर्शन करते हुए संघ अजमेर पहुँचा। विक्रम संवत् २०२० का वर्षायोग अजमेर में हुआ। यहाँ विशेष अनुष्ठान विधान एवं महोत्सव होने से धर्म की

प्रभूत प्रभावना हुई। जैनाजैन जनता ने अनेक प्रकार के व्रत नियम अपनी शक्त्यनुसार ग्रहण किए। यहां पर प्रसिद्ध सोनी परिवार की ओर से निर्मित मानस्तम्भ एवं सुवर्णमयी अयोध्यानगरी की रचना दर्शनीय है। अठारह जिन-मन्दिरों तथा पांच नसियाजी से युक्त अजमेर, धर्मात्माओं के लिए धर्म-साधन का एक सुन्दर स्थान है। यहां 'बाबाजी की नसिया' प्रसिद्ध चमत्कारी है। पहले यहा के कुए का पानी खारा था परन्तु जबसे आचार्यश्री १०८ महावीरकीर्तिजी महाराज के आदेशानुसार देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान के पचामृताभिषेक एवं शान्तिधारा का गन्धोदक कुए मे डलवाया तबसे उसका पानी मीठा हो गया।

२०२० में अजमेर चतुर्मास के समय स संघ

कुछ कारणवश दस माह तक यहा रहने के बाद ससंघ आर्यिका इन्दुमतीजी वीर, ढाल के दर्शन कर मोरादड़ी गई। यह अतिशयक्षेत्र है। यहां भगवान पार्श्वनाथ की खड्गासन बहुत ही प्राचीन एव मनोज्ञ मूर्ति है, उसके दर्शन से जो आनन्द हुआ था वह अपूर्व था। साधुसंगति महान् लाभकारी है। गांव-गांव के अतिशययुक्त जिनमन्दिरों के दर्शन का अपूर्व अवसर मिलता है। वहा से सगोद, डेराठू पहुँचे। डेराठू में भी तालाब से निकली हुई चमत्कारी मूर्ति है। वहां से नसीराबाद, तिवरी, दादिया, लाम्बा, झिरौता, मयली, शेरगढ, खेरा के जिनमन्दिरों के दर्शन करते हुए सघ सरवाड़ पहुँचा। सरवाड़ में पन्द्रह सौ वर्ष पुराना श्री आदिनाथ भगवान का बिम्ब है; क्षेत्रपाल का स्थान है। भगवान के सामने दरवाजे के बाहर दीवाल पर, नमस्कार करते हुए बादशाह की मूर्ति है जिस पर मधुमक्खियां गिर रही हैं। वहा का इतिहास है कि मूर्ति को खण्डित करने के लिए बादशाह यहां आए थे। ज्योंही वे मूर्ति को खण्डित करने लगे त्योंही मधुमक्खियों के झुण्ड के झुण्ड निकल कर बादशाह और उसकी सेना पर आक्रमण कर बैठे। जब बादशाह ने भगवान से प्रार्थना की तो उपद्रव शान्त हो गया। बादशाह ने प्रसन्न होकर भूरि-भूरि प्रशंसा की और स्मृति में भगवान के सामने नमस्कार करते हुए अपनी प्रतिकृति पत्थर में खुदवा कर लगवा दी तथा जिनमन्दिर की सुरक्षा हेतु बहुत सा द्रव्य भी दिया। ऐसे ऐतिहासिक स्थान पर केशलोंचादि अनेक धार्मिक कार्य हुए।

बाईसवाँ वर्षायोग :

यहां से संघ बडगांव, चांदसी, नांदसी, कढ़ाया, गुड़ा के जिनमन्दिरों के दर्शन करता हुआ एवं तत्रस्थित भव्यों को धर्मोपदेश देता हुआ चांपानेरी पहुँचा। यहां काले पाषाण की एक विशाल मनोज्ञ खड्गासन प्रतिमा है। यहा के श्रावकों के आग्रह पर विक्रम संवत् २०२१ का वर्षायोग यहीं चाँपानेरी मे सम्पन्न किया। सिद्धचक्र मण्डल विधान आदि अनेक प्रभावना-कार्य हुए। सन्तोषबाई ने सातवी प्रतिमा के व्रत ग्रहण किए।

वर्षायोग के बाद देवली, विजयनगर, गुलाबपुरा, कोठ्यां आदि स्थानों पर पहुँचे। कोठ्यां में श्री कैलाशचन्द ने १६ वर्ष की अल्पायु मे आपके उपदेश से प्रेरणा पाकर आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण करके संघ का सान्निध्य प्राप्त किया। ब्र० कैलाशचन्द संघ के साथ रहने लगा। यहाँ से राधास, इटड के जिनमन्दिरों के दर्शन करता हुआ आर्यिका-संघ शाहपुरा पहुँचा। यहां एक प्राचीन मन्दिर के तलघर में भी जिनबिम्ब है। चातुर्मास में तलघर में अपने आप पानी भर जाता है। चमत्कारी मूर्ति है। श्वेताम्बर समाज विशेष होने से यहा श्वेताम्बर साधुओं का आगमन विशेष होता है। दिगम्बर साधुओं के आगमन का यहाँ यह प्रथम अवसर था। ब्राह्मणों के घर भी अधिक हैं। यहां संस्कृत के उदार विद्वानों का समागम मिला। वे भी संघ के दर्शनार्थ आते थे एवं चर्चा-उपदेश का लाभ पा, नतमस्तक होकर लौटते थे।

यहा से विशनोई, सपाड़ी, अमरसर होते हुए सघ पारोली पहुँचा। पारोली गांव से २ मील दूर नदी किनारे छोटा सा पहाड़ है जिस पर सप्तफणि पार्श्वनाथ भगवान की पद्मासन मूर्ति अति प्राचीन है। यह स्थान चँवलेश्वर नाम से प्रसिद्ध है। चमत्कारी मूर्ति है। पौष शुक्ला नवमी के दिन वार्षिक मेला लगता है। श्वेताम्बर-दिगम्बर दोनों आम्नाय के श्रावक इस मूर्ति की पूजा करते हैं। कहते हैं कि भगवान पार्श्वनाथ का समवशरण यहां आया था। यहां एक दो दिन ठहरने की भावना थी परन्तु पहाड़ पर पानी का अभाव था अतः दो घण्टे वहां रुक कर कोठरी, दरिणया को कोण्डी होते हुए संघ भीलवाड़ा पहुँचा।

भीलवाड़ा में प्राचीन विशाल तीन जिनमन्दिर हैं। भूपालगंज में एक नवीन मन्दिर है। इनके दर्शन करता हुआ सघ हमीरगढ़ होते हुए चित्तोड़ पहुँचा। यहां का ऐतिहासिक दुर्ग अति प्रसिद्ध है। यहां अनेक रानियों ने अपने शीलधर्म की रक्षा करने के लिए अपने प्राणों की आहुति अग्नि में दी थी। पर्वत पर स्थित किले में एक मन्दिर है, नीचे एक मन्दिर है। पर्वत पर एक मानस्तम्भ दिगम्बर आम्नाय का है। उस मानस्तम्भ में कीर्तिस्तम्भ की भाति भीतर से ऊपर जाने का मार्ग है। भीतर अनेक चित्र खुदे हुए हैं। ऊपर मानस्तम्भ में बाहर की ओर चारों दिशाओं को मुख करती चार बड़ी मूर्तियां हैं। ऐसा मानस्तम्भ भारतवर्ष में कहीं देखने में नहीं आया। श्वेताम्बर

आम्नाय के २७ मन्दिर हैं। सुकुमाल मुनि की एक उपसर्ग रहित मूर्ति एवं शिलालेख है। कहते हैं, यहां का कीर्तिस्तम्भ भी जैनियों का था। अनेक रमणीय स्थान हैं। ऊपर एक कुण्ड है जिसमें निरन्तर नाले का जल प्रवाहित रहता है। पर्वत की शोभा अद्भुत है। चित्तौड़ से निम्बाहेड़ा के दर्शन कर संघ जावद पहुँचा। यहां एक विशाल मन्दिर है जिसमें ५०० वर्ष पुराना विशाल जिन-बिम्ब है। उस बिम्ब के दर्शन से मन भावविभोर हो जाता है। कुछ दिन यहां ठहर कर संघ नीमच, मल्हारगढ, होते हुए मन्दसौर पहुँचा। यहाँ तीन चार प्राचीन मन्दिर हैं, अतिशयकारी मूर्तियां हैं। यहां से पीपरगांव, खाचरोद आदि के मन्दिरों के दर्शन करता हुआ संघ बड़नगर पहुँचा।

बड़नगर में तीन जिनालय हैं। शान्तिनाथ भगवान की प्रतिमा चमत्कारी है। कुछ दिन पूर्व श्री जयसागरजी महाराज का वात रोग के कारण पैरों से हिलना-चलना बन्द हो गया था। आठ उपवास हो गए क्योंकि खड़े हुए बिना साधु आहार नहीं ले सकते। औषधि-उपचार किया गया परन्तु रोग दूर नही हुआ। नवें दिन जब संघ के साधु आहार करने के लिए चले गए तो श्री जयसागर महाराज ने श्रावकों से कहा कि मुझे भगवान के सामने बिठा दो। श्रावकों ने उन्हें उठा कर भगवान के समक्ष बैठा दिया। श्री शान्तिनाथ भगवान की खड्गासन मूर्ति अति मनोज्ञ है।

महाराजश्री भगवान के पैर पकड़ कर बैठ गए और विनती करने लगे कि भगवन्! आप ही अशरण-शरण हैं। या तो मेरे पैर अच्छे हो जाएं अन्यथा आज से मुझे अन्न-पानी का त्याग है। पांच मिनट में ही उनके पैर पूर्ववत् अच्छे हो गए। वे शुद्धि करके आहार हेतु चले गए। वीतराग भगवान के नाम स्मरण मे बडी शक्ति है।

संग्राम-सागर-करीन्द्र-भुजङ्ग-सिंहा-
दिव्याधि-वह्नि-रिपु बन्धनसम्भवानि।
चोर-ग्रह-भ्रम-निशाचर-शाकिनीनां-
नश्यन्ति पञ्चपरमेष्ठीपदे भयानि॥

पञ्च परमेष्ठी के नाम-स्मरण से अनेक रोग-शोक-भय समाप्त हो जाते हैं। बड़नगर से धार, मनावर, लुहारिया होते हुए संघ बड़वानी पहुँचा। बड़वानी से इन्द्रजीत, मेघनाथ, कुम्भकरण आदि मुनियों ने कर्म-कालिमा समाप्त कर मुक्ति पद प्राप्त किया है।

बड़वानी सिद्धक्षेत्र में उन्नत गगनचुम्बी शिखरों से शोभित १७ जिनमन्दिर हैं। चूल-गिरि पर्वत के निचले भाग में रमणीय बावनगजाजी (८५ फीट ऊंची) नाम से ख्यात आदिनाथ भगवान का विशाल बिम्ब है। जिसके दर्शन मात्र से भव्यों का अहंकार भाव नष्ट हो जाता है—

अद्य मिथ्यान्धकारस्य हन्ता ज्ञानदिवाकरः।
उदितो मच्छरीरेऽस्मिन् जिनेन्द्र ! तव दर्शनात्॥

अद्य मे क्षालितं गात्रं नेत्रे च विमलीकृते ।
स्नातोऽहं धर्मतीर्थेषु जिनेन्द्र ! तव दर्शनात् ।।
अद्याभवत्सफलता नयनद्वयस्य,
देव त्वदीय चरणाम्बुजवीक्षणेन ।
अद्य त्रिलोकतिलक प्रतिभासते मे,
संसारवारिधिरयं चुलुकप्रमाणम् ।।

हे देव ! आपके चरण-कमलों के दर्शन से दोनों नयन सफल हो गए इसलिए हे तीन लोक के तिलक ! आज यह संसार रूपी समुद्र मुझे एक चुल्लू प्रमाण प्रतीत होता है ।

जिनबिम्ब के दर्शन की महिमा अगम्य है, सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति का कारण है । उस विशाल जिनबिम्ब के सन्मुख एक मन्दिर है जिसमें नौ गज ऊंची एक प्रतिमा है । ऊपरी भाग में अर्थात् जहां पर खड़े होकर विशाल बिम्ब का महामस्तकाभिषेक किया जाता है, वहां पर इन्द्रजीत, कुम्भकरण एव मेघनाथ के पावन चरण चिन्ह हैं । चूलगिरि के मस्तक पर ४ जिनमन्दिर हैं । उनमें से एक मन्दिर विशाल है, उसकी शोभा वचनातीत है । वहां अत्यन्त रमणीक सुन्दर वाटिकाएँ बनी हैं । अपनी दीक्षा के बाद पैदल विहार करके मैंने सर्वप्रथम इस सिद्धक्षेत्र के दर्शन किए थे अतः हृदय में एक अपूर्व आनन्द की लहर उमड़ रही थी ।

सिद्धक्षेत्र के दर्शन-बन्दन के साथ एक अपूर्व दर्शन और हुए परम पूज्य १०८ श्री चन्द्र-सागरजी महाराज के समाधिस्थल के । इससे दो वर्ष पूर्व जब पू० इन्दुमती माताजी फतेहपुर में थीं मुझे एक दिन स्वप्न में प्रतिभास हुआ कि "तुम गुरुदेव के समाधिस्थल के दर्शन करने क्यों नहीं जाती ?" मेने कहा—कहाँ ? "बड़वानी । चन्द्रसागरजी महाराज के ।" फिर आँखे खुल गईं । प्रातः काल माताजी को अपने स्वप्न के बारे मे बताया ।

माताजी ने कहा—बड़वानी समीप है । उसी दिन से हृदय में गुरुवर्य के समाधिस्थल के दर्शनों की इच्छा प्रबल होती गई । बीच-बीच में शारीरिक विघ्न-बाधाएँ आती रही हैं परन्तु णमो-कार मन्त्र के प्रभाव से कौन से कार्यों की सिद्धि नही होती ! मेरे जीवन में इस महामन्त्र के प्रभाव से अनेक दुःसाध्य से दुःसाध्य कार्य भी सिद्ध हुए हैं । अस्तु,

अब दो वर्ष बाद अपनी भावना साकार हुई, उससे जो अपूर्व आनन्द हुआ वह वचनों से व्यक्त नहीं किया जा सकता है । मिश्री का स्वाद कहने में नहीं आता, खाने में आता है ।

मैंने पूज्य गुरुदेव १०८ श्री चन्द्रसागरजी महाराज के दर्शन सात वर्ष की अवस्था में किए थे । वही दृश्य सम्मुख आ गया । यद्यपि गुरुदेव का विशेष परिचय मुझे नहीं था फिर भी गुरुवर्या माताजी के मुख से उनके तपश्चरण, उपदेश की महिमा सुनती थी तो हृदय गद्गद हो जाता था ।

पू० चन्द्रसागर गुरुदेव इस कलिकाल में अद्वितीय साधु थे। आपका जीवन एक सतत गतिमान नौका के समान था जो इस विश्व रूपी अपार सागर में अपनी गति से बढ़ता रहा। लंगर खुले नहीं कि चल पड़ा और चला तो ऐसा कि अनेक उपसर्गों के तूफान आए, उन सबको अपनी छाती पर झेला। द्वेषियों के ज्वारभाटे उसके मार्ग को एक क्षण भी न रोक सके। संसार के संकट रूपी ओलों की वर्षा उनकी कील तक को विचलित नहीं कर पाई। अनेक लोगों ने किनारे पर खड़े होकर इस नौका को देखा। किसी ने प्रशंसा की तो कोई मुख बिचका कर रह गया। परन्तु गुरुदेव ने न कभी प्रशंसा की अपेक्षा की और न अपवाद की चिन्ता। आप तो प्रशंसा और निन्दा से इतना आगे बढ़ गए थे कि जहां ये सुनाई ही न दे सके। साधु-चर्या विलक्षण होती है, अलौकिक, असामान्य होती है। साधुगण देखते हुए भी न देखने वाले के समान होते हैं और सुनते हुए भी नहीं सुनने वाले के समान होते हैं।

ब्रुवन्नपि न ब्रूते, गच्छन्नपि न गच्छति।
स्थिरीकृतात्मतावस्तु, पश्यन्नपि न पश्यति॥

इस यान को कलिकाल की दुस्सह परीषह रूपी सावन-भादों की काली घटा भी मार्ग च्युत नहीं करा सकी। चन्द्रसागर रूपी यान आगे बढ़ता ही चला गया; जनता विस्मय-विस्फारित नेत्रों से श्रद्धा-खचित हृदय से देखती रह गयी।

ससार विषमस्थल है। यहां रहने वालों में से किसी को इसके प्रति स्पर्द्धा हुई, किसी को ईर्ष्या हुई, कोई मात्सर्य करने लगा तो कोई द्वेष किन्तु इस यान ने मुड़कर नहीं देखा; मुड़कर देखने का अवकाश ही कहां था। इस अदम्य साहसी प्रतिभाशाली वीर ने संसार के तूफानों से बच कर अन्तिम किनारा पार कर लिया। कितने ही भव्य जीव इस यान का आश्रय लेकर दुःख-समुद्र से पार हो गए।

गुरुदेव की महिमा अगम्य थी। किसी प्रकार का लोभ अथवा भय आपका सत्य-पथ से विचलित नहीं कर सका। धर्म और शास्त्र से अनभिज्ञ पुरुषों ने आपको भयभीत करने के लिए न जाने कितने उपद्रव किए परन्तु वे सब उपद्रव भी आपको हिला नहीं पाए। असीम धैर्य के सहारे आपने अपनी पावन चरण रज से अनेक स्थानों को पवित्र किया। आचार-विचार से विचलित होने वालों को हस्तावलम्बन दिया। मरुस्थल जैसे शुष्क प्रदेश को भी अपनी धर्मामृत वृष्टि से धर्मप्लावित किया।

आपकी शान्तमुद्रा के समक्ष विषधर भुजङ्ग निर्विषवत् हो जाता। सिंह, नन्दिनी का पोत बन जाता था। कितनी ही बार आपके सामने सिंह आया और शान्त भाव से चला गया।

आपके नामस्मरण में अपूर्व शक्ति है—जो श्रद्धापूर्वक उच्चारण करता है, उसके कार्य स्वतः सिद्ध हो जाते हैं।

पूज्य आर्यिका इन्दुमतीजी आपके संघ में बहुत दिन रही। वे सुनाती हैं कि संघ अनेक बार, विहार करते समय रात्रि में, डाकुओं से व्याप्त स्थानों पर भी ठहर जाता था परन्तु कभी किसी प्रकार की आपत्ति नहीं आई। गुरुओं की महिमा अगम्य है।

"गुरु की महिमा वरणी न जाय। गुरु नाम जपो मन-वचन-काय।"

गुरुवर चन्द्रसागरजी की महिमा का वर्णन कहां तक किया जाय! वे इस कलिकाल की अन्धकारमय अवस्था में स्थिति प्राप्त प्राणियों को रास्ता दिखाने के लिए सूर्य के तुल्य थे; साधुओं में अद्वितीय रत्न थे, उत्तम निर्भीक वक्ता थे। आपके समक्ष आकर शत्रु भी द्वेष-बुद्धि छोड़ देता था। सिंह के समान पराक्रमी आपको देख कर शत्रु दांतों तले अंगुली दबाने लगते थे।

दिल्ली में यह चर्चा चली कि नग्न दिगम्बर मुनि यहां विहार नहीं कर सकते—आप शान्तिसागरजी महाराज के संघ मे थे। सन् १९३१ की बात है। आप निर्भय होकर शहर में जाने लगे—ज्योंही साहब (अंग्रेज अधिकारी) की कोठी के पास पहुँचे, साहब ने आकर आपके चरण-कमलो में भक्ति पूर्वक नमस्कार किया और कहा—ऐसे साधुओं के मार्ग में रुकावट डालने वाला कौन है।

धन्य है उनकी महिमा, अगम्य है उनका धैर्य! उनके गुणो का कोई क्या वर्णन कर सकता है। उनके लिए हमारा शत-शत वन्दन! ऐसे महामना मुनिराज ने बडवानी सिद्धक्षेत्र पर अपने भौतिक शरीर का त्याग कर स्वर्गश्री को प्राप्त किया। उनकी चरण रज से यह क्षेत्र और भी पवित्र हो गया। उनके समाधिस्थल के दर्शन कर हृदय गद्गद हो गया। यहां से थोड़ी दूर पर एक गुफा है, वहां अतिशययुक्त एक प्राचीन मनोरम प्रतिमा है। पानी के भीतर होकर जाना पड़ता है परन्तु अभी वहां पर कोई नहीं जा सकता।

१५ दिन यहां ठहर कर सिद्धक्षेत्र की वन्दना से आत्मा को पुनीत कर अंजय गाँव होती हुई माताजी अपने संघ सहित पावापुरी (ऊन) सिद्धक्षेत्र में पहुँचीं।

ऊन को देखने से उसकी प्राचीनता ज्ञात होती है। वर्तमान में ऊन में एक मन्दिर नीचे है और दो मन्दिर एक छोटी सी पहाड़ी-टेकड़ी पर हैं। एक मन्दिरजी में शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरहनाथ के खड्गासन विशाल बिम्ब हैं। सुवर्णभद्रादि चार मुनियों की जमीन से निकली हुई पुरातन पादुकाएँ हैं। यहां से सुवर्णभद्रादि चार यतियों ने मुक्तिपद प्राप्त किया है। इस क्षेत्र में अनेक

विशाल जिनबिम्ब खण्डित पड़े हुए हैं। खण्डित जिनप्रतिमाओं सहित जो जिनमन्दिर हैं वे सरकार की देख-रेख में हैं।

किंवदन्ती है कि एक समय यहां के एक राजा ने एक रात्रि मे १०० मन्दिर बनवाने का संकल्प किया था। उसमें ६६ मन्दिर तो बन चुके थे—एक मन्दिर शेष रहा, इतने में किसी ग्रामीण स्त्री ने चक्की चलाना शुरु कर दिया। प्रातः काल हो जाने से एक मन्दिर ऊन (कम, शेष, बाकी) रह जाने से इस ग्राम का नाम ऊन विख्यात हो गया। यहां आज भी खण्डित जिनमन्दिर दृष्टिगोचर होते हैं। एक खण्डित मन्दिर में सर्प की कुण्डली के आकार का एक यंत्र है, उस पर लिखी हुई लिपि स्पष्ट पढने में नही आती है। वहां के जानकारों का कहना है कि इसको समझ लेने पर सम्पूर्ण ज्योतिष का ज्ञान हो जाता है। पुरा काल में ऐसे महान् मांत्रिक-तांत्रिक साधक होते थे; उनके गूढ़ रहस्य को जानना आज कष्ट साध्य है। ऐसे विशाल मन्दिर और यंत्र बनना भी आज दुर्लभ है। जैन समाज मे आज घोर अन्धकार व्याप्त है। अपने तीर्थों एवं धर्मायतनो की रक्षा का विशेष लक्ष्य नही है।

ऊन से खरगौन, बड़वाह होते हुए सघ सनावद पहुँचा। वहां से सिद्धवरकूट। सिद्धवरकूट से दो चक्रवर्तियो और दस कामदेवो ने मुक्तिपद प्राप्त किया है। इसलिये यह सिद्धक्षेत्र है। इसके चारों तरफ रेवा नदी है। यहाँ पर विशाल एवं भव्य जिनमन्दिर है, विशाल-विशाल खड्गासन और पद्मासन १५०० वर्ष प्राचीन जिनबिम्ब हैं। कुछ दूरी पर एक टीले पर एक जगह यक्ष-यक्षिणी की एक खण्डित मूर्ति है जिसके मस्तक पर जिनबिम्ब है। मन्दिरजी का भी कुछ भाग खण्डित पड़ा है। इन स्थलों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि किसी समय जैन धर्म व्यापक था।

तेईसवाँ वर्षायोग :

कुछ दिन यहां ठहर कर संघ सनावद लौटा। विक्रम सवत् २०२२ का वर्षायोग सनावद में सम्पन्न हुआ। सनावद मे तीन विशाल जिनमन्दिर हैं। श्रावकों के लगभग १०० घर हैं। सभी श्रावक धर्मनिष्ठ हैं। सनावद मे आर्यिका संघ द्वारा धर्म की विशेष प्रभावना हुई। सनावद से सघ खण्डवा आया। यहां पर विरोधी पक्ष से वाद-विवाद हुआ; धर्म की विशेष प्रभावना हुई। सनावद के श्रावकगण संघ को मुक्तागिरिजी ले गये। सनावद के नवयुवक मण्डल के विमलभाई, मोतीभाई, श्रीचन्द भाई आदि अनेक श्रावक-श्राविकाएँ संघ के साथ थे। कुल चालीस का संघ था। मुक्तागिरिजी पहुँचने के लिए सतपुड़ा पहाड़ को लांघना पड़ता है। पहाड़ी रास्ता अत्यन्त रमणीय तो है परन्तु विकट भी। दस दिनों की यात्रा के बाद मुक्तागिरि पहुँचे।

मुक्तागिरि का अपर नाम मेढ़गिरि है। यहा से साढे तीन करोड़ मुनियों ने अविनाशी अचल पद प्राप्त किया है। महापुरुषों की चरण रज से स्पर्शित होने से यह क्षेत्र अतिपावन

है। यहां एक मन्दिर पर्वत के नीचे है व ५८ मन्दिर पर्वत के ऊपर हैं जहां विशाल-विशाल प्राचीन जिनप्रतिमाएं हैं एवं जिनेन्द्र के चरणों की स्थापना है। पर्वत से पानी का एक नाला गिरता है जिससे पर्वत ऐसा सुशोभित होता है मानो गंगानदी के प्रपात से युक्त हिमवान पर्वत ही हो। वहां देवों द्वारा प्रतिदिन केशर-कुसुम की वृष्टि होती है। स्थल-स्थल पर सुगन्धित पुष्पों के वृक्ष हैं। पुष्प-सौरभ से युक्त जल मिश्रित शीतल वायु के मन्द-मन्द सचार से दर्शकों की थकावट दूर हो जाती है एवं तत्रप्रसूत पवित्र भावनाओं से कर्म कालिमा नष्ट हो जाती है। उस पवित्र गिरिवर के दर्शनोपरान्त नीचे आने की भावना नही होती। भूख-प्यास की बाधा नहीं सताती। वहाँ की वायु के स्पर्श से अनेक प्रकार के शारीरिक रोग नष्ट हो जाते है।

अच्चलपुरवरणयरे, ईसाणे भायमेढ़गिरिसिहरे।
आहुट्ठयकोडीओ, णिव्वाणगया णमो तेसिं॥

इस क्षेत्र की महिमा अतुल है। मुक्तागिरि से ११ मील और परतवाड़ा से तीन मील दूर अचलपुर है। यहाँ पर सात आठ विशाल मन्दिर हैं जिनमे १५०० वर्ष प्राचीन अनेक जिनबिम्ब हैं।

यहाँ से विहार कर परतवाड़ा के दर्शन करते हुए संघ आकोट पहुँचा। यहां पर एक मन्दिर में माणिक स्वामी की मूर्ति है। जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि यह प्रतिमा गर्दन से खण्डित हो गई थी परन्तु देवकृत चमत्कार से प्रतिमा की गर्दन अपने आप जुड़ गई। इस समय भी जोड़ का चिन्ह दिखाई देता है। यह प्रतिमा पद्मासनस्थ है।

माणिक स्वामी के दर्शन कर संघ आकोला पहुँचा। यहाँ पर तीन प्राचीन विशाल जिनमन्दिर हैं; नगर भी प्राचीन है, श्रावकों के अनेक घर हैं। यहाँ से पन्द्रह मील दूरी पर अतिशय-क्षेत्र बाका ग्राम है जहाँ भगवान आदिनाथ की अत्यन्त मनमोहक मूर्ति है जिसके दर्शन से अतीव शान्ति प्राप्त होती है।

यहां से खासगांव, मल्कापुर होते हुए संघ जम्बुई ग्राम पहुँचा। यहां एक मन्दिर है, इसका कुछ भाग पत्थर आदि से ढका हुआ है। तत्रस्थ मानव कहते थे कि यह एक अतिशय क्षेत्र है। यहां पर माणिक एवं रत्नों की प्रतिमा है। कुछ कारणवश यहां के देव के अतिशय से द्वार बन्द हो गया है जो बहुत प्रयत्नों के बावजूद भी नहीं खुलता है।

यहां से विहार कर आर्यिका संघ नहरी-जलगांव के दर्शन करता हुआ धरणगांव पहुँचा। यहां के प्राचीन जिनमन्दिर में भगवान पार्श्वनाथ की विशाल मूर्ति है। जिस पर कर्नाटक भाषा में लेख अंकित है, स्पष्ट पढ़ने में नही आता है। मूर्ति अत्यन्त मनोज्ञ है। यहां से पारोला, धुलिया, कुसुवा के जिनमन्दिरों के दर्शन करते हुए संघ माँगीतुंगी पहुँचा। माँगीतुंगी सिद्धक्षेत्र है—

राम हणू सुग्रीव सुडील, गय-गवाख्य नील महानील ।
कोडि निन्याणव मुक्तिपयान, तुंगीगिरि बन्दौं धरि ध्यान ।।

इस पर्वत से राम, हनुमान, सुग्रीव, सुडील, गय-गवाख्य, नील और महानील आदि ९९ करोड़ मुनियों ने मोक्षपद प्राप्त किया है। यही श्रीकृष्ण का भी दाह संस्कार हुआ है। यह क्षेत्र अत्यन्त रमणीय है। नीचे तीन मन्दिर हैं। सुन्दर मानस्तम्भ है। दो मील दूर पर्वत है। पर्वत पर गुफा है, गुफा मे मुनिराजों की प्रतिमाएँ है जिनके हाथ में माला, पिच्छी और कमण्डलु है। आजकल विद्वान् कहते हैं कि मुनियों की प्रतिमाएँ नहीं होती हैं उनको माँगीतुंगी जाकर देखना चाहिए। यहाँ पर मुनियों की प्रतिमाएं बनी हुई हैं। पर्वत की ओर मुख करती हुई बलभद्र की प्रतिमा है। कहा जाता है कि श्रीकृष्ण के दाह-संस्कार के बाद बलभद्र ने दिगम्बर दीक्षा ग्रहण की थी। जब आहार हेतु बलभद्र मुनिराज नगर में पधारते थे तब नागरिक स्त्रियां बलभद्रजी के सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो जाती थी अतः बलभद्र मुनिराज ने नगर में जाना छोड़ दिया और नगर की तरफ पीठ एवं पर्वत की ओर मुख करके खड़े हो गए। अभी तक उनका बिम्ब पीठ किए हुए है। ऊपर कुण्ड है। जन-श्रुति है कि यहां पर श्रीकृष्ण का दाह-संस्कार हुआ था। तुंगी पर्वत पर राम, हनुमान आदि की मूर्तियां है। पर्वत की शोभा अवर्णनीय है। पुरुषोत्तम रामचन्द्र की चरण-रज से पवित्र तुंगी के दर्शन से भव्यों की कर्म-कालिमा नष्ट हो जाती है। यहां के निवासी कहते हैं कि पर्वतों के शिखरों पर भी चरण चिह्न है परन्तु वहां पर जाना अत्यन्त कठिन है।

माँगीतुंगी सिद्धक्षेत्र की वन्दना कर शटाना के दर्शन करता हुआ संघ चादोड़ पहुँचा। यहाँ एक छोटे से पर्वत पर प्राचीन विशाल मन्दिर है जिसमें पार्श्वनाथ भगवान का मनोज्ञ बिम्ब है। इस पर अन्य मतावलम्बी तैल-सिन्दूर लगाते है। मन्दिरजी के द्वार पर यक्ष-यक्षिणी की प्रतिकृति है। मन्दिर का परिवेश भी सुरम्य है। चारों ओर सुगन्धित पुष्पों के वृक्ष हैं शीतल मन्द सुगन्धित पवन-प्रवाह से सारी थकावट दूर हो जाती है तथा परम आह्लाद उत्पन्न होता है।

❖

८

कुंथगिरिसिहरे

चाँदोड़ से आर्यिका संघ सिद्धक्षेत्र गजपंथा पहुँचा। नौ बलभद्रों में से रामचन्द्र और श्रीकृष्ण के भाई बलदेव को छोड़ कर सात बलभद्रों सहित आठ करोड़ मुनियों ने मुक्तिपद प्राप्त किया है—

> सत्तेव य बलभद्दा जदुवरणरिदाण अट्ठकोडीओ।
> गजपंथे गिरिसिहरे, णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥

पर्वत से दो मील दूर पर एक मन्दिर है। पर्वत के नीचे एक मन्दिर है, पर्वत पर अतिशय शोभा से युक्त अनेक मन्दिर हैं। सातों बलभद्रों के चरण-चिह्न हैं तथा पार्श्वनाथ भगवान का विशाल बिम्ब है। शासन रक्षक देव-देवियों सहित जिनप्रतिमाएँ सुशोभित हैं। इनके दर्शन से अकृत्रिम जिनमन्दिरों का स्मरण हो आता है। पर्वत पर चम्पा आदि सुगन्धित पुष्प-वृक्षों से गिरे हुए फूलों से ऐसा प्रतीत होता है मानो देवकृत पुष्पवृष्टि हो।

उस समय आचार्यश्री १०८ महावीरकीर्तिजी महाराज विशाल संघ सहित क्षेत्र में विराजमान थे। सिद्धक्षेत्र वन्दन एवं गुरुवर्य के दर्शन-वन्दन से आत्मा विभोर हो उठी। जिस प्रकार मेघों की गर्जना सुन कर मयूर नृत्य करने लगता है उसी प्रकार गुरुवचन रूपी मेघ-घोष सुन कर मन मयूर नाचने लगा—

> "दर्शनेन जिनेन्द्राणां, साधूनां वन्दनेन च।
> न चिरं तिष्ठते पापं, छिद्रहस्ते यथोदकम् ॥"

जिस प्रकार छिद्रित हाथों में पानी स्थिर नहीं रह सकता है उसी प्रकार जिनेन्द्र भगवान के दर्शन से एवं साधुओं की बन्दना से पाप स्थिर नहीं रह सकता है। शिष्यों के प्रति आचार्यश्री का परम वात्सल्य भाव था। गुरुवर के वात्सल्य भाव को प्राप्त कर हृदय गद्‌गद हो गया। पर्वत पर महान् तपस्वी गुरुदेव श्री महावीरकीर्तिजी महाराज को सर्प ने काट लिया परन्तु पार्श्वनाथ भगवान के अभिषेक के गन्धोदक से सर्प का विष शीघ्र उतर गया।

गजपंथा में गुरुदेव के सान्निध्य मे आर्यिका संघ एक माह तक रहा। महाराजश्री के साथ में चर्चा करने से कठिन विषय भी बहुत सरल हो जाता था। गजपंथा से विहार कर नासिक, लासनगाँव, गोंदेगाव, कोपरगाव, येवका, राजगाँव आदि स्थानों के जिनालयों के दर्शन करते हुए संघ प्रात: स्मरणीय परम तपस्वी १०८ श्री चन्द्रसागरजी महाराज, श्रेयांससागरजी महाराज एव मल्लि-सागरजी महाराज के जन्म से पवित्र नगर नाँदगाँव पहुँचा। यहाँ एक विशाल मन्दिर है। प्रत्येक श्रावक के घर में चतुर्थकालीन पद्धति के अनुसार चैत्यालय है। मन्दिरजी में अतिशय चमत्कारी जिनबिम्ब है।

नाँदगाँव से वाकला, वोलठापा, चापानेर, कलड, हथनूर आदि गाँवों के जिनमन्दिरों के दर्शन करते हुए एवं धर्मोपदेश द्वारा भव्यजीवों को धर्मामृत का पान कराते हुए पूज्य माताजी इन्दुमतीजो संघस्थ आर्यिकाओं एवं अन्य श्रावक-श्राविकाओं के समुदाय सहित अतिशय क्षेत्र एलोरा पहुँचा। यहा पर्वत पर पार्श्वनाथ भगवान का विशाल बिम्ब है। अनेक गुफाएँ हैं जिनमें विशाल-विशाल जिनबिम्ब हैं। कितने ही बिम्ब खण्डित है, कितने ही सुरक्षित है। शासनदेवों की भी विशाल विशाल प्रतिकृतिया हैं।

एक समय तो वह था जब धर्मनिष्ठ महानुभावों ने विशाल मन्दिर, जिनबिम्ब और गुफाओं का निर्माण कर अपने द्रव्य का सदुपयोग किया था। आज की समाज नवीन निर्माण तो दूर रहा, पुरातनों की रक्षा करने में भी असमर्थ हो रही है। यहां पर बौद्ध, वैष्णव आदि मतावलम्बियों की भी गुफायें हैं। एक पार्श्वनाथ भगवान के मन्दिर के सिवाय सारे जिनमन्दिर राज्य सरकार के अधिकार में हैं। यहाँ की प्राकृतिक शोभा अद्भुत है; पर्वत एवं गुफाओं की रमणीयता दर्शनीय है। निर्मल जल का प्रपात है, जल बड़े वेग से बहता है। पूज्य समन्तभद्र महाराज के द्वारा स्थापित गुरुकुल है; यहाँ अनेक लड़के विद्यार्जन करते हैं।

एलोरा से कुछ दूर पर कसावखेड़ा नामक गाँव है। गुरुवर्या परम पूज्य इन्दुमती माताजी ने विक्रम संवत् २००० की आसोज शुक्ला एकादशी को क्षुल्लिका दीक्षा यहीं ग्रहण की थी।

चौबीसवाँ वर्षायोग :

कसावखेड़ा से औरंगाबाद गए। विक्रम संवत् २०२३ का वर्षायोग यहां सम्पन्न किया। यहां पर चार प्राचीन मन्दिर हैं और एक मन्दिर नया बना है। औरंगाबाद एक समय औरंगजेब की

राजधानी रहा था। यहां से दो मील पर है बेगमपुरा—बेगमपुरा से दो मील की दूरी पर एक पर्वत है जो नेमगिरि नाम से ख्यात है। पर्वत पर भगवान नेमिनाथ का जिनबिम्ब है। एक मन्दिर भी है, कहते हैं कि यह भी कभी जिनमन्दिर था; अभी भी कुछ चिन्ह जैनियों के हैं।

चातुर्मास के बाद वालूज होते हुए अतिशय क्षेत्र कचनेर पहुँचे। यहां चिन्तामणि पार्श्वनाथ भगवान की सप्तफणवाली मूर्ति है। किंवदन्ती है कि एक बार इस प्रतिमाजी की गर्दन धड़ से अलग हो गई थी। मूर्ति के खण्डित हो जाने से सारी जनता में शोक-सन्ताप छा गया। समाज ने निर्णय करके मूर्ति को जलाशय मे विसर्जित करने का निश्चय किया। एकरात्रि में विस्मयकारी बात हुई। किसी दैवी शक्ति ने एक श्राविका को स्वप्न दिया कि इस जिनबिम्ब को सात दिन तक घृत और चीनी में रख दो और निरन्तर अखण्ड स्तुति-पाठ करो। स्वप्न के अनुसार श्रावकों ने जिनप्रतिमाजी (खण्डित) को घृत और चीनी में रख कर एक आलमारी में रख दिया। सातवें दिन, सबको आश्चर्य पैदा करने वाली बात हुई; कोठरी और आलमारी के ताले स्वतः टूट गए। प्रतिमाजी की गर्दन जुड़ गई। मूर्ति पूर्ववत् दिखाई देने लगी। इस चमत्कार के प्रत्यक्ष दर्शन कर जय-जयकार की ध्वनि से आकाश गूंज उठा। आज भी इस प्रतिमा का अतिशय है। श्रद्धालु भक्तो की कामना पूर्ण होती है।

कचनेर से अतिशय क्षेत्र पैठण पहुँचे—जहां पर मुनिसुव्रतनाथ का विशाल बिम्ब है। निर्वाण-भक्ति में लिखा है—

पासं तह अहिणंदण, णायद्दहि मंगलाउरे वंदे।
अस्सारम्भे पट्ठणि मुणिसुव्वओ तहेव वंदामि॥

इससे यह प्राचीन अतिशय क्षेत्र प्रसिद्ध है। यहाँ पर पुरातन क्षेत्रपाल है। यहां के मानस्तम्भ व जिनमन्दिर की शोभा वचनातीत है।

यहां से टाकली, ढुढराई, गहराई, बीड़ होते हुए देशभूषण कुलभूषण मुनिद्वय की निर्वाण स्थली कुन्थलगिरि पहुँचे।

कुन्थलगिरि सिद्धक्षेत्र :

कुन्थलगिरि दक्षिण भारत का अद्वितीय परम पावन सिद्धक्षेत्र है। यद्यपि पर्वत छोटा है तथापि अत्यन्त रमणीय है। दूसरे शिखर पर रमणीय शिखर एवं ध्वजा से सुशोभित नव मन्दिर हैं। वहां के मुख्य मन्दिर में कुलभूषण और देशभूषण भगवान के मनोज्ञ खड्गासन बिम्ब एवं चरण चिन्ह हैं, जिनके दर्शन से मन विभोर हो जाता है। आप दोनों ने युवावस्था में ही जिनमुद्रा ग्रहण

की थी। राम और लक्ष्मण ने आप पर दैत्य द्वारा किए जाने वाले उपसर्ग को दूर किया था। यहां से एक मील दूर पर राम कुण्ड है। जनश्रुति है कि राम ने यहां चातुर्मास किया था, अन्य मतावलम्बी भी यहां आते हैं।

जैन ग्रन्थों में वर्णन है कि क्षेमङ्कर राजा की रानी विमला के गर्भ से कुलभूषण और देशभूषण नाम के युगल पुत्र उत्पन्न हुए थे। पाँच वर्ष की अवस्था में दोनों राजपुत्र विद्यार्जन हेतु गुरुकुल में चले गए। दोनों भाइयो में इतना प्रेम था मानो शरीर दो हैं और आत्मा एक ही है। विद्याध्ययन समाप्ति पर दोनों भाई अपनी राजधानी लौट रहे थे। समस्त जनता राजकुमारों को देखने के लिए उत्सुक हो रही थी। मङ्गल वादित्र बज रहे थे। इतने में दोनों भाई परस्पर युद्ध करने लगे। अकस्मात् दोनों भाइयो में सघर्ष होता देखकर जनता विस्मय में पड़ गई। मन्त्रियो ने सोचा—कलह के दो ही कारण हो सकते हैं—स्त्री और राज्य। राज्य तो अभी राजा के हाथ में है; हो सकता है किसी रमणी पर मुग्ध हुए हों; इसी कारण इनमें वैमनस्यता आई है। साहस करके एक वृद्ध मत्री ने पूछा—हे राजपुत्रो! आप दोनों किस कारण से परस्पर युद्ध कर रहे हैं? राजपुत्र बोले—हम दोनों मे से एक की मृत्यु हुए बिना दूसरे को शान्ति नहीं मिलेगी। मत्री ने कहा—क्यों?

एक राजपुत्र बोला—देखो! उस राजमहल पर पञ्चरङ्गी साड़ी पहने और हाथ में रत्नों का दीपक लिए जो युवती कन्या खड़ी है, उसे पहले मैंने देखा, वह मेरी है।

दूसरा राजपुत्र बोल उठा—उस कन्या को पहले मैंने देखा इसलिए वह मेरी है। इन दोनो की बात सुन कर मंत्री आश्चर्यपूर्वक कहने लगा—हे राजपुत्रों! जिसके लिए आप एक दूसरे का घात करना चाहते हैं वह विमला रानी की कुक्षि से समुत्पन्न आपकी सहोदरा है। गुरुकुल में विद्यार्जन करके भी आप कामविजयी नहीं बने, आपकी यह अक्षरी विद्या निस्सार है। जिस प्रकार गारुड़ी के मंत्र से सर्प का विष उतर जाता है उसी प्रकार मंत्री के वचनों से राजपुत्रों का काम-ज्वर उतर गया। वे विचार करने लगे—अहो! काम के वशीभूत हुआ प्राणी हेयोपादेय के विचार से शून्य हो जाता है। ऐसा विचार कर तत्काल संसार शरीर और भोगों से विरक्त हो दोनों ने दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली तथा सूर्य के प्रकाश से रहित भयानक निर्जन दण्डकारण्य में स्थित वंशस्थल गिरि पर जाकर घोर तपश्चरण करने लगे। तब पूर्व भव की शत्रुता का बदला लेने के लिए कोई दैत्य आकर मुनि द्वय पर घोर उपसर्ग करने लगा। उस दैत्य की घोर गर्जना से पर्वतीय प्रदेश में स्थित सभी नागरिक भयभीत होकर संध्याकाल के समय त्राण हेतु इधर-उधर भागने लगे। उसी समय वहां पर सीता सहित राम और लक्ष्मण आकर एक वृक्ष के नीचे बैठे हुए थे। उन्होंने नागरिकों से पूछा कि 'हे नागरिकों! इस समय कहां जा रहे हो?' नागरिकों ने उत्तर दिया—'महाशय! अर्धरात्रि के समय इस पर्वत पर भयानक गर्जना व अट्टहास होते हैं जिसे सुनकर गर्भिणी स्त्रियों का गर्भपात हो

जाता है अतः हम लोग रात्रि में अन्य स्थान पर जाकर विश्राम करते हैं।' नागरिकों की बात सुन कर राम लक्ष्मण ने निश्चय किया कि अवश्य ही पर्वत पर किसी महापुरुष पर घोर उपसर्ग हो रहा है। ऐसा विचार कर राम लक्ष्मण सीता सहित पर्वत पर पहुँचे। वहां पर लावण्य की खान, आत्म-ध्यान में निरत तरुण मुनि युगल को देख कर उनका शरीर रोमांचित हो उठा; आंखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। वे गद्गद स्वर से स्तुति करने लगे—

मिथ्यात्वमन्मथतमोहरणोष्णरश्मिं,
संसारतापपवनाशनवैनतेयम्।
स्वर्गापवर्गसुखदं हतमोहतन्द्रं,
भक्त्या नमामि तव पादयुगं जिनेश ॥

तुभ्यं नमोऽस्तु भवनाशक हे जिनेश !
तुभ्यं नमोऽस्तु भवनीरधितारकेश।
तुभ्यं नमोऽस्तु भवतापविनाशकाय,
तुभ्यं नमोऽस्तु भवभूरुहकुञ्जराय ॥

इस प्रकार स्तुति कर परम भक्ति से सबने मुनिराज के चरणारविन्द में नमस्कार किया। जलाशय के जल से पाद-प्रक्षालन कर चन्दनलेप किया। राम ने वीणा बजाई; सीता ने नृत्य किया। अर्धरात्रि होने पर भयानक अट्टहास होने लगा, पत्थरो की वर्षा होने लगी, रुण्ड मुण्ड लेकर दैत्य ताण्डव करने लगा। उसे देख कर सीता भयभीत हुई। भयभीत सीता को मुनिराज के चरण सान्निध्य मे बैठा कर आप राक्षस के पास गए। चरम शरीरी राम के प्रताप से दैत्य भाग गया और मुनिराज को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। चतुर्निकाय के देवों ने केवलज्ञान की पूजा की। कुछ दिन भूतल पर विहार कर धर्मोपदेश देते हुए पुनः कुन्थलगिरि पर्वत पर आए और अघातिया कर्मों का नाश कर मुक्तिपद प्राप्त किया—

वंसत्थलम्मि णयरे पच्छिमभायम्मि कुंथगिरिसिहरे।
कुलदेसभूषणमुणी, णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥

परम पावन कुलभूषण देशभूषण मुनिराज के सिद्धक्षेत्र कुन्थलगिरि पर परम पूज्य प्रातः स्मरणीय, योगिराज, पंचम काल के चारित्र चक्रवर्ती १०८ शान्तिसागरजी महाराज ने ३६ दिन की यम सल्लेखना पूर्वक णमोकार मंत्र का उच्चारण करते हुए परम शान्त मुद्रा से स्वर्गश्री प्राप्त की है। उस परम तपस्वी के चरणरज से पवित्र कुन्थलगिरि की शोभा और भी अधिक बढ़ गई है।

चारित्र चक्रवर्ती परम पूज्य १०८ आचार्यश्री शान्तिसागरजी महाराज :

आचार्यश्री का जन्म दक्षिण प्रान्त स्थित भोजग्राम के श्रीमान् भीमगौड़ा पाटील की सहधर्मिणी सत्यवती की कुक्षि से आषाढ़ कृष्णा ६ को विक्रम संवत् १९२९ मे हुआ था। आपका जन्म-नाम सातगौड़ा था। शैशवावस्था से ही आप धार्मिक प्रकृति के थे। धर्मचर्या एवं धर्मचर्चा में आपकी बहुत रुचि थी। प्रचलित प्रथा के अनुसार नौ वर्ष की छोटी उम्र में ही आपका पाणिग्रहण संस्कार छह बर्ष की बालिका के साथ कर दिया गया था परन्तु यह बालवधू छह माह बाद ही स्वर्ग सिधार गई। यह विवाह क्या था—एक प्रकार की बालक्रीड़ा थी जिसमें वर-वधू दोनों को ही यह ज्ञान नहीं था कि पाणिग्रहण क्या होता है। माता-पिता ने कुछ समय बाद पुनर्विवाह करने का आग्रह भी किया

परन्तु सातगौड़ा ने वनिता-बेड़ी से बँधना उपयुक्त नहीं समझा और विवाह-चर्चा से ही पीछा छुड़ाने के लिए आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर लिया। यद्यपि आप माता-पिता के आग्रह से घर में ही रहते थे, व्यवसाय भी करते थे परन्तु आपकी रुचि अध्यात्म में ही थी।

पिता के स्वर्गारोहण के बाद विक्रम संवत् १९७० में ४१ वर्ष की उम्र में आपने क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की। ७ वर्ष बाद विक्रम संवत् १९७७ फाल्गुन शुक्ला त्रयोदशी के दिन जिन-दीक्षा ग्रहण की और श्रुतिमधुर शान्तिसागर के नाम से जगद्विख्यात हो गए। आपकी निर्मल चर्या एवं सत्संग से प्रभावित होकर अनेक मुमुक्षुओं ने मुनि-दीक्षा ग्रहण कर आपकी शिष्यवृत्ति स्वीकार की। अनेक ने क्षुल्लक, ऐलक, क्षुल्लिका, आर्यिका के व्रत अंगीकार किए। कई ब्रह्मचारी बने। अनेक स्त्रियों ने व्रत अंगीकार कर पराधीन स्त्री पर्याय को पवित्र किया।

सर्प, सिंह जैसे क्रूर प्राणियों ने भी आपके सामने क्रूरता का परित्याग कर दिया। एक बार आपके शरीर पर एक स्थूलकाय विषधर चढ़ गया, बहुत समय तक शरीर से लिपटा रहा परन्तु आपको ध्यान से विचलित नहीं कर सका। सिंह भी आपको अनेक बार मिला परन्तु सदैव विनीत भाव से लौट गया। परम तपस्वी १०८ आचार्यश्री वीरसागरजी; प्रखर वक्ता, निर्भीक मुनिश्री चन्द्रसागरजी; संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश के श्रेष्ठ विद्वान् श्री सुधर्मसागरजी महाराज, श्री कुन्थुसागरजी श्री पायसागरजी, श्री नेमिसागरजी, अनेक गुरुकुलों के संस्थापक मुनिराज श्री समन्तभद्रजी; आपके ज्येष्ठ भ्राता मुनिश्री वर्धमानसागर महाराज आदि अनेक भेद विज्ञानियों ने आप सदृश गुरु को पाकर अपनी मनुष्य पर्याय को सार्थक किया है।

आपके जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आपने भारत देश के अनेक प्रान्तों में निर्भीकतापूर्वक पैदल विहार किया। श्रवणबेलगोला से लेकर सम्मेदशिखरजी तक आपने भ्रमण किया तथा मिथ्यात्व रूपी अन्धकार का नाश किया। जिस समय आपने दिल्ली में चातुर्मास किया था, उस समय वहां नग्न दिगम्बर साधुओं का अव्याहतविहार वर्जित था। अतः सरकारी नियमानुसार, चर्या के लिए जाते समय श्रावकगण आपको घेर कर चलते थे। जब आपको यह तथ्य ज्ञात हुआ तब एक दिन आप श्रावकों के आने से पूर्व ही शुद्धि करके शहर में आने लगे, सर्वत्र हलचल मच गई। लोग कहने लगे कि सरकारी कानून की अवहेलना करने से आपत्ति आने की सम्भावना है। मेरु के समान अचल, निर्भीक गुरुदेव चर्या करके वापस आ गए और श्रावकों को कहने लगे—भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। मुनि सिंह सदृश निर्भय विहार करता है। दिगम्बर साधुओं पर कोई रोक-टोक नहीं हो सकती।

पूज्य आचार्यश्री के मुखारविन्द से उत्साहवर्द्धक शब्द सुन कर सबका हृदय गद्गद हो गया। दूसरे दिन आपने दिल्ली शहर के मुख्य-मुख्य स्थानों पर जाकर फोटो खिंचवाये। जब लोगों

ने इस सम्बन्ध में पूछा तो आपका उत्तर था—इन फोटो से भावी मुनियों के लिए प्रमाण उपस्थित रहेंगे; वे निर्भयता पूर्वक विहार कर सकेंगे। आपके दूरदर्शितापूर्ण वचनों को सुन कर उपस्थित श्रावक समुदाय को बहुत हर्ष हुआ और सबने आपकी धर्म-संरक्षण प्रवृत्ति की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

आचार्यश्री ने अपने जीवन मे अनेक धर्म-कार्य किए। १८ महापुरुषों को दिगम्बर दीक्षा प्रदान की, अनेक महिलाओं को आर्यिका पद प्रदान किया, अनेक भव्यों ने ऐलक, क्षुल्लक, ब्रह्मचारी पद के व्रत ग्रहण किए। जिनके दर्शन तक दुर्लभ थे ऐसे धवलादि ग्रन्थों को ताम्रपत्र पर खुदवा कर आपने जिनवाणीसंरक्षण का अभूतपूर्व कार्य किया; गुरुकुलो की स्थापना कर धार्मिक शिक्षा का वातावरण तैयार किया; इस प्रकार स्व-कल्याण के साथ-साथ जनता का भी कल्याण किया। अन्त में, ३६ दिन की यम-सल्लेखना व्रत के बाद १८ सितम्बर १९५५ को निर्भयतापूर्वक हँसते-हँसते भौतिक शरीर का परित्याग कर कुन्थलगिरि सिद्धक्षेत्र से स्वर्गश्री प्राप्त की।

अपने इस जाज्वल्यमान इंगिनीमरण से (आचार्यश्री ने) केवल जैन समाज का ही नहीं अपितु समस्त भारतवर्ष का मस्तक उन्नत किया तथा जड़ पर चेतन के विजय की ध्वजा फहरायी। ऐसी अजेय, अतिमानव-आत्मा की पुण्य स्मृति में करोड़ों भक्त नर-नारियो के साथ हार्दिक भक्तिपूर्वक नतमस्तक होकर विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं और आपके गुणों का चिन्तन कर आनन्दविभोर हो जाते है। गुरुवर ने हम पर—मानव समाज पर असीम उपकार किए है; ऐसे गुरुवर के महोपकारों का वर्णन कहाँ तक किया जाय।

आचार्यश्री शान्तिसागरजी महाराज प्राणी-मात्र के प्रति करुणाशील थे, प्रेम, शान्ति, अहिंसा, सत्य और अपरिग्रह के उच्च आदर्शों की ध्वजा को उन्नत करने वाले विख्यात सन्त थे, सत्यान्वेषियों के वे सच्चे मार्गदर्शक थे।

प्रातर्नमामि तव पादयुगं पवित्रं,
मध्याह्नि नाथ ! तव संस्तवनं करोमि।
सायं च ते मधुरकीर्तनमाचरामि,
नित्यं स्मरामि तव देव ! पवित्र नाम॥

श्रद्धा से नतमस्तक होकर केवल नमस्कार के सिवाय और हमारे पास क्या है।

कुन्थलगिरि पर आचार्यश्री की समाधि के बाद नातेपूते निवासी उनके अनन्य भक्त गौतम भाई ने १८ फुट ऊँची बाहुबलि स्वामी की मनोज्ञ मूर्ति प्रतिष्ठित करवाई है जो बहुत दूर से ही सबका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करती है। समवसरण की रचना भी क्षेत्र का सौन्दर्य बढ़ाने वाली है।

इस क्षेत्र की पवित्रता और अतिशयता प्रभावशाली है। क्षेत्र के चारों ओर सरकार के आदेश से हिंसा करना निषिद्ध है।

१६४७ ई० में रजाकारों के अत्याचारों के भय से क्षेत्ररक्षकों ने क्षेत्र की सुरक्षा हेतु मन्दिरजी में ताले लगा दिए तथा अपनी सुरक्षा हेतु लोग क्षेत्र छोड़ कर दूर स्थानों में चले गए। लेकिन क्षेत्र के विशेष अनुरागी श्री वीड़कर गुरुजी अपने प्राण हथेली पर रख कर अकेले ही मन्दिर की रखवाली करने लगे।

अत्याचारियों ने उन्हें शस्त्र का भय दिखाया, ताला तोड़कर उन्होंने मन्दिर मे प्रवेश किया परन्तु वीतराग जिनेन्द्र की धीर, गम्भीर, शान्त मुद्रा देख कर वे भी शान्त हो गए और नमस्कार कर चले गए। इस प्रकार यह क्षेत्र सिद्धक्षेत्र भी है, अतिशय क्षेत्र भी है और समाधि-सम्राट पूज्य शान्तिसागरजी महाराज का समाधि स्थल भी।

ऐसे परम पवित्र क्षेत्र के दर्शन से अपार आनन्द का अनुभव हुआ। जिस समय आर्यिका संघ कुन्थलगिरि पहुँचा उससमय वहा आचार्यश्री १०८ विमलसागरजी महाराज संघ सहित विराज रहे थे। उनके पुनीत दर्शनों का एवं उपदेश-श्रवण का लाभ मिला। वहां से विहार कर संघ ने सोलापुर की ओर प्रस्थान किया।

सोलापुर पहुँचने के दो मार्ग है—एक बार्शी दूसरा उस्मानाबाद। उस्मानाबाद से २/४ मील पर पहाड़ है। पहाड़ मे ही काटी हुई बहुत सी प्राचीन गुफाएँ हैं। वह 'तेरलेणी' नाम से प्रसिद्ध है। कहते हैं यहां भगवान महावीर का समोशरण आया था।

'तेरलेणी' में मन्दिर के शिखर का काम ईंटों से किया गया है। इसकी विशेषता यह है कि इसकी ईंट पानी में डालने के बाद भी डूबती नही। काष्ठ खण्ड की तरह पानी पर अभी भी तैर लेती है। गुफा के तलघर में पानी का कुण्ड है। वहां से निकल कर कुन्थलगिरि पहुँचा जा सकता है। ऐसी किंवदन्ती है। बार्शी में भी जिनमन्दिर है।

कुन्थलगिरि से ८० मील पर सोलापुर शहर है जहाँ छह जिनमन्दिर एवं जैनों की काफी संख्या है। बोर्डिंग, गुरुकुल, श्राविकाश्रम, ग्रन्थमाला आदि संस्थाएँ हैं। पूज्यश्री शान्तिसागरजी महाराज के परम भक्त शिष्य श्री हीराचन्द नेमचन्द नाम से अस्पताल, नेत्र चिकित्सालय, ग्रन्थमाला, वाचनालय चल रहे हैं। पूज्यश्री समन्तभद्रजी महाराज की प्रेरणा से ज्ञान-दान केन्द्र खुले हुए हैं जिनमें गुरुकुल प्रणाली से शिक्षा-दीक्षा होती है। व्यावहारिक शिक्षा के साथ-साथ धर्म और अध्यात्म की शिक्षा भी दी जाती है, तात्विक ग्रन्थों का अध्ययन कराया जाता है और त्यागी-जीवन के संस्कार-वपन का कार्य सम्यक् रीति से होता है। ऐसी संस्थाओं की शाखायें आस-पास के स्थानों में भी खुली हैं।

सहस्रों विद्यार्थी ज्ञानार्जन करके सुख-सन्तोष पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करते हुए आत्मकल्याण हेतु प्रयत्नशील हैं। 'अनेकान्त सोसायटी' के तत्वावधान में बारामती, सोलापुर, जयसिंहपुर आदि स्थानो पर ऐसे आदर्श महाविद्यालय भी चल रहे हैं।

आज से साठ वर्ष पहले श्री निबर्गीकर परिवार ने चतुरबाई श्राविका विद्यालय—(कन्या पाठशाला) खुलवाई। उस समय स्त्री शिक्षा का प्रचार बहुत कम था। बड़ी कठिनाई से चार स्त्रियां पढने के लिये आती थी। उनके बाल-बच्चों को सँभालने की व्यवस्था भी पाठशाला की ओर से थी। आज तो वहां माण्टेसरी विद्यालय, प्राथमिक विद्यालय, हाई स्कूल और महाविद्यालय बन चुका है। ढाई-तीन हजार बालिकाएं संस्था में पढ़ती हैं। बाहर से आने वाली छात्राओं के आवास व शिक्षा का प्रबन्ध राजुमती दिगम्बर जैन श्राविकाश्रम में है। अनाथ और विधवा स्त्रियों की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। पूज्य राजुलमती माताजी ने अपनी गृहस्थावस्था मे इस संस्था का सम्यक् सचालन किया था। अनन्तर ब्र० सुमतिबाई को सारा उत्तरदायित्व सौप कर आपने आचार्यश्री शान्तिसागरजी से आर्यिका-दीक्षा धारण कर ली थी। आपके पास यदि कोई भी विधवा स्त्री आती थी तो आप उसे जबरदस्ती अध्ययन करवाके आत्मकल्याण का मार्ग बताती थी। अनेक बहिनों को आपने सन्मार्ग मे प्रवृत्त किया। स्व-पर कल्याणरत पूज्य माताजी ने सल्लेखना-पूर्वक समाधिमरण कर अपना जीवन सफल किया।

सन् १९४७ में पूज्य १०८ आचार्यश्री शान्तिसागरजी महाराज का यहाँ चातुर्मास हुआ था। बोर्डिंग के विशाल मैदान में प्रवचन होता था। महाराजश्री के उपदेशामृत का पान कर अनेक भव्यजीवों ने आत्मकल्याण में प्रवृत्ति की।

सोलापुर से ६० मील दूर पर बीजापुर गांव है। जिनमन्दिर एक है, श्रावकों के ५-६ घर हैं। इतिहास प्रसिद्ध 'गोल गुम्बद' देखने के लिए देशी-विदेशी पर्यटकों की भीड़ हमेशा बनी रहती है। एक बार किसी भी प्रकार की आवाज करने पर या बोलने पर दीवारों से सात बार प्रतिध्वनि निकलती है। यहां से ५-७ मील दूर पर 'दुर्गाभाग' में एक मन्दिर है। पार्श्वनाथ भगवान की सहस्रफणा मूर्ति बड़ी रम्य और सुन्दर है। १०-१२ मील पर बाबानगर है। यहां के जिनमन्दिर में हरितवर्ण की अतिशययुक्त एक मनोज्ञ प्रतिमा है। कहा जाता है कि मूर्ति में एक दिव्यमणि थी। किसी व्यक्ति ने लोभ में आकर मणि निकाल ली। चमत्कारी होने से जैन-जैनेतर सभी लोग इसे पूजते हैं और 'बाबा' नाम से पुकारते हैं, इसी से 'बाबानगर' नाम पड़ा है।

बाबानगर से आर्यिका संघ हुबली पहुँचा। हुबली बड़ा शहर है। जैनों की संख्या भी काफी है। मन्दिर एवं जैन बोर्डिंग है। हुबली से संघ हावेरी पहुँचा। यहाँ पर तीन विशाल जिन-मन्दिर हैं। परम पूज्य १०८ श्री वीरसागरजी महाराज के शिष्य पूज्य श्री सन्मतिसागरजी महाराज

यहां विराजमान थे। सात वर्ष के बाद आपके दर्शनों का सुयोग मिला। साधुओं के दर्शन जिन-मन्दिर के दर्शन से भी दुर्लभ हैं। महाराजश्री के दर्शन से हृदय प्रफुल्लित हुआ, शरीर रोमाञ्चित हो उठा; इतना आनन्द हुआ मानो रक को निधि मिल गई हो। सच है—दुर्लभ वस्तु की प्राप्ति से किसे आनन्द नही आता।

हावेरी से हरिहर आदि गाँवो में होते हुए संघ हुम्मच पद्मावती पहुँचा। यहां पर विशाल-विशाल प्राचीन मन्दिर बने हैं। पहाड़ पर कुन्दकुन्द विद्यापीठ निर्माणाधीन है। यहां के मन्दिरों में विशाल रमणीय पुरातन बिम्ब हैं, भट्टारकजी की गद्दी है। अनेक विद्यार्थी विद्याध्ययन निरत हैं। पूज्यपाद स्वामी द्वारा कर्णाटक भाषा मे विरचित अनेक हस्तलिखित ताडपत्रीय ग्रन्थ हैं। कतिपय अन्य ग्रन्थ चिकित्सा सम्बन्धी भी हैं जिनमें अद्भुत-आश्चर्यकारी औषधियों का वर्णन है। जिनशासनरक्षिका पद्मावती देवी की मूर्ति है, इसी से गाँव का नाम 'हुम्मच पद्मावती' पड़ा है। यहां पद्मावती का विशेष अतिशय है। प्रतिदिन सहस्रों दर्शनार्थी दूर-दूर से आते है, पुण्ययोग से उनको मनोवाञ्छित फल की प्राप्ति भी होती है। सायंकाल के समय मूर्ति को विमान मे विराजमान कर गांव में शोभा-यात्रा निकालते है।

यहाँ शंका हो सकती है कि क्या पद्मावती की पूजा करना मिथ्यात्व नहीं है? क्या उसकी उपासना करने से सम्यग्दर्शन मलिन नही होता? जैन लोग वीतराग के उपासक हैं वे सरागी देव की उपासना कैसे कर सकते हैं।

समाधान: पद्मावती देवी और जिनशासन रक्षक अन्य देव-देवियो को साधर्मी भाई या धर्म के रक्षक समझ कर सत्कार एवं पूजा-उपासना करने में दोष नही है। ये शासनदेव धर्म के रक्षक है ऐसा समझ कर उनका सत्कार किया जाता है वृन्दावन जी ने 'हंसासनी, पद्मासनी, जिनशासनी माता' आदि लिख कर पद्मावती स्तोत्र बनाया है। उन्होने टिप्पणी मे लिखा है—कि कोई-कोई भाई तर्क करेंगे—पद्मावती सरागी है। इसका स्तोत्र क्यो बनाया। परन्तु साधर्मी भाइयों पर हमारा परम वात्सल्य भाव है। पद्मावती, चक्रेश्वरी आदि शासनदेवताओं ने हमारे धर्म की रक्षा-प्रभावना की है अत: ये सत्कार करने योग्य है। इस पंचमकाल में भी शासनदेवता ने समन्त-भद्र की सहायता की, महादेव की पिण्डी फोड़कर उसमें चन्द्रप्रभ भगवान का चतुर्मुखी बिम्ब प्रकटाकर जिनधर्म का माहात्म्य प्रकट किया। पात्रकेसरी के सम्यग्दृष्टि बनने में सहायक बनी। बौद्धों के साथ विवाद कर अकलंक देव की विजय में सहायक बनी। पार्श्वप्रभु पर कमठ द्वारा किए जाने वाले उपसर्ग को दूर करने में निमित्त बनी। इस प्रकार जिनधर्म की रक्षा और प्रभावना करने वाले होने से शासनदेवी-देवता आदरणीय होते हैं क्योंकि सज्जन लोग किए हुए उपकार का विस्मरण नहीं करते। (स्तवनिधि (दक्षिण) के प्राचीन मन्दिर में क्षेत्रपाल है; उसकी उपासना हेतु प्रतिदिन सैंकड़ों यात्री आते हैं और आने वाले की कामना भी पूर्ण होती है)।

वस्तु का जैसा स्वरूप है वैसा मानना मिथ्यात्व नही है, विपरीत मानना मिथ्यात्व है। उन शासनदेवताओं को जिनधर्म के रक्षक मान कर साधर्मी के नाते उनका सत्कार करना मिथ्यात्व नही है। उनको वीतराग मान कर पूजना मिथ्यात्व है। दूसरी बात यह है कि वे शासनदेव सम्यग्दर्शन के आयतन भी है। कुगुरु, कुदेव, कुधर्म और उनके सेवक अनायतन है और देव, शास्त्र, गुरु और उनके सेवक आयतन हैं। सम्यक्त्व के आयतन होने से भी वे सत्कार योग्य हैं।

हुम्मच पद्मावती से प्रस्थान कर कुन्दाद्रि पहुँचे। यहा एक-दो मील चढाई का पर्वत है। पर्वत पर शिखरबंध विशाल प्राचीन भव्य मन्दिर है। बाहर छोटा सा मानस्तम्भ है, कुन्दकुन्द स्वामी के चरण हैं। मन्दिरजी मे भगवान पार्श्वनाथ का खड्गासन मनोज्ञ बिम्व है जिस पर से दृष्टि अन्यत्र नही जाती। यहाँ का प्राकृतिक परिवेश अत्यन्त रमणीय है। सदैव पुष्प सुरभि बिखरी रहती है।

यहा से अनेक गाँवो मे विहार करते हुए मूलबद्री (मूडबद्री) पहुँचे, जिसे जैनो की काशी कहते हैं। यहाँ अनेक विशाल-विशाल जिनमन्दिर है। ताड़पत्र पर लिखित अनेक शास्त्र है जिन्हे श्रुतसंरक्षणशील परम पूज्य १०८ आचार्यश्री शान्तिसागरजी महाराज ने ताम्रपत्रो पर उत्कीर्ण करवा कर जिनवाणी की सुरक्षा की है। यहाँ मूंगा, मोती, प्रवाल, चन्दन, गारुडमणि, पुखराज, नीलम, सूर्यकान्तमणि, चन्द्रकान्तमणि, स्फटिकमणि, पारसमणि, रत्न, सोना, चाँदी आदि की अनेक छोटी-बड़ी प्रतिमाए है। कुल २६ जिनमन्दिर है जिनमे विशाल-विशाल खड्गासन पद्मासन जिनबिम्ब है। उनके दर्शन से असीम सुखशान्ति प्राप्त होती है। कर्म कालिमा का प्रक्षालन होता है। धन्य हैं वे महान् आत्माएँ जिन्होने ऐसे ऐसे विशाल बिम्ब और ऐसे ऐसे विशाल मन्दिर स्थापित किये हैं।

मूडबद्री से वरांग पहुँचे। यहाँ पर चार विशाल मन्दिर हैं जिनके चारो ओर काजू, दाल-चीनी आदि के झाड़ो की सुगन्ध आती रहती है। अनन्तनाथ भगवान का मन्दिर तालाब के मध्य में है, चतुर्मुखी प्रतिमा है। दर्शन हेतु नौका मे बैठ कर जाते है। प्रतिमा अत्यन्त सौम्य है और वैराग्य भावों को जगाने वाली है।

यहाँ से कारकल पहुँचे। यहां दो छोटे-छोटे पर्वत है, एक पर बाहुबलि भगवान की खड्गासन प्रतिमा है, दूसरे पर विशाल जिनमन्दिर है। इसकी मध्यवेदी में चारों ओर खड्गासन तीन-तीन मूर्तियाँ (कुल १२) हैं। २००० वर्ष प्राचीन होने पर भी ऐसा प्रतीत होता है मानो आज ही बनी हों। पर्वत से दो मील दूर पर गुरुकुल है और भट्टारकजी का स्थान है। मार्ग में कोई १०-१५ विशाल मन्दिर बने है। उन सबके दर्शन कर वराग-वेणूर पहुँचे। यहा भगवान बाहुबलि का खड्गासन विशाल बिम्ब है जो दूर से ही दृष्टिगोचर होने लगता है। एक चतुर्विंशति

मन्दिर है जिसमें खड्गासन चौवीस जिनबिम्ब बहुत पुराने हैं। मार्गस्थ स्थानो के जिनमन्दिरों के दर्शन करते हुए 'आर्यिका सघ' धर्मस्थल पहुँचा।

'धर्मस्थल' वास्तव में धर्मस्थल है; यहां अनेक धर्मायतन बने हैं। किसी समय यहा महान् धार्मिक कार्य सम्पन्न हुए हैं। एक जिनमन्दिर है। रत्नवर्मा हेगड़े नामक राजा है, एक वैष्णव मन्दिर है उसमें करोड़ों की सम्पदा है; इसकी देख-रेख राजा के हाथ मे है। यहा प्रतिदिन हजारों यात्रियों को भोजन कराया जाता है। राजा के घर में एक जिन चैत्यालय है, उसमे रत्नों की प्रतिमाएँ हैं। राजा ने भगवान बाहुबलि की ८४ फुट ऊंची प्रतिमा भी बनवाई है।

यहाँ से शान्तिपुर ग्राम के जिनमन्दिरों के दर्शन करते हुए 'हासन' पहुँचे। हासन मे विशाल मन्दिर है। हासन से श्रवण बेलगोला पहुँचे जहाँ विश्वविख्यात, इतिहासप्रसिद्ध भगवान बाहुबलि की मूर्ति है।

जीव और मन का संवाद

भो चेतः किमु जीव तिष्ठसि कथं चिन्तास्थितं सा कुतो,
रागद्वेषवशात्तयोः परिचयः कस्माच्च जातस्तव।
इष्टानिष्टसमागमादिति यदि स्वभ्रं तवावां गतो,
नोचेन्मुञ्च समस्तमेतदचिराविष्टाविसङ्कल्पनम् ॥१।१४५॥

—पद्मनन्दिपञ्चविंशतिका

१

श्रवणबेलगोल

मैसूर राज्य के हासन जिले में भगवान गोमटेश्वर बाहुबली की ५७ फुट ऊँची भव्य तथा विशाल मूर्ति के कारण श्रवणबेलगोल अतिशय प्रभावक एवं आकर्षक तीर्थस्थान है। यह हासन स्टेशन से ३२ मील, मैसूर से ६० मील तथा बेंगलोर से ९० मील दूर है। समस्त मैसूर राज्य में सौन्दर्य और भव्यता का सुन्दर समन्वय देखा जाता है। श्रवणबेलगोल जैन तीर्थ होने के साथ-साथ विश्व के सभी कलाकारों तथा कलाप्रेमियों के लिए दर्शनीय एवं अभिवन्दनीय स्थान है।

उस स्थान पर श्रमण शिरोमणि भगवान बाहुबली का विशाल भव्य बिम्ब है; वहा का बेलगोल सरोवर भी महत्त्वपूर्ण है। श्रमण (बाहुबली) और बेलगोल (सरोवर) से युक्त होने से इस भूमि का श्रवण (श्रमण) बेलगोल नाम सार्थक है। जिस विन्ध्यगिरि पर्वत पर बाहुबली की मूर्ति है, वह भूतल से ४७० फुट ऊँचाई पर है। पर्वत का घेरा दो फर्लांग के लगभग है। पर्वत पर चढ़ने के लिए लगभग ५०० सीढियाँ पहाड़ पर ही उत्कीर्ण हैं। प्रवेशद्वार आकर्षक है। सामने ही वृद्धा गुल्लिकाअज्जी का चित्राम है। कहा जाता है कि महामात्य चामुण्डराय ने अभिमानपूर्वक प्रथम अभिषेक करने का संकल्प किया था किन्तु घड़ो दूध से अभिषेक करने पर भी दूध मूर्ति के मस्तक से नीचे नहीं आ पाया अर्थात् पूरे बिम्ब का अभिषेक नही हो सका। लोगों को आश्चर्य हुआ। तभी एक वृद्धा ने वनफल की सूखी गुल्लिका के दूध से अभिषेक किया, दूध की धारा अजस्र-रूपेण प्रवाहित होती रही और पूरी मूर्ति का अभिषेक सम्पन्न हुआ। सर्वत्र जय-जयकार की ध्वनि होने लगी। चामुण्डराय के मान की शिला चकचूर हो गई। तभी से भावपूर्ण भक्ति दर्शाने के लिए

बुढ़िया का चित्राम वहां स्थापित है। अन्य पर्वतों की भांति दूर से रम्य और समीप से भीषण-ऐसा विषम रूप इस विन्ध्यगिरि में नही है। यह ढाल सहित चिकने और सुन्दर पाषाण वाला है।

पर्वत पर अनेक मनोज्ञ जिनमन्दिर बने हुए है जिनमे प्राचीन विशाल जिनबिम्ब हैं। सुन्दर जलस्थान भी पर्वत पर ही है। पर्वत के चारों ओर सुगन्धित पुष्पो वाले वृक्ष शोभायमान हैं। मूर्ति के सामने छोटा सा सुन्दर मानस्तम्भ है जो दरवाजे के बाहर है। मन्दिर के भीतर बाहुबली भगवान की मूर्ति के चारों ओर चौबीस तीर्थङ्करों की विशाल-विशाल मूर्तियां एवं शासनदेवी पद्मावती और चक्रेश्वरी की भी एक-एक मूर्ति स्थापित है।

बाहुबली भगवान की मूर्ति के चरणों के समीप यक्ष-यक्षिणी की खड्गासन मूर्ति है जो अकृत्रिम जिनमन्दिरो के बिम्ब के समान श्रीदेवी, श्रुतदेवी, सर्वाण्ह यक्ष एवं सनतकुमार यक्ष की प्रतीक प्रतिभासित होती है।

भगवान गोमटेश्वर के विशाल मनोज्ञ बिम्ब के चरणों में पहुँच कर दर्शक जब परम शान्त दिगम्बर जिन मुद्रा का अवलोकन करता है तब वह प्रभावित होकर सोचता है-- "अहो ! मैं दु:खदावानल से बच कर महान शान्तिस्थल में आ गया हूं।" वह, वचनो के आलम्बन बिना ही, वीतराग दिगम्बर मुद्रा से सदुपदेश ग्रहण करता है—"हे भव्य जीवो ! यदि तुम समीचीन शाश्वत सुख के इच्छुक हो तो इस मुद्रा को अगीकार करो, इसे धारण किए बिना संसार के दु.खो से छुटकारा नहीं हो सकता।"

सैंकड़ों वर्ष प्राचीन यह मूर्ति दर्शक को नवनिर्मित सी प्रतीत होती है। मूर्ति पर किसी प्रकार का आच्छादन नही है जो सूर्य, चन्द्र, वर्षा आदि ऋतुओं को प्राकृतिक मुद्राधारी प्रभु के समादर, दर्शन अथवा अभिषेक में अन्तराय उपस्थित करे। अत: समस्त ऋतुएँ इस महान बिम्ब का हृदय से स्वागत करती है।

सामान्यत: यह कहा जाता है कि अत्यन्त उन्नत आकृति में सौन्दर्य का दर्शन नहीं होता है और जो वस्तु अत्यन्त रमणीय होती है वह अत्यन्त उन्नत आकार वाली नही होती, परन्तु प्रभु का यह विशाल सुन्दर बिम्ब इस कथन की सत्यता पर प्रश्नचिह्न लगाता प्रतीत होता है। गोमटेश्वर की यह मूर्ति विश्व का ८वां आश्चर्य मानी जाती है। यह अनुपम सौन्दर्य से विभूषित है। शिल्पकार ने जैनधर्म की 'सम्पूर्ण त्याग' की भावना को अपनी छैनी-हथौड़ी से मूर्ति के अंग-अंग में भरा है। मूर्ति की पूर्ण नग्नता जैनधर्म के सर्वस्व त्याग की भावना का प्रतीक है। सरल और उन्नत मस्तक युक्त प्रतिमा का अंग विन्यास आत्मनिग्रह की सूचना देता है। अधर पल्लवों की दयापूर्ण मुद्रा से स्वानुभूत आनन्द और दीन-दुखियों के साथ सहानुभूति की भावना प्रकट होती है। मूर्ति के दर्शन से यह शीघ्र निर्णय नहीं हो पाता कि यह मूर्ति इसी पर्वत को काट कर बनाई गई है अथवा

अन्य स्थान से यहां लाई गई है। अन्यत्र कहीं भी ऐसी उन्नत और भव्य मूर्ति दृष्टिगोचर नही होती। प्रसिद्धि है कि मूर्ति का निर्माण इतिहास प्रसिद्ध चामुण्डराय ने करवाया था। शिलालेख पर अंकित है "चामुण्डराय ने कलविले" (चामुण्डराय ने बनवाई) परन्तु ऐसी जनश्रुति है और परम्परागत कथानक से भी इस मूर्ति का काल इतिहासातीत बताया जाता है। इसे राम और रावण द्वारा भी पूजित बताया जाता है।

जिन बाहुबली स्वामी का यह बिम्ब है वे आदिनाथ भगवान के पराक्रमी पुत्र, सम्राट भरत चक्रवर्ती के अनुज और पोदनपुर के अनुशासक नरेश थे। उन्होंने मल्लयुद्ध, दृष्टियुद्ध और जलयुद्ध में अपने ज्येष्ठ भ्राता भरत चक्रवर्ती को पराजित किया था परन्तु क्षणिक एव नश्वर राज्य प्राप्ति के लिए तथा भाई को मारने के लिए भरत के द्वारा चलाये गये सुदर्शनचक्र को देख कर आपने संसार, शरीर और विषय भोगों की निस्सारता का विचार किया और शीघ्र ही दिगम्बर मुद्रा धारण कर ली। एक वर्ष तक कठोर तपश्चरण करने पर भी आपको केवलज्ञान की उत्पत्ति नहीं हुई। कारण जान कर भरत चक्रवर्ती ने जाकर पूजा स्तुति की, तभी शीघ्र ही केवलज्ञान की प्राप्ति हुई।

आप एक वर्ष तक कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े रहे थे अतः आपके शरीर पर लताएं छा गईं, चरणों में सर्पों ने बाँबियाँ बना लीं, कई छोटे-बड़े जन्तुओं ने आपका आश्रय ले लिया। मूर्ति में भी मागधी लता, सर्प आदि का सद्भाव दिखाया गया है। निश्चय ही, प्रभु जगत्-बन्धु थे। इसीलिए तो सर्प आदि प्राणी उनसे स्नेह व्यक्त करते थे। उनकी मूर्ति में भी उनकी लोकोत्तर तपश्चर्या का भाव तथा आत्मजयीपना पूर्णतया अङ्कित है। मूर्ति की दर्शन-वन्दना हेतु देश विदेश के अनेकानेक यात्री आते हैं और नतमस्तक होकर अपनी विनयाञ्जलि प्रकट करते हैं।

मूर्ति के दर्शन से आत्मा में यह भावना उत्पन्न होती है कि अभय और कल्याण का सच्चामार्ग समस्त बाह्याभ्यन्तर परिग्रह का त्याग कर ममता के जाल को छेद कर बाहुबली सी मुद्रा को स्वीकार करने में है।

पञ्चेन्द्रिय के विषयों, परिग्रह और हिंसा में आसक्ति विपत्ति का मार्ग है। अन्तर बाह्य परिग्रह का त्याग, अहिंसा, आत्मनिमग्नता एवं समता वृत्ति कल्याण का पथ है। गोमटेश्वर बाहुबली के दर्शनों से उत्पन्न आनन्द अवर्णनीय है।

रूपं ते निरुपाधि सुन्दरमिदं पश्यन् सहस्रेक्षणः,
प्रेक्षा कौतुककारी कोऽत्र भगवन् नोपैत्यवस्थान्तरं।
वाणीं गद्‌गदयन् वपुः पुलकयन् नेत्रद्वयं स्रावयन्,
मूर्धानं नमयन् करौ मुकुलयंश्चेतोऽपि निर्वापयन्॥

इस विशाल बिम्ब को देख कर वाणी गद्गद हो जाती है, आंखों से आनन्द की अश्रु-धारा बहने लगती है। मस्तक अपने आप नत हो जाता है। मन की प्रवृत्ति विलक्षण हो जाती है, दोनों कर-कमल मुकुलित हो जाते है।

निर्वोधध्वनिर्गाजते विलसते मुक्त्या तमोभास्वते
सम्मोहं हरतेऽर्हते विकसते ते प्रातिहार्यश्रिया।
सच्चित्ते भ्रमते पयोजसरिते ध्यानाम्बुदोद् विद्युते,
सौतन्देय नमो नमो मम विभो ज्ञानाम्बुधौ मज्जते ॥

कल्याणाम्बुधरो महोदयकरो रोगार्तिगत्तोहरो,
मोहोच्छेदकरो जरामर हरो विश्वासकीर्तीश्वरो।
भग्नानङ्गशरो हताहितपगरो विध्वस्तजन्मादरो,
ब्रह्माण्डैकदिवाकरो भवतु मे मित्रं प्रभो! ते गुणः ॥

जगत्प्रसिद्ध वीतरागी बाहुबली भगवान को मेरा शत शत वन्दन! शत शत वन्दन!!

गोमटेश्वर पहाड़ के सम्मुख एक चिकवेट (छोटा पहाड़) जिस पर प्राचीन विशाल-विशाल मनमोहक जिनबिम्बों से युक्त लगभग २०-२५ जिनमन्दिर हैं। एक मानस्तम्भ भी है। सम्राट भरत की भी एक खण्डित मूर्ति है। एक गुफा मे चन्द्रगुप्त राजा मुनि अवस्था में गुरु-भक्ति से प्रेरित होकर पर्वत पर उत्कीर्ण भद्रबाहु स्वामी के चरण चिह्न हैं। एक शिलालेख है—बारह वर्ष के दुर्भिक्ष के समय भद्रबाहु ने अपने समस्त शिष्यों को अन्यत्र भेज दिया। परन्तु चन्द्रगुप्त मुनि अपने गुरु के समीप ही रहे। भद्रबाहु ने इस पर्वत पर समाधिमरण किया। चन्द्रगुप्त बारह वर्षों तक यहीं रहे। निर्जन वन में देवों ने आ कर गुप्त रूप से चन्द्रगुप्त मुनिराज को आहार दिया।

यहाँ और भी विशाल मन्दिर हैं। परम पूज्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने गोमट्टसारादि सिद्धान्त ग्रन्थों की रचना यहीं की थी।

आस-पास के स्थानों के अवलोकन से तो ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्व में यहां पर दानी, ज्ञानी, श्रीमन्त महापुरुष हुए हैं जिन्होंने जैनधर्म की प्रभावना के लिए धर्म के महान्-महान् आयतनों का निर्माण किया था एवं काल-दोष से किन्ही पापियों ने उनका विध्वस भी किया है। इस समय भी स्थान-स्थान पर खण्डित जिनबिम्ब अत्याचारियों के विद्वेष को प्रकट करते हैं।

यहाँ बाहुबली के विशाल बिम्ब का सौन्दर्य तो अद्भुत है ही, पुनः श्रुतकेवली भद्रबाहु का समाधिस्थान और सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्राचार्य द्वारा सिद्धान्त ग्रन्थ रचना का स्थान होने से यह क्षेत्र और भी पूजनीय हो गया है।

जिस समय आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी संघ सहित श्रवण बेलगोल पहुँची थी, उस अवसर पर चौदह वर्ष के बाद विक्रम संवत् २०२३ चैत्र बदी पंचमी के दिन महामस्तकाभिषेक सम्पन्न होने वाला था। उस शुभ अवसर पर लाखों यात्री सम्मिलित हुए थे। प्रातः स्मरणीय परम पूज्य १०८ आचार्यश्री महावीरकीर्तिजी महाराज संघ सहित विराजमान थे। १०८ आचार्यश्री देशभूषणजी महाराज, १०८ आचार्यश्री सन्मतिसागरजी महाराज आदि अनेक विद्वान् साधु सन्त वहां विराजमान थे। विदुषी आर्यिका १०५ श्री विजयमती माताजी आदि अनेक आर्यिकाएँ व क्षुल्लिकाएं थी। महामस्तकाभिषेक के समय आकाश से विमान द्वारा पुष्पवृष्टि की गई। समस्त साधुगण प्राङ्गण में स्थित थे। उस समय का दृश्य आज भी स्मृति में आता है तो हृदय गद्‌गद हो जाता है। उस समय के आनन्द का वर्णन करना सम्भव नही। डेढ़ मास पर्यन्त यहां रहने का सुयोग मिला था। महान् गुरुओं के दर्शन, उनसे प्राप्त आशीर्वाद एवं वात्सल्य भाव से मन विभोर हो गया, ऐसे पुनीत अवसर जीवन में कम ही मिलते हैं।

फरवरी १९८१ मे, इस प्रतिमा का सहस्राब्दी प्रतिष्ठापना महोत्सव एवं महामस्तकाभिषेक बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ है। लाखों लोगो ने इस बिम्ब के दर्शन कर अपने नेत्रों को सफल किया है।

गोमटेश्वर दर्शन के बाद यहां से हासन होते हुए हलाई विड़ गए। जहाँ दो दिगम्बर जैन मन्दिर हैं। एक मन्दिरजी में भगवान पार्श्वनाथ का ९ फुट ऊंचा खड्‌गासन बिम्ब है। आस पास के क्षेत्र मे एक विशाल जिनबिम्ब एवं छोटे-छोटे सैकड़ों जिनबिम्ब खण्डित पड़े हैं। एक विशाल वैष्णव मंदिर है जिसमे पत्थर में उत्कीर्ण अनेक चित्राम हैं। उन्हें देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि किसी समय यह दिगम्बर जैन मन्दिर था।

जैन मन्दिरों में कसौटी के पाषाण के स्तम्भ बने हुए हैं। उन स्तम्भों मे किसी स्तम्भ में देखने से अपना बिम्ब उलटा दिखता है, किसी में एक साथ चार बिम्ब दिखाई देते है; इस प्रकार अत्यन्त शोभनीय मन्दिरों की रचना है, आज करोड़ों रुपये खर्च करने पर भी वैसा ठोस और स्थायी निर्माण अशक्य है। जैन समाज का यह कर्त्तव्य है कि वह अपनी इस गौरवपूर्ण धरोहर की सब प्रकार से रक्षा करे।

यहां से हुबली होकर धारवाड़ पहुँचे। धारवाड़ में इतिहास प्रसिद्ध अनेक जैन मन्दिर हैं। यहां से बेलगांव गए—मार्ग में भी अनेक जिनालय हैं, दक्षिण प्रान्त में गांव-गांव में जैन मन्दिर हैं। उनकी शोभा वचनातीत है। बेलगांव में अनेक जैन मन्दिर हैं। एक मन्दिर किले में है; इस किले का घेरा लगभग एक मील का है परन्तु एक मन्दिर को छोड़ कर सारा स्थान यवनों के हाथ में है वहां से स्तवनिधि पहुँचे।

अतिशयक्षेत्र स्तवनिधि मे एक विशाल मन्दिर और एक धर्मशाला है। मन्दिरजी में अनेक प्राचीन जिनबिम्ब हैं और नन्दीश्वर की मूर्ति है। प्राचीन मन्दिर में क्षेत्रपाल का एक विशाल स्थान है। क्षेत्रपाल का अतिशय है यहाँ हजारों यात्री प्रतिदिन आते हैं और पुण्य योग से अपनी मनोकामना की सफलता पर प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। इस मन्दिर से कुछ दूरी पर पू० १०८ श्री समन्तभद्र महाराज द्वारा स्थापित गुरुकुल है। गुरुकुल में स्थित जिनमन्दिर में भगवान पार्श्वनाथ की पीले पाषाण की ५-६ फुट ऊंची खड्गासन प्रतिमा है जिसके दर्शन से स्वानुभव की प्राप्ति होती है।

"जय परम शान्त मुद्रा समेत। भविजन को निज अनुभूति हेत।"

यहां ब्रह्मदेव का भी स्थान है जिससे अनेक चमत्कार होते हैं। दो तीन मील दूरी पर नेपाणी नामक गाव है जो अनेक जिनमन्दिरों से सुशोभित है।

दक्षिण में गांव-गांव में विशाल-विशाल जिनमंदिर बने हैं। श्रावकों के भी घर विशेष हैं परन्तु अब शनैः शनैः श्रावक आचरणहीन होते जा रहे हैं। यहाँ से आर्यिका संघ कोल्हापुर आया। कोल्हापुर मे भी बड़े श्रीमन्त श्रावकों के घर हैं, अनेक प्राचीन जिनमन्दिर हैं; श्री लक्ष्मीसेन महाराज का मठ है। इसमें बलूंदा निवासी कलकत्ता प्रवासी श्री पारसमलजी कासलीवाल द्वारा स्थापित भगवान आदिनाथ का २० फुट ऊंचा बिम्ब है। जैनधर्म की प्राचीनता सिद्ध करने वाले अनेक प्राचीन मन्दिर हैं; जिनबिम्ब हैं। अम्बिकादेवी का भी एक मन्दिर है जो अब अन्य मतावलम्बियों के हाथ मे है। अम्बिकादेवी भगवान नेमिनाथ की शासनदेवी है। यह मन्दिर मूलत जैनों का है; आज भी वहां जैन मूर्तियां विद्यमान हैं। शास्त्रो में उल्लेख है कि चामुण्डराय ने भगवान नेमिनाथ की नील-मणि की डेढ़ हाथ ऊंची प्रतिमा बनवाई थी। आज कही भी वह मूर्ति दृष्टिगोचर नहीं होती। किंवदन्ती है कि वह मूर्ति इसी मन्दिर में है।

जैन आयतनो पर सदा से कुठाराघात होता चला आ रहा है। विरोधियों ने सदा से जैन आयतनो को नष्ट करने का दुष्प्रयास किया है। जैन गुरुओं पर घोर उपसर्ग किए हैं तथापि जैनधर्म अद्यावधि अक्षुण्ण रूप से चला आ रहा है। जैनधर्म 'वस्तु-स्वभाव' धर्म है। वस्तु का स्वभाव अनादि-निधन है। उसका कभी नाश नही हो सकता है। वहां से रुड़की आदि स्थानों के जिनमन्दिरों के दर्शन करते हुए संघ कुम्भोज बाहुबली पहुँचा। वहां पांच दिन रह कर संघ सागली गया।

❖

१०

कुम्भोज बाहुबली से अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ

सांगली में जैन बोर्डिंग व विशाल मन्दिर है। मुनिभक्त अनेक श्रावकगण हैं। यहां से मिर्ज आदि अनेक ग्रामों के जैन मन्दिरों के दर्शन करते हुए संघ सेडवाल पहुँचा। यहां चारित्रचक्रवर्ती परम पूज्य १०८ आचार्यश्री शान्तिसागरजी महाराज द्वारा स्थापित जैनाश्रम है। आश्रम में अत्यन्त मनोज्ञ पद्मासन जिनबिम्ब है। सहस्रकूट चैत्यालय की रचना है, बाहुबली भगवान का बिम्ब है। गुरुकुल में अनेक बालक विद्याध्ययन करते हैं जिन्हे क्षुल्लक वासुपूज्य महाराज जैनधर्म का रहस्य बताते हैं। यहा से एक मील दूर सेडवाल गाँव है। गांव में तीन विशाल मन्दिर है। यहां परम पू० १०८ आचार्यश्री महावीरकीर्तिजी महाराज को आचार्यपद प्रदान किया गया था। अनेक श्रद्धालु श्रावकों का वास्तव्य है।

सेड़वाल से दो मील दूरी पर कागवाड नामक ग्राम है। गांव में एक विशाल मन्दिर है। मन्दिर मे स्थित तलघर आधुनिक तलघरों से विलक्षण है। मन्दिर के ऊपरी भाग में ब्रह्मा, विष्णु आदि की प्रतिमाएं हैं क्योंकि आज यह मन्दिर जैनों के हाथ में नहीं है। मन्दिर में नीचे ४० सीढ़ियां उतरने के बाद एक वेदी है जिसमें श्री पार्श्वनाथ भगवान की सफेद पाषाण की पद्मासन मनोज्ञ मूर्ति है, और भी सात आठ प्रतिमाएँ है। उससे चालीस सीढ़ियां और नीचे उतरने के बाद शान्तिनाथ भगवान की पांच छह फुट ऊँची अति मनोज्ञ पद्मासन प्रतिमा है। बहुत समय पहले यहां लिंगायतों ने उपद्रव किया था, जिनमन्दिरों एवं जिनप्रतिमाओं का विध्वंस किया था। जिस समय इस प्रतिमा को नष्ट करने लगे, श्रावकों ने आगे बढ़ कर इसकी रक्षा की, जिससे उस बिम्ब का खण्डन तो नही किया गया परन्तु यह मन्दिर लिंगायतों के अधिकार में चला गया, कतिपय जैन

श्रावक भी लिंगायत हो गए। आज भी वे ही लिंगायत जैन उस प्रतिमा की पूजन करते हैं। कहा जाता है कि इसी तलघर के समीप स्थित एक मार्ग से आगे जाकर तालाब आता है। उसी तालाब से जल लाकर अभिषेक क्रिया की जाती थी। आज यह रास्ता बन्द है। मन्दिर के तलघर में घोर अन्धकार है। अपरिचित मानव के लिए उसमें प्रवेश दुष्कर है। ऐसे भीषण स्थान पर पहुँच कर जब शान्तिनाथ भगवान की प्रतिमा का दर्शन करते हैं तब सारी वेदना समाप्त हो जाती है, अद्भुत शान्ति की प्राप्ति होती है। शान्तिनाथ भगवान का नाम सार्थक है। उस बिम्बदर्शन से ही जब परम शान्ति मिलती है तो साक्षात् जिनेन्द्र देव के दर्शन से कितनी शान्ति मिलती होगी, वह वचनातीत है।

स्वदोषशान्त्या विहितात्मशान्तिः,
शान्तेर्विधाता शरणं गतानां।
भूयाद्भवक्लेशभयोपशान्त्यै
शान्तिर्जिनो मे भगवान् शरण्यः ।।

जिन्होने रागद्वेष रूप अपने दोषों को शान्त कर शान्ति प्राप्त की है, जो शरण में आने वालों को शान्ति देने वाले हैं, वे शान्तिनाथ भगवान हमारे सांसारिक क्लेशों को शान्त करें। हे प्रभो! हम आपकी शरण में आए हैं। ऐसी परम शान्त मुद्रा से युक्त जिनबिम्ब की निकटता छोड़ कर दूर जाने, अन्यत्र जाने के भाव नही होते। दुःख की बात यह है कि ऐसे-ऐसे विशाल प्राचीन जिनमन्दिर अन्य मतावलम्बियों के हाथ में चले गए है। जैन उन्हे अपने अधिकार मे नही ले सकते। दिगम्बर जैन भाइयों के पास धन की कमी नही है, कमी है तो यही कि धर्म और धर्मायतनों के प्रति उनका विशेष अनुराग नही है। इसीलिए तो हमारे आयतन नष्ट होते जाते हैं।

तदनन्तर, अनेक ग्रामस्थ जैन मन्दिरों के दर्शन करते हुए संघ जयसिंहपुर पहुँचा। जयसिंहपुर के आस पास उदगांव, अंकली, जैनपुरा आदि अनेक जैन ग्राम हैं जिनके मन्दिरों के शिखरों की ध्वजा दूर से ही दृष्टिगोचर होती है। एक गाँव के मंदिर के शिखर की ध्वजा दूसरे गाँव के मन्दिर से दीखती है। शास्त्रों में पढ़ते और सुनते हैं कि मुर्गा एक गाँव से दूसरे गांव मे उड़ कर चला जाता है। यह कथन इन गाँवों को देखने से सार्थक सिद्ध होता है।

पच्चीसवाँ वर्षायोग :

इसी प्रान्त में भोज नामक ग्राम में परम पूज्य १०८ श्री शान्तिसागरजी महाराज का जन्म हुआ था। यहां उदगाँव आदि समीपस्थ ग्रामों में पूज्य आदिसागरजी व अन्य साधुओं के समाधि-स्थल हैं। इचलकरञ्जी, दानापुर आदि गाँवों के दर्शन कर पुनः कुम्भोज बाहुबली आए क्योंकि पूज्य १०८ श्री समन्तभद्रजी महाराज का विशेष आग्रह होने से विक्रम संवत् २०२४ का चातुर्मास कुम्भोज बाहुबली के विद्यापीठ आश्रम में किया था। कुम्भोज से दो मील दूर एक छोटा सा पर्वत है।

उस पर तीन प्राचीन मन्दिर हैं। कुछ वर्ष पूर्व इस पर्वत पर एक महान तपस्वी ध्यान किया करते थे। उनके चरण-सान्निध्य में सिंह आकर बैठ जाया करता था परन्तु उनका घात नहीं करता था इसलिए सब लोग उन्हें बाहुबली कहते थे। वे इस पर्वत पर रहते थे इसलिए इस पर्वत का नाम बाहुबली और कुम्भोज ग्राम के निकट होने से कुम्भोज बाहुबली ख्यात है।

यहाँ प्रातः स्मरणीय चारित्र चक्रवर्ती आचार्यश्री १०८ शान्तिसागर महाराज के आदेश एवं श्री समन्तभद्र मुनिराज की प्रेरणा से सोलापुरनिवासी श्री सेठ गुलाबचन्दजी चण्डक ने श्री बाहुबली भगवान की २८ फुट उन्नत प्रतिमा स्थापित करवाई है। अतः इस क्षेत्र का कुम्भोज बाहुबली नाम सर्वथा सार्थक है। यहां श्री सम्मेदाचल, गिरनार, पावापुर, चम्पापुर आदि सिद्धक्षेत्रों की कला पूर्ण रचना की गई है। नन्दीश्वर द्वीप की भी रम्य रचना है। सीमन्धर भगवान के चरण स्थापित हैं तथा शान्तिसागर भवन में आचार्यश्री शान्तिसागरजी के भी पावन चरण स्थापित हैं।

भगवान आदिनाथ का एक पन्द्रह सौ वर्ष प्राचीन पद्मासन जिनबिम्ब है। तथा नवीन पीले पाषाण का एक खड्गासन बिम्ब है जिसके दर्शनों से मन भावविभोर हो उठता है। यहां श्री समन्तभद्र महाराज की प्रेरणा से गुरुकुल भी चल रहा है जिसमे पाँच सौ विद्यार्थी विद्याध्ययन करते हैं। महाराजश्री वयोवृद्ध है तथापि निरन्तर ज्ञान-ध्यान-तप में लीन रहते हैं और अपनी चर्या का निर्दोष रीति से पालन करते है। प्रमाद, आलस्य कतई नही है उनमे।

श्री शान्तिसागरजी महाराज के शिष्य श्री वर्द्धमानसागरजी दीक्षित हैं। आप अत्यन्त शान्त प्रकृति के हैं। आपने बागेवाड़ी, स्तवनिधि, खुरई, ऐलोरा, कारंजा, सोलपुर आदि स्थानों में गुरुकुलों की स्थापना कराई है। इनमे सैकड़ों छात्र लौकिक ज्ञान के साथ-साथ धार्मिक अध्ययन भी करते हैं।

विक्रम संवत् २०२४ का चातुर्मास श्री समन्तभद्र महाराज एवं आचार्यश्री वीरसागरजी महाराज के शिष्य तपस्वी श्री सन्मतिसागरजी महाराज एवं नमिसागरजी महाराज के साथ में कुम्भोज बाहुबली में हुआ। इसी वर्षायोग मे कुरड़वाड़ी निवासी ब्रह्मचारी श्री नेमीचन्दजी गाँधी की सुपुत्री सोलापुरआश्रम वासिनी बाल विधवा सुश्री प्रभावतीजी ने आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। आपका नाम आर्यिका १०५ श्री सुप्रभामतीजी रखा गया। आप अत्यन्त शीतल स्वभाव की हैं तथा आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी के संघ मे हैं।

कुम्भोज में विशेष धर्मप्रभावना हुई। समन्तभद्र महाराज की जितनी प्रशंसा की जाए उतनी ही कम है। आपका परिश्रम सराहनीय है, ज्ञान के विस्तार-विकास एवं उसकी प्रभावना की आपको बड़ी लगन है। इसीलिए इस क्षेत्र की निरन्तर प्रगति हो रही है। यहां आसपास में जैन

लोगों के कई गांव हैं और पहले कभी इस पर्वत पर साधुगण भी रहते थे। श्री समन्तभद्र महाराज की पढ़ाने की एवं समझाने की शैली बहुत सुन्दर है। आप संस्कृत प्राकृत के श्रेष्ठ विद्वान हैं।

२६ वाँ वर्षायोग :

यहाँ से विहार करके गाँव-गाँव में धर्म का मर्म बताते हुए आर्यिका संघ ने विक्रम संवत् २०२५ का वर्षायोग अकलूज मे किया। यहाँ पर श्रावकों के १०० घर हैं। सबके सब स्त्री पुरुष अत्यन्त धार्मिक प्रकृति के हैं। दो मन्दिर शहर में हैं। एक नया मन्दिर बाहुबली स्वामी का बाहर में है जिसमें भगवान बाहुबली की नौ फुट ऊंची, खड्गासन प्रतिमा है। यह मन्दिर गंगारामजी का बनवाया हुआ है। उस मन्दिर में बारह मास तक रहे। यहां पर एक श्री शान्तिनाथ सोनाज है जिन्होंने तन-मन से संघ की वैयावृत्य की थी। उनकी सेवा-भक्ति सराहनीय है।[1]

२७ वाँ वर्षायोग :

अकलूज से नातेपुते, दहीगाँव, गये। दहीगाँव अतिशयक्षेत्र है। यहाँ विशाल जिन-मन्दिर है। अनेक रमणीय प्राचीन जिनबिम्ब हैं। तलघर में सीमन्धर आदि विद्यमान बीस तीर्थंकरों के बिम्ब हैं। नातेपुते में अत्यन्त धर्मनिष्ठ श्रावक है। यहाँ से लासूरण गए। गाँव छोटा है परन्तु यहां के श्रावक बहुत श्रद्धालु हैं, इन्होंने श्री धर्मसागर महाराज की बहुत सेवा की थी। यहां दो मास ठहर कर बारामती गए। वहां आठ मास रहे। बारामती के श्रावक बड़े मुनिभक्त हैं; यहा पर आचार्यश्री शान्तिसागरजी महाराज ने चातुर्मास किया था। श्री चन्दूलाल और उनके भाई हीराचन्द ने बारामती से चार मील दूर पर स्थित अपने उद्यान में चातुर्मास कराया था। वही एक चैत्यालय स्थापित किया था जो आज भी विद्यमान है; उसमें पार्श्वनाथ भगवान का बिम्ब प्रतिष्ठित है। बारामती में एक जिनमन्दिर है। विक्रम संवत् २०२६ का वर्षायोग आर्यिका-संघ ने बारामती में रामचन्द्र बोर्डिंग में किया जो नगर से बाहर है।

---

१. यहां आर्यिका सुपार्श्वमतीजी गम्भीर रूप से अस्वस्थ हो गई थीं। माताजी की बीमारी के समाचार ज्ञात कर आचार्यश्री महावीरकीर्तिजी महाराज २०० मील का चक्कर काट कर अकलूज पहुंचे थे। आचार्यश्री का शिष्यों के प्रति अनुपम वात्सल्य भाव था। वे यन्त्र-मंत्र-तंत्र-आयुर्वेद के भी महान् ज्ञाता थे। आचार्यश्री ने माताजी के सम्बन्ध में श्रावकों से कहा था कि यह समाज की अपूर्व निधि है। समाज का इससे महान् उपकार होगा, जैनधर्म और संस्कृति का प्रचार प्रसार होगा इसके द्वारा।

माताजी ने असाता के उदय को बड़ी समता से सहन किया था। जीवन की आशा भी नहीं रही थी तब भी आपने धैर्य नहीं छोड़ा। श्री शान्तिनाथ सोनाज ने रात दिन सेवा-सुश्रूषा करके बहुत पुण्योपार्जन किया। —स०

बारामती से फलटण आए। यहां चार विशाल जिनमन्दिर हैं। आचार्यश्री शान्तिसागरजी महाराज ने यहाँ दो-तीन चातुर्मास किए थे। उन गुरुदेव के तप एवं उपदेश से प्रेरणा पाकर यहां अनेक लोगों ने व्रत धारण किए हैं। कितने ही तो दूसरी प्रतिमाधारी हैं और कितने ही सप्तम प्रतिमाधारी हैं। आचार्यश्री शान्तिसागरजी महाराज ने अथक परिश्रम कर जिनवाणी को जो संरक्षण प्रदान किया है, वह जैन समाज के लिए अत्यन्त गौरव की बात है। जो षट् खण्डागम ताड़पत्र पर लिखित थे, जिनके दर्शन भी अत्यन्त दुर्लभ थे, उन ग्रन्थों को आचार्यश्री ने ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण करवा कर श्रुतसंरक्षण का अभूतपूर्व कार्य किया, आचार्यश्री का यह उपकार वचनातीत है। ये ताम्रपत्र फलटण के जैन-मन्दिर में विराजमान हैं। इस कारण इस नगर का महत्त्व बढ गया है। कई वर्षों तक इन ग्रन्थो का दर्शन करने के लिए मूलबद्री जाना होता था और वहा पर कुछ भेट दे कर ही इनके दर्शन किए जा सकते थे अन्यथा नही। आज आचार्यश्री के परिश्रम से उन ग्रन्थो का दर्शन और पठन भी सुलभ हो गया है। ग्रन्थों के निमित्त से फलटण भी दर्शनीय हो गया है।

फलटण से दहीगांव, निमगाव, इन्दापुर, टाकली, पिप्पलगांव, कुरुड़वाडी, सैन्ध आदि स्थानों के जिनमन्दिरो के दर्शन करते हुए श्री कुलभूषण-देशभूषण के निर्वाण से पवित्र स्थान कुन्थलगिरि पहुँचे। कुन्थलगिरि के दर्शन वन्दन का यह दूसरा अवसर था। यहां से बीड़गह्वराई, अमृतसर, जालना आदि स्थानों के जिनमन्दिरों के दर्शन कर चार ठाणा पहुँचे। यहा जैसवाल जाति के श्रावक हैं जिन्होंने अपना आचार-विचार छोड दिया है। यहां एक प्राचीन खण्डित जिनालय है। एक खण्डित मानस्तम्भ भी है जिसके पत्थर की आवाज आश्चर्यकारी है। मन्दिर में तलघर है, वह कितना नीचा है, यह जानना अशक्य है। यहां दो जिनमन्दिर है किसी समय यह अतिशय क्षेत्र था। यहां से जितूर गए।

जितूर में बघेरवाल जाति के श्रावकों के ३०-४० घर है। किसी समय यहाँ जैनों के हजारों घर और अनेक जैन मन्दिर थे मुस्लिम शासन काल में जैन मन्दिर ध्वंस कर दिए गए, आज भी वहां अनेक बिम्ब खण्डित पड़े हैं। कहते हैं—एक मन्दिर को ध्वंस करने के लिए अत्याचारी उसमें घुसना चाहते थे परन्तु उसमे घुस नहीं सके। ऐसा ही एक मन्दिर और है। कुल दो मन्दिर सुरक्षित रहे शेष सब नष्ट कर दिए गए—खण्डहर और खण्डित बिम्ब आज भी दृष्टिगोचर होते हैं। मन्दिरों के नीचे बड़े-बड़े तलघर हैं। मुस्लिमशासनकाल मे कुछ जिनबिम्बो की रक्षा इन तलघरों में हो सकी थी। गाँव से दो मील दूर पर एक छोटा पहाड़ है। उस पर श्री नेमिनाथ भगवान का विशाल मन्दिर है जिसका प्रवेशद्वार बहुत छोटा है। सात जगहो पर विशाल-विशाल प्रतिमाएँ विराजमान हैं। सात-फुट ऊंची श्री नेमिनाथ भगवान की पद्मासन मूर्ति है। एक अन्य स्थान पर भगवान पार्श्वनाथ की भी सात फुट ऊंची पद्मासन मूर्ति है। मूर्ति पुरातन होते हुए भी ऐसी प्रतीत होती है जैसे आज ही बनी हो। एक स्थान पर भगवान आदिनाथ की चतुर्मुखी प्रतिमा है। यह

मन्दिर पर्वत को फोड़ कर गुफा मे बनाया हुआ है। मन्दिर का द्वार बहुत छोटा है। ऐसा जानना अशक्य है कि यह प्रतिमा इस छोटे से द्वार से कैसे लाई गई होगी। मन्दिर अत्यन्त भव्य है। मुस्लिम शासनकाल में इसकी रक्षा हेतु द्वार पर एक शिला खड़ी कर दी गई थी जिससे अत्याचारियो का प्रवेश ही नहीं हो सका था।। पूर्व में श्री पार्श्वनाथ भगवान का बिम्ब एक अगुल मोटे लम्बे पत्थर के ऊपर था और पूरा बिम्ब आधार रहित था। कुछ लोगों ने सोचा कि पूरा बिम्ब आधार रहित रह जाएगा अतः उस एक अंगुल पत्थर को भी निकाल लिया जिससे बिम्ब नीचे जमीन पर लग गया। पर्वत पर एक धर्मशाला है। मन्दिर मे छहों ऋतुओं में से किसी का भी प्रकोप नही होता। ग्रीष्म-काल में यहां का वातावरण शीतल रहता है और शीतकाल में उष्ण। धन्य है उन महानुभावों की सूझ-बूझ जिन्होंने विशाल पर्वत खोदकर ऐसा रम्य जिनालय बनाया है।

इस पर्वत के सामने एक पर्वत और है। उस पर भी परकोटा बना है। तत्रस्थ महानुभाव कहते हैं कि कभी यहा पर भी मन्दिर था, वर्तमान में तो कुछ भी नही है।

जितूर से अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ की यात्रा के लिए प्रस्थान किया। १६-१७ मील दूर पर एक पाठशाला मे ठहरे। गर्मी का मौसम था। अत्युष्ण हवा अर्थात् लू चल रही थी। पाठशाला के भीतर बैठने को स्थान नही था, बाहर बैठना सम्भव नही था। सामने ही एक मकान दृष्टिगोचर हुआ। बाहर से ऐसा प्रतीत होता था कि यह जैन मन्दिर है। मन्दिर पर उत्तुंग शिखर था और इसका निर्माण पहाड़ के बड़े-बडे पत्थरो से ही हुआ था। यहां जैन श्रावको के घर नही हैं। यह जान कर प्रश्न उपस्थित हुआ कि तब जैनमन्दिर कहाँ से आ सकता है? किसी ने बताया कि यह हिमाड़पन्थी लोगों का मन्दिर है। यह पूछने पर कि क्या हम लोग वहां कुछ देर ठहर सकते हैं? उत्तर मिला कि हा आप ठहर सकते हैं, उसमें दरवाजा बन्द नही है, किसी के लिए भी रोक-टोक नही है। आतप काल के दो घण्टे वही बिताना ठीक रहेगा यह सोच कर उस मन्दिर मे चले गये परन्तु मन्दिर का अवलोकन कर हमारे आश्चर्य की कोई सीमा नही रही।

यद्यपि वर्तमान मे मन्दिर में महादेव की पिण्डी स्थापित है परन्तु वहा एक मानस्तम्भ गिरा पड़ा है। उसमें जिनबिम्ब है। कपाटरहित दरवाजे की भित्ति पर ऐसे यक्ष स्थापित हैं जिनके मस्तकों पर जिनबिम्ब हैं। मन्दिर में चार स्तम्भ हैं, उन पर जिनबिम्ब खुदे हैं; शिखर पर जिनेन्द्र देव की मूर्ति विराजमान है; जिधर दृष्टि जाती थी उधर ही जिनबिम्ब दृष्टिगोचर होते थे। गर्भगृह में जाकर देखा तो जैसे जैनबद्री में लम्बी शिला पर भगवान विराजमान हैं उसी प्रकार यहां एक वेदी बनी है जिसमे अभिषेक का पानी निकालने के लिए दीवाल से मार्ग बना है। बाहर गोमुख आकार का नाला बना है। कितना विशाल और भव्य मन्दिर! वर्तमान में केवल उसके पत्थर लाखों रुपयों के हैं। वहाँ एक अग्रवाल परिवार रहता है; उसने बताया—यहाँ आस-पास के ग्रामों में

ऐसे सैकड़ों मन्दिर हैं जिनमें जिनबिम्ब हैं; विशाल-विशाल चरण स्थापित हैं। एक-एक गांव मे दो-दो, तीन-तीन मन्दिर है और सब हिमाड़पन्थियों के हाथों में हैं। यह हृदयविदारक वृत्तान्त सुन कर इतना दुःख हुआ कि कुछ कहा नही जा सकता परन्तु दुःख होने से क्या हो ? कर तो कुछ सकते नहीं..... वही बैठ-बैठे दक्षिण के कागवाड़ के मन्दिर की स्मृति आने लगी। राजस्थान में भी पुष्कर में दत्तात्रेय (भगवान नेमिनाथ) के चरण हैं। नन्दीश्वर की मूर्ति है। श्री नेमिनाथ भगवान की वर यात्रा (बरात) के समान रचना बनी है, पर्वत पर सरस्वती की मूर्ति है परन्तु हमारा दुर्भाग्य है कि अब इन पर हमारा अधिकार नही।

यों न जाने कितनी अमूल्य निधियां हमारे जैन समाज ने खो दी है। कुछ पर लिंगायतों का अधिकार हो गया है, तो कुछ यवनों ने दबा ली है। कुछ हिमाड़पन्थियो के हाथो मे चली गई हैं तो कुछ पर श्वेताम्बर समाज ने जबरन कब्जा कर लिया है। परन्तु दिगम्बर जैन समाज कुछ नही कर सकता। बद्रीनारायण में भी श्री आदिनाथ भगवान की परम शान्त मूर्ति है जो पर्वत पर मुख्य मन्दिर में विराजमान है। देवघर (वैद्यनाथ धाम) मे भी चन्द्रप्रभ भगवान की मूर्ति रही थी। जैन आयतनो के विध्वंस की कथा सुनते ही सारा शरीर और मन कांप उठता है; उस जीर्णशीर्ण खण्डित मन्दिर को देखकर आँखो से दो बूंद अश्रु निकल कर रह गई.....क्या कर सकते है कोई उपाय नही।

आज नये मन्दिर बनाने के साधन हमारे पास है परन्तु प्राचीन मन्दिरों एवं शास्त्रों की सुरक्षा के साधन नही, यह उपेक्षा ठीक नहीं। जैन समाज को इस दिशा में विचार कर कोई महत्त्वपूर्ण कदम अवश्य उठाने चाहिए अन्यथा 'इतिहास की पुनरावृत्ति' फिर-फिर होती रहेगी और इतर समाज की इस कुप्रवृत्ति पर नियत्रण पाना कठिन होगा।

यहां से पानगांव, हरियाल आदि गांवों के जिनालयों के दर्शन करते हुए अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ (शिवपुरी) पहुँचे। यहां प्राचोन और विशाल तीन जिनमन्दिर है। मुख्य मन्दिर श्री पार्श्वनाथ भगवान का है जिसमे तीन घण्टे श्वेताम्बर बन्धु और तीन घण्टे दिगम्बर बन्धु अपनी-अपनी आम्नाय के अनुसार बारी-बारी से प्रक्षाल-पूजन करते है।

❖

११

पावाए णिव्वुदो महावीरो

अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ से विहार कर कारञ्जा पहुँचे। साधु जीवन भी बहते पानी की तरह निरन्तर गमनशील रहता है; जिस तरह पानी एक स्थान पर रुकने से निर्मल-स्वच्छ नही रहता उसी तरह साधु भी निरन्तर एक स्थान पर रहे तो मोह, राग द्वेष से आविष्ट हुए बिना नही रह पाता अतः चातुर्मास (वर्षायोग) के अतिरिक्त वह सदा भ्रमणशील रहता है इसीलिए तो साधु को 'चल तीर्थ' कहा जाता है।

साधूनां दर्शनं पुण्यं, तीर्थभूता हि साधवः।
कालेन फलते तीर्थं, सद्यः साधुसमागमः॥

२८ वां वर्षायोग :

विक्रम सवत् २०२७ का वर्षायोग कारंजा में किया। यहां पर विशाल-विशाल तीन मन्दिर हैं। गुरुकुल (आश्रम) में भी अतिमनोज्ञ एवं उन्नत मन्दिर है जिसमें बाहुबली भगवान की खड्गासन सुन्दर प्रतिमा है। तलघर में मणियों की अनेक मूर्तिया हैं। प्रसिद्ध है कि ये मूर्तियां श्री समन्त महाराज गृहस्थावस्था मे मान्यखेट से लाये थे। जैन समाज के सौ घर है; अधिकांश घरों में जिन-चैत्यालय हैं। श्रावक-श्राविकाएँ सुशिक्षित हैं, धर्म में उनकी प्रगाढ रुचि है। काष्ठासंघी जिनमन्दिर विशेषकर काष्ठनिर्मित हैं। शिल्पी द्वारा काष्ठ में निर्मित भगवान नेमिनाथ का वैराग्य एवं विवाह के समय बारात की शोभा यात्रा, हाथी-घोड़े आदि के चित्राम अतीव शोभनीय हैं। इस मन्दिर के तलघर में बडे-बडे जिन बिम्ब हैं। स्फटिक, पुखराज, मूंगा, गौमेद, वैडूर्य आदि अनेक प्रकार के रत्नों की मूर्तियां ऊपरी भाग में विराजमान हैं। एक सेनगण मन्दिर है। इसमें स्थित श्री पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा अत्यन्त प्राचीन है। गुरुकुल में लगभग पांच सौ छात्र ज्ञानार्जन करते हैं।

कारञ्जा से अञ्जनगांव आए। यहां से मुक्तागिरि पहुँचे; वहां लगभग पन्द्रह दिन रुके। पूज्य बड़े माताजी आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी की अपनी दीक्षा के बाद मुक्तागिरि की यह तीसरी यात्रा थी। सिद्धक्षेत्रों के दर्शन-वन्दन से जिस आनन्द की अनुभूति होती है, वह वचनातीत है। मुक्तागिरि से भातकुली पहुँचे।

भातकुली में एक प्राचीन मन्दिर है। श्री आदिनाथ भगवान का प्राचीन मनोज्ञ बिम्ब है। किंवदन्ती है कि पहले यहां मन्दिरों की संख्या अधिक थी तथा अनेक चमत्कारी घटनायें घटती थी। यहां आकर निवास करने वाले जीवो के भयानक से भयानक रोग भी दूर हुए हैं। यहां पर यदि कोई ग्वाला दूध में पानी मिला कर बेचता तो उसकी गाय के स्तनो में खून हो जाता, आदि-आदि। भगवान आदिनाथ का यह बिम्ब अत्यन्त प्रभावशाली है, इसके सामने से उठने की भावना नही होती। बिम्ब पर अंकित लेख अस्पष्ट है पढने में नहीं आता।

भातकुली से अमरावती गये। अमरावती में भी जैनधर्म की प्राचीनता सिद्ध करने वाले तीन-चार मन्दिर हैं। यहां से कुंडाल के जिनमन्दिर के दर्शन करते हुए बाजार गांव पहुँचे। यहा पर नौ शिखरो वाला एक विशाल मन्दिर है। सभी वेदियों में विशाल-विशाल प्राचीन मनोज्ञ बिम्ब हैं। परन्तु लिखते हुए खेद होता है कि वहां श्रावकों का एक भी घर नही है; पूजा करने वाला पुजारी भी नहीं है। मन्दिरजी की देख-रेख करने वाला कोई नही है क्योंकि यह जंगल में स्थित है। कहते हैं कि पहले यहां श्रावकों के भी घर थे परन्तु इस समय तो वहां जैनों का एक भी घर-परिवार नही है। उस विशाल मन्दिर के दर्शन कर मन आनन्द से रोमाञ्चित हो उठा। धन्य है जिन महानुभावों ने अपनी चञ्चला लक्ष्मी का सदुपयोग कर जैनधर्म की प्रभावना हेतु इतने सुन्दर-सुन्दर जिन-आयतनों का निर्माण करवाया और अपने जन्म को इस प्रकार सार्थक किया। उस मन्दिर की वर्तमान स्थिति देख कर हृदय में विचार आने लगा—"अहो ! आज जैन समाज मे कितना घोर अन्धकार व्याप्त है। उसमें जैनधर्म और जैन आयतनों के प्रति अनुराग नहीं है; जैन विद्वानों के प्रति सहानुभूति की भावना नहीं है, शायद इसीलिए प्राचीन जैनायतनों का और जैन विद्वानो का ह्रास होता जा रहा है।

बाजारगांव से नागपुर आए। नागपुर प्राचीन शहर है; बहुत संख्या मे जैन समाज है यहां। खण्डेलवाल, अग्रवाल, परवार, श्वेतवाल, तथा बड़ानेरा, नरसिहपुरा, बघेरवाल, हुमच, चतुर्थ, पञ्चम आदि जातियों के श्रावक रहते हैं। ९-१० विशाल जिनमन्दिर है।

इतवारी पेंठ में स्थित विशालमन्दिर के तलघर में परम वीतराग मुद्रा समन्वित श्री शान्तिनाथ भगवान का अतिशययुक्त बिम्ब है। काष्ठासंघी मन्दिर भी बहुत प्राचीन है। उसके तलघर में अनेक प्राचीन बिम्ब विद्यमान हैं। परवार जाति के श्रावकों द्वारा निर्मापित विशाल जैन-मंदिर में नौ वेदियां हैं। बाहुबली भगवान की विशाल मूर्ति है, वहां कितने ही अतिशय भी दृष्टिगोचर

नागपुर से विहार करते हुए

होते हैं। नागपुर शहर मे संघ लगभग डेढ़ मास रहा। दो बार सार्वजनिक सभाओं मे प्रवचन हुए। एक दिन रथयात्रा भी निकाली गई, उस दिन नवयुवकों का उत्साह अत्यन्त प्रशंसनीय था। सारा मार्ग पुष्पवृष्टि से व्याप्त हो गया था; लगभग बीस हजार जनता उस समय उपस्थित थी। केशलोच समारोह भी विशेष प्रभावनापूर्वक सम्पन्न हुआ। साध्वीसंघ के क्रिया कलापों से महती धर्मप्रभावना हुई। नागपुर से प्रस्थान करते समय दो तीन मील दूर तक हजारो स्त्री पुरुष साथ में आए थे।[1]

नागपुर से बारह मील दूरी पर कामटी ग्राम है। यहां के विशाल प्राचीन जिनमन्दिर में पत्थर पर खुदाई का काम दर्शनीय है। मनोज्ञ जिनबिम्ब हैं। तलघर में भगवान आदिनाथ का विशाल बिम्ब है। धर्मायतन होते हुए भी यहां पर श्रावकों का विशेष सद्भाव नही है।

नागपुर में सार्वजनिक भाषण करते हुए

इस प्रान्त में तथा दक्षिण में भी जितने मन्दिर हैं, वे सबके सब प्राचीन एवं विशाल हैं, इससे अनुमान लगता है कि कभी यहाँ दिगम्बर जैन श्रावकों के बहुत घर थे, जो किसी कारण से कालान्तर में धर्मच्युत हो गये। इसका उदाहरण यह है कि वर्तमान में नागपुर में कलालों के सहस्रों घर हैं, वे अपने को जैन कलाल कहते हैं परन्तु जैनधर्म का आचार विचार नही पालते, न कभी जिनमन्दिर मे प्रवेश करते हैं; शराब का धन्धा करते हैं।

कामटी से विहार कर रामटेक पहुँचे जो कामटी से २७ मील दूर है। रामटेक अतिशय क्षेत्र है। यहां शान्तिनाथ भगवान का प्राचीन, मनोज्ञ, विशाल, खड्गासन बिम्ब है जिसके दर्शनों से

---

१. दैनिक समाचार पत्रों में आपके प्रवचन आदि के समाचार प्रकाशित होते थे अतः आस-पास के स्थानों से अनेक स्त्री-पुरुष अपने-अपने साधनों द्वारा हजारों की संख्या मे प्रवचन श्रवण हेतु पहुँचते थे। प्रबुद्ध श्रोता आर्यिकाओ से अपनी शकाओ का समाधान भी प्राप्त करते थे। समय-समय पर आकाशवाणी के नागपुर केन्द्र से समाचार एव प्रवचनो का सार भी प्रसारित होता था। —सम्पादक

परम शान्ति की प्राप्ति होती है। इस मन्दिर में नौ वेदियां हैं, शिखर और परकोटा भी क्रमशः उन्नत और विशाल हैं।

यहा से सिवनी गये। सिवनी में दो मन्दिर हैं। एक मन्दिर बहुत विशाल है; इसमें पांच वेदियां हैं। मन्दिर के उपरिभाग में श्री भगवान बाहुबली का खड्गासन बिम्ब है, नीचे वेदी में भगवान आदिनाथ एवं भगवान पार्श्वनाथ के बहुत सुन्दर प्रभावशाली बिम्ब हैं।

सिवनी से १६ मील दूर पर स्थित छपारा पहुँचे। यहां के प्राचीन मन्दिरजी में भगवान महावीर का अतिशययुक्त बिम्ब है। जो मानव अपनी भावना लेकर आता है, उसकी भावना पूर्ण होती है। यहां से १५ मील दूर पर लखनादोन पहुँचे। यहां के जिन मन्दिरजी मे भगवान महावीर के प्राचीन बिम्ब के दर्शनो से अपने नेत्र तृप्त कर धूमां गांव के मन्दिर के दर्शन करते हुए वर्गी पहुँचे। उस समय वहाँ पर पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव था।

वर्गी से २० मील दूर मढ़ैयाजी है। यहाँ एक छोटे से पर्वत पर बहुत से मन्दिर है। इनकी शोभा अद्भुत है। पर्वत पर अलग-अलग वेदी में २४ तीर्थङ्करों के २४ जिनबिम्ब है। भगवान बाहुबली की विशाल खड्गासन मूर्ति है। श्री आदिनाथ भगवान और श्री महावीर भगवान के मन्दिर भी काफी बड़े हैं। चार प्राचीन मन्दिर है। समवसरण की रचना है। श्री सम्मेदशिखर तीर्थराज की रचना होने की तैयारी है। पर्वत से नीचे मन्दिर, गुरुकुल एवं धर्मशाला है। दरवाजे पर चक्की पीसती हुई एक बुढ़िया की मूर्ति बनी है। किवदन्ती है कि एक पीसने वाली स्त्री ने अपनी कमाई के पैसे बचाकर यह मन्दिर बनवाया था, उस विशाल एव भव्य मन्दिर के दर्शन कर चित्त अतिशय आह्लाद को प्राप्त होता है। जबलपुर यहां से चार मील दूर पर है।

जबलपुर 'जैनियों की काशी' कहा जाता है। प्राचीन नगर है लगभग तीन-चार हजार घर हैं जैनियों के, जिनमें विशेष परवार जातीय हैं। ६-१० प्राचीन और विशाल जिनमन्दिर हैं, जो इस बात के सूचक हैं कि यहा पुरा काल मे जैनों की संख्या थी। 'हनुमान ताल' के पास स्थित विशाल जिनमन्दिर मे २४ वेदियां है। भगवान महावीर का यक्ष यक्षिणी एवं अष्ट प्रातिहार्य सहित प्राचीन बिम्ब है जिसके दर्शनों से हृदय अत्यन्त आनन्दित होता है। अन्य भी जितने मन्दिर हैं सभी अत्यन्त प्राचीन एवं विशाल हैं। सबमें अद्वितीय सौन्दर्य के दर्शन होते हैं।

जबलपुर से साध्वीसंघ पनागर पहुँचा। यहां तीन मंदिर हैं। एक मंदिरजी मे श्री शांतिनाथ भगवान का प्राचीन विशाल बिम्ब है। कितनी ही वेदियों में प्राचीन विशाल बिम्ब स्थापित है।

यहां से मार्ग में अनेक गांवों के जिनमन्दिरों के दर्शन करते हुए संघ कटनी पहुँचा। कटनी अमरनाथ होते हुए सतना आए। सतना मे श्री शान्तिनाथ भगवान का विशाल बिम्ब है। सतना से रीमा गये।

रीमा में सतना, पनागर के समान श्री शान्तिनाथ भगवान का एक खड्गासन बिम्ब है। यद्यपि इसका शिलालेख जीर्णशीर्ण हो जाने से पढ़ने में नहीं आता, तथापि अनुमान से ऐसा प्रतीत होता है कि सतना, पन्नागू और रीमा इन तीनों गांवों की प्रतिमाएँ समकालीन हैं। रीमा से मिर्जापुर होते हुए बनारस पहुँचे।

जिस प्रकार अतिशय विशेष के कारण कोई क्षेत्र 'अतिशय क्षेत्र' बन जाता है तथा दर्शनीय और पूजनीय हो जाता है, उसी प्रकार तीर्थङ्करों के गर्भ, जन्म, तपश्चर्या एवं केवलज्ञानोत्पत्ति के स्थान भी दर्शनीय मंगलक्षेत्र बन जाते हैं। काशीनगरी भगवान सुपार्श्वनाथ और भगवान पार्श्वनाथ के जन्म से पवित्र होने के कारण साधको के लिए पुण्यधाम बन गई है। पं० बनारसीदासजी ने बनारस की प्रशंसा करते हुए अपने जीवनचरित्र में लिखा है—

पाणि जुगल पुट शीश धरि, मानि अपन पौ दास।
आनि भगति चित्त जानि, प्रभु बन्दौं पारसनाथ॥
गंगा मांहि आइ धँसि, द्वं नदी वरुना असी,
बीच बसी बनारसी नगरी बखानी है।
कसिवार देस मध्य गाँऊ तातै काशी नाऊं,
श्री सुपारस पास की जनमभूमि मानी है॥
तहाँ दुहु जिन शिवमारग प्रकट कीनौ,
तब सेती शिवपुरी, जगत में जानी है।
ऐसी विधि नाम थपे, नगरी बनारसी के,
और भाँति कहैं सो तो मिथ्यामत वानी है॥

महाकवि का 'बनारस' नाम पर बड़ा आदर भाव प्रतीत होता है; उस काशी की महिमा का क्या वर्णन किया जाय।

काशी से आरा होते हुए पटना पहुँचे। यहाँ पांच-छह प्राचीन मन्दिर हैं। सुदर्शन सेठ का निर्वाणक्षेत्र है यह भूमि। गुलजार बाग में सेठ सुदर्शन के चरण चिह्न हैं। यहां से विहार पहुँचे। तीर्थङ्करों ने इस देश में विहार किया था, इसलिए इस क्षेत्र (प्रान्त) को 'विहार' कहते हैं। महावीर प्रभु के जन्म से पवित्र कुण्डलपुर (कुण्डग्राम) इसी प्रान्त में है, उसकी शोभा अद्भुत है। यहाँ भगवान महावीर की अतिशय शोभा सम्पन्न मनोज्ञ मूर्ति है। यहां के दर्शन वन्दनादि करके राजगृही पहुँचे।

जैन संस्कृति के विकास और संवर्द्धन की पुनीत पुण्यभूमि के रूप में राजगृही नगरी का महत्त्व सर्वोपरि है। भगवान वासुपूज्य के अतिरिक्त सभी २३ तीर्थङ्करों ने कैवल्य लाभ के उपरान्त

अपनी धार्मिक-देशना से राजगृही को पवित्र किया था। बीसवें तीर्थङ्कर श्री मुनिसुव्रतनाथ भगवान के जन्म से यह पञ्चशैलपुर—राजगिरि पवित्र है। 'हरिवंश पुराण' मे लिखा है—"पञ्चशैलपुरं पूतं मुनिसुव्रतजन्मना।"

भगवान महावीर प्रभु की धर्मसभा के प्रधान पुरुषरत्न सम्राट् बिम्बसार श्रेणिक की निवासभूमि राजधानी यही राजगृही थी। इसके पूर्व में चतुष्कोण ऋषिशैल, दक्षिण में वैभार और नैॠत्यदिशा में विपुलाचल पर्वत है। पश्चिम, वायव्य और उत्तर दिशा में छिन्न नामका पर्वत है। ईशान दिशा में पाण्डु पर्वत है। 'हरिवंशपुराण' से विदित होता है कि भगवान महावीर ने जृम्भिक ग्राम की ऋजुकूला नदी के तीर पर बैसाख सुदी १० को केवलज्ञान प्राप्त किया था। गणधर का योग न मिलने से ६६ दिन तक प्रभु का मौन विहार हुआ और तब वे राजगृहनगर पधारे।

आचार्य जिनसेन ने राजगृही को 'जगत्ख्यातम्' विशेषण देकर उस पुरी की लोकप्रसिद्धि को प्रकट किया है। अनन्तर, भगवान ने जिस प्रकार सूर्य विश्व के प्रबोधन निमित्त उदयाचल को प्राप्त होता है उसी प्रकार अपरिमित श्रीसम्पन्न विपुलाचल शैल पर आरोहण किया। हरिवंशपुराण-कार ने लिखा है—

षट्षष्टिदिवसान् भूयो मौनेन विहरन्प्रभुः।
आजगाम जगत्ख्यातं, जिनो राजगृहं पुरं॥
आरुरोह गिरिं तत्र विपुलं विपुलश्रियं।
प्रबोधार्थं स लोकानां भानु भानूदयं यथा॥

६६ दिन तक मौन से विहार करते हुए भगवान महावीर जगत्विख्यात राजगृही नगरी मे आए। जिस प्रकार प्रबुद्ध करने के लिए उदयाचल पर सूर्य आरूढ होता है, उसी प्रकार भव्यजीवों को प्रबोध प्रदान करने हेतु विपुल शोभासम्पन्न विपुलाचल पर वीरप्रभु आरूढ़ हुए।

भगवान की दिव्यध्वनि के प्रकाशन हेतु योग्य गणधरादि की प्राप्ति होने पर विपुला-चल को ही सर्वप्रथम यह सौभाग्य प्राप्त हुआ कि ६६ दिन के बाद श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के प्रभात में—जब सूर्योदय हो रहा था और अभिजित् नक्षत्र भी उदित था—भगवान के द्वारा धर्मतीर्थ की उत्पत्ति हुई। 'तिलोयपण्णत्ति' में आचार्य यतिवृषभ ने श्रावण कृष्णा प्रतिपदा को युग का आरम्भ होना बताया है—

वासस्स पढममासे सावण णामम्मि बहुल पडवाए।
अभिजीणक्खत्तम्मि य उप्पत्ती धम्मतित्थस्स॥
सावणबहुले पाडिवरुद्द मुहुत्ते सुहोदये रविणो।
अभिजिस्स पढमजोए, जुगस्स आदी इमस्स पुढं॥

संसार के महान् ज्ञानी सन्त जन और पुण्यात्मा नर-नारियों के आवागमन से राजगृही का भाग्य चमक उठा। अनेकान्त विद्या के सूर्य ने राजगृही के विपुलाचल के शिखर से मिथ्यात्व अन्धकार निवारिणी किरणें विकीर्ण कर ज्ञान का प्रकाश फैलाया। अतः राजगृही और विपुलाचल के दर्शन आज भी साधक के हृदय मे भगवान महावीर के समवशरण की स्मृति जागृत कर देते हैं। राजगृही का नाम साधकों को स्मरण कराता है उस अतीत की, आध्यात्मिक जागरण सम्पन्न उस काल की जब वनमाली ने आकर मगध सम्राट् श्रेणिक को यह श्रुति सुखद समाचार सुनाया था कि श्री वीर प्रभु विपुलाचल पर पधारे हैं।

वनमाली की वार्ता सुन कर श्रेणिक का सारा शरीर रोमांचित हो उठा, हृदय आनन्द विभोर हो गया। वे तत्काल उठे और जिस दिशा में प्रभु विराजमान थे उस दिशा में सात कदम आगे बढ़कर उन्होने भक्तिपूर्वक साष्टांग नमस्कार किया, यह शुभसमाचार देने वाले वनमाली को पुरस्कार स्वरूप अपने शरीर के बहुमूल्य वस्त्राभूषण प्रदान किए। श्रेणिक अपने परिजनों और पुरवासियों के साथ भगवान के समवसरण मे पहुँचे। समवसरण के इस प्रधान श्रोता ने जिज्ञासावश साठ हजार (६०,०००) प्रश्न किए; उनका उत्तर पाकर राजा को असीम सन्तोष हुआ। अपने निर्मल परिणामों के कारण श्रेणिक ने वीर प्रभु के चरणसान्निध्य मे क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त कर तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध किया तथा अनेक भव्यजीवों को सम्यग्दर्शन की उपलब्धि हुई। किन्हीं ने चारित्र धारण किया। वीर प्रभु की चरणरज से पवित्र राजगृही की महिमा अगम है; उसके दर्शन से आत्मा पवित्र होती है।

राजगृही से साध्वीसंघ पावापुरी पहुँचा।

पावापुरी :—भगवान महावीर के जीवन का इतिहास और उनके त्याग की अमर कहानी बिहार प्रान्त के पावापुर ग्राम में विद्यमान सरोवरस्थ धवल जिनमन्दिर में मिलती है।

भगवान महावीर :— आज से २५०० सौ वर्ष पूर्व कुण्डलपुर में क्षत्रिय शिरोमणि प्रतापी शान्तिप्रिय नरेश सिद्धार्थ की महिषी प्रियकारिणी की कुक्षि से चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन जगदुद्धारक परम तेजस्वी भगवान महावीर ने जन्म लिया था—जिनके जन्म-समय पर नरक में रहने वाले नारकियों को भी कुछ क्षणों के लिये शान्ति मिली थी। जिनके जन्म के प्रभाव से इन्द्र का आसन कम्पायमान हुआ था तथा व्यन्तरदेवों के सदनों में बिना बजाये पटहों की ध्वनि, ज्योतिषिदेवों के विमानों में सिंहनाद, भवनवासियों के भवनों में शंखगर्जना एवं कल्पवासियों के विमानों में घण्टों की आवाज गूंजने लगी थी। इन चिह्नों के द्वारा इन्द्र ने भगवान का जन्म जानकर चतुर्निकाय के देवों सहित ऐरावत हाथी पर आरूढ़ होकर कुण्डलपुर की तीन प्रदक्षिणा देकर नगर में प्रवेश किया तथा इन्द्राणी को माता के समीप प्रसूतिघर में भेजा। प्रसूतिघर में प्रवेशकर इन्द्राणी ने भगवान की

माता की तीन प्रदक्षिणा देकर शिशु वीर प्रभु को गोद में उठा लिया। भगवान के स्पर्श से इन्द्राणी को वचनातीत आनन्द हुआ था। इन्द्राणी ने श्री वीर प्रभु को इन्द्र की गोद में दिया। इन्द्र ने एक हजार नेत्रो से भगवान के रूप का अवलोकन किया एवं बड़े आमोद-प्रमोद के साथ भगवान को लेकर सुमेरु पर्वत पर पहुँचा। मेरु पर्वत पर विशाल-विशाल एक हजार आठ कलशों के द्वारा क्षीरसमुद्र के जल से भगवान का अभिषेक किया गया। प्रभु का नाम "वर्द्धमान" घोषित कर, उन्हे माता-पिता की गोद मे सौंप कर इन्द्र स्वर्ग चले गये। दूज मयंक के समान दिन प्रति दिन (महावीर) वर्द्धमान बढने लगे।

एक समय पराक्रमी वर्द्धमान अपने मित्रों के साथ उद्यान में वृक्ष पर आरूढ़ होकर खेल रहे थे। एक देव ने उनके पराक्रम की परीक्षा करने के लिए महा भुजग-सर्प का रूप धारण कर वृक्ष को वेष्टित कर दिया। सभी बालक भयभीत होकर इधर-उधर भाग गये परन्तु साहसी वर्द्धमान निर्भय होकर खेलते हुए, सर्पराज के मस्तक पर पैर रख कर नीचे उतर गये। उनकी निर्भयता से देव नतमस्तक होकर चरणों में झुक गया, उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगा। तभी से आपको "महावीर" कहने लगे।

एक समय, महाबली वीर प्रभु के दर्शन मात्र से संजय और विजय नाम के दो चारण ऋद्धिधारी मुनियो को पदार्थविषयक शंका दूर हो गई इसलिए उन्होने अपने अन्तःकरण की भक्तिपूर्वक उनको 'सन्मति' संज्ञा प्रदान की।

"तत्सन्देहगते ताभ्यां चारणाभ्यां स्वभक्तितः।
अस्त्वेष स सन्मतिर्देवो भावीति समुदाहृतः ॥"

ज्ञानी ध्यानी भगवान महावीर ने वनिता की बेड़ी मे बँधना योग्य नहीं समझा, इसलिए कुमार अवस्था में ही त्रिलोकविजयी कामदेव को परास्त कर अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया। वे विवाह के बन्धन में नहीं बँधे।

३२ वर्ष की युवावस्था में मंगसिर कृष्णा दसमी के दिन गृहस्थावस्था रूपी पिंजरे को तोड़कर, कामरूपी हस्ती का मानमर्दन कर वीर रूपी सिंह तपोवन की ओर चला गया, उसने समस्त परिग्रह का परित्याग कर नग्न दिगम्बर मुद्रा धारण की।

अब वे पावस ऋतु में वृक्ष के नीचे खड़े होकर ध्यान करने लगे, ग्रीष्म ऋतु में प्रखर सूर्य की किरणों से संतप्त पर्वत की चोटी पर ध्यानमग्न होते थे। शीतकाल में सरिता के तट पर खड़े होकर ध्यान करते थे। उनके तपो माहात्म्य से सर्व ऋतु के फल-पुष्प एक समय में उत्पन्न हो जाते थे।

सारंगी सिंहशावं स्पर्शति सुतधियानन्दनी व्याघ्रपोते,
मार्जारी हंसबालं प्रणय परवशाकेकिकान्ता भुजंगी।
वैराराय जन्म जातन्यपि गलितमदाजन्तवोऽन्येस्त्यजन्ति,
श्रित्वा साम्यैकरूढं प्रशमितकलुषं योगिनं क्षीणमोहं ।।

जिसका सान्निध्य पाकर वनके आजन्म शत्रु पशुओ ने वैर छोड़ दिया एवं शान्त भावको प्राप्त होकर उसकी शान्त मुद्रा की तरफ टकटकी लगा कर देखने लगे थे।

एक समय पावन योगी भगवान महावीर उज्जयिनी नगरी की प्रेतभूमि में आत्मध्यान में लीन थे। उस समय बिना कारण कुपित होकर रुद्र ने उन पर अग्नि की ज्वाला, प्रचण्ड वृष्टि, प्रलय काल की वायु के झकोरे, भूत-प्रेतों के नृत्य, भयकर, विषैले, पशु-पक्षियों के उपसर्ग से उनको योगध्यान से विचलित करने का प्रयत्न किया परन्तु "महामना. यो न चचाल योगत:"—वह महामना अपने ध्येय से विचलित नही हुए, योग्य ही है—क्योंकि क्षुद्र पर्वतों को चलायमान करने वाले पवन के झकोरों से सुमेरु पर्वत कभी चलायमान हो सकता है क्या? अर्थात् नही हो सकता। १२ वर्ष के कठोर तपश्चरण के बाद घातिया कर्मों का नाश कर बैसाख शुक्ला दसमी के दिन महावीर ने केवल-ज्ञान प्राप्त किया—जिस ज्ञान में समस्त विश्व के चराचर पदार्थ दर्पण के समान प्रतिबिम्बित होने लगते हैं। महावीर के जीवन की उदात्त भावनायें, तप: पुनीत ज्ञान एव उनकी देशना समस्त प्राणियों के कल्याण में सहायक बनी थी। उनके तेजपुंज के समक्ष संसार की समस्त दुर्बलताये, अहंभावजन्य अज्ञानताये विलीन हो गई थी। उनका हितोपदेश प्राणीमात्र के लिए हितकर था। उसने बढ़ती हुई हिंसा की ज्वाला को अहिंसा रूपी जल से शान्त किया। उनके अलौकिक जीवन का सान्निध्य पाकर असंख्यात प्राणियों ने अविनाशी शान्त निराकुल अवस्था प्राप्त की थी। उनके उपदेशों से भूतल का पापाचार समाप्त हुआ था, जग में धर्म, अहिसा, संयम का ध्वज फहरा था, "स्वयं जीओ और दूसरों को भी जीने दो" सबको यह सन्देश सुनाया था। "सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वं। माध्यस्थ्य भावं विपरीतवृत्तौ सदा ममात्मा विदधातु देव: ! ।।"

समस्त जीवों के साथ मैत्री भाव, गुणवानों के प्रति प्रमोद भाव, दीन-दु:खी जीवों पर करुणा भाव एवं क्रूर-कुमार्ग पर चलने वालों पर माध्यस्थ भाव का उपदेश दिया था।

प्रभु महावीर की आयु ७२ वर्ष की थी, सात हाथ ऊंचा पीत वर्ण का शरीर था। उनके ११ गणधर थे—छत्तीस हजार आर्यिकाएँ तीन सौ पूर्वधर, निन्यानबे सौ शिक्षक गण, तेरह सौ अवधिज्ञानी, सात सौ केवलज्ञानी, नौ सौ विक्रिया ऋद्धिधारी, पांच सौ विपुल मती, चार सौ वादी, चौदह हजार ऋषि थे। इस प्रकार असंख्यात देव-देवी सहित ३० वर्ष पर्यन्त धर्मोपदेश देकर अन्त में

छह दिन तक योग निरोधकर व्युपरत क्रिया निवृंत्ति शुक्ल ध्यान के द्वारा अघातिया कर्मों का नाश कर भगवान ने अकेले ही पावापुरी से निर्वाण प्राप्त किया।

वीर प्रभु के निर्वाण से परम पवित्र इस पावापुरी की महिमा अगम्य है, जो देवों के द्वारा पूजित है, उस पावापुरी में जल के बीच में विशाल जिनमन्दिर है, एक मुख्य मन्दिर है जिसमें नौ वेदियाँ हैं, महावीर स्वामी का एक विशाल खड्गासन बिम्ब है, प्राचीन बिम्ब भी अतिशय शोभनीय है, जिसके दर्शन से अनादिकालीन कर्म नष्ट हो जाते हैं।

पावापुरी से गुणावा सिद्धक्षेत्र पहुँचे। यह स्थान भगवान महावीर के प्रमुख शिष्य तपस्वी गौतम गणधर की निर्वाणभूमि है। उनके जीवन की दिव्य स्मृति से आत्म-जागृति होती है।

इन्द्रभूति गौतम ब्राह्मण अन्य दर्शनों के पारगामी पण्डितों सहित महावीर प्रभु के शासन का भयंकर विरोधी बन कर भगवान के साथ शास्त्रार्थ करने की भावना से समवसरण में आया, परन्तु समवसरण के मनोज्ञ मानस्तम्भ की एवं अन्य विभूति को देखकर वह मान रहित हो गया। प्रभु के समीप पहुँचते ही उस एकान्तवादी को आत्मा में अनेकान्तवादरूपी सूर्य को सुनहरी किरणों ने प्रवेश कर हृदय में छिपे हुए मोह-मिथ्यात्व के निविड़ अन्धकार को दूर कर दिया, जिससे वह प्रभु का परम भक्त एवं सम्यग्दृष्टियों में शिरोमणि हो गया। उसने तत्काल ही संसार-शरीर और भोगों से विरक्त होकर समस्त परिग्रह का त्याग कर दिगम्बर मुद्रा धारण की।

जिनमुद्रा धारण करते ही वे अनेक ऋद्धियों एवं मनःपर्ययज्ञान के स्वामी बन गये, तथा आत्मज्ञान साधकों की श्रेणी में प्रमुख श्रमण सघ के अधिपति भगवान के मुख्य गणधर बन गये। केवलज्ञानोत्पत्ति के ६६ दिन के अनतर श्रावण प्रतिपदा के दिन वीर भगवान की वाणी का प्रादुर्भाव हुआ। उसे सुनकर शास्त्ररूप रचना करने का सौभाग्य गौतम गणधर को प्राप्त हुआ। अन्त में, केवलज्ञान प्राप्त कर उन्होंने इस गुणावा क्षेत्र से निर्वाण प्राप्त किया, इसलिये यह क्षेत्र परम पवित्र है। यहां भी पावापुर के समान जल के बीच मे मन्दिर है जिसमें गौतम गणधर के चरण चिह्न बने हुए है, परन्तु यह मन्दिर एवं विशाल धर्मशाला दिगम्बर समाज के अधिकार में नही है। सड़क पर एक अन्य मन्दिर बना है जिसमें अतीव मनोज्ञ जिन बिम्ब है, छोटा सा मानस्तम्भ भी है, छोटी धर्मशाला है परन्तु क्षेत्र अत्यन्त रमणीय है। गौतम गणधर का स्मरण होते ही परिणामों की विचित्रता का भान होता है।

यहां से दो मील दूर पर नवादा शहर है—जहाँ एक मन्दिर है व श्रावकों के १०-१२ घर हैं। लगभग सभी जैन सिद्धक्षेत्रों एवं अतिशय क्षेत्रों मे श्रावकों का और वाहनों का भी अभाव है। गुणावा से १५० मील दूर पर नाथनगर है—जो वासुपूज्य भगवान के पांचों कल्याणों से पवित्र है।

आज से कुछ समय पूर्व चम्पानाले के समीप श्री वासुपूज्य भगवान के चरण चिह्न एवं विशाल मन्दिर था जिस पर दिगम्बर समाज का अधिकार था परन्तु वर्तमान में उस पर श्वेताम्बर लोगों का अधिकार है। दिगम्बर जैनों के दो मन्दिर है। नाथनगर में मानस्तम्भ निर्माण की योजना चल रही है। वहाँ से दो मील पर भागलपुर शहर है जिसमें एक मन्दिर, धर्मशाला और श्रावकों के ४०-५० घर हैं।

भागलपुर से ३० मील दूरी पर वासीग्राम है। वहां एक जैन मन्दिर है। यहां से दो मील दूर पर मन्दारगिरि नामक पर्वत है। इस पर्वत से भगवान वासुपूज्य स्वामी ने निर्वाण प्राप्त किया है। वहां पर तीन जगह चरण चिह्न हैं, दो स्थानों पर पर्वत में उत्कीर्ण चरण है; पर्वत पर जिनबिम्ब नही हैं। पर्वत के निचले भाग में तालाब है, मध्यभाग में पर्वत के झरने का पानी बहता है, उस तालाब के पानी व शुद्ध हवा से यात्रियों की थकावट दूर हो जाती है।

यहाँ से गिरिडीह होते हुए श्रीसम्मेदशिखरजी पहुँचे।

❖

चार कष्ट साध्य

अक्खाण रसणी कम्माण मोहणी तह वयाण बम्भं च।
गुत्तीसु य मणगुत्ती चउरो दुक्खेहिं सिज्झन्ति ॥

इन्द्रियों में जीभ, कर्मों में मोहनीय, व्रतों में ब्रह्मचर्य और गुप्तियों में मनोगुप्ति—ये चारों कष्ट से सिद्ध होते हैं।

१२

कलकत्ता वर्षायोग

२६ वाँ वर्षायोग :

साध्वी संघ ने विक्रम संवत् २०२८ का वर्षायोग तीर्थराज श्री सम्मेदशिखरजी के पावन सिद्धक्षेत्र पर किया। स्व० प्रातः स्मरणीय आचार्यश्री १०८ महावीरकीर्तिजी महाराज के शिष्य श्री पार्श्वसागरजी महाराज ने भी इस वर्ष यही वर्षायोग किया था। यह चातुर्मास विशेष आनन्द एवं धर्मप्रभावनापूर्वक सम्पन्न हुआ। परम पवित्र तीर्थक्षेत्रों का संयोग महान् पुण्योदय से प्राप्त होता है। किसी सिद्धक्षेत्र पर वर्षायोग का यह हमारा प्रथम अवसर था।

नागौर के वर्षायोग (विक्रम संवत् २०१५) को सम्पन्न करने के बाद सम्पूर्ण यात्राओं में जिनका हमें परिपूर्ण सहयोग मिला है उनमें ब्र० देवकुमारी (१७ वर्ष से); ब्र० हरकी बाई (१३ वर्ष से) सन्तोष बाई (१३ वर्ष से) कुमारी प्रमिला (१० वर्ष से), और ब्र० कैलाशचन्द्र (१० वर्ष से) का नाम सर्वोपरि है।

परम पूज्य माताजी इन्दुमतीजी की सौम्य मूर्ति से प्रभावित होकर कारन्जा में कुमारी कुसुम व कुमारी विद्युल्लता ने आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत अंगीकार किया था; अन्य भी कई बालिकाएँ आपके सान्निध्य में अध्ययन रत रही हैं।

तीर्थराज को छोड़कर जाने की भावना न होते हुए भी विहार करके साध्वीसंघ ईसरी आया।

सम्वत् २०१२ में यहां महान् तपस्वी योगिराज आचार्य १०८ श्री महावीरकीर्तिजी का चातुर्मास हुआ था। तब से अब में पर्याप्त भौतिक परिवर्तन दृष्टिगत हुआ। श्री बीसपन्थी कोठी में

विशाल मन्दिर एवं धर्मशाला बनी है, आश्रम में भी विशाल भव्य मन्दिर एवं वर्णीजी का स्तूप बना है तथा महिला आश्रम में भी एक अत्यन्त आकर्षक जिनमन्दिर निर्मित हुआ है।

संघ ईसरी से हजारीबाग पहुँचा। यहां दो मन्दिर है; श्रावकों के ५०-६० घर हैं। संघ के लगभग दो माह तक यहाँ रुकने से अच्छी धर्मप्रभावना हुई। हजारीबाग से रामगढ़ होते हुए राँची पहुँचे। यहां के जिनमन्दिर में प्राचीन मानभूमि क्षेत्र से निकली हुई आदिनाथ भगवान की दो खड्गासन मूर्तियां हैं। मूर्तियों के मस्तक पर लम्बे-लम्बे बाल है जिनके अवलोकन से ऐसा अनुमान लगता है कि मूर्तिकार ने उस समय की आकृति को पत्थर मे तराशा है जब भगवान ने १२ माह तक ध्यान किया था।

राँची से रामगढ, पेटरवाल, सादम, गोमियां, सरियादि के मन्दिरो के दर्शन कर तथा विधान-अनुष्ठानादि से धर्मप्रभावना करते हुए संघ पुनः तीर्थराज की वन्दना हेतु सम्मेदाचल पहुँचा।

यहा आचार्यश्री १०८ विमलसागरजी महाराज के सघ के दर्शनों का लाभ मिला। आचार्यश्री शिवसागरजी महाराज के शिष्य श्री सुपार्श्वसागरजी के आगमन से उनके पुनीत दर्शनो का भी लाभ प्राप्त हुआ। त्यागी व्रतियों के विशाल संघ का सान्निध्य पा कर हृदय में अतिशय मोद हुआ। यहां पर कलकत्ता महानगरी के धर्मप्रेमी श्रद्धालु श्रावकों ने कई बार आ-आ कर कलकत्ता मे वर्षायोग सम्पन्न करने की प्रार्थना की। यहाँ २० दिन रुकने के बाद, धर्म के प्रचार-प्रसार एवं श्रावकों की अन्तरंग भावना को लक्ष्य कर कलकत्ता में वर्षायोग सम्पन्न करने हेतु दिनाङ्क २८–६–७२ को विहार किया।

महानगरी–कलकत्ता की ओर :

मार्ग में भव्य जीवो को सम्बोधित करते हुए तथा रानीगंज, अण्डाल, चिन्सुरा, उत्तर-पाड़ा, बाली आदि मन्दिरों के दर्शन करते हुए साध्वीसंघ ने विक्रम संवत् २०२९ की आषाढ़ शुक्ला छठ दिनाङ्क १६–७–७२ को भारत की प्रधान औद्योगिक नगरी कलकत्ता में प्रवेश किया। विहार-मार्ग में अनेक बंगाली-परिवारों ने मद्य-मास का त्याग कर अहिंसा मार्ग का अवलम्बन लिया।

कलकत्ता प्रवेश के समय आर्यिका माताओं के दर्शनार्थ अपार जनसमूह उमड़ पड़ा था। सड़कों पर, मकानों पर सर्वत्र उमंगित स्त्री-पुरुष ही दिखाई दे रहे थे। नगर प्रवेश की शोभायात्रा में अनेक बैण्ड-पार्टियाँ थी; रंग-बिरंगी झण्डियां लिये विद्यालयों के बालक-बालिकाएँ थीं, जय-जयकार के निनाद से आकाश को भी गुंजरित करने वाले स्त्री पुरुषों का अपार समुदाय था। बड़े उत्साह पूर्वक शोभा यात्रा बढ़ती थी। मार्ग में पड़ने वाले सभी जिनमन्दिरों के दर्शन करते हुए संघ श्री दिगम्बर जैन बालिका विद्यालय भवन में पहुँचा। शोभायात्रा का जनसमुदाय सभा में परिवर्तित

हुआ। सामयिक उद्‌बोधन के अनन्तर सभा विसर्जित हुई। संघ के ठहरने की व्यवस्था इसी विद्यालय भवन में थी। दर्शन-वन्दना हेतु बाहर से पधारने वाले यात्रियों के ठहरने की व्यवस्था 'विद्यालय भवन' एवं 'जैन भवन' दोनों स्थानों पर की गई थी।

३० वाँ वर्षायोग :

वर्षायोग स्थापना हेतु आर्यिका सघ से श्री नथमलजी सेठी, श्री चाँदमलजी बडजात्या आदि ने पुन: प्रार्थना की। आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी को श्री दिगम्बर जैन बड़े मन्दिरजी मे सायं ६·३० बजे वर्षायोग स्थापना समारोह सम्पन्न हुआ। आर्यिकाओं के प्रवचन प्रतिदिन मन्दिरजी में हुआ करते थे। विशेष अवसरों पर विद्यालय में व अन्यत्र हुए प्रवचनो से जैनाजैन जनता लाभ उठाती थी।[1]

समय-समय पर सोलहकारण, दशलक्षण, रत्नत्रय, शान्तिविधान, ऋषिमण्डल, सिद्धचक्र[2] आदि अनेक विधान-अनुष्ठान हुए।

स्वर्गीय आचार्य श्री शान्तिसागरजी, वीरसागरजी, महावीरकीर्तिजी, शिवसागरजी एवं चन्द्रसागरजी महाराज के पुनीत समाधि दिवस ससमारोह मनाये गये।

ब्र० सूरजमलजी, ब्र० शिवकरणजी (लाडनूं), ब्र० हीरालालजी पाटनी (निवाई), पं० सुमेरुचन्द्रजी दिवाकर (सिवनी), पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य (सागर), पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्री, (बनारस), पं० छोटेलालजी बरैया (उज्जैन), पं० मनोहरलालजी शास्त्री (रांची), पं० श्यामसुन्दरलालजी शास्त्री (फिरोजाबाद), प० तनसुखलालजी काला (बम्बई) आदि विद्वानों के आने से शंका-समाधान एवं ज्ञानचर्चा का विशेष अवसर मिला।

मार्गशीर्ष कृष्णा त्रयोदशी के दिन संघ बेलगछिया उपवन में गया। यहां पर प्रतिदिवस प्रात:काल प्रवचन होता, अवकाश के दिन मध्याह्न मे प्रवचन होता एवं विधानादि होते। २६ जनवरी, ७३ को ब्र० सूरजमलजी के निर्देशन-संयोजन में श्री मिश्रीलाल, धर्मचन्द, गणपतराय काला द्वारा 'वृहत् तीन लोक मण्डलविधान'[3] का आयोजन हुआ। सम्पूर्ण कार्यक्रम निर्विघ्नरीत्या विशेष प्रभावना पूर्वक सम्पन्न हुआ।

---

१. प्रवचनपटु आ सुपार्श्वमतीजी के व्याख्यानो को श्रोता समुदाय एकाग्रता से मन्त्रमुग्ध हुए सुनते थे। आपकी प्रवचनशैली अतीव रोचक है, शास्त्रीय आधार पर प्रमेयो की व्याख्या सर्वग्राह्य होती है।

२ कार्तिक मे श्री चादमल, नेमीचन्द, पारसमल बड़जात्या द्वारा और फाल्गुन मे श्री मदनलाल, पन्नालाल, रतनलाल काला द्वारा आयोजित किये गये।

३. विधान की रचना मे तीनलोक का नक्शा, मन्दिरो, ध्वजाओं, पहाड़ो, नदियों आदि का कलात्मक आलेखन अतीव सौन्दर्यशाली था। यह रचना आर्यिका सुप्रभामतीजी व विद्यामतीजी के विशेष प्रयत्नो से दर्शनीय बनी थी। इस जैन कला के फोटो भी लिए गए और फिल्म भी बनी है। --सं०

लगभग ढ़ाई मास के प्रवास के बाद संघ पुनः कलकत्ता स्थित बड़ा बाजार अंचल में आया।

धर्मानुरागी श्रावकों की विशेष भक्ति एवं विशेष कारण से संघ को साढ़े आठ माह तक यहां पर रुकना पड़ा[1]। तीव्र भावना थी खण्डगिरि, उदयगिरि की यात्रा करने की परन्तु भाग्योदय बिना पुरुषार्थ भी नही चलता। धुलियान जिला मुर्शिदाबाद के श्रावकों का विशेष आग्रह था कि बंगाल में दिगम्बर जैन साधुओं का सैकड़ों वर्षों से विहार नही हुआ है अतः साध्वी संघ एक बार उधर भी पधार कर श्रावकों के आचार-विचार को धर्ममार्ग मे प्रवृत्त करे।

संघ की हार्दिक इच्छा उस क्षेत्र में जाने की नही थी परन्तु किसी ने बताया कि इधर से भागलपुर का भी मार्ग है। दूरी ज्यादा नहीं कुल २०० मील होगी। मार्ग में जियागंज आदि गावों में श्रावकों के भी घर है। इच्छा तो नही थी कि विहार के लिए यह मार्ग चुना जाय क्योंकि भावना लगी थी खण्डगिरि, उदयगिरि की यात्रा करने की तथापि भव्यों के पुण्य ने खीचा और अकस्मात् इधर आने का विचार बन गया।

चैत्र कृष्णा द्वादशी दिनाङ्क ३१-३-१९७३ को कलकत्ता से विहार हुआ। श्री दिगम्बर जैन बालिका भवन से विहार करके संघ बड़े मन्दिरजी मे आया। विदाई समारोह हेतु मन्दिर का प्रांगण जनसमूह से खचाखच भरा था। लोगों के चेहरों पर चुप्पी छाई थी कतिपय आँखो से अश्रु-विमोचन हो रहा था। धुलियान से समागत श्रावकों का स्वागत करते हुए कलकत्तावासियों ने कहा—"साध्वीसंघ जैन परम्परा की अपूर्व निधि है, इसकी पूर्ण देख-रेख करना हम सबका कर्त्तव्य है, विशेष रूप से तत् तत् स्थान के श्रावकों का जहाँ संघ विराजता है। धुलियान समाज का सौभाग्य है कि संघ का उधर विहार हो रहा है, अब इसकी सार-सँभाल का उत्तरदायित्व आपके कन्धों पर है।"

---

१. आर्यिका सुपार्श्वमतीजी कई वर्षों से 'अलसर' से पीडित हैं। यहां भी इस रोग का तीन बार भीषण प्रकोप हुआ, आप गम्भीर रूप से अस्वस्थ हो गई, समाज मे चिन्ता व्याप्त हुई, आपके शीघ्र स्वास्थ्य लाभ की कामना करते हुए 'महामत्र' का अखण्ड जाप किया गया। असाता का उदय मन्द हुआ तब आपकी तबियत ठीक हुई। अस्वस्थ दशा मे भी आप अपनी दिनचर्या मे पूर्ण सजग एवं सावधान थी।

❀ फाल्गुन शुक्ला नवमी को आपका ४५वां जन्मदिवस ४५ दीपको व ४५ फलों के पुंज सहित सोल्लास मनाया गया।

❀ आर्यिका सुपार्श्वमतीजी की प्रेरणा से स्थानीय महिला समाज ने तीर्थरक्षाकोष हेतु करीबन चालीस हजार रुपया संग्रहीत कर अनुकरणीय कार्य किया।

—सं०

कलकत्ता से विहार करके संघ शान्तिपुर होकर कृष्णनगर पहुँचा। कलकत्ता से प्रतिदिन हजारों नर-नारी आते जाते थे। बंगवासी भी मार्ग में विहार का दृश्य देखने हेतु उत्सुकतापूर्वक खडे होकर बातचीत करते थे। मांसभक्षी होने पर भी बंगालियों में भद्रता एवं नम्रता दीखती थी।

भात जांगला (कृष्णनगर) में श्री शान्तिलालजी बड़जात्या, नागौर वालो ने 'श्री ऋषिमण्डल विधान' की पूजा का आयोजन किया तथा दर्शनार्थी यात्रियो की भोजन की व्यवस्था की। कलकत्ता, धुलियान, जियागंज आदि अनेक स्थानों के यात्री दर्शनार्थी आहार दान निमित्त प्रतिदिन आते थे।

संघ बेलडागा आया। यहां श्री लादूलालजी गगवाल सुजानगढ़ निवासी ने 'श्री ऋषि मण्डल विधान' पूजा महोत्सव का आयोजन किया। पूज्य बड़े माताजी की प्रेरणा से धर्म क्रियाओं का साधनभूत एवं परिणामविशुद्धि का कारण रूप जिन चैत्यालय स्थापित किया गया। वहां से विहार कर खगड़ा (कासिम बाजार) आए। यहा श्वेताम्बर जैनो के काफी घर हैं। पहले यहां दिगम्बर जैन मन्दिर भी था परन्तु उसकी प्रतिमाएँ आदि तो जियागज आदि अन्य स्थानों के श्रावक ले गए अब वहा श्री कन्हैयालाल मदनलाल की मिल में जिन चैत्यालय है। मारवाड़ी खण्डेलवाल दिगम्बर जैन श्रावको के १०-१५ घर है। श्रावकों में धर्म के प्रति दृढ़ आस्था है। विहार में, नगरप्रवेश के समय और प्रवचनों में भी काफी लोग इकट्ठे होते थे।

कासिम बाजार से ५ मील की दूरी पर लालसागर है जो कभी नवाब की राजधानी थी। यहां होते हुए जियागज आए।[1] बीच में नदी होने से जियागंज दो भागों में बँट गया है, एक ओर जियागंज है, दूसरी ओर अजीमगंज; यहां ३०० वर्ष पूर्व नागौर से एक ओसवाल जैन बन्धु आए थे, भाग्य और पुरुषार्थ के सहयोग से वे करोड़पति होकर 'जगतसेठ' कहलाने लगे; उन्होंने यहां कई मन्दिरों का निर्माण करवाया। पूर्व में वे दिगम्बर मत के अनुयायी थे, बाद में दिगम्बर साधुओं का इधर आगमन न होने से उनके मरने के बाद कुटुम्बीजन श्वेताम्बर हो गए; आज भी अजीमगंज में २७-२८ श्वेताम्बर मन्दिर हैं। उनमें दिगम्बर मूर्तियां हैं।

साध्वीसंघ जियागंज में लगभग २० दिन ठहरा। अनेक श्रावक-श्राविकाओं ने व्रत-नियम लिये। जियागंज से लालगोला आए। यहां श्रावकों के ३५-४० घर हैं। श्रावकों मे साधुओं के प्रति विनय व सम्मान की भावना है। यहां से सन्मतिनगर पहुँचे। यहां पर दो सेठी और एक पाटनी इस तरह कुल तीन परिवार हैं। मन्दिर में भगवान महावीर की विशाल मूर्ति है। किसी

---

१. यहां आर्यिकाजी का केशलोच हुआ। आपके सान्निध्य मे पश्चिम बंगाल की भगवान महावीर २५०० वाँ निर्वाण समिति की बैठक हुई तथा विविध समितियां गठित की गईं। —सं०

समय यहां से १० मील दूर पर काफी जैन लोग रहते थे। वहां एक महानदी है; उसने चार पांच बार कालीटोला ग्राम को काटा है। अतः वहां के लोग एवं श्रावक आगे-आगे गांव बसाते चले गए। आखिर यहां आकर भगवान महावीर के नाम से 'सन्मतिनगर' बसाया है। मन्दिर छोटा है परन्तु सुन्दर है। धार्मिक प्रवृत्ति के लोग हैं। यहां से तीन मील पर जंगीपुर है। यहां भी एक जिनमन्दिर है। श्रावकों के ५-७ घर हैं। यहां से नदी पार करनी पड़ती है। तीन मील दूरी पर मिर्जापुर (गनकर) है, यहां भी जिनमन्दिर है, श्रावकों के पाच-छह घर हैं।

मिर्जापुर से बीस मील की दूरी पर अडगाबाद है। यहां पर १५-२० घर हैं जैनों के, एक जिनमन्दिर है। यह स्थान इधर के अन्य गाँवों से काफी बड़ा है और प्राचीन भी। यहां से आठ मील दूर धुलियान (मुर्शिदाबाद) बड़ा शहर है। श्रावकों के ३० घर हैं। सुन्दर आकर्षक मन्दिर एवं धर्मशाला हैं।

आषाढ़ शुक्ला द्वितीया, वि० सं० २०३० सोमवार को संघ धुलियान पहुँचा।

स्वदोष दर्शन

अपने दोषों को देख लेना भी साधना की सफलता का प्रतीक है क्योंकि इन्द्रियां बहिर्मुख हैं इसलिए दूसरों के दोष देख लेना आसान है किन्तु अपने दोष देखना कठिन है। जैसे चोर को देख लिया जावे तो चोर नहीं टिकता, वैसे ही अपने दोषों को देख लिया जाए तो दोष नहीं टिकते। दूसरों के दोषों पर विचार न करो। अपनी कमियों को देखो तथा उन्हें निकालने की कोशिश करो।

१३

बंग-बिहार यात्रा

३१ वां वर्षायोग :

विक्रम संवत् २०३० का वर्षायोग धुलियान में सम्पन्न करने हेतु आषाढ शुक्ला दूज, सोमवार को सघ ने धुलियान में प्रवेश किया। अपार जन समुदाय ने जय जयकार के निनाद के साथ विशेष उत्साहपूर्वक अगवानी की। स्थान-स्थान पर आरती उतारी गई।

प० बंगाल मुर्शिदाबाद जिले मे दिगम्बर जैन साधुओं का पदार्पण और वर्षायोग सैकड़ों वर्षों में प्रथम बार होने से जैन-अजैन नर-नारियों की दर्शन करने, प्रवचन सुनने तथा आहारादि क्रियाओं को देखने में बड़ी भीड़ लगती थी। वर्षायोग में डेह, नागौर, बारसोई, कलकत्ता, कानकी, किशनगञ्ज, तिनसुकिया, बडपेटा, गौहाटी आदि स्थानों के गुरुभक्त, श्रद्धानी श्रावक आहारादि देकर पुण्योपार्जन करने आते रहते थे।

केशलोच की क्रिया देखकर तो बंगवासी जनता बहुत प्रभावित हुई। कहने लगी कि यह अद्भुत कार्य धीर-वीर पुरुष ही कर सकते हैं।

धुलियान में विशाल गंगा नदी प्रवाहित होती है। वह कटाव करती है। उसके कटाव के कारण तीन बार मन्दिर तथा वहां के निवासियों के घर नदी में बह गए। जैन कालोनी में मन्दिर एवं धर्मशाला बहुत अच्छे बने हैं। आर्यिका संघ इसी स्थान पर ठहरा था। लोग धर्मात्मा, गुरुभक्त और श्रद्धालु हैं।

पूज्य इन्दुमतीजी की पीठ और गर्दन पर एक विषाक्त फोड़ा हो गया जिसमें सैकड़ों छिद्र हो गये। आहार यहाँ तक कि पेय पदार्थ भी लेना मुश्किल हो गया। अत्यन्त शोचनीय

अवस्था हो गई। डाक्टरों, वैद्यों के बाहरी उपचार कारगर नहीं हुए, समाज में गहरी चिन्ता छा गई।[१] महामन्त्र णमोकार का जाप्य और अनेक विधान-अनुष्ठान श्रावकों ने किए। आर्यिका श्री की तपश्चर्या के प्रभाव से विषाक्त फोड़ा शान्त हुआ, एकदम ठीक हो गया।

चातुर्मास में धर्म प्रभावना विशेष हुई थी। श्री शिखरचन्द जी गंगवाल ने 'वृहत् तीन लोक मण्डल विधान' कराया। जैन सिद्धान्त की मान्यता के अनुरूप तीन लोक का नक्शा, विवरण एवं कला देखकर सब विस्मय विमुग्ध हुए। मण्डन कला का विशेष श्रेय आर्यिका श्री सुप्रभामतीजी, विद्यामतीजी को है। ये दोनों इस कला मे विशेष निपुण है।

एक दिन नदी का कटाव जोर से हो रहा था। गाँव का वातावरण अशान्त हो गया था। लोगों ने आकर माताजी से प्रार्थना की तब आर्यिकासंघ जहां कटाव हो रहा था उस स्थान पर पहुँचा। मंत्रोच्चारण करने पर नदी का कटाव होना रुक गया। धर्म की महिमा महान् एव अपूर्व है। विश्वास करने से पूर्ण सफलता मिलती है। "विश्वासो फलदायक:।"[२]

वर्षायोग के बाद संघ धुलियान से १० मील दूर पाकोड़ गया। वहां पर श्रावको के ७-८ घर हैं एवं एक चैत्यालय है। यहा माताजी की प्रेरणा से मन्दिर का निर्माण होकर बिम्ब प्रतिष्ठा भी हुई। पाकोड़ से लौट कर पुन: धुलियान आये।

जब से बंगाल मे संघ ने विहार किया था तब से ही बारसोई, रायगंज, कानकी, किशनगंज आदि स्थानों के श्रावकों की यह भावना रही कि संघ का विहार हमारे स्थानों पर भी हो ताकि धार्मिक जाग्रति हो, जनता धर्म का महत्त्व समझे अत: श्रावक बन्धु अनेक स्थानों पर प्रार्थना करने आते थे।

धुलियान में संघ करीबन आठ मास तक रुका। सघ के सान्निध्य से लोगों के हृदयों में धर्म के प्रति विशेष अनुराग बढ़ा। आस्थाशील स्त्री पुरुषों ने सामर्थ्यानुसार विविध व्रत नियम अंगीकार किये।

---

१. पू० बड़े माताजी की ऐसी अवस्था से संघ को महान् चिन्ता हो रही थी। तब आर्यिका श्री सुपार्श्वमती माताजी ने अपने अमोघ अस्त्र—मंत्र, यंत्र, को गर्दन और पीठ के फोड़ों पर लिखकर, मत्रो के द्वारा विषाक्त फोड़े का निवारण करके जैनाजैन जनता को विस्मय विमुग्ध कर दिया। जैन यंत्रो मंत्रों में महान् शक्ति है। लोग कहने लगे कि आर्यिका सुपार्श्वमतीजी मे दैवीशक्ति है। जनता विशेष श्रद्धालु होने से दर्शनार्थ आने वालों का तांता लगा रहता था।

२. आर्यिका सुपार्श्वमतीजी ने मंत्रोच्चारण कर कहा कि अब नदी का कटाव नही होगा। विधिपूर्वक क्रिया सम्पादन करो तो हमेशा के लिये कटाव होना बन्द हो जाएगा। लोगो के हामी भरने पर माताजी ने सर्व विधि बताई। —सं०

२ फरवरी, १९७४ को संघ ने धुलियान से बारसोई की ओर विहार किया। धुलियान से बारसोई ८० मील है। विहार में संघ के साथ बारसोई, कानकी, किशनगंज, धुलियान आदि स्थानों के अनेक स्त्री पुरुष थे।

अर्जुनपुरा, नयनसुख, कलचुरी, मालदा, पाण्डु, गाजोल, इटहार आदि गांवों मे विहार करते हुए संघ रायगंज पहुँचा।

रायगज मे श्रावकों के ५ घर है, एक चैत्यालय है। श्वेताम्बर बन्धुओ के ४०-५० घर हैं। वे भी संघ की दर्शन-वन्दना हेतु तथा उपदेश श्रवण करने हेतु बराबर आते थे। दिगम्बर जैन साध्वियों की अनुशासित चर्या देखकर समस्त नगरवासी प्रभावित होते थे। संघ यहां सात दिन ठहरा, धर्म की अपूर्व प्रभावना हुई क्योंकि इस क्षेत्र में दिगम्बर साधुओं का यह प्रथम पदार्पण था।

रायगंज से बारसोई १५० मील है। रास्ते में सभी गावों में कुछ समय रुक-रुक कर उपदेश दिया जिससे अनेक बंगालियो व बिहारियो ने एक मास, दो मास, किसी ने आजन्म भी मांस-मदिरा का त्याग किया।

दोगछा ग्राम मे एक बगाली परिवार के मकान में रात्रि विश्राम किया। उसने भयकर सर्दी की रात्रि में भी आर्यिकाओं को बिना ओढ़े बिछाये सोते देखकर बहुत आश्चर्य किया कि हम भी मानव हैं और ये भी मानव हैं। आर्यिकाओं को शीतपरीषह शान्त भाव से सहन करते देख कर उस परिवार ने उसी दिन से आजन्म मांस-मछली भक्षण का त्याग कर दिया।

संघ बारसोई की ओर बढ़ रहा था। यह बारसोई (पूर्णिया) वही स्थान है जहाँ अब से ६० वर्ष पूर्व, संघ संचालिका आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी का गृहस्थावस्था मे विवाह और अनन्तर पतिवियोग हुआ था। आपके गृहस्थावस्था के भाई एवं पाटनीपरिवार के अन्य भी कई सदस्य यहां निवास करते हैं।

बारसोई

विक्रम संवत् २०३०, फागण वदी दसमी दिनाङ्क १६-२-७४ शनिवार को आर्यिका संघ बारसोई पहुँचा। बारसोई का मन्दिर दर्शनीय है। भगवान पार्श्वनाथ की दिव्याभा युक्त चमत्कारी प्रतिमा है। पाषाण व सर्वधातु की अन्य प्रतिमाएँ भी हैं। धर्मशाला आदि का स्थान भी सुन्दर है। धर्मप्राण गुरुभक्त श्रावकों के

३० घर हैं। संघ के वहां विराजने से शान्तिविधान, ऋषिमण्डल विधान, रविव्रतविधान, नवग्रह विधान आदि विधान हुए तथा णमोकार मन्त्र, भक्तामर स्तोत्र, ऋषिमण्डल स्तोत्रादि के जाप व अखण्ड पाठ किये गए। शास्त्रोक्त विधिपूर्वक पंचामृताभिषेक पूजन प्रतिदिन सोत्साह सम्पन्न होते थे।

मातेश्वरी आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी की विशेष प्रेरणा से 'महावीर जयन्ती' दिवस पर पहली बार श्रीजी की पालकी निकाली गई। समारोह मे भगवान महावीर के जीवन के विविध पक्षों पर अनेक वक्ताओं ने प्रकाश डाला। भगवान महावीर द्वारा निर्दिष्ट अहिसा अनेकान्त और अपरिग्रह के सिद्धान्तों को अपनाने से ही सुख और शान्ति हो सकती है।

बैसाख कृष्णा चतुर्दशी दिनाङ्क २१-४-७४ को मेरा (सुपार्श्वमती का) और आर्यिका सुप्रभामतीजी का केशलोच हुआ। इस अवसर पर किशनगंज, कानकी, धुबड़ी, डेह, रायगंज, धुलियान आदि स्थानों के अनेक नर-नारी सम्मिलित हुए। केशलोच की क्रिया देखकर स्थानीय लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे कहने लगे—"जिस प्रकार किसान खेत मे उगी फालतू घास को उखाड़ फेंकता है उसी प्रकार माताजी निर्भय होकर केशों को उखाड़ रहे हैं। वास्तव में सच्चे त्यागी तपस्वी साधु तो ये ही हैं। ये जगत की माता हैं।" अनेक वक्ताओं के सामयिक भाषण हुए।

आर्यिका विद्यामतीजी और आर्यिका सुप्रभामतीजी बालक-बालिकाओं को धार्मिक शिक्षा देती थी, बालक-बालिकाओं की परीक्षा भी ली गई। बच्चो का उत्साह बढाने के लिए पारितोषिक भी दिये गए।

संघ के उपदेश से जैनाजैन जनता पर काफी प्रभाव पड़ा। मद्य, मांस, रात्रिभोजन त्याग तथा पानी छान कर पीने की प्रतिज्ञाये कई लोगों ने की।

श्री पूनमचन्दजी पाटनी ने दूसरी प्रतिमा के व्रत ग्रहण किए। श्री कँवरीलालजी पाटनी की धर्मपत्नी टोकी बाई ने पाँचवी प्रतिमा के व्रत लिये।

संघ के अपने यहाँ पधारने के लिये कानकी, किशनगज आदि स्थानों के धर्मबन्धु आते रहते थे, बाहर से पधारने वालों के लिये समाज की ओर से भोजन और आवास की सुन्दर व्यवस्था थी। सघ यहां ७५ दिन ठहरा, कुछ आश्चर्य भी घटित होने से धर्म की विशेष प्रभावना हुई।[1]

---

१. ॐ मन्दिर के प्रागण मे जहा आर्यिका सघ ठहरा था, समीप ही एक आम का पेड़ था जो कई वर्षों से फलहीन था परन्तु दिगम्बर साधुओ के प्रभाव से वह निष्फल आम्रवृक्ष भी सफल हो गया। वह खूब फला।

ॐ श्री सम्पतलाल पाटनी के मकान मे आग लग गई, भीषण लपटें उठने लगी। हवा बहुत तेज चल रही थी, गाव मे हाहा कार मच गया परन्तु आर्यिका सुपार्श्वमतीजी द्वारा दिया हुआ मन्त्रित जल छिड़कने पर अग्नि सहसा शान्त हो गई।
—सं०

बैसाख शुक्ला चतुर्दशी दिनाङ्क ५-४-७४ को प्रात:काल विदाई समारोह में अनेक स्त्रीपुरुषों के नेत्रों से जलधारा प्रवाहित हो चली। आबाल वृद्ध संघ को पहुँचाने के लिये बारसोई घाट (स्टेशन) तक आये। यहां से सुदानी, दिलखोला गये। वहां पर प्रवचन आयोजित हुआ। अग्रवाल ओसवाल समाज भी काफी संख्या में एकत्र हुआ था। आहार की क्रिया देखकर एवं प्रवचन सुनकर सभी प्रभावित हुए। संघ को यहां रोकने का बहुत प्रयास किया गया परन्तु कानकी पहुँचने का निश्चय पहले ही कर चुके थे अत: वहां से विहार किया। ओसवाल बंधु भी काफी दूर तक साथ २ आए।

कानकी प्रवेश से पूर्व—आर्यिका संघ

ज्येष्ठ कृष्णा दूज दिनाङ्क ८-५-७४ को प्रात:काल कानकी ग्राम में प्रवेश हुआ। प्रवेश के समय किशनगंज, बारसोई, रायगंज, दिलखोला आदि स्थानों के श्रावक-श्राविकाओं के आगमन से बहुत भीड़ हो गई थी। जय जयकारों से आकाश गुंजित हो रहा था। कहीं पुष्पों की वर्षा हुई तो कहीं आरती उतारी गई। जनता में मानो उत्साह का समुद्र हिलोरें ले रहा था। मन्दिर के प्रांगण में अनेक वक्ताओं ने चारों आर्यिकाओं का परिचय दिया, दिगम्बर जैन साधु-साध्वियों की क्रियाओं का विवेचन हुआ। आर्यिकाओं के भी भाषण हुए।

सैकड़ों वर्षों में दिगम्बर जैन साधुओं का पहली बार आगमन होने से जैनाजैन जनता काफी प्रभावित हुई और अधिकांश ने यथाशक्ति व्रत नियम ग्रहण किये। श्री दिगम्बर जैन मन्दिरजी में भगवान पार्श्वनाथ की काले पाषाण की प्राचीन मूर्ति है। सप्तधातु की अन्य मूर्तियां भी हैं। श्री दिगम्बर जैन समाज के ३६ घर हैं। सभी गुरुभक्त और धर्मप्रेमी हैं।

कानकी स्वागत समारोह

आर्यिका इन्दुमतीजी केशलोच करते हुए

ज्येष्ठ कृष्णा छठ दिनाङ्क १२-५-७४ को मन्दिरजी के पण्डाल मे पूज्य श्री १०५ इन्दुमतीजी और आर्यिका विद्यामतीजी का केशलोच समारोह आयोजित हुआ। समीप के स्थानों के सहस्रो जैन अजैन नर-नारी सम्मिलित हुए। आर्यिकाओं की केशलोच क्रिया को देख कर दर्शनार्थी बन्धु चकित-विस्मित हुए। सबके चेहरों पर यही भाव था—"कि अपना तो एक बाल उखड़ जाए तो रूं (बाल) तोड़ हो जाता है एवं कितना दर्द होता है परन्तु ये तपस्विनियाँ तो केशों को जल्दी-जल्दी उखाड़ फेंक रही है और

इनके मन में और चेहरे पर भी कही कोई शिकन तक नहीं । धन्य है ऐसे साधुओं को ।"[1]

श्रुतपञ्चमी विधान, २४ घण्टे तक अखण्ड भक्तामर स्तोत्र पाठ, शान्ति-विधान आदि अनुष्ठान भी हुए । डेह निवासी श्री गिरधारीमलजी पाटनी के गुरुभक्त, दृढ़ श्रद्धानी सुपुत्र श्री धन्नालालजी ने णमोकार महामन्त्र के ६१ लाख जाप किए, २४ घण्टे तक अखण्ड पाठ भी किया उनके घर पर ही पंच परमेष्ठी विधान भी हुआ--पूजन हवन में २८ स्त्री-पुरुषों ने सम्मिलित हो कर आर्यिका संघ के सान्निध्य मे अतिशय पुण्यार्जन किया ।[2]

आर्यिका विद्यामतीजी केशलोच करते हुए

साध्वी संघ लगभग डेढ माह तक यहाँ रुका । जैन धर्म की प्रभावना हुई । जैनाजैन नर नारियों ने तरह-तरह के व्रत नियम ग्रहण कर धर्म के प्रति विशेष रुचि दर्शाई एव गुरुभक्ति का परिचय दिया ।

३२ वाँ वर्षायोग :

किशनगंज में वर्षायोग करने हेतु श्रावको ने कई बार आग्रह किया । श्रीमान् चाँदमलजी पाण्डया, गुलाबचन्दजी चान्दुवाड, प्रेमसुखजी पाण्डया, कुन्थीलालजी आदि के विशेष आग्रह से और श्री डूंगरमलजी सबलावत की प्रेरणा से धर्मसाधन का उपयुक्त क्षेत्र जान कर किशनगंज में वर्षायोग सम्पन्न करने की स्वीकृति पूज्य बड़े माताजी द्वारा दी गई ।

---

१ इस अवसर पर आर्यिका सुपार्श्वमतीजी का 'ॐ' व 'केशलोच' विषय पर अतिशय प्रभावशाली ओजस्वी प्रवचन हुआ । लगभग दो घण्टे तक कार्यक्रम चला । श्रोता मन्त्रमुग्ध हो देखते-सुनते रहे । सबने आर्यिकाओ की तपश्चर्या, निर्भीकता और विद्वत्ता की प्रशसा की ।

२. आर्यिकाओं के परिचय पूजन आरती की लघु पुस्तक भी इस अवसर पर प्रकाशित हुई थी । --सं०

दिनाङ्क २२–६–७४ आषाढ़ शुक्ला एकम् को कानकी से आर्यिका संघ का विहार हुआ। विदावेला नर नारियों के अश्रुओं से स्नात थी। नदी का पानी और धर्म का प्रवाह तो निरन्तर आगे बढ़ता ही रहता है, एक स्थान पर ठहरने में गन्दा हो जाता है। आबालवृद्ध सभी किशनगंज तक साथ आए।

प्रान्त के अन्य स्थानों की भांति यहां भी नगर प्रवेश के समय उत्साहित अपार भीड़ ने साध्वी सघ का स्वागत किया। अपने नगर में प्रथम बार दिगम्बर साधुओ के आगमन से जन-मन में विशेष हर्षोल्लास था।

विक्रम संवत् २०३१ भाद्रपद कृष्णा पंचमी दिनाङ्क ८–८–७४ को चारो आर्यिकाओं का एक साथ केश लोच हुआ। विशाल पण्डाल मे विराट जनसमुदाय के बीच साध्वियों के केशलोच की क्रिया देखकर सब चकित थे। साधुओं के वैराग्य, तप-त्याग और सयम की चर्चा जन-जन के मुख पर थी। विशेष धर्मप्रभावना हुई। अनेक स्त्री पुरुषों ने व्रत नियम ग्रहण कर आत्मकल्याण मे रुचि दर्शाई।[1]

वर्षायोग के दौरान अनेक प्रकार के विधान, अनुष्ठान, वर्णी जयन्ती, आचार्य वीरसागर समाधिदिवस, आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी का दीक्षा दिवस, महावीर निर्वाण महोत्सव आदि विविध समारोह भी समय समय पर आयोजित हुए।

गौहाटी के धर्मप्रेमी गुरुभक्त श्रावकों ने साध्वी संघ का चातुर्मास गौहाटी मे कराने का मानस बनाया। राय साहब श्री चाँदमलजी पाण्डया व मिश्रीलालजी बाकलीवाल ने किशनगज से गौहाटी तक सघ को पहुँचाने का दायित्व अपने ऊपर लिया। सबकी यह भावना थी कि आसाम में सैंकड़ो वर्षों से दिगम्बर साधुओं का आगमन नही हुआ है, अब पुण्ययोग से साध्वी सघ का विहार हो रहा है, यदि एक चातुर्मास गौहाटी शहर मे हो जाए तो अहिसा धर्म की महती प्रभावना होगी। इसी मानस के साथ अनेक श्रावक-श्राविकाएँ कार्तिक मास में यहां आगामी चातुर्मास के सम्बन्ध मे निवेदन करने आए। सबने विशेष आग्रह के साथ प्रार्थना की।

पूज्य माताजी ने विविध परिस्थितियों को देखते हुए विचार-विमर्श करके (वास्तव में, इस प्रान्त मे जैनधर्म का व अहिंसा का प्रचार होगा, अनेक लोग सत्पथ पर लगेंगे, आत्मकल्याण की रुचि जाग्रत होगी आदि-आदि) गौहाटी मे वर्षायोग करने का आश्वासन दिया।

---

१. आर्यिका १०५ श्री सुपार्श्वमती माताजी दशलक्षण व्रत करते हुए भी प्रतिदिन प्रवचन देती थीं और प्रबुद्ध श्रोताओ की शकाओ का समाधान करती थी। बोलती हुई माताजी साक्षात् श्वेतवस्त्रावृता वाग्देवी ही प्रतीत होती थी। —सं०

कवल चन्द्रायण व्रत :

अवमौदर्य तप में 'कवलचन्द्रायण व्रत' भी है। इस व्रत को किसी भी माह में किया जा सकता है परन्तु माह तीस दिन का होना चाहिए। यह व्रत अमावस्या से प्रारम्भ किया जाता है। अमावस्या के दिन उपवास करना चाहिए। प्रतिपदा को एक ग्रास, द्वितीया को दो ग्रास इस तरह वृद्धि करते करते चतुर्दशी के दिन चौदह ग्रास और पूर्णिमा को उपवास करना चाहिए। पुन: प्रतिपदा के चौदह ग्रास, द्वितीया के दिन तेरह ग्रास आदि क्रमश: एक-एक ग्रास कम करते-करते चतुर्दशी के दिन एक ग्रास, फिर अमावश्या को उपवास करना चाहिए। यह व्रत अवमौदर्य तप (भूख से कम खाना) में महान् है। क्रिया कोश, हरिवंश पुराण आदि में इस व्रत का विस्तृत वर्णन मिलता है। जैन व्रत कथाकोश में भी कथा का वर्णन एव व्रत का फल लिखा है।

इस व्रत का प्रचार दक्षिण प्रान्त मे बहुत है। मुनि आर्यिका, श्रावक श्राविका सभी इसे करते है तथा मण्डल विधानादि उत्सव करके धर्म की प्रभावना करते है। उत्तर प्रान्त मे कुछ कारण वश क्रियाओ का लोप हो गया है। वृहत् विधि विधान कवलचन्द्रायण व्रत आदि का नाम सुनकर भी आश्चर्य करते हैं। सर्व प्रथम यह व्रत बाहुबली स्वामी तथा ब्राह्मी सुन्दरी ने किया था।

कई वर्षों से मेरी भावना यह व्रत करने की थी परन्तु पू० बड़े माताजी स्वीकृति नहीं देती थी। विशेष आग्रह करने पर कृपालु माताजी ने आसोज कृष्णा १५ से 'कवलचन्द्रायण' व्रत करने की स्वीकृति मुझे प्रदान की तो मेरा मन प्रफुल्लित हो उठा। जब इस व्रत की महिमा का भान हुआ तो हमारे साथ ही श्रीमती सरस्वती देवी, (धर्मपत्नी श्री मोतीलालजी पाण्डया, कानकी), श्री टीकी बाई (मातेश्वरी महावीर प्रसाद पाटनी, बारसोई), श्रीमती चनादेवी (धर्मपत्नी भवरीलालजी पाटनी, किशनगंज), श्रीमती विमला देवी (धर्मपत्नी मूलचन्दजी चूड़ीवाल, कानकी), सुश्री हेमाकुमारी (सुपुत्री श्री लालचन्दजी काला, धुलियान) ने भी व्रत करके पुण्योपार्जन किया।

कार्तिक कृष्णा अमावस्या—भगवान महावीर के निर्वाण दिवस पर यह व्रत पूर्ण हुआ। विधान आदि माड कर विधिपूर्वक पूजन की गई, पूजा में अनेक स्त्रीपुरुष सम्मिलित हुए। व्रत का माहात्म्य बताया गया जिससे धर्म की काफी प्रभावना हुई।

कुछ दिनों बाद आर्यिका १०५ श्री विद्यामतीजी के गृहस्थावस्था के पिता श्री नेमीचन्दजी बाकलीवाल सुजानगढ निवासी अपने पुत्रो और पुत्रवधुओं के साथ आए। माताजी इन्दुमतीजी की विशेष प्रेरणा से अष्टाह्निका में 'श्री वृहत् सिद्धचक्र विधान' करने के भाव हुए। श्री चाँदमलजी पाण्डया, श्री गुलाबचन्दजी चाँदुवाड, श्री कुन्थुलालजी आदि ने 'वृहत् सिद्धचक्र विधान' में पूर्ण सहयोग देने का आश्वासन दिया। सभी के सहयोग से 'विधान' की तैयारियां प्रारम्भ हुईं। आर्यिका १०५ श्री सुप्रभामाताजी ने कलापूर्ण मण्डल की रचना की। इस कलापूर्ण अलंकृत रचना को देखकर सभी ने माताजी की मुक्तकण्ठ से प्रशसा की।

पूजन विधान में ५१ नर नारियों ने सम्मिलित होकर विशेष पुण्यार्जन किया। सारी क्रियायें शास्त्रोक्त विधिविधान पूर्वक सम्पन्न हुईं। माताजी का उपदेश प्रतिदिन होता था। साढ़े तीन लाख से भी अधिक जाप हुए; अन्त में हवन हुआ जिसमें ८१ नर-नारियों ने भाग लिया। इस शान्ति यज्ञ के दर्शनार्थ अजैन जनता भी काफी आई।

भगवान की सवारी हाथी पर निकाली गई। इन्द्र इन्द्राणियां भी सेवा रत थे। आस-पास के गांवों से सैकड़ों लोग सम्मिलित हुए। शान्ति यज्ञ समारोह के दिनो मे दरिद्र भाई बहनों को भोजन भी कराया गया। किशनगंज में आर्यिका सघ का वर्षायोग बंगाल बिहार की सीमा होने से तथा आसाम जाने के लिए प्रमुख मार्ग होने के कारण विशेष प्रभावक रहा। अनेक लोगों ने धर्मोपदेश सुना तथा जैनाजैन भाई बहनो ने सामर्थ्यानुसार व्रत नियम लिये।

इसी बीच चारो आर्यिकाओं का केशलोच एक साथ होने से एक विशेष समारोह हुआ।

❖

वासनानुदये भोग्ये, वैराग्यस्य परोऽवधिः।
अहंभावोदयाभावो, बोधस्य परमोऽवधिः॥

❀ भोग्य वस्तुओं के प्रति वासना का उदय न होना वैराग्य की चरमसीमा है तथा अहंभाव के उदय का अभाव होना ज्ञान की परम अवधि है।

१४

आसाम की ओर

किशनगंज वर्षायोग के बाद वि० सं० २०३१ मंगसर कृष्णा दसमी दिनाङ्क ८–१२–७४ रविवार को आर्यिका संघ ने आसाम की ओर विहार किया। गौहाटी से अनेक स्त्री पुरुष संघ को ले जाने के लिए आये। राय सा० श्री चाँदमलजी पाण्ड्या का अकस्मात् ही स्वर्गवास हो जाने से संघ संचालक श्री मिश्रीलालजी बाकलीवाल अपनी धर्मपत्नी सहित गौहाटी की टोली का नेतृत्व कर रहे थे। साथ मे किशनगज, कानकी, बारसोई आदि के लोग भी थे जिससे विशाल संघ के कारण धर्म की प्रभावना होती थी क्योंकि दिगम्बर साधुओं का इस क्षेत्र में यह विहार पहला ही था।

किशनगंज से विहार करके संघ ने सैकड़ों नर-नारियों के साथ डेह निवासी श्री खूबचन्दजी मानकचन्दजी पाटनी के मकान व गोदाम में रात्रि विश्राम किया। प्रात: काल आहार लेकर सैकड़ों भक्तों के साथ विहार करके सात मील दूर पर कालीमाई गाँव में रात्रि विश्राम किया। सुबह तड़के ही वहा से विहार कर सात मील पर स्थित खरखरी गाँव में आहार लिया। आहार के बाद विहार कर सायंकाल छत्रगाँव में पहुँचे। दूसरे दिन डांगावस्ती पहुँच कर आहार लिया। मंगसर कृष्णा चतुर्दशी दिनाङ्क १२–१२–७४ बुधवार को प्रात: संघ ने ठाकुरगंज में प्रवेश किया। यहां पर दिगम्बर जैन समाज के २० घर हैं और एक चैत्यालय है। लोगों ने अपूर्व स्वागत किया, प्रवचन के समय जैनाजैन जनता अच्छी संख्या मे उपस्थित होती थी। कई भद्रजनों ने व्रत नियम ग्रहण किए।

ठाकुरगज से मगसर शुक्ला तीज दिनाङ्क १६–१२–७४ सोमवार को आहार के बाद चल कर रात्रि विश्राम बंगाल बोर्डर पर किया। प्रात: काल विहार करके अधिकारी में आहार लेकर

रात्रि विश्राम हेतु हाथीघीसा पहुँचे। दूसरे दिन वहां से चल कर सिलीगुड़ी के बाहर एक धान्य गोदाम में रात्रि विश्राम किया।

सिलीगुड़ी मे सुजानगढ निवासी श्री प्रसन्न कुमारजी पाण्डया का घर एवं परिवार है। श्वेताम्बर समाज के लगभग १०० घर हैं; अग्रवाल महेश्वरी समाज भी काफी है। सभी लोग भक्तिमान हैं। सबने सैकड़ों की सख्या में आकर मगसर शुक्ला छठ दिनाङ्क १९-१२-७४ गुरुवार को प्रातः काल संघ की अगवानी की। हर्षोल्लास पूर्वक सघ का अपूर्व स्वागत हुआ। सारे समाज की एकता मन को हर्षित कर रही थी।

दिनाङ्क २२-१२-७४ रविवार को भव्य रथयात्रा निकाली गई जिसमें वीरप्रभु विराजमान थे। उत्तरी बंगाल जैन परिषद् का विशेष सहयोग रहा। ओसवाल, अग्रवाल, माहेश्वरी आदि समस्त स्थानीय जैनेतर समाज तथा किशनगंज, कानकी, बारसोई, ठाकुरगज, चगड़ावादा, जलपाईगुड़ी, मैनागुड़ी, माथाभागा, दीनहट्टा, वरपेटा, गौहाटी आदि स्थानों के करीब ८०० स्त्री पुरुष सम्मिलित हुए। कुल मिला कर लगभग ५००० लोग रथयात्रा में थे। श्रीजी की इस शोभायात्रा को नगर के इतिहास में उल्लेखनीय कहा जाना चाहिए। जनता में अनुपम उल्लास था, नभमण्डल जय जयकारों से निनादित। पण्डाल में प्रतिदिन दोनों समय प्रवचन होता था। जनता ने विशेष रुचि दिखा कर यथाशक्ति व्रत नियम अंगीकार किये।

दिनाङ्क २३-१२-७४ सोमवार को आहार के बाद सामायिक करके मध्याह्न में विहार किया। रात्रिविश्राम दोमजिला मे करके दूसरे दिन का आहार फालाकाटा में हुआ। दिनाङ्क २५ दिसम्बर को जलपाइगुड़ी में प्रवेश किया। यहाँ एक दिगम्बर भाई का परिवार है; श्वेताम्बर समाज के ६० घर हैं। उन्होने सघ का भारी स्वागत किया, दो दिन प्रवचन भी सुने और अनेक स्त्रीपुरुषो ने रात्रिभोजन का त्याग किया, पानी छान कर पीने का नियम लिया।

दिनाङ्क २६-१२-७४ गुरुवार को संध्या समय मैनागुड़ी पहुँचे। यहाँ गुरुभक्त उत्साही युवक सुजानगढ़ निवासी श्री इन्द्रचन्दजी पाटनी (फर्म चाँदमल धन्नालाल, कलकत्ता) रहते हैं; ओसवाल व महेश्वरी समाज के २०-२५ घर हैं। स्थानीय व बाहर से आए हुए स्त्रीपुरुषों ने प्रवेश के समय संघ का परम्परागत ढंग से भव्य स्वागत किया। अगवानी हेतु अनेक स्त्री पुरुष तीन मील पैदल चल कर पहुँचे थे। स्थानीय लोगों के विशेष आग्रह से संघ यहाँ तीन दिन ठहरा। प्रवचन भी हुए।

मैनागुड़ी से दिनाङ्क २९-१२-७४ रविवार को आहार के बाद विहार हुआ। २२ किलोमीटर चल कर चंगड़ावादा पहुँचे। यहां दिगम्बर जैनों का एक भी घर नहीं है। श्वेताम्बर समाज ने तथा अन्य जैनेतर जनता ने चार मील तक पैदल आकर संघ की अगवानी की। स्वागत में

३५०-४०० स्त्री पुरुष बच्चे एकत्र थे। स्थानीय महानुभावों की भक्ति व विशेष आग्रह के कारण वहां से विहार करना कठिन हो गया। साध्वियों के उपदेश हुए, अनेक छोटी-बड़ी व्यावहारिक शंकाओं का समाधान किया गया। समाधानों से सन्तुष्ट होने पर सामर्थ्यानुसार नियम भी लिये।

दिनाङ्क १-१-७५ को संघ जमालदा पहुँचा। यहां श्वेताम्बर भाइयों के सात घर हैं। उन्होंने भाव भीना स्वागत किया। यहां से चल कर रात्रिविश्राम मोहनपुरा में किया। ३ जनवरी को संघ माथाभागा पहुँचा। दीनहट्टा, कूचविहार आदि गाँवों के लोग भी स्वागत समारोह में सम्मिलित हुए यहां एक जैन मन्दिर है, दिगम्बर समाज के चार घर है, श्वेताम्बर भाई भी अच्छी संख्या में है। संघ के साथ-साथ गौहाटी, कानकी, बारसोई, किशनगंज आदि स्थानों के भी कई स्त्री-पुरुष बच्चे थे। डेह (आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी की जन्मभूमि) के इन्द्रचन्द जी पाटनी और मूलचन्दजी गगवाल के परिवार यहां थे। 'णमोकार मन्त्र' का अखण्ड जाप्य, ऋषिमण्डलविधान तथा पंच परमेष्ठी विधानादि होने से काफी प्रभावना हुई। माताजी के उपदेशामृत से अनेक ने अशुद्ध जल का त्याग किया। श्वेताम्बर भाई बहनों ने रात्रि भोजन त्याग के नियम लिये। संघ यहा १५ दिन ठहरा। १७-१-७५ को विहार करके खूटी, सुक्तावाड़ी, दीवानहाट होते हुए संघ ने २०-१-७५ मोमवार को प्रात: ६ बजे दीनहट्टा में प्रवेश किया। सघ के आगमन से लोगो मे भारी उत्साह था, आस पास के स्थानों से काफी लोग सम्मिलित हुए थे। यहां पर एक मन्दिर है और एक चैत्यालय भी। श्रावकों के २२ घर हैं। मन्दिर के प्रागण में ही पण्डाल बना था। वही संघ ठहरा था। माताजी का प्रवचन होता था। मन्दिरजी में 'ऋषि मण्डल विधान' हुआ, णमोकार मंत्र का अखण्ड जाप्य भी। पण्डाल में 'पंच परमेष्ठी विधान' हुआ। सेठी चैत्यालय में नवग्रह विधान की पूजन हुई। मेरा (आ० सुपार्श्वमती) और आर्यिका सुप्रभामतीजी का केशलोच होने से जैनाजैन जनता पर दिगम्बर साधुओं की कठिन चर्या का प्रभाव पड़ा। सबने जैन साधुओं के तप त्याग चारित्र की मुक्तकण्ठ से प्रशसा की। अनेक स्त्री पुरुषों ने अशुद्ध जल का त्याग किया और व्रत नियम लिये।

यहां से विहार कर २१-२-७५ को रात्रि विश्राम दीवानहाट में किया। दूसरे दिन प्रात: ६ बजे संघ कूच विहार पहुँचा। जैनाजैन समाज स्वागत के लिए लालायित थी। सबकी ओर से एस० डी० ओ० (उपजिलाधीश) साहब ने साध्वीसघ का अभिनन्दन किया। माताजी का सार-गर्भित भाषण सुनकर जनता गद्गद हो गई। श्री गणेशमलजी पाण्डया के यहां गृह चैत्यालय है। कूच विहार से २८-२-७५ को विहार कर शाम को चीला खाना पहुँचे। रात्रिविश्राम किया। यहां से तूफानगंज पहुँचे। आहार करने के बाद विहार करने की इच्छा थी परन्तु श्वेताम्बर भाइयों के विशेष आग्रह से रुकना पड़ा, दूसरे दिन विहार कर संघ बक्सीहाट पहुँचा। यहां दिगम्बर जैन एक ही परिवार है, घर में चैत्यालय भी है। यहां से कालडोबा, गोलकगंज के मार्ग से चल कर संघ ५-३-७५ को गौरीपुर पहुँचा।

गौरीपुर में दिगम्बर जैनों के सात घर हैं। माताजी के उपदेशामृत से प्रेरणा पाकर श्री कन्हैयालालजी कासलीवाल ने अपने घर पर 'महावीर चैत्यालय' बनाने की भावना व्यक्त की। चैत्यालय की स्थापना माताजी के कर-कमलों द्वारा सम्पन्न हुई। शान्तिविधान, नवग्रहविधान, पंच-परमेष्ठी विधान की पूजन ठाट-बाट से हुई। णमोकारमंत्र का अखण्ड जाप्य भी किया गया। आर्यिका १०५ श्री विद्यामतीजी का केशलोच होने से विशेष प्रभावना हुई।

गौरीपुर से ता० १५-३-७५ को प्रातः काल विहार कर संघ ९ बजे धुबड़ी पहुँचा। श्रावकों ने सोत्साह अगवानी की। यहाँ पर एक मन्दिर है तथा ३०-३५ घर दिगम्बर भाइयों के हैं। पण्डाल बनाया गया था। माताजी मधुर वाणी में प्रवचन करती थी। पण्डाल में सिद्धचक्र विधान तथा मन्दिरजी में श्री शान्तिविधान की पूजन हुई। आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी का केश-लोच हुआ जिससे अजैन जनता आश्चर्य करने लगी। दिगम्बर साधुओं की निर्मोहता और त्याग तपस्या सबकी चर्चा का विषय बनी। समाज की ओर से 'कंगला भोजन' का भी आयोजन हुआ। अनेक स्त्रीपुरुषो ने व्रत नियम ग्रहण किये।

दिनाङ्क २-४-७५ को संघ यहां से गौरीपुर लौटा। गौरीपुर से आलमगंज, मैनपुरी, नयाहाट होते हुए विलासीपाड़ा पहुँचे। यहा दो दिगम्बर जैन परिवार रहते हैं। ५-४-७५ को आहार लेकर सघ दोपहर मे रवाना हुआ। पुरकीमारी स्कूल में रात को ठहरा; प्रातः काल ६-४-७५ को विहार कर ८ बजे कोकराझाड़ पहुँचा। यहाँ श्रावकों के तीन घर है। माताजी ने श्रावकों का प्राथमिक कर्त्तव्य देवदर्शन करना बताया। तत्काल ही श्री कंवरीलालजी पाण्ड्या ने अपने मकान पर चैत्यालय की स्थापना माताजी के कर कमलों द्वारा करवाई; शान्तिविधान हुआ।

दिनाङ्क ७-४-७५ को आहार के बाद कोकराझाड़ से संघ का विहार हुआ। वासुगांव पहुँच कर रात्रि को विश्राम किया। यहा ओसवाल समाज के आग्रह से संघ दिन भर रुका। सरावगियों का एक भी घर नही है। संध्या समय ५ बजे संघ बोगाई गाँव पहुँचा। यहां पर श्रावकों के चार घर हैं।

दिनाङ्क १०-४-७५ को बोगाई गाँव से चल कर बिजनीरोड, माणिकपुर और सरभोग होते हुए १२-४-७५ की प्रातः ९ बजे बडपेटारोड़ पहुँचे। यहाँ ऋषिमण्डलविधान, नवग्रह विधान, शान्तिविधान आयोजित हुए। वेदी प्रतिष्ठा समारोह भी हुआ जिसका अकुरारोपण भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के तत्कालीन अध्यक्ष एवं भगवान महावीर २५०० वां निर्वाण महोत्सव समिति के महामंत्री श्री लखमीचन्दजी जैन के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। इस प्रतिष्ठा पर आसाम के गांवों के अनेक नर नारियों ने सम्मिलित होकर असीम पुण्यार्जन किया। गौहाटी के

बडपेटा रोड में जुलूस के साथ आर्यिका संघ

'श्री महावीर छात्र परिषद्' द्वारा जैनचित्रों की विशाल प्रदर्शनी लगाई गई जिसका उद्‌घाटन संघ संचालिका आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी माताजी ने किया। संघ का यहां कई दिनों तक प्रवास रहा। जैनाजैन जनता में धर्म की प्रभावना हुई।

१-५-७५ को संघ ने यहां से विहार किया। भवानीपुर व पाठशाला होता हुआ संघ टीहू पहुँचा। यहां मेरा केशलोच हुआ। जनता आश्चर्य करती रही, त्यागतपस्या की महिमा गाने लगी कि वास्तविक साधु तो दिगम्बर साधु-सन्त ही हैं। आसामियों और बगालियो मे से कुछ ने उपदेश सुनकर मांसभक्षण, मदिरापान और हिंसा करने का त्याग किया। 'अहिंसा सप्ताह' मनाया गया। विशाल रथयात्रा समारोह हुआ। चैत्यालय में 'शान्तिविधान' पूजन किया गया। यहां से संघ का विहार ९-५-७५ को हुआ। दूसरे दिन नलवाड़ी पहुँचा।

नलवाड़ी नगरपालिका के अध्यक्ष श्री लोहितचन्द्रदास ने आर्यिका सघ का स्वागत किया। प्रख्यात साहित्यकार व आसाम साहित्य सभा के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री त्रिलोकीनाथ गोस्वामी ने उपस्थित जनसमुदाय को सम्बोधित करते हुए आर्यिका संघ के आगमन के उद्देश्यों के सम्बन्ध मे सारगर्भित भाषण दिया। सघ का स्वागत करने के लिए जैनाजैन जनता काफी सख्या में उपस्थित थी। यहाँ पंचपरमेष्ठी मण्डल विधान, ऋषिमण्डलविधान, शान्तिविधान, नवग्रहविधान एवं तीनलोकमण्डल विधान सम्पन्न किये गए। श्री लखमीचन्दजी जैन ने तीन लोक मण्डल विधान का अंकुरारोपण किया था।

आर्यिका १०५ श्री विद्यामतीजी तथा आर्यिका १०५ श्री सुप्रभामतीजी का केश लोच होने से विशेष धर्मप्रभावना हुई। साध्वियों के व्याख्यान सुनकर राष्ट्रभाषा विद्यापीठ के अध्यक्ष श्री प्रफुल्लकुमारशर्मा काफी प्रभावित हुए। उपस्थित समुदाय में से ८० प्रतिशत ने शराब, मास का त्याग करने का संकल्प लिया।

नलवाड़ी से गांगरापाड़ा होकर रंगिया पहुँचे। पूज्य माताजी के उपदेश से प्रेरणा प्राप्त कर पंच परमेष्ठी विधान, श्रुतपचमी विधान, रथयात्रा एवं जलयात्रा आदि धार्मिक कार्य सम्पन्न हुए। प्रधान आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी का केशलोच हुआ। जनता बहुत प्रभावित हुई।

रंगिया से १९-६-७५ को विहार कर संघ गौरेश्वर पहुँचा। यहां पर माताजी की प्रेरणा से 'श्री महावीर चैत्यालय' की स्थापना बड़े उत्साह के साथ सम्पन्न हुई। यहां से २१-६-७५ को खारूपेटिया के लिए प्रस्थान किया।

दिनांक २३-६-७५ को खारूपेटिया पहुँचे। यहां ढाई द्वीप मण्डलविधान का अंकुरारोपण एवं महावीर सुपर मार्केट का शिलान्यास श्री लखमीचन्दजी जैन के कर कमलों द्वारा हुआ। यहां से ५-७-७५ को संघ ने विहार किया। टागनी बागान, बाईहाटा, चारआली, भालुकबाड़ी होते हुए गौहाटी के उपनगर माली गाँव मे पहुँचा। यहां हजारो नर-नारियों ने साध्वीसंघ का स्वागत किया। जगह-जगह स्वागतद्वार, तोरण द्वार बनाये गए थे। १०-७-७५ को गौहाटी में प्रवेश हुआ। सोनाराम हाई स्कूल के मैदान से एक विशाल शोभायात्रा निकली जिसमे हजारों जैनाजैन सम्मिलित थे। यह शोभायात्रा नगर के सभी प्रमुख मार्गों से होकर निकली जगह-जगह आर्यिकाओं का अभिनन्दन हुआ। संघ श्री दिगम्बर जैन मन्दिर के दर्शन कर ए० टी० रोड स्थित दिगम्बर जैन महावीर भवन पहुँचा। सभी नागरिकों ने संघ का हार्दिक अभिनन्दन किया।

किशनगंज से गौहाटी तक संघ को लाने का उत्तरदायित्व श्री चाँदमलजी पाण्ड्या एवं श्री मिश्रीलालजी बाकलीवाल ने स्वेच्छा से वहन किया था। रायसाहब श्री चांदमलजी पाण्ड्या का आकस्मिक निधन होने के बाद उनके परिवार के सदस्यों ने एवं विशेषत: श्री मिश्रीलालजी ने इस गरुतर उत्तरदायित्व का सफलतापूर्वक निर्वाह किया। तन-मन-धन से की गई यह गुरुभक्ति प्रशंसनीय है।

३३ वाँ वर्षायोग :

विक्रम संवत् २०३२ का वर्षायोग गौहाटी में सम्पन्न हुआ। विशेष धर्मप्रभावना हुई क्योंकि दिगम्बर जैन साध्वियों के आगमन का यह पहला अवसर था। जैनाजैन जनता के हृदय में परम भक्तिपूर्ण उल्लास था।

साध्वी संघ की प्रेरणा से एवं त्याग तपस्या के प्रभाव से पर्युषण पर्व पर ६५ स्त्री-पुरुषों ने दशलक्षण व्रत किए; इस तरह आत्मशुद्धि के इस महान् पर्व पर असीम पुण्योपार्जन किया।

दिनाङ्क २४-९-७५ को 'भगवान महावीर उद्यान में' आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी, आर्यिका १०५ श्री विद्यामतीजी, आर्यिका १०५ श्री सुप्रभामतीजी–तीनों का 'केशलोच' समारोह

आयोजित हुआ। लगभग दस हजार जनता ने यह वैराग्यपूर्ण दृश्य देखा। साधुओं के निर्ममत्व भाव ने, स्वदेह से भी इतनी विरक्ति ने सबको आश्चर्य चकित कर दिया।

आसाम के शिक्षामन्त्री हरेन्द्रनाथ तालुकदार, स्वास्थ्य मन्त्री गिरिन चौधरी, मूर्धन्य साहित्यकार डा० महेश्वर नियोग और शरद गोस्वामी तथा अन्य कई वक्ताओं ने अपने विचार व्यक्त किये। सबका भाव यही था कि जैनधर्म के शाश्वत सिद्धान्तों—अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्त-स्याद्वाद, वीतरागता, अनासक्ति को अपनाने पर ही विश्वशान्ति सम्भव है। अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के अध्यक्ष श्रीमान् लखमीचन्दजी छावड़ा ने साध्वियो का परिचय देते हुए दिगम्बर जैन साधुओं एवं आर्यिकाओं की चर्या एवं तपश्चर्या पर प्रकाश डाला।[1]

'भगवान महावीर २५०० वाँ निर्वाण महोत्सव' का समापन समारोह भी इसी उद्यान में मनाया गया। समारोह की अध्यक्षता कलकत्ता से प्रकाशित होनेवाले 'विश्वमित्र' के सम्पादक मालिक श्री कृष्णचन्द्र अग्रवाल ने की थी। मुख्य अतिथि थे आसाम के राज्यपाल श्री एल० पी० सिंह। महामत्री श्री लखमीचन्द छावड़ा ने अपने स्वागत भाषण में कहा कि भगवान महावीर के नाम पर सरकार द्वारा ऐसे ठोस कार्य होने चाहिए जिनकी स्मृति हजारों वर्षों तक बनी रहे।

कार्याध्यक्ष श्री भँवरलाल सरावगी ने महोत्सव वर्ष मे हुए कार्यों का ब्यौरा दिया और बताया कि ये सब ठोस कार्य हैं जो जनता के काम आयेंगे। उन्होंने आशा प्रकट की कि अगले वर्ष तक सरकार के सहयोग से 'भगवान महावीर कामर्स कालेज' भी प्रारम्भ हो सकेगा।

मुख्य अतिथि राज्यपाल श्री एल० पी० सिंह ने कहा कि जैनधर्म एक प्राचीन धर्म है। सभी धर्मों से पुराना है। उन्होंने भगवान महावीर और महात्मा गाँधी की चर्चा करते हुए कहा कि भगवान महावीर के उपदेशों को गाँधीजी ने अपने जीवन मे उतारा था। वस्तुतः सत्य और अहिंसा पर चल कर ही मनुष्य कल्याण प्राप्त कर सकता है।

आसाम सरकार की प्रादेशिक समिति के कार्याध्यक्ष शिक्षामंत्री श्री हरेन्द्रनाथ तालुकदार ने कहा कि निर्वाण महोत्सव अभी समाप्त नही हुआ है। हमे अभी और भी कई ठोस एव रचनात्मक कार्य करने हैं। सूर्य पहाड़ पर प्राप्त जैन प्रतिमाओं का उल्लेख करते हुए उन्होंने सरकार द्वारा वहाँ जमीन आदि दिए जाने तथा धार्मिक कार्य में हरसम्भव सहायता देने का आश्वासन दिया। तत्पश्चात् मेरा (सुपार्श्वमती) भाषण हुआ। मैंने जैनधर्म की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए भगवान महावीर के उपदेशों को जीवन में ढालना चाहिए इस बात पर बल दिया।

---

१. इस अवसर पर विदुषी आर्यारत्न १०५ श्री सुपार्श्वमती माताजी का "जैन धर्म की महत्ता" विषय पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाषण भी हुआ था। —सं०

समारोह के अध्यक्ष कृष्णचन्द्रजी ने अपार जनसमुदाय को सम्बोधित करते हुए कहा कि निर्वाणशताब्दी वर्ष में सूर्य पहाड़ पर जैन मूर्तियों का मिलना एक ऐतिहासिक घटना है; यह आसाम के जैन समाज के लिए बहुत बड़ी उपलब्धि है।

वर्षायोग के काल में अनेक मण्डलविधान, अनुष्ठान हुए। 'अढाई द्वीप का विधान' वृहत् रूप में होने से अच्छी प्रभावना हुई अजैन समुदाय में। रथयात्रामहोत्सव, आर्यिका माताओं का केशलोच समारोह, भगवान महावीर का २५०० वां निर्वाण महोत्सव समारोह तथा समय-समय पर आयोजित सार्वजनिक सभाओं के माध्यम से आज जैनेतर समाज भी जिन धर्म की प्राचीनता, महत्ता और उपादेयता को समझने लगा है। शाश्वत सुखशान्ति का मार्गदर्शक, जिनेन्द्र प्रणीत यह धर्म है जो मंगल स्वरूप है—

केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं।

❖

❖ **लोभी** : जो मन से चाहे, मुख से मांगे।

❖ **सन्तोषी** : जो मन में और की मांग रखते हुए भी मुख से न मांगे, वह सन्तोषी है।

❖ **तृप्त** : जिसे न मन से मांग है, न मुख से मांगता है अथवा मन व मुख दोनों से मांग रहित है, वह तृप्त है।

१५

अपूर्व प्रभावना

गौहाटी से १२५ मील दूर पर स्थित सूर्य पहाड़ पर अनेक खण्डित प्रतिमाएँ, चरण आदि बिखरे हुए हैं। पुरातत्त्व विभाग द्वारा प्रकाशित पुस्तिका के अवलोकन से ज्ञात हुआ कि सूर्य-पहाड़ पर जिन प्रतिमाये भी हैं। पुस्तिका को देख कर मन में उमंग हुई कि इस क्षेत्र का दर्शन किया जाए। वर्षायोग के बाद विहार कर पहले सूर्य पहाड़ को देखने गये।

सूर्य पहाड़ एक रमणीय स्थान है। पर्वत की गुफा में दो खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। एक प्रतिमा पर बैल का चिह्न है और दूसरी पर चक्र का चिह्न है। पर्वत पर इधर उधर देवियों की अनेक खण्डित मूर्तियां एवं विशाल काय पत्थर पड़े हुए हैं। सूर्य पहाड़ के समीप ही एक दूसरा पर्वत और है। इस पर एक देवी की काले पाषाण की खड्गासन मूर्ति है जिसके मस्तक पर सात फण हैं। मूर्ति मनोज्ञ है। उसी पहाड़ के पत्थर की बनी है। चार हाथ भी दिखाई देते हैं, कोई उन पर उपसर्ग कर रहा है ऐसा प्रतीत होता है। परन्तु वास्तव में क्या है, इसका कुछ निर्णय नहीं कर सके। यहां लगभग दो मील के घेरे में बहुत से चरण चिह्न, पत्थर, स्तूप आदि पड़े हैं देव-देवियों की खण्डित प्रतिमाएँ भी बिखरी पड़ी हैं। ऐसा लगता है कि पहले यहां कभी कोई विशेष रचना रही होगी।

किंवदन्ती है कि यहां पर कोई लेगटा (नग्न) साधु रहता था। उनकी चरण रज से अनेक रोग शान्त हो जाते थे। वे साधु यहीं पर विलीन हो गए। यहां पर चरणपीठिका नामक शिला आज भी विद्यमान है। इसका इतिहास आसामी भाषा में है। समीप के गांवों में भी ऊँचे-ऊँचे दरवाजों के बड़े-बड़े पत्थर पड़े हैं, अनेक वापिकाएं भी हैं।

इस क्षेत्र पर चार दिन रुके। आस-पास के सभी पर्वतों का सूक्ष्म अवलोकन भी किया। ऐसा लगा कि किसी समय यह जैन लोगों का स्थान रहा होगा। कारण विशेष से भग्न हुआ होगा, बिखरी हुई खण्डित मूर्तियां यही सोचने को प्रेरित करती हैं।

सूर्य पहाड़ से ग्वाल पाड़ा गए। यहां का जैन मन्दिर पहले दिगम्बर जैनों के अधिकार में था, अब श्वेताम्बर समाज के हाथ में है। यहाँ से विहार कर संघ विजयनगर पहुँचा।

विजयनगर के स्थान पर पहले पलासवाड़ी कस्बा था। पापकर्म के उदय से पलासवाड़ी ब्रह्मपुत्र की गोद में समा गया। पलासवाड़ी नष्ट हो गई; दिगम्बर जैनों के काफी घर थे। कुछ लोग गौहाटी चले गए, शेष ने विजयनगर नामक शहर बसाया। अधुना यहां दिगम्बर भाइयो के १०० घर है। जैन समाज ने यहां शिखरबध नवीन जिनमन्दिर का निर्माण किया है, जो अतिशय भव्य है; आस-पास के क्षेत्रों में इस जैसा सुन्दर मन्दिर नही है।

मन्दिरजी में भगवान पार्श्वनाथ की अतिमनोज्ञ विशालकाय पद्मासन प्रतिमा है जिसके दर्शन करने से अपूर्व आनन्द की प्राप्ति होती है, शरीर पुलकायमान हो जाता है और आनन्दातिरेक से आँखें अश्रु विमोचित करने लगती हैं। अभी तक इस मन्दिर की प्रतिष्ठा सम्पन्न नही हुई थी; श्री जी को वेदी मे विराजमान नहीं किया गया था अत: वहां के लोगों की तीव्र भावना हुई कि आर्यिका संघ के सान्निध्य में वेदीप्रतिष्ठा समारोह आयोजित करके भगवान को अवश्य विराजमान कर देना चाहिए। स्थानीय समाज ने एकत्र होकर प्रार्थना की कि मातेश्वरी हमें यहाँ वेदीप्रतिष्ठा करवानी है, आप इस सम्बन्ध में हमें मार्ग-दर्शन दीजिए। तब पूज्य बड़े माताजी ने कहा कि वेदी प्रतिष्ठा की अपेक्षा पंच कल्याणक प्रतिष्ठा करवाओ तो बहुत अच्छा होगा। माताजी की प्रेरणा से समाज ने पंच कल्याणक प्रतिष्ठा कराने का निश्चय किया। माघ शुक्ला नवमी से त्रयोदशी पर्यन्त (सं० २०३२) पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई। भगवान पार्श्वनाथ के विशाल बिम्ब को वेदी में विराजमान किया गया।

विजयनगर से डीमापुर :

दिनाक १७-२-७६ को विजयनगर से मंगल विहार हुआ। आंगसीया, झालुकवाड़ी, लक्ष्मीसर, खानापाड़ा, जोरावट, सोनाय, खेतड़ी होकर जागीरोड़ पहुँचे। यहां दिगम्बर जैनों के तीन घर है, परन्तु चैत्यालय नहीं था। माताजी के उपदेशों से प्रभावित होकर बड़जात्या भवन में दिनांक २२-२-७६ को चैत्यालय की स्थापना की गई। यहां से विहार कर मुकरिया, धर्मतुला, अवधगुड़ी के मार्ग से रोहा पहुँचे। श्री पूनमचन्दजी कोठारी, डेहवालों के यहां रात्रि विश्राम किया। दूसरे दिन आहार के बाद विहार कर सेनसुवा, फुलोगुड़ी होकर २६-२-७६ को नौगांव पहुँचे। दिगम्बर जैनों के तीन-चार घर हैं, एक चैत्यालय है। श्वेताम्बर समाज के घर काफी हैं। नौगाँव से

डीमापुर की ओर

रूपई गये, यहां श्रावकों के तीन घर हैं यहाँ से श्यामगुड़ी, मोसा, कोलियाबर, जखलाबाधा, कुठड़ी, बूढ़ापहाड़, हाथीकुली, कांजीरंगा, मैथोनी होकर बोखाखाट पहुँचे। यहां दिगम्बर जैनों के पाँच घर होते हुए भी मन्दिर, चैत्यालय कुछ भी नहीं था। माताजी ने कहा कि जैनों के घर होते हुए भी यहां मन्दिर नहीं है, तब आत्मशान्ति का स्थान कहाँ है? आप लोगों की आने वाली पीढ़ी पर क्या असर पडेगा, उनके क्या संस्कार बनेंगे, आपकी संस्कृति स्थायी कैसे रह सकेगी? जिनेन्द्र भगवान के दर्शन से महान् पुण्य होता है।

जोरहाट में स्वागत समारोह

माताजी की प्रेरणा से कूकनवाली निवासी श्री सूरजमलजी बड़जात्या ने अपने घर में दिनांक ४-३-७६ को चैत्यालय स्थापित किया। उस समय डेरगांव के श्री मांगीलाल जी पाटनी भी उपस्थित थे। उन्होंने भी डेरगांव में अपने घर पर चैत्यालय स्थापित करने की भावना व्यक्त की। वहां भी आर्यिका संघ की उपस्थिति में दिनांक ६-३-७६ को चारित्र शुद्धि विधान सम्पन्न होकर चैत्यालय स्थापित किया गया, डेरगांव में श्रावकों के तीन घर हैं।

डेरगांव से विहार कर संघ जोरहाट पहुँचा। एक ही स्थान पर दिगम्बर, श्वेताम्बर, वैष्णव आदि मन्दिर व धर्मशालाएँ बनी हैं। दिगम्बर जैनों के बीस घर हैं। श्री सागरमलजी बाकलीवाल ने चारित्र-शुद्धि व्रत विधान कराया। केश लोच समारोह

भी आयोजित हुआ। भव्य रथ यात्रा निकली जिसमें अपर आसाम के बहुत लोग आए; अपूर्व धर्मप्रभावना हुई।

जोरहाट से चलकर शिवसागर पहुँचे। यहाँ पर श्री नेमीचन्द जी[1] बाकलीवाल के घर में जिन चैत्यालय है। सारी व्यवस्था श्री नेमीचन्दजी व उनके पुत्रों की ओर से की गई थी। विशाल मण्डप बनाया गया था। प्रतिदिन प्रातः, मध्याह्न एवं रात्रि में संघस्थ माताओं, ब्रह्मचारी आदि का भाषण होता था। जैन समाज व राजकीय सेवा रत लोगों पर काफी प्रभाव पड़ा। अनेक लोगों ने मांस मदिरा आदि का त्याग किया दिगम्बर साध्वियों की चर्या देखकर अजैन लोगों को बड़ा आश्चर्य होता था।

यहाँ शिवसागर नामक विशाल जलाशय है; शिव का मन्दिर है। इसी स्थान पर आर्यिका इन्दुमती माताजी का केश लोच हुआ। रथयात्रा निकाली गई। धर्म की काफी प्रभावना हुई। संघ यहा एक सप्ताह रुका। यहा से फिर मुकटी पहुँचा। चाय बागान में दिगम्बर जैन भाई हैं; चैत्यालय भी है, यहां शान्तिविधान हुआ। यहाँ से संघ डिब्रूगढ़ पहुँचा। जैनाजैन जनता ने सोत्साह स्वागत किया। यहां दो जिनमन्दिर हैं। श्रावकों के ६० घर हैं। अच्छा उत्साह है सबमें। यहां केशलोच हुआ, रथयात्रा निकाली गई, जिससे धर्मप्रभावना अच्छी हुई। डिब्रूगढ़ मे एक मास तक ठहर कर सघ ६-५-७६ को तिनसुकिया आया। स्वागत समारोह आयोजित हुआ। मारवाड़ी धर्मशाला मे लगभग २००० नर-नारियो के समक्ष संघ का अभिनन्दन करते हुए तिनसुकिया नगरपालिका के अध्यक्ष श्री महानन्द हातीकाकती ने कहा कि आज का यह दिन हमारे लिए सदैव अविस्मरणीय रहेगा। आज आर्यिका सघ को अपने बीच पा कर हम गौरवान्वित हुए है हमारे हृदय इन पुनीत आत्माओं के आगमन से अत्यन्त प्रमुदित हो रहे है। मैं अपनी ओर से और सम्पूर्ण नगर की ओर से आपका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

तिनसुकिया में श्रावकों के ३० घर हैं, जिनमन्दिर भी सुन्दर बना है। श्री हरकचन्दजी सेठी ने धर्मशाला मे 'सिद्धचक्र विधान' सारे समाज के सहयोग से आयोजित किया जिससे अजैन लोगों पर काफी प्रभाव पड़ा। माताजी के उपदेशों से आकृष्ट होकर अनेक भाई बहनों ने व्रत नियम ग्रहण किए। सघ यहां एक माह ठहर कर नाहरकटिया आदि अनेक गाँवों में भ्रमण करता सुनारी आया। श्री नेमीचन्दजी बाकलीवाल के तेल डिपो में ठहर कर वहां से संघ मडियानी पहुँचा। यहां पर दिगम्बर जैनों के ५ घर होने से चैत्यालय की स्थापना हुई। यहां से टिटफार के मार्ग से गोलाघाट पहुँचे।

---

१. श्री नेमीचन्दजी बाकलीवाल आर्यिका विद्यामतीजी के गृहस्थावस्था के पिता हैं। धनाढ्य पिता की पुत्री समस्त परिग्रह का त्याग कर साध्वी बनी है, यह जानकर लोगो को बहुत विस्मय हुआ। —सं०

गोलाघाट में स्वागत जुलूस

यहां दक्षिण प्रान्त के समान जवरीलालजी और लादूलालजी बाकलीवाल दोनो भाइयो के घरो में चैत्यालय है। तीन और घर हैं श्रावकों के। यहां एक सप्ताह ठहरे। यहां से लाहूजान, स्वरूप पथार, बोकाजान होते हुए सघ विक्रम सवत् २०३३, आषाढ़ शुक्ला चौथ, दि० ३०-६-७६ बुधवार को डीमापुर (नागालैंड) में पहुँचा।

३४ वाँ वर्षायोग :

डीमापुर में जैना-जैन जनता ने सघ का स्वागत बड़े उत्साह से किया। २४ स्वागत द्वार बनाए गए थे; भगवान की सवारी की शोभा अद्‌भुत थी। अनेक हाथी, घोड़े, बैण्ड आदि सवारी में थे। जयनाद से आकाश गूंज रहा था। अनेक गांवों व शहरों के स्त्री-पुरुष दूर-दूर से आकर स्वागत समारोह में सम्मिलित हुए थे। अजैन लोग काफी प्रभावित हुए। 'सेठी भवन' में संघ का मंगल आरती से अभिनन्दन हुआ। अपार जन समुदाय को आर्यिका माताओं ने सम्बोधित किया। आर्यिकाओं के

डीमापुर में अभूतपूर्व स्वागत

सदुपदेश से प्रभावित होकर नागालैंड के भूतपूर्व मन्त्री और कांग्रेस अध्यक्ष श्री होकिशे सेमा ने एक मास में सात दिन मांस खाने का त्याग करने का नियम लिया। इधर की अधिकांश जनता आमिष-भोजी है। अष्टाह्निका पर्व में विशेष प्रभावना पूर्वक श्री सिद्धचक्र मण्डल विधान सम्पन्न हुआ। इसी बीच श्री शशि मेरिन योजना आयुक्त, नागालैंड के मुख्य आतिथ्य मे आ० १०५ श्री विद्यामतीजी का केश लोच अपार जन समुदाय के समक्ष हुआ। सभी दर्शक जैन साधुओं की इस प्रवृत्ति से बड़े प्रभावित होते हैं, यहां भी दर्शकों ने अपार आश्चर्य व्यक्त करते हुए साध्वी श्री की निर्ममता और कष्ट सहिष्णुता की भरपूर प्रशंसा की। सबके मुँह से 'धन्य! धन्य!' शब्द निस्सृत हुए।

अनेक सार्वजनिक प्रवचन हुए जिनमें प्रान्त के गणमान्य व्यक्ति, सरकारी पदाधिकारी एवं मंत्रिगण सम्मिलित होते थे और कुछ-न-कुछ त्याग रूप नियम अवश्य लेते थे।

पर्वाधिराज दशलक्षण के पुनीत अवसर पर नांदगांव (नासिक) से पण्डित तेजपालजी काला, साहित्यरत्न; सहायक सम्पादक जैनदर्शन के पधारने से विशेष धर्मप्रभावना हुई। २७ भाई-बहनों ने अष्टाह्निका एवं दशलक्षण व्रत किए। भव्य रथ यात्रा का आयोजन हुआ। जैन समाज में विशेष जागृति हुई।

कार्तिक मास के अष्टाह्निका पर्व में 'त्रिलोक मण्डल विधान' की रचना होकर विधि-विधानपूर्वक पूजा हुई। कलात्मक विधान को देखने वालो का ताता लगा रहता था। सभी क्रियायें आगमोक्त रीत्या निर्विघ्नतया सम्पादित हुई। अन्तिम दिन भगवान की सवारी निकाली गई।

विक्रम संवत् २०३३ के डीमापुर वर्षायोग मे उस प्रतिकूल क्षेत्र में भी जैनधर्म, दर्शन और संस्कृति की अमिट छाप जन मानस पर पड़ी है। रुचिशील जीव आत्मकल्याण के मार्ग को समझने लगे हैं। समय-समय पर उन्हें ऐसा समागम और प्रेरणा प्राप्त होती रहे तो श्रमण संस्कृति अक्षुण्ण वनी रहेगी।

दिनांक २५-११-७६ को पूज्य १०८ श्री इन्दुमती माताजी आहार शुरु करते ही अकस्मात् अस्वस्थ हो गई। किन्तु श्रावकों ने माताजी के स्वास्थ्य लाभ हेतु णमोकार मंत्र का अखण्ड जाप चालू रखा, शान्तिविधानादि भी हुए। शनैः शनैः माताजी स्वस्थ हुईं। असाता कर्म क्षीण होकर साता का उदय आया।

वर्षायोग पूर्ण होने के बाद भी अनेक मण्डल विधान अनुष्ठानादि होते रहे। माताजी ने श्रावकों के कर्त्तव्यों पर विशेष प्रवचन दिए। उनसे प्रेरणा प्राप्त कर श्री किशनलालजी सेठी ने गृह चैत्यालय की स्थापना की, श्री पन्नालालजी सेठी ने भी अपने घर पर चैत्यालय बनवाया।

संघ डीमापुर से विहार कर गौहाटी लौटा। इस यात्रा में २० दिन लगे। गुरुभक्त धर्मप्रेमी श्रावक सैकड़ों की संख्या में साथ थे। वृहत् सिद्धचक्र विधान हुआ। श्री सोहनलालजी

पाटनी ने अपने घर में चैत्यालय की स्थापना की। गौहाटी से विहार कर संघ विजयनगर आया। यहाँ विशाल दर्शनीय समोसरण की रचना की गई थी।

३५ वाँ वर्षायोग :

विक्रम संवत् २०३४ का चातुर्मास यही विजयनगर में हुआ। चातुर्मास के बाद माघ माह के शुक्ल पक्ष में यहां एक और बिम्ब प्रतिष्ठा हुई। दो वर्षों मे एक ही नगर मे एक ही चबूतरे पर उसी ध्वज-रोपण स्थान में प्रतिष्ठा होने का यह प्रथम अवसर था। वहाँ की व्यवस्था देखकर लोग यह कहते थे कि ऐसा पंच कल्याणक महोत्सव कभी नही हुआ और न देखा। विपुल सख्या में लोग सम्मिलित हुए, धर्म की प्रभावना काफी हुई। सैकडो लोगों ने यथाशक्ति व्रतनियम ग्रहण किए।

विजयनगर से विहार कर रगिया, नलबाड़ी, टिहू, पाठशाला आदि गाँवों के मार्ग से सघ बरपेटा पहुँचा। यहां वृहत् सिद्धचक्र विधान हुआ।

बरपेटा से बंगाई गाव आए। यहा जिनचैत्यालय की स्थापना हुई। फिर विलासपाड़ा, धुवड़ी, गौरीपुर, कूचबिहार, दीनहट्टा, माथाभागा आदि के मार्ग से मैनागुड़ी आए। श्री इन्द्रचन्दजी पाटनी के घर में चैत्यालय की स्थापना हुई। यहाँ से सिलीगुड़ी, ठाकुरगज, किशनगज होते हुए संघ कानकी पहुँचा।

३६ वाँ वर्षायोग :

विक्रम संवत् २०३५ का वर्षायोग कानकी में सम्पूर्ण किया। अनेक विधानादि का आयोजन हुआ। श्रावकों के चालीस घर हैं। सभी घरों में आहारदान की प्रवृत्ति है, सभी नियम व्रत पालने वाले हैं। स्वेच्छाचारी नहीं हैं।

ठाकुरगंज में जैन मन्दिर नही था। आसाम जाते समय संघ के समक्ष मन्दिरजी का शिलान्यास हुआ था, अब यहां लौटने पर मन्दिर पूरा बन कर तैयार हो गया था। समाज की भावना रही कि माताजी के सान्निध्य में प्रतिष्ठा हो अतः इनके आग्रह से संघ कानकी से ठाकुरगंज आया। प्रतिष्ठा महोत्सव अच्छा रहा, धर्म की महती प्रभावना हुई।

ठाकुरगंज से विहार कर पुनः किशनगंज, कानकी, बारसोई, कटिहार आदि गाँवों में देशना करता हुआ संघ भागलपुर आया। भागलपुर चम्पापुर (नाथनगर) के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ पर भगवान वासुपूज्य के पाँचों कल्याणक सम्पन्न हुए हैं।

इस परम पुनीत स्थान पर विक्रम संवत् २०३५ माघ शुक्ला ५ से १० तक पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई, जिसमें समस्त भारत के विद्वान्, श्रीमन्त मुनिभक्त सम्मिलित हुए। बिहार प्रान्त के

उच्च राजकीय पदाधिकारी भी प्रतिदिन प्रवचन श्रवण हेतु आते थे। नवागन्तुकों की जैन धर्म पर विशेष श्रद्धा जागृत हुई।

३७ वाँ वर्षायोग :

विक्रम संवत् २०३६ का चातुर्मास भी यहीं पर हुआ। इस तरह संघ करीबन १० माह तक यहाँ रुका। जैनेतर समाज पर अच्छा प्रभाव पड़ा। अनेक स्त्री-पुरुषों ने व्रत नियम अंगीकार किये।

यहाँ से विहार कर सुलतानगंज, मुंगेर, पावापुरी, राजगिरि, गुणावा, नवादा, कोडरमा, सरिया आदि गाँवों व तीर्थक्षेत्रों में भ्रमण करता हुआ आर्यिका संघ श्री सम्मेदाचल महातीर्थ पर पहुँचा जहां की भूमि का कण-कण पवित्र है और जहाँ निरन्तर यात्रियों का तांता लगा रहता है।

सम्मेदाचल से खण्डगिरि–उदयगिरि :

विक्रम संवत् २०३६ के फाल्गुन मास में मधुवन शिखरजी मे श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शान्तिवीर सिद्धान्त संरक्षिणी सभा महावीरजी एवं श्री दिगम्बर जैन सम्मेलन कलकत्ता के तत्वावधान में शिक्षण शिविर आयोजित किया गया था जिसमें सभी प्रान्तों के जिज्ञासु श्रावक सम्मिलित हुए। प्रतिदिन हजारों की संख्या में जनता उपदेश श्रवण का लाभ लेती थी। अनेक विद्वान्, भट्टारक, श्रीमन्त, भक्त आदि पधारे थे। शिक्षण शिविर प्रभावशाली ढग से शान्ति-पूर्वक सम्पन्न हुआ।

इस अवसर पर 'केसरीचन्द निहालचन्द, कलकत्ता' फर्म के श्री पूसराजजी के सुपुत्र श्री नागरमलजी भी आये थे। उन्होंने माताजी से प्रार्थना की कि—"माताजी ! हमारे निवास स्थान कटक (उड़ीसा) के समीप खण्डगिरि-उदयगिरि है, हमारी भावना है कि हम आर्यिका सघ के साथ वह यात्रा करे। सारी यात्रा में हम आपके साथ रहेगे और सारी व्यवस्था करेगे।" बडी माताजी ने उत्तर दिया कि—"मैं तो सिद्धक्षेत्र में ही रहूंगी, मेरा स्वास्थ्य ठीक नही है, मुझे यही शिखरजी में चातुर्मास करना है।"

नागरमलजी बोले—"हम आपको यात्रा करा कर वापस शिखरजी पहुँचा देंगे। हमारी बहुत इच्छा है।"

परन्तु माताजी ने स्वीकृति नहीं दी।

कुछ दिनों बाद पुन: श्री नागरमलजी शान्तिलालजी आये और विशेष आग्रहपूर्वक माताजी से निवेदन किया कि—"हम लोगों की ८ वर्ष से यह भावना है कि आर्यिका संघ को खण्ड-गिरि ले जाएँ परन्तु शुभोदय नहीं आया, अब तो आपको यात्रा करायेंगे।"

माताजी इन्दुमतीजी ने उत्तर दिया कि "मैंने तो खण्डगिरि की यात्रा करली है; आप इन तीनों माताजी को ले जाओ।"

"मैं आपको छोड़कर नही जाऊँगा।" नागरमलजी का कहना था। माताजी बोलीं—"मेरा शरीर काम नहीं करता, जाने-आने में ७०० मील पड़ेगा। कोई बच्चों का खेल है जो एक माह में जाकर आ जावेंगे।"

"आपके धैर्य के आगे तो यह बच्चों का ही खेल है। आप जैसे धैर्यशाली के लिए यह क्या कठिन है।"

सबकी प्रबल इच्छा देख कर माताजी ने यात्रा की स्वीकृति दे दी।

चैत्र शुक्ला द्वितीया, विक्रम संवत् २०३७ को ११ बजे मधुवन से विहार करके पाण्डुक-शिला पहुँचे। वहाँ सामायिक की। उस समय सूर्य का प्रचण्ड ताप था। धरती भी तप्त थी, श्रावक चिन्ता करने लगे कि इतनी गरमी में कैसे विहार सम्भव हो पाएगा। उन्होने माताजी से आग्रह-पूर्वक विनती की कि माताजी! आप अभी विहार मत करिए, बहुत उष्णता है। परन्तु माताजी ने किसी की बात नही मानी। साधु के वचन जो निकलते है, वे होकर रहते हैं।

णमोकार मंत्र का जाप कर संघ ने मध्याह्न एक बजे विहार किया। नीचे से पैर जल रहे थे और ऊपर प्रचण्ड सूर्य तपा रहा था, गर्मी से सब आकुल-व्याकुल थे परन्तु माताजी ने किसी बात की परवाह नही की। यह तो इनका स्वभाव ही है, जो बात कह देती हैं उससे फिर पीछे नही हटती।

विहार करके आधा ही मील गये होंगे कि आकाश बादलो से आच्छादित हो गया। सौम्य बादलों की मधुर गर्जना होने लगी। मन्द-मन्द शीतल पवन के साथ जलकण गिरने लगे—ऐसा प्रतीत हुआ मानो यात्रा में सहायक बन कर देवता गण ही यह सब कर रहे हो।

मधुवन से तोपचाची १२ मील है। सबने कहा था कि आज तोपचांची नहीं पहुँच सकते परन्तु शाम ५ बजे ही तोपचांची पहुँच गए।

विहार के इन दिनों में मौसम सदैव अनुकूल रहा। प्रतिदिन मध्याह्न में दो बजे बादल हो जाते और प्रातः काल ६ बजे तक शीतल वायु और बादल रहते। इस अनुकूलता के कारण ३५० मील की यात्रा २४ दिनों मे ही पूरी कर खण्डगिरि पहुँच गये। सब लोग आश्चर्य करने लगे। खण्ड-गिरि में २० दिन रहे। सारी व्यवस्था निहालचन्द पूसराज की ओर से थी।

खण्डगिरि का वर्णन पहले कर चुके हैं। यह दिगम्बर जैनों का सबसे प्राचीन क्षेत्र है। यहां अनेक गुफाएँ हैं जिनमें शिलालेख अंकित हैं। अनेक प्रतिमाएँ खण्डित पड़ी हैं।

शिलाखण्ड हैं ये अवश्य,
पर इनमें अब भी शक्ति अखण्ड ।
इनके दर्शन से मिट जाते,
ना जाने कितने दुःख प्रचंड ।।
पुरातत्व की इन विभूतियों,
को देखो अब आंखें खोल ।
जिन्हें अभी तक अपनी छाती,
से लिपटाये है भूगोल ।।

खण्डगिरि से कटक आये । कटक में दो जिन मन्दिर हैं परन्तु मन्दिर के समीप जैनों की बस्ती नही है; दो तीन मील दूर है ।

ये मन्दिर बहुत प्राचीन हैं, प्रतिमाएँ भी प्राचीन है । जैनों के घर दूर-दूर होने से जिन-बिम्ब दर्शन का साधन नही है अतः चावलियागज में श्री सम्पतलाल बाकलीवाल के घर में चैत्यालय की स्थापना हुई ।

कटक में फतेहचन्द सम्पतराम अग्रवाल जैन के द्वारा निर्मापित धर्मशाला है । संघ यहाँ १५ दिन तक ठहरा । यहाँ 'तीनलोक विधान' आयोजित हुआ । बाहर से अनेक यात्री आए । जैनाजैन जनता पर काफी प्रभाव पड़ा, अच्छी प्रभावना हुई ।

निहालचन्द्र पुष्पराज के घर मे शान्तिविधान हुआ तथा इन्द्रचन्दजी पाण्ड्या ने भी अपनी मील में शान्तिविधान कराया ।

यात्रा के अन्तर्गत प्रमुख जिन मन्दिरों व प्रतिमाओं के दर्शन :

पुरलिया : पुरलिया में दिगम्बर जैन श्रावको के चालीस घर हैं । एक जिनमन्दिर है । यहाँ से १४ मील पर अलाहीजाम नामक ग्राम है जहाँ पर भूगर्भ से निकले हुए अनेक जिनबिम्ब हैं । उनमें भगवान आदिनाथ की प्रतिमायें मुख्य हैं; वे ३-४ फुट ऊँची हैं । पञ्च परमेष्ठी की तथा भगवान पार्श्वनाथ की मूर्तियाँ अतिमनोज्ञ हैं । सर्व प्रतिमाएँ खड्गासन हैं ।

पुरलिया, खरखरी, झरिया आदि के जैन समाज ने मिल कर जिनमन्दिर बनवाया है तथा एक स्कूल भी बनवाई है । सराग जाति के जैन अभिषेक-पूजन करते हैं । मन्दिर जंगल में है । जिस साधु के हाथ से प्रतिमा निकली थी वह वहीं पर कुटिया बना कर रहता है । आस-पास के गांवों में अनेक खण्डित जिनप्रतिमायें हैं और कोई-कोई सर्वाङ्ग प्रतिमा भी है । बहुत से मन्दिरों की रचना व तोरण आदि बिखरे पड़े हैं । इनसे ऐसा ज्ञात होता है कि किसी समय यहां पर जैनों की अच्छी बस्ती थी, मन्दिर थे, जैनधर्म का अधिक प्रचार था ।

खरखरी में एक जिन मन्दिर है । यहाँ के निवासियों का कहना है कि यदि खोज की जावे तो यहाँ हजारों प्रतिमाएँ मिल सकती हैं ।

चाइवासा का मन्दिर बहुत मनोज्ञ है ।

आनन्दपुर की सड़क पर करीबन ५० प्रतिमाये बिखरी पड़ी हैं; जिसमें अम्बिका देवी की सुन्दर मूर्ति है । इन बिखरी मूर्तियो को देखकर हृदय दुःख से भर आता है कि जिनबिम्बों की कैसी दुर्दशा हो रही है । अम्बिका की प्रतिमा इतनी मनोज्ञ और विशाल है कि यदि इस समय इसका निर्माण कराया जावे तो लाखों रुपये व्यय करने पड़ें फिर भी इस जैसी कला न आ पावे ।

वरपदा के समीप साईकोला ग्राम है । उसमें एक कुटिया है जिसमें भगवान आदिनाथ की अति मनोज्ञ प्राचीन प्रतिमा है । पंच परमेष्ठी की भी एक मूर्ति है तथा पिच्छी कमण्डलु जिनके हाथ में है ऐसे मुनिराजों की मूर्तियाँ तथा शासन देव-देवियो की मूर्तियाँ खण्डित पड़ी हैं । कांटाझाड़ी-जहाजपुर से ५ मील पर एक गांव है । उसकी सड़क पर एक मन्दिर है । उसमें दो चतुर्मुखो प्रतिमाये हैं । पिच्छी कमण्डलु लिए हुए मुनिराज की एक खड्गासन छोटी मूर्ति है ।

लोग कहते हैं कि मुनिराजों की प्रतिमायें नही बनती । उनका यह मत इन प्राचीन प्रतिमाओं को देखने से सहज ही खण्डित हो जाता है ।

उस स्थान पर बहुत सी प्रतिमाये खण्डित भी हैं । बावन बड़े-बड़े पत्थर है जिनमें दो फुट की प्रतिमाये स्थापित हो सके ऐसे गढे खुदे हैं । ये पत्थर सात-आठ फुट ऊँचे हैं । स्थानीय लोग बताते हैं कि इन सब प्रस्तर खण्डों में प्रतिमाये थी जिन्हें चोर चुरा ले गये है । यहा देवी की एक खड्गासन मूर्ति है जो पद्मावती को मूर्ति के समान सात फणों से युक्त है । पद्मावती की मूर्ति के ऊपर (मस्तक पर) भगवान पार्श्वनाथ का बिम्ब होता है, वह इसमें स्पष्ट नही दिखता । स्थानीय लोग इसे ब्राह्मी की मूर्ति कहते हैं और भक्तिभाव से पूजा कर अपनी मनोकामना की सिद्धि करते हैं ।

भानुपुरा में भगवान पार्श्वनाथ की खड्गासन प्रतिमा पीतल की बनी है । सात इच की है । यह जमीन में से प्राप्त हुई थी । इसके साथ में चार और प्रतिमाएँ भी निकली थीं जिन्हे कोई चुरा ले गया । जिसे यह प्रतिमा मिली थी वह इसे पाने के बाद सम्पन्न होगया अतः उसने एक छोटा सा मन्दिर बनवा दिया । एक ब्राह्मण को रखकर पूजा करवाता है ।

प्रतापनगरी में एक कुटिया में २॥-२॥ फुट ऊँची भगवान आदिनाथ एवं पार्श्वनाथ की खड्गासन मनोज्ञ प्रतिमाएँ हैं । भगवान आदिनाथ की प्रतिमा के चारों ओर पूरी चौबीसी बनी है ।

बरपदा, आनन्दपुर, कांटाझाड़ी, भानुपुरा, प्रतापनगरी आदि स्थानों की ये सब जिन प्रतिमायें अजैन लोगों के हाथों में हैं। उन लोगो को एक-एक मूर्ति का पाँच-पाँच हजार रुपया देने को राजी हैं पर फिर भी वे मूर्तियाँ देना स्वीकार नहीं करते।

कटक में देवलमुड़ी बाजार के विष्णुमन्दिर में बैल के चिन्ह से युक्त भगवान आदिनाथ की खड्गासन प्रतिमा है जिसके चारों ओर चार मूर्तियाँ हैं।

इस प्रान्त में स्थान-स्थान पर धर्म की प्राचीनता के स्वरूप को जताने वाले अनेक मन्दिर अनेक जिनबिम्ब बिखरे पड़े हैं। इनका उद्धार करके एक स्थान पर यह संग्रह रखकर जैन संस्कृति के पुरातत्त्व पक्ष की रक्षा करना हमारा परम कर्त्तव्य है।

बोकारो (इस्पातनगरी) मे दिगम्बर जैन काफी संख्या में हैं और उच्च पदों पर हैं। परन्तु देवदर्शन से वंचित रहते थे। माताजी के उपदेश से देवदर्शन के महत्त्व को समझ कर श्री शम्भुदयालजी जैन तथा पूनमचन्दजी गंगवाल झरियावालों ने जिनमन्दिर, स्वाध्याय मन्दिर का शिलान्यास आर्यिका सघ के समक्ष करवाया।

यहाँ से विहार कर संघ दिनांक ७–७–८० को चातुर्मास निमित्त शिखरजी तीर्थक्षेत्र पर पहुँचा।

जो विषयो का उपभोग किए बिना उनको त्यागते हैं, वे श्रेष्ठ हैं, जो भोग कर पश्चात् त्यागते है, वे मध्यम हैं, किन्तु जो विषयों को भोगते ही रहते हैं और छोड़ने का नाम नही लेते हैं; वे अधम हैं।

—आचार्य शान्तिसागर महाराज

१६

भावना भवनाशिनी

३८ वाँ वर्षायोग :

गिरिराज के सान्निध्य में पहुँचने पर ऐसा अपार हर्ष हुआ जैसे किसी योद्धा को युद्ध में शत्रु पर विजय प्राप्त करके घर लौटने पर होता है। पवित्र सम्मेदशिखरजी पर्वत से साढ़े तीन सौ मील दूर स्थित खण्डगिरि के दर्शनार्थ पैदल जाना और फिर पैदल ही लौट आना असम्भव कार्य तो नही परन्तु दुसाध्य अवश्य था, तिस पर पूज्य इन्दुमती माताजी की वृद्धावस्था और शरीर की रुग्णता भी सन्देह पैदा करती थी। कभी भयंकर गर्मी, कभी मूसलाधार वर्षा, कभी पैरों में छाले पड़ जाते तो कभी वर्षा के कारण कहीं ठहरने को स्थान भी नहीं मिलता परन्तु पूज्य माताजी ने सम्मेदशिखरजी से विहार करते समय ही दृढ़तापूर्वक यह कह दिया था कि पुन: यहीं तीर्थराज पर आकर वर्षायोग स्थापित करना है।[1] यात्रा लम्बी थी। लौटना भी था। पर पुण्ययोग से सब कुछ निरापद सम्पन्न हुआ। माताजी के पुण्योदय से भीषण गर्मी में भी बादल घिर आते। विहार के समय वर्षा भी थम जाती। निश्चित स्थान पर पहुँचने के बाद वर्षा फिर प्रारम्भ हो जाती। यह सब माताजी की तपश्चर्या का ही प्रभाव है।

---

१. स्थानीय क्षेत्रकमेटियो के मैनेजर, कर्मचारी एव गिरिडीह के कई सज्जनो ने आर्यिका संघ से चातुर्मास करने की प्रार्थना करते हुए श्रीफल चढाया था। —सं०

संघ को खण्डगिरि ले जाने और पुनः शिखरजी लाने के पूरे समय तक श्री केसरीचन्द निहालचन्द अग्रवाल कटकवालों का पूरा परिवार साथ था। परिवार के सभी सदस्यों की गुरुभक्ति विशेष सराहनीय है।

आषाढ़ बदी ग्यारस वि० स० २०३७ के संध्याकाल के पूर्व ही आर्यिका संघ सम्मेदाचल तीर्थराज पर पहुँच गया था। संघ के आगमन के समाचार सुनते ही मधुवन निवासियों के हर्ष का पार नही रहा। माताजी की अगवानी हेतु सब लोग सोत्साह सम्मुख आए। सघ ने श्रीमन्दिरजी में प्रवेश किया।

श्री सम्मेदशिखरजी महान् तीर्थक्षेत्र है। इस क्षेत्र की महिमा अगम्य है। क्षेत्र की वन्दना करने हेतु तीर्थयात्रियों का आवागमन निरन्तर बना रहता है। वर्षायोग मे आर्यिका संघ की उपस्थिति के कारण भक्तों की उपस्थिति विशेष रहती थी, अनेक मण्डलविधान अनुष्ठानादि हुए।

फाल्गुन में अष्टाह्निका पर्व के अवसर पर शिक्षणशिविर आयोजित किया गया था इसमें शिविरार्थियों के साथ साथ अनेक धीमान् श्रीमान् विद्वान् भी सम्मिलित हुए। धर्म की विशेष प्रभावना हुई।

परिणामों की विशुद्धि में द्रव्य क्षेत्र काल और भाव निमित्त कारण बनते हैं। सिद्धक्षेत्र की पावन भूमि का निमित्त पाकर सबके मन में पवित्र भावनाओं का सञ्चार होता है। वर्षायोग बहुत शीघ्र बीत गया।

गिरिडीह समाज के आग्रह पर आर्यिका संघ गिरिडीह पहुँचा। पूज्य इन्दुमती माताजी के सौम्य व्यक्तित्व से शायद ही कोई अप्रभावित रह जाता हो। तत्रस्थ अनेक श्रावक-श्राविकाओं ने पञ्चाणुव्रत स्वीकार किए, माताजी के सदुपदेश से प्रेरित होकर अनेक ने अशुद्ध जल का त्याग किया। वहाँ भी शान्तिविधान, पञ्चपरमेष्ठी विधान, ऋषिमण्डल विधान चौसठ ऋद्धि विधान, आदि अनेक विधान आयोजित हुए।[1]

गिरिडीह से विहार कर संघ फिर शिखरजी आया। यहाँ माताजी के संघ के सान्निध्य में श्री निर्मलकुमार सेठी (डैह निवासी) सीतापुर, श्री पन्नालालजी सेठी, डीमापुर और गुरुभक्त (स्व०) चाँदमलजी बड़जात्या के सुपुत्र श्री पारसमल के भाव वृहत् इन्द्रध्वज मण्डल विधान कराने के हुए। चैत्र शुक्ला चतुर्थी ता० ८-४-८१ को झण्डारोपण, अंकुरारोपण आदि सभी आगमोक्त

---

१ बाहुबली महामस्तकाभिषेक के अवसर पर गिरिडीह मे 'भगवान बाहुबली' का पञ्चामृताभिषेक वृहत्रूप मे सम्पन्न किया गया था। —स०

क्रियाएँ विधि विधान पूर्वक आष्टा निवासी पण्डित कन्हैयालालजी नारे के मार्गदर्शन में व आर्यिका संघ के सान्निध्य में सम्पन्न हुई। इस वृहद् आयोजन में सम्मिलित होने के लिए दूर-दूर से श्रावक गण पधारे थे। पूजन में १४८ स्त्री पुरुष बैठे। तेईस श्रद्धालु भक्त जाप-कार्यक्रम में सम्मिलित हुए। विशेष उत्साह एवं अपूर्व प्रभावना पूर्वक सारा आयोजन सम्पन्न हुआ।[1]

आयोजन के मध्य चैत्र शुक्ला द्वादशी को भयंकर प्राकृतिक उपद्रव हुआ। संध्या से ही घनघोर घटाएँ उमड़ने लगी थीं, बिजलियाँ कड़कने लगीं थी, शनैः शनैः वायु ने भी प्रभञ्जन का रूप धारण कर लिया। वायु के प्रबल वेग से घरों के टीन भी उड़ गए। गर्जना के साथ मूसलाधार वर्षा आरम्भ हो गई। चारों ओर घना अन्धकार हो गया, हवा और पानी थमने का नाम नहीं ले रहे थे, ऐसी परिस्थिति में विधान के आयोजकों, पूजकों और अन्य यात्रियों को बड़ी चिन्ता हुई कि पण्डाल कैसे सुरक्षित रहेगा, कल पूजा कैसे हो पाएगी।

श्री जयकुमार काला अत्यधिक व्यग्र हुए। पूज्य माताजी के पास पहुँचे और बोले— माताजी! इतनी जोर से वर्षा और तूफान चल रहे हैं; पण्डाल की सुरक्षा करने वाला कोई नहीं है, दस-बीस मनुष्यों को पाण्डाल में रहना चाहिए; यहाँ तो कोई व्यवस्था ही नहीं है।

शान्त, सौम्य माताजी ने उन्हें धैर्य बँधाते हुए निर्भयता पूर्वक कहा—"घबराओ नहीं; पण्डाल की रक्षा, मानव नहीं देव करेंगे।"

माताजी के इन शब्दों को सुनकर सब चुप रह गए। मध्यरात्रि तक प्रकृति का यह प्रकोप जारी रहा। इस बीच पाण्डाल में जाकर देखने का भी किसी को साहस नहीं हुआ। माताजी तो 'महामंत्र नवकार' का जाप्य करने बैठ गईं और उनके आदेश से सभी उपस्थित जनसमुदाय भी णमोकार मंत्र का जाप करने लगा।

---

१. पं० बाबूलाल जैन जमादार, पं० कुन्जीलाल शास्त्री, ब्र कैलाशचन्द, ब्र. विनोदकुमार एव बीस पथी कोठी के स्टाफ का पूर्ण सहयोग था। विधानकर्ता श्री निर्मलकुमार सेठी, हुलासचन्द, महावीरप्रसाद सेठी, पन्नालाल सेठी, पारसमल बड़जात्या आदि बडी विनय एव तत्परता से विधान की क्रियाओ मे संलग्न थे।

श्री अमरचन्द पहाडिया, श्री जयकुमार काला, श्री हुरकचन्द पाण्डया, ब्र. सेठ नेमीचन्द बड़जात्या, श्री डूंगरमल सबलावत, श्री पूनमचन्द गगवाल आदि अनेकानेक महानुभाव बिहार, बंगाल, आसाम आदि प्रान्तों से सम्मिलित हुए थे। —स०

उपद्रव शान्त होने के बाद लोग पण्डाल में पहुँचे। पण्डाल ६० फुट लम्बा और ६० फुट चौड़ा था; उसमें ३० फुट में वर्तुलाकार मण्डल था। उसमें २॥ फुट ऊँचे पाँच मेरु थे एवं चार सौ अट्ठावन जिनमन्दिर बने थे; सबमें प्रतिष्ठित प्रतिमाएँ विराजमान थी। यह भयंकर तूफान भी णमोकार महामंत्र के प्रभाव से पण्डाल का कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सका। पण्डाल को पूर्णत: सुरक्षित देखकर सबका हृदय आनन्दविभोर हो उठा। णमोकार मंत्र के अतिशय और पूज्य माताजी के धैर्य एवं दृढ़ता की सभी ने भूरि-भूरि प्रशंसा की।

विधान के दिनों में प्रतिदिन इन्द्र-इन्द्राणियाँ हाथियों पर आरूढ़ होकर शोभायात्रा में सम्मिलित होते थे। विधान के अन्तिम दिन शोभायात्रा पाण्डुक शिला पर पहुँची, पंचामृताभिषेक हुआ। शोभा यात्रा लौट कर दिगम्बर जैन बीस पन्थी मन्दिर में पहुँची। इन्द्रों ने सभी उपस्थित साधर्मी बन्धुओं को श्रीफल भेंट स्वरूप दिया, प्रीतिभोज दिया।

मण्डलविधान की निर्विघ्न सम्पन्नता से सबको अपार हर्ष हुआ।

इस अवसर पर भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा की बिहार शाखा की स्थापना हुई।

३६ वाँ वर्षायोग :

बिहार प्रान्त के गयाजी, कोडरमा, हजारीबाग, गिरिडीह आदि के श्रावक दल श्रीफल चढ़ा कर माताजी के चरणों में नतमस्तक होकर प्रार्थना करने लगे कि "मातेश्वरी! अपनी चरण रज से हमारे नगर को पवित्र कीजिए। हमारे नगर में वर्षायोग करने की स्वीकृति प्रदान कर हमें कृतार्थ कीजिए।"

वृद्धावस्था एवं अस्वस्थ शरीर के कारण माताजी तीर्थराज को छोड़ कर अन्यत्र कहीं जाना नहीं चाहती थी अत: बोलीं—"भाई! इन सब माताजी को ले जाओ; ये ही धर्म प्रभावना करेंगी, मैं तो अब वृद्ध हो गई हूँ।"

"माताजी! आपको अकेले छोड़कर इन माताजी को हम कैसे ले जा सकते हैं। आपके बिना संघ की शोभा नहीं है।"

अन्य स्थानों के लोग तो चले गये परन्तु गिरिडीह के श्रावकों ने अपना आग्रह नहीं छोड़ा। प्रतिदिन उनके आने का क्रम चलता ही रहा।

भगवान भक्त के आधीन होते हैं—कहावत के अनुसार माताजी ने अन्त में गिरिडीह में वर्षायोग सम्पन्न करने की स्वीकृति दे दी। गिरिडीह समाज मे हर्ष की लहर दौड़ गई। वि० सं०

२०३८ आषाढ़ शुक्ला सप्तमी की शुभ बेला में संघ ने गिरिडीह नगर में प्रवेश किया। भावभीने स्वागत के साथ वर्षायोग की स्थापना हुई।

चातुर्मास की अवधि में पंच परमेष्ठी विधान, चौंसठ ऋद्धि विधान, ऋषि मण्डल विधान, शान्ति मण्डल विधान, दश लक्षण विधान, रत्नत्रयविधान सोलह कारण आदि विधान, अनुष्ठान हुए जिससे समाज मे विशेष जाग्रति रही। श्रीयुत् भागचन्दजी छाबड़ा (पटना) एवं श्री महावीरप्रसादजी सरावगी ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया। अन्य अनेक श्रावक-श्राविकाओं ने अष्टाह्निका, दशलक्षण आदि व्रत किए।[1] यहाँ कितने ही वर्षों से पं० कुंजीलालजी शास्त्री रहते हैं। पण्डितजी के सान्निध्य के कारण समाज में स्वाध्याय व अन्य धार्मिक क्रियाओं के प्रति विशेष रुचि एवं श्रद्धा है। वर्षायोग के चार माह बड़ी शान्ति के साथ अध्ययन-अध्यापन में व्यतीत हुए।

गिरिडीह से विहार कर आर्यिका संघ पुनः श्री सम्मेदशिखरजी आगया। मंगसर कृष्णा सप्तमी को पुनः तीर्थराज के दर्शन कर पूज्य माताजी का हृदय गद्गद् हो उठा। 'एकीभाव स्तोत्र' में वादिराज मुनिराज ने लिखा है—

आनन्दाश्रुस्नपितवदनं गद्गदं चाभिजल्पन्,
यश्चायेत त्वयि दृढमनाः स्तोत्रमंत्रैर्भवन्तं।
तस्याभ्यस्तादपि च सुचिरं देहवल्मीकमध्या—
न्निष्कास्यन्ते विविधविषमव्याधयः काद्रवेयाः॥

उस समय माताजी के मुखमण्डल को देखकर उपर्युक्त श्लोक का स्मरण हो आया। माताजी के हृदय में वीतराग प्रभु की भक्ति कूट-कूट कर भरी हुई है। उन्होंने उस समय भगवान से प्रार्थना की कि हे प्रभो! अब आपके चरणसान्निध्य को छोड़कर अन्यत्र कही नहीं जाना पडे मेरा, समाधिमरण आपके सान्निध्य में हो—बस मेरी यही एक भावना है।

माताजो वज्र से भी अधिक कठोर हैं और फूल से भी अधिक कोमल। उपसर्ग आने पर स्वयं के प्रति अत्यन्त कठोर, निर्मम रहते हैं जबकि दूसरों के दुःख में फूल से भी अधिक मृदु हैं। आप एक क्षण भी व्यर्थ नही करतीं, निरन्तर स्वाध्याय में रत रहती हैं, एक सप्ताह में एक शास्त्र पूरा कर लेती हैं। जो कोई विशेष बात आती है तो मुझे बोलते हैं कि देखो सुपार्श्वमती, इसमें क्या लिखा है।

---

१. आर्यिका सुपार्श्वमतीजी ने भी नन्दीश्वर व्रत के विधानानुसार ५८ उपवास किये थे। —सं०

किसी भी विद्वान की या आर्यिका, माताजी की या मुनिराज आचार्य की कोई पुस्तक हाथ में आती है तो अवश्य पढ़ते हैं। यदि उसमें कोई आगम विरुद्ध बात देखते हैं तो शीघ्र पकड़ लेते हैं और मुझे दिखाते हैं। आपको शास्त्र विरुद्ध कोई लेख, या कोई क्रिया कदापि सहन नहीं होती। देव शास्त्र और गुरु में आपकी अविचल श्रद्धा और अटूट भक्ति है।

फाल्गुन के अष्टाह्निका पर्व में माताजी इन्दुमतीजी की प्रेरणा से आर्यिका संघ को आसाम की ओर ले जाने वाले संघ-सञ्चालक धर्मनिष्ठ श्री मिश्रीलालजी बाकलीवाल, गौहाटी वालों ने शिखरजी में श्री दिगम्बर जैन बीस पंथी कोठी के प्राङ्गण में "इन्द्रध्वजविधान" का आयोजन किया। विधि-विधान का सम्पूर्ण कार्य प्रतिष्ठाचार्य ब्रह्मचारी श्री सूरजमलजी ने सम्पन्न किया। आर्यिका संघ का सान्निध्य रहा। शताधिक भक्तों ने महाभिषेक व पूजन के कार्य सम्पन्न कर अपनी प्रगाढ़ भक्ति से असीम पुण्योपार्जन किया। सहस्राधिक धर्मनिष्ठ श्रावकों ने इस महान् आयोजन में सम्मिलित होकर प्रभूत पुण्यसम्पदा अर्जित की।

दिनांक २ मार्च, १९८२ को परम पूज्य १०८ दिगम्बर जैनाचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज की अभिवन्दना हेतु प्रकाशित "आचार्य धर्मसागर अभिवन्दन ग्रन्थ" का विमोचन करके ब्रह्मचारी श्री सूरजमलजी ने संघ प्रमुख आर्यिका पूज्य १०५ श्री इन्दुमती माताजी को भेंट किया। सभी उपस्थित बन्धुओं ने पूज्य आचार्य श्री के प्रति अपने भाव भीने श्रद्धा सुमन समर्पित किये।

पूज्य इन्दुमतीजी एवं अन्य दो और आर्यिकाओं के केश लोच सम्पन्न हुए। अनेक विद्वानों तथा ब्र० सूरजमलजी व क्षुल्लक सिद्धसागरजी लाडनूवालों के भाषण एवं प्रवचन हुए। सारा समारोह सोत्साह सम्पन्न हुआ।

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा की पूर्वाञ्चल शाखा का अधिवेशन आर्यिका संघ के सान्निध्य मे तथा श्री निर्मलकुमारजी सेठी सीतापुर वालों की अध्यक्षता में आयोजित हुआ। बिहार, बंगाल तथा आसाम आदि प्रान्तों के देव-शास्त्र-गुरुभक्तों ने महासभा को अपना पूर्ण समर्थन देने का संकल्प किया जिससे महासभा सुसंगठित होकर धर्म प्रचार व धर्म संरक्षण के महदनुष्ठान में सफल हो सके।

चालीसवां वर्षायोग :

परम पूज्य १०५ आर्यिका श्री इन्दुमती माताजी की वृद्धावस्था के कारण तथा स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण, कलकत्ता से समागत श्री अमरचन्दजी पहाड़िया, श्री नेमीचन्दजी बड़जात्या, श्री भागचन्दजी पाटनी, श्री मिश्रीलालजी पाटनी तथा स्थानीय समाज व बीसपंथी कोठी के क्षेत्रमंत्री श्री वीरकुमारजी, मैनेजर श्री सुरेशकुमारजी, तेरह पंथी कोठी के क्षेत्रमंत्री राजमलजी तथा गिरीडीह

के श्री प्रभुलालजी जैन आदि ने पूज्य माताजी से संघ सहित शिखरजी में ही वर्षायोग सम्पन्न करने की प्रार्थना की। सिद्ध क्षेत्र सम्मेदाचल पर ही धर्मसाधना करने की भावना होने के कारण माताजी ने चातुर्मास हेतु स्वीकृति प्रदान की और आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी को अपना ४० वां वर्षायोग स्थापित किया है।

॥ इति शुभम् ॥

मां, जन्मदात्री मां तो अपनी कन्या की चिन्ता उसका विवाह नहीं होने तक ही करती है परन्तु मेरी यह माता—पूज्य आर्यिका इन्दुमतीजी—गत तैंतीस वर्षों से अहर्निश मेरी रक्षा कर रही है। जन्मदात्री मां तो अपनी सन्तान पर कभी कुपित भी हो जाती है, उसे डाँटती-फटकारती भी है परन्तु मेरी यह माता मुझ से कभी नाराज नही हुई। कभी मुझे डाँटा-फटकारा हो, यह मुझे स्मरण नहीं।

मुझे तो आपसे माता का प्यार और पिता का दुलार दोनों एक साथ मिले है।

—आर्यिका सुपार्श्वमती

आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी श्री डूंगरमलजी सबलावत को जीवनवृत्त के अध्याय लिखाते हुए

प्रभावक प्रेरणा

卐 परम पूज्य १०५ आर्यिका श्री इन्दुमती माताजी का सम्पूर्ण जीवन ही सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की आराधना-भक्ति और प्रभावना में व्यतीत हो रहा है। यहाँ प्रभावना और प्रेरणा के कतिपय स्थूल कार्यों की सूची संकलित करने का प्रयास है—

卐 आपकी प्रेरणा से निम्नलिखित स्थानों व क्षेत्रों में चैत्यालय की स्थापना, स्वाध्याय भवन का निर्माण, जिनबिम्ब प्रतिष्ठा, वेदी प्रतिष्ठा आदि महत्त्वपूर्ण आयोजन हुए :

- बेलडांगा (बंगाल)/चैत्यालय की स्थापना
- गौरीपुर (आसाम)/श्री कन्हैयालालजी कासलीवाल के घर में चैत्यालय की स्थापना
- कोकराझाड़ (आसाम)/श्री कँवरीलालजी पाण्ड्या के घर मे चैत्यालय की स्थापना
- गौरेश्वर (आसाम)/महावीर चैत्यालय की स्थापना
- जागीरोड (आसाम)/बड़जात्या भवन में चैत्यालय की स्थापना
- बोखाघाट (आसाम)/श्री सूरजमलजी बडजात्या के घर में चैत्यालय की स्थापना
- डैरगाँव (आसाम)/श्री मांगीलालजी पाटनी के घर मे चैत्यालय की स्थापना
- मड़ियानी (आसाम)/झाँझरी भवन में चैत्यालय की स्थापना
- बगाईगाँव (आसाम)/चैत्यालय की स्थापना
- मैनागुडी (पं० बगाल)/श्री इन्दरचन्दजी पाटनी के घर में चैत्यालय की स्थापना
- टोडारायसिह (राजस्थान)/गृह चैत्यालय की स्थापना
- गौहाटी (आसाम)/श्री सोहनलालजी पाटनी के घर मे चैत्यालय की स्थापना
- कटक (उड़ीसा)/श्री सम्पतलालजी पाटनी के घर में चैत्यालय की स्थापना
- बड़पेटा रोड (आसाम)/वेदी प्रतिष्ठा
- ठाकुरगञ्ज (बिहार)/चैत्यालय के स्थान पर जिनालय का निर्माण तथा संघ के सान्निध्य में वेदीप्रतिष्ठा।
- विजयनगर (आसाम)/बिम्ब प्रतिष्ठा महोत्सव (दो बार)
- डीमापुर (नागालैंड)/श्री पन्नालालजी सेठी और श्री किशनलालजी सेठी के यहाँ गृह चैत्यालयों की स्थापना।
- नाथनगर (भागलपुर-बिहार)/वृहत् बिम्ब प्रतिष्ठा महोत्सव
- बोकारो (इस्पातनगरी, बिहार)/जिन मन्दिर, जैन भवन, स्वाध्याय भवन माताजी की प्रेरणा से श्री पूनमचन्दजी (झरिया वाले) तथा शम्भूदयालजी जैन ने शिलान्यास किया।

संयम के पथ पर

पूज्य १०५ आर्यिका श्री इन्दुमती माताजी के प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं समीचीन देशना से प्रेरणा प्राप्त कर अनेक स्त्री-पुरुषों ने संयम और व्रत ग्रहण का उत्कृष्ट मार्ग अपनाया। उनकी सूची (स्मृति के आधार पर) यहाँ दी जा रही है; सम्भव है कई नाम छूट गए हों—

卐 वे जिन्होंने सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये :

- श्री चाँदमलजी चूड़ीवाल, नागौर
- श्री गुलाबबाई, टोडारायसिंह (वर्त्तमान आर्यिका शान्तिमतीजी)
- श्री कुन्दनबाई धर्मपत्नी श्री लालचन्दजी पहाड्या, नाँदगाँव
- श्री सन्तोषबाई, चाँपानेर
- श्री गुलाबचन्दजी लुग्या, जयपुर (स्व० मुनि श्री जयसागरजी महाराज)
- श्री गट्टूबाई सबलावत, डेह
- श्री केसरबाई धर्मपत्नी श्री ताराचन्दजी बड़जात्या, नागौर
- श्री जुहारमलजी पाटनी, डेह
- श्री देवकीबाई, त्रिलोकपुर (संघस्थ)
- श्री हरकी बाई कुचामन सिटी (संघस्थ)
- श्री कैलाशचन्दजी जैन कोठिया (संघस्थ)
- श्री भँवरीबाई धर्मपत्नी इन्दरचन्दजी बड़जात्या, नागौर; वर्त्तमान आर्यिका १०५ श्री सुपार्श्वमती माताजी (संघस्थ)

卐 वे जिन्होंने पञ्चम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये :

- श्री मोहनलालजी छाबड़ा, टोडारायसिंह (स्व.१०८ श्री सन्मतिसागरजी महाराज)
- श्री नयला बाई, टोडारायसिंह
- श्रीमती प्यारी बाई धर्मपत्नी श्री छोगमलजी बड़जात्या, नागौर
- श्रीमती टीकीबाई धर्मपत्नी श्री कँवरीलालजी पाटनी डेह
- श्रीमती तुलसीबाई धर्मपत्नी श्री खीवकरणजी बडजात्या, नागौर
- श्रीमती मैनाबाई (सोहनी) धर्मपत्नी श्री सोहनलालजी काला, सुजानगढ़
- श्रीमती शान्तिबाई धर्मपत्नी श्री मूलचन्दजी सेठी, डेह (वर्त्तमान आर्यिका १०५ श्री विद्यामतीजी, संघस्थ)
- श्री/श्रीमती रिद्धकरणजी पाटनी, डेह

卐 वे जिन्होंने दूसरी प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये :

- श्री प्रवीणचन्दजी की बड़ी माँ, टोडारायसिंह
- श्री चाँदमलजी की माँ, टोडारायसिंह
- श्री गुलाबचन्दजी की धर्मपत्नी टोडारायसिंह
- श्री तिलोकचन्दजी की माँ, टोडारायसिंह
- श्री/श्रीमती बालचन्दजी पाटनी, डेह
- श्री नयनाकुमारी सुपुत्री श्री रिखबचन्द शाह, बड़गाँव
- श्री अनोखाबाई, अजमेर
- श्री पूनमचन्दजी पाटनी, डेह
- श्रीमती कमलाबाई धर्मपत्नी श्री सोहनलालजी सेठी, सुजानगढ़
- श्री फूलचन्दजी पाटनी की धर्मपत्नी, किशनगंज
- श्री भँवरलालजी पाटनी, बारसोई
- श्री/श्रीमती वीरकुमारजी जैन, आरा

卐 वे जिन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया :

- श्री मोतीलालजी पाण्ड्या, कानकी
- कुमारी कुसुम, कारजा
- कुमारी विद्युल्लता, तुलजापुर
- श्री हुकमीचन्दजी बड़जात्या, नागौर
- श्री गजानन्दजी पाटनी, गया
- श्री भागचन्दजी छाबड़ा, गिरिडीह
- श्री फूलचन्दजी सेठी, अड़गाबाद
- श्री महावीरप्रसादजी अग्रवाल, गिरिडीह
- श्री भागचन्दजी छाबड़ा, पटना
- श्री मिश्रीलालजी बाकलीवाल, गौहाटी
- श्री जयकुमारजी काला
- श्री केसरीमलजी बड़जात्या, कलकत्ता
- श्री सुमेरमलजी जैन, जबलपुर
- श्री शान्तिलालजी पाण्ड्या, गौहाटी
- कुमारी प्रमिला, जबलपुर

❖

वर्षायोग

कब / कहाँ

विक्रम सम्वत् २००० : कसावखेड़ा
" २००१ : आडूल
" २००२ : झालरापाटन
" २००३ : टोडारायसिंह
" २००४ : जयपुर
" २००५ : नागौर
" २००६ : नागौर
" २००७ : सुजानगढ
" २००८ : मेड़तारोड
" २००९ : ईसरी
" २०१० : कटनी
" २०११ : ईसरी
" २०१२ : ईसरी
" २०१३ : खानियाँ-जयपुर
" २०१४ : खानियाँ-जयपुर
" २०१५ : नागौर
" २०१६ : लाडनूँ
" २०१७ : सुजानगढ
" २०१८ : सीकर
" २०१९ : लाडनूँ
" २०२० : अजमेर
" २०२१ : चाँपानेरी
" २०२२ . सनावद
" २०२३ : औरंगाबाद
" २०२४ : कुम्भोज बाहुबली

विक्रम सम्वत् २०२५ : अकलूज
" २०२६ : बारामती
" २०२७ : कारञ्जा
" २०२८ : सम्मेदशिखरजी
" २०२९ : कलकत्ता
" २०३० : धुलियान
" २०३१ : किशनगंज
" २०३२ : गौहाटी
" २०३३ : डीमापुर
" २०३४ : विजयनगर
" २०३५ : कानकी
" २०३६ : भागलपुर
" २०३७ : सम्मेदशिखरजी
" २०३८ : गिरीडीह

अद्यावधि कुल वर्षायोग : ३९

प्रान्त

प्रान्त		संख्या
राजस्थान	·	१६
बिहार	:	८
महाराष्ट्र	:	७
बंगाल	:	३
म० प्र०	:	२
आसाम	:	२
नागालैंड	:	१

आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी

के

卐 मधुर वचनामृत 卐

❀ श्रुत की चिन्ता, प्रभु-भक्ति का अनुराग, दान का व्यसन, इन्द्रियों का वशीकरण और प्राप्त धन में सन्तोष—ये वृत्तियाँ जीवन को सफल बनाती हैं।

❀ ज्ञान-काल में व्यवहार नय का आश्रय लेना पड़ता है; ध्यान काल में निश्चय नय का और मुक्तिकाल में दोनों का ही आश्रय छोड़ना पड़ता है।

❀ जिस प्रकार फल लगने पर वृक्ष की शाखा नम जाती है उसी प्रकार ज्ञान और सम्मान बढने पर विद्वान विनम्र हो जाते हैं।

❀ किसी भी वस्तु का असली स्वरूप ज्ञानचक्षु से दिखता है, चर्मचक्षु से नहीं।

ॐ यदि आहार में विवेक नहीं तो पशु और मनुष्य समान हैं।

❀ ममता का फल संसार रूपी कारागार है। समता का फल स्वाधीन सुख रूपी सागर है।

❀ मानव जीवन उसीका सफल है जो गुलाब के फूल के समान परिस्थितियों रूपी कांटों में पल कर भी अपने चारित्र की सुगन्ध से दुनियाँ को सुवासित करता है।

❀ घिसने और जलाने पर भी चन्दन सुगन्ध ही फैलाता है। सज्जन पुरुष अपकारी के प्रति भी सद्भावना ही रखते हैं।

❀ वासना रहित मन सूखी दियासलाई के समान है जिसे एक बार घिसने पर ही अग्नि पैदा हो जाती है। तृष्णाओं में डूबा हुआ मन गीली दियासलाई के समान है जिसे बार-बार घिसने पर भी अग्नि पैदा नहीं होती। आत्मध्यान की सफलता के लिए मन को सांसारिक तृष्णाओं के गीलेपन से बचाना चाहिए।

❀ कच्ची और गीली मिट्टी के खिलौने, पात्र आदि बनते हैं, अग्नि में पकाई हुई मिट्टी के नही। भोगलिप्सा की अग्नि में पके हुए हृदय वाला मानव भगवान का भक्त नहीं हो सकता।

❀ धागे में गाँठ लगी हो तो वह सूई के छिद्र में नहीं घुस सकता, उसी प्रकार मन में स्वार्थ-सङ्कीर्णता की ग्रन्थि पड़ी हो तो वह भगवद्भक्ति में नहीं लग सकता।

❀ मनुष्य जितना नाजुक बनता जाएगा, उतना ही दुर्बल होगा। यदि दृढ़ता, कष्टसहिष्णुता ग्रौर साहस से काम लेगा तो केवल शरीर ही नही ग्रपितु मन भी इतना दृढ़ हो जाएगा कि उसके सहारे हर विपन्नता का सामना कर सकेगा।

❀ दूसरों की पीड़ा देखकर, दयार्द्र होकर मोम की भाँति पिघलने वाले सहृदय बनो। विपत्तियों, कष्टों एवं प्रतिकूलताग्रों के थपेड़े खाते रहने की स्थिति में भी चट्टान के समान दृढ़ एवं ठोस बने रहो।

❀ ग्रग्नि की छोटी सी चिनगारी विशाल राशि को क्षरण मे भस्म कर देती है, छोटा सा बिच्छू ग्रपने डंक से तिलमिला देनेवाली भयंकर पीड़ा उत्पन्न कर देता है, वैसे ही छोटा सा पाप भी भयंकर विस्फोट करता है; ग्रतः पाप को कभी छोटा मत समझो।

❀ संसार में रहते हुए भी मोह-माया मे मत फँसो। संसार-सरिता के ग्रगाध जल में मन रूपी नौका के रहते हुए भी मोहमाया रूपी जल को भीतर मत ग्राने दो।

❀ रसलोलुपता शरीर का नाश करती है। यशलोलुपता धर्म ग्रौर धन का नाश करती है। धनलोलुपता स्नेह का घात करती है; इन तीनों से बच कर रहो।

❀ यदि तुम किसी की प्रशंसा नही कर सकते तो निन्दा तो मत करो। यदि किसी को ग्रमृत नहीं पिला सकते हो तो विष पिला कर मारने की चेष्टा तो मत करो।

❀ ग्रपनी गलती देखो, दूसरों के ग्रवगुण नही गुरण देखो।

❀ ख्याति, पूजा, लाभ में पड़ कर धर्म मार्ग से विमुख मत बनो।

❀ साधू का घर दूर है, जसे पेड़ खजूर।
ऊपर चढ़े तो रस चखे, नीचे चकनाचूर ॥

❀ बाहर उजले ग्रौर भीतर काले मत बनो।

❀ ईर्ष्या के रोगी का हृदय से उपचार करना सीखो। शूलों के दानी का फूलों से सत्कार करना सीखो।

❀ ग्रनाथ, विधवा, विकलांगो का उपहास मत करो।

❀ चापलूसी, बकवास और आलस्य से सदैव दूर रहो।

❀ जो सत्य को सही समझता है, वह सन्त है।

❀ जो त्रिकाल ध्रुव आत्मा की महिमा गाता है वह महन्त है।

❀ जो आत्मा में स्थिर होकर, आत्मा में रमण करता है, वह भगवन्त है।

❀ जिसके हृदय में चेतन तत्त्व से प्यार नहीं, उसके जीवन में सार नही।

❀ पर निन्दा लू की बीमारी है। स्व प्रशसा शीत का निमोनिया है।

❀ ससार से ३६ (विरुद्ध) और आत्मा से ६३ (सम्मुख) बन कर रहो, यही धर्म का सार है।

❀ आहार की परवाह मत करो; परवाह करो आत्मा का दर्शन कर आत्मीय आनन्द पाने की।

❀ आचरणहीन ज्ञान मृत है और ज्ञानहीन आचरण भी मृत है। विशाल शास्त्र ज्ञान भी आचरणहीन का कल्याण नही कर सकता।

❀ किसी भी सांसारिक पदार्थ की इच्छा मत करो। इच्छा रूपी फाँस सदैव पीड़ित करती रहेगी।

❀ कंजूस चार प्रकार के होते हैं—धन का, तन का, मन का और वचन का। अपने पास धन होते हुए भी जो उसे पर के उपकार मे नहीं लगाता, वह धन का कंजूस है। अपने शरीर से जो दूसरों की वैयावृत्य नही करता, वह तन का कंजूस है। अपने मन से जो दूसरों का हितचिन्तन नहीं करता, वह मन का कजूस है। जो अपनी वाणी से दूसरों के गुणों का स्तवन नहीं करता, वह वचन का कंजूस है।

❀ क्षमा के समान कोई तप नहीं है; सन्तोष से अधिक कोई सुख नहीं है। तृष्णा से बढ़कर कोई व्याधि नहीं है।

❀ कपट की कटार से किसी का गला मत काटो।

❀ पापी को धन परलय जाय, चिंवटी सींचै तीतर खाय।

❀ विना कह्यां करै बो देव, कह्यां सूं करै बो मिनख, कह्यां सूं ही नी करै बो तो ढोर बरोबर है। इसारो समझै ओ ही मिनख रो मिनखपणो है।

❀ सौ बकै अर एक'र लिखै तो बरोबर है । लिखणवालै की बात पक्की, बरसां ताईं चालै । जद कोई बात झूठी लिखो जावै तो मिथ्यामारग चल जावै । इण वास्ते सोच-विचार कर लिखणो चहीजै ।

❀ आचार्यां का बणायोड़ा घणा ही ग्रन्थ भरया पड़या है । ब्यानै ही बांच ल्यौ । आपको ग्रन्थ बणावण मैं काईं फायदो है । जद लिखो ही तो आचार्यां कै अनुसार लिखो । सैस्यूं चोखो तो ओ ही है क आचार्यां का ग्रन्थां कौ उद्धार करो ।

❀ गुरुजना की बात सुण'र उछलणो नी, गुरु तो हित की बात ही केवै ।

❀ कोई की देखादेखी नीं करणीं, खुद कै पद को खयाल राखणो चहीजै ।

❀ एकलो-ठोकलो की ऊँ लडै, सगलां कै साथ में रेवै, सगलानै निभावै जद मालुम पड़ै ।

❀ थोड़ो सो मान-सम्मान मिल्यो क' घमण्ड का पहाड़ पर चढ जावै; आ कोनी सोचै क ओ घमण्ड कितरा दिनां को है—राजा-महाराजा वां को ही कोनी रह्यो ।

❀ कोई बात मुंडासूं काढबा पैली हिरदै रा तराजू पर तौलनी चहीजै । मुंडा सूं निकल्या बाद पश्चात्ताप-सोच करयां कुछ कोनी हुवै ।

❀ आजकल देखा-देखी घणी चाली है, पण देखा-देखी करणै सै फायदो कोनी ।

❀ पढ-पढ़ पोथा पंडित होग्या, प्रेम से रहणो सीख्यो कोनी । काईं है पोथा पढनै मैं । पैली गुरुभक्ति, विनय, सद्व्योहार तो सीखो ।

❀ घर मैं तो दूध पडयो है काचो, मन्दर मैं जा'र बैठगी, होग्यो धरम । धरम की मैं है किरिया पालण मैं क खाली पूजा सुणणै मैं ?

❀ धरम कठै ही बा'रै थोड़ी पड़यो है, बो तो खुद रा परिणामां रौ कारज है । इण वास्तै परिणामां नै निरमल करण री कोसीस करो ।

❀ अबार का टाबरां कै तो धरम की लगन ही कोनी । कोई की भक्ति, विनय, दया को नाम ही कोनी । न खाण-पीण रो विचार । पाणी छानणं आदि री किरिया तो ऊठ ही गई ।

❀ अबार का छोरां कै तो कोई मां-बाप तीरथ कोनी—
"बाप तीरथ नहीं, माय तीरथ नहीं, तीरथ साला-साली को ।
और तीरथ तो ऐर-गैर है, सांचो तीरथ घर वाली को ।।"

❖

आ र्यि का त्र य

卐

आर्यिका १०५ श्री सुपार्श्वमतीजी

आ० सुपार्श्वमतीजी

आज दिगम्बर जैन समाज में जहाँ अनेक तपस्वी विद्वान् आचार्य, मुनिगण विद्यमान हैं वहीं अपने तप और वैदुष्य से विद्वत्संसार को चकित करने वाली आर्यिका, साध्वियाँ भी विद्यमान हैं। इन्हीं में से एक हैं—आर्यिका १०५ श्री सुपार्श्वमती माताजी। आपकी बहुज्ञता, विद्या-व्यासग, सूक्ष्म तलस्पर्शिनी बुद्धि, अकाट्य तर्कणा शक्ति एवं हृदयग्राह्य प्रतिपादन शैली अद्भुत है और विद्वत् संसार को भी विमुग्ध करने वाली है।

राजस्थान के मरुस्थल नागौर जिले के अन्तर्गत डेह से उत्तर की ओर १६ मील पर मैनसर नामके गाँव में सद्गृहस्थ श्री हरकचन्दजी चूड़ीवाल के घर वि० सं० १६८५ मिती फाल्गुन शुक्ला नवमी के शुभ दिवस में एक कन्यारत्न का जन्म हुआ—नाम रखा गया 'भँवरी'। भरे-पूरे घर में भाई बहिनों के साथ बालिका भी लालित-पालित हुई पर तब शायद ही कोई जानता होगा कि यह बालिका भविष्य में परमविदुषी आर्यिका के रूप में प्रकट होगी।

अपने घरों में कन्या के विवाह की बड़ी चिन्ता रहती है और यही भावना रहती है कि उसके रजस्वला होने से पूर्व ही उसका विवाह सम्बन्ध कर दिया जाय। 'भँवरीबाई' भी इसका अपवाद कैसे रह सकती थीं! उनका विवाह १२ वर्ष की अवस्था में ही नागौर निवासी श्री छोगमलजी बड़जात्या के ज्येष्ठ सुपुत्र श्री इन्दरचन्दजी के साथ कर दिया गया। परन्तु मनचाहा कब होता है? 'अपने मन कछु और है, विधना के कछु और'। विवाह के तीन माह बाद ही कन्या जीवन के लिए अभिशाप स्वरूप वैधव्य ने आपको आ घेरा। पति श्री इन्दरचन्दजी का आकस्मिक निधन हो गया। आपको वैवाहिक सुख न मिला, विवाह तो हुआ परन्तु कहने मात्र को, वस्तुतः आप बाल ब्रह्मचारिणी ही हैं।

अब तो भँवरीबाई के सामने समस्याओं से घिरा सुदीर्घ जीवन था। इष्ट वियोग से उत्पन्न हुई असहाय स्थिति बड़ी दारुण थी। किसके सहारे जीवन यात्रा व्यतीत होगी? किस प्रकार निश्चिन्त जीवन मिल सकेगा? अवशिष्ट दीर्घजीवन का निर्वाह किस विधि होगा? इत्यादि नाना भाँति की विकल्प लहरियाँ मानस को मथने लगी। भविष्य प्रकाशविहीन प्रतीत होने लगा।

ससार में शीलव्रती स्त्रियाँ धैर्यशालिनी होती हैं, नाना प्रकार की विपत्तियों को वे हँसते-हँसते सहन करती हैं। निर्धनता उन्हे डरा नहीं सकती, रोग शोकादि से वे विचलित नहीं होतीं परन्तु पति-वियोग सदृश दारुण दुःख का वे प्रतिकार नहीं कर सकती हैं, यह दुःख उन्हे असह्य हो जाता है। ऐसी दुःखपूर्ण स्थिति मे उनके लिए कल्याण का मार्ग दर्शाने वाले विरले ही होते हैं और सम्भवतया ऐसी ही स्थिति के कारण उन्हे 'अबला' भी पुकारा जाता है। परन्तु भँवरीबाई में आत्म-बल प्रकट हुआ, उनके अन्तरंग में स्फुरणा हुई कि इस जीव का एक मात्र सहायक या अवलम्बन 'धर्म' ही है। अपने विवेक से उन्होने सारी स्थिति का विश्लेषण किया और महापुरुषों व सतियों के जीवन चरित्रों का परिशीलन कर 'धर्म' को ही अपनी भावी जीवनयात्रा का साथी बनाने का दृढ़ निश्चय किया। अब पितृ घर में ही रह कर प्रचलित स्तोत्र पाठादि पूजन स्वाध्यायादि में ही अपनी रुचि जागृत की। माता पिता के संरक्षण में इन क्रियाओं को करते हुए आपके मन को बड़ी शान्ति मिलती।

अब आपका अधिकाश समय धर्म-ध्यान में ही बीतता, संसार से विरक्ति की भावना की जड़े पनपने लगीं। अपनी ७-८ वर्ष की आयु में आपको महान् योगी तपस्वी साधुराज १०८ आचार्यकल्प श्री चन्द्रसागरजी महाराज के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ था जब वे डेह से लालगढ़ मैनसर पधारे थे।

विक्रम सम्वत् २००५ का चातुर्मास नागौर में पूर्ण कर आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी भदाना, डेह होते हुए मैनसर पहुँची थी। भँवरीबाई आपका सान्निध्य पाकर बहुत प्रमुदित

हुई। माताजी के संसर्ग से वैराग्य की भावना बलवती हुई। भँवरीबाई को माताजी के जीवन से बहुत प्रेरणा मिली, माताजी भी वैधव्य के दुःख का तिरस्कार कर संयममार्ग में प्रवृत्त हुई थी। भँवरीबाई को आर्यिकाश्री से अमूल्य वात्सल्य प्राप्त हुआ और उन्हे पूर्ण विश्वास होगया कि आत्म-कल्याण का सम्यग्मार्ग तो यही है, शेष तो भटकना है। अत. आपने मन ही मन संयम ग्रहण करने का निश्चय किया। अब से आप माताजी के साथ ही रहने लगीं। आपके साथ ही रहकर अनेक तीर्थ-क्षेत्रों, अतिशय क्षेत्रों आदि के दर्शन करती हुई, मुनिसंघों की वैयावृत्ति व आहार दान का लाभ लेती हुई नागौर, सुजानगढ़, मेडतारोड, ईसरी, शिखरजी, कटनी, पार्श्वनाथ, ईसरी आदि स्थानों पर वर्षायोग में रहकर जयपुर खानिया में आचार्य १०८ श्री वीरसागरजी के संघ के दर्शनार्थ पहुँची। आचार्य श्री वहाँ चातुर्मास हेतु विराज रहे थे। आर्यिका इन्दुमतीजी ने भी आचार्य सघ के साथ चातुर्मास वहीं किया।

आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज ने भँवरीबाई के वैराग्य भाव, अच्छी स्मरण शक्ति एवं स्वाध्याय की रुचि देख कर संघस्थ ब्रह्मचारी श्री राजमलजी को (वर्तमान में विद्वान् मुनि १०८ श्री अजितसागरजी) आज्ञा दी कि वे ब्र० भँवरीबाई को संस्कृत प्राकृत का अध्ययन करायें तथा अध्यात्म ग्रन्थों का स्वाध्याय करायें। विद्यागुरु का ही महान् प्रताप है कि आप आज चारों ही अनुयोगो के साथ-साथ संस्कृत प्राकृत भाषा में भी परम निष्णात होगई हैं। ज्यों ज्यों आपका ज्ञान बढ़ने लगा उसका फल वैराग्य भी प्रकट हुआ।

वि० सं० २०१४ भाद्रपद शुक्ला ६ भगवान सुपार्श्वनाथ के गर्भ कल्याणक के दिन विशाल जनसमूह के मध्य द्वय आचार्य संघों की उपस्थिति मे (आचार्य १०८ श्री महावीरकीर्तिजी महाराज भी तब ससंघ वही विराज रहे थे) ब्र० भँवरीबाई ने आचार्य १०८ श्री वीरसागरजी महाराज के कर कमलों से स्त्री पर्याय को धन्य करने वाली आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। भगवान सुपार्श्वनाथ का कल्याणक दिवस होने से आपका नाम सुपार्श्वमती रखा गया। आचार्य श्री के हाथों से यह अन्तिम दीक्षा थी। आसोज बदी १५ को सुसमाधिपूर्वक उन्होंने स्वर्गारोहण किया।

नवदीक्षिता आर्यिका सुपार्श्वमतीजी ने पूज्य इन्दुमतीजी के साथ जयपुर से विहार किया। अनेक नगरों ग्रामों में देशना करती हुई आप दोनों नागौर पहुँची। पूज्य १०८ श्री महावीर-कीर्तिजी महाराज ने वि० सं० २०१५ का वर्षायोग यहीं करने का निश्चय किया था। गुरुदेव के समागम से ज्ञानार्जन विशेष होगा तथा प्रसिद्ध प्राचीन शास्त्र भण्डार के अवलोकन का सुअवसर मिलेगा, यही सोचकर आप नागौर पधारी थीं। यहाँ आपने अनेक ग्रन्थों की स्वाध्याय की। गुरुदेव के साथ बैठकर अनेक शंकाओं का समाधान किया और आपके ज्ञान में प्रौढ़ता आई।

वस्तुतः वि० सं० २००५ से ही आप मातृतुल्य इन्दुमतीजी के वात्सल्य की छत्रछाया में रही हैं। आज आप जो कुछ भी हैं उस सबका सम्पूर्ण श्रेय तपस्विनी आर्या को ही है। आपकी गुरुभक्ति भी श्लाघनीय है। माताजी की वैयावृत्ति मे आप सदैव तत्पर रहती हैं।

आपका ज्योतिष ज्ञान, मंत्र तंत्र यंत्रों का ज्ञान भी अद्वितीय है। आपके सम्पर्क में आने वाला श्रद्धालु ही आपकी इस विशेषता को जान सकता है अन्य नहीं।

आपकी प्रवचन शैली के सम्बन्ध मे क्या लिखूँ? श्रोता अभिभूत हुए बिना नहीं रह पाते। विशाल जनसमुदाय के समक्ष जिस निर्भीकता से आप आगम का क्रमबद्ध धारा प्रवाह प्रतिपादन करती हैं तो लगता है साक्षात् सरस्वती के मुख से अमृत झर रहा है। आपके प्रवचन आगमानुकूल अकाट्य तर्कों के साथ प्रवाहित होते हैं। समझाने के लिए व्यावहारिक उदाहरणों को भी आप ग्रहण करती हैं परन्तु कभी विषयान्तर नही होता। चार चार पाँच पाँच घण्टा एक ही आसन से धर्म चर्चा में निरत रहती है। उच्च कोटि के विद्वान् भी अपनी शकाओ को आपसे समीचीन समाधान पाकर तुष्ट होते हैं।

सबसे बडी विशेषता तो आपमें यह है कि आपसे कोई कितने ही प्रश्न कितनी ही बार करे, आप उसका बराबर सही प्रामाणिक उत्तर देती हैं और प्रश्नकर्ता को सन्तुष्ट करती हैं। आपके चेहरे पर खीज या क्रोध के चिह्न कभी दृष्टिगत नहीं होते।

अब तक के जीवन काल में आपके असाता कर्म का उदय विशेष रहा है, स्वास्थ्य अधिकतर प्रतिकूल ही रहता है परन्तु आप कभी अपनी चर्या मे शिथिलता नही आने देती। कई वर्षों से अलसर (Ulcer) की बीमारी भी लगी हुई है कभी कभी रोग का प्रकोप भयंकर रूप से बढ़ भी जाता है फिर भी आप विचलित नही होती। 'णमोकार मंत्र' के जाप्य स्मरण में आपकी प्रगाढ आस्था है और आप हमेशा यही कहती हैं कि इसके प्रभाव से असम्भव भी सम्भव हो जाता है। आपकी वचन वर्गणा सत्य निकलती है। ऐसे कई प्रसंगो का उल्लेख स्वयं माताजी ने इन्दुमतीजी का जीवन चरित (इसी ग्रन्थ का दूसरा खण्ड) लिखते हुए किया है। दृढ श्रद्धान का फल अचूक होता है, निष्काम साधना अवश्य चाहिए।

आसाम, बंगाल, बिहार, नागालैण्ड आदि प्रान्तों मे अपूर्व धर्म प्रभावना कर जैनधर्म का उद्योत करने का श्रेय आपको ही है। महान् विद्यानुरागी, श्रेष्ठ वक्ता, अनेक भाषाओं की ज्ञाता, चतुरनुयोगमय जैन ग्रन्थों की प्रकाण्ड विदुषी, न्याय, व्याकरण, सिद्धान्त साहित्य की मर्मज्ञा, ज्योतिष यंत्र मंत्र तंत्र, औषधि आदि की विशेष जानकार होने से आपने सहस्रों जीवों का कल्याण किया है और आज भी आप कठोर साधना मे लीन होते हुए स्वपर कल्याण मे रत है।

साहित्य सृजन :

प्रकाशित : परमाध्यात्मतरंगिणी (अनुवाद), सागारधर्मामृत (सरल हिन्दी अनुवाद), नारी का चातुर्य; भगवान महावीर और उनका सन्देश, नयविवक्षा, पार्श्वनाथ पंचकल्याण, पंच-कल्याणक क्यों किया जाता है ? प्रणामाञ्जलि, मेरा चिन्तवन, दशधर्मविवेचन, प्रतिक्रमण पंजिका सटीक, लघुबोधकथा, आचार सार ।

मुद्रणाधीन— 　लघु प्रबोधिनी कथा, रत्नत्रयचन्द्रिका ।

रचनाधीन— 　पुण्य-पाप का खेल, आत्मोत्थान कैसे ।
प्रमेयकमलमार्तण्ड (आचार्यप्रभाचन्द्र कृत) हिन्दी अनुवाद ।

—डूंगरमल सबलावत, डेह

धुवसिद्धि तित्थयरो, चउणाणजुदो करेइ तवयरणं ।
णाऊण धुवं कुज्जा, तवयरणं णाणजुत्तो वि ।।
—कुन्दकुन्द/मो० पा० ६०

जिनकी सिद्धपद की प्राप्ति निश्चित है तथा जो चार ज्ञान से समलङ्कृत हैं, ऐसे तीर्थङ्कर परमदेव भी तपश्चर्या करते हैं, तब इस बात को जान कर ज्ञान सम्पन्न होते हुए भी तपश्चरण करना चाहिए ।

आर्यिका १०५ श्री विद्यामतीजी

आ० विद्यामतीजी

डेह से सोलह मील उत्तर की ओर बीकानेर (राजस्थान) जिले में लालगढ़ नामका एक स्थान है। वहाँ सद्गृहस्थ श्री खूबचन्दजी बाकलीवाल का समृद्ध परिवार निवास करता था। आपके चार पुत्र हुए—श्री भँवरीलालजी, श्री नेमीचन्दजी, श्री इन्दरचन्दजी और श्री आसूलालजी।

श्री भँवरीलालजी बाकलीवाल अद्भुत व्यक्तित्व के धनी, यशस्वी कर्मठ पुरुष थे। कई वर्षों तक अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के अध्यक्ष पद को आपने सुशोभित किया था। आपकी सामाजिक सेवाएँ अप्रतिम थीं। आगम की रक्षा व गुरुओं की भक्ति करने का अपरिमित श्रेय आपको प्राप्त हुआ। अपने हाथों से उपार्जित लाखों की राशि का दान कर आपने महान् पुण्योपार्जन किया।

आपके छोटे भाई श्री नेमीचन्दजी हैं, उनके आदर्श भी आप ही हैं। श्री नेमीचन्दजी के चार पुत्र—माणकचन्द, मोतीलाल, पद्मचन्द, भागचन्द—और छह पुत्रियाँ हुईं। विद्यामतीजी (पूर्व नाम–शान्तिबाई) का जन्म वि० स० १९९२, मिती फागण बदी ११, मंगलवार को हुआ।

आपने घर पर रह कर ही ज्ञानार्जन का अभ्यास किया। धार्मिक पुस्तकों का थोड़ा-बहुत अध्ययन कर, लौकिक शिक्षा भी प्राप्त की; गाँव में पढ़ाई का कोई विशेष साधन भी नहीं था परन्तु परिवार के वातावरण और माता-पिता के कारण आपमें धार्मिक संस्कार अवश्य प्रस्फुटित हुए थे।

आगमोक्त मार्ग के अनुसार रजस्वला होने से पूर्व ही कन्या का विवाह कर दिया जाना चाहिए, इसी अपेक्षा से १३ वर्ष की आयु में ही माता-पिता ने शान्तिबाई का शुभ विवाह डेह निवासी श्री केसरीमलजी सेठी के ज्येष्ठ पुत्र श्री मूलचन्दजी के साथ बडी धूमधाम से सम्पन्न किया। पाणिग्रहण संस्कार वि० सं० २००५ मिती बैसाख कृष्णा चतुर्थी को विधि विधानपूर्वक आयोजित हुआ था। श्री मूलचन्दजी का जन्म वि० सं० १९८९ फाल्गुन बदी अमावस्या शुक्रवार को हुआ था। आपके दोनों छोटे भाई श्री सागरमल तथा श्री दुलीचन्द कानकी (बंगाल) मे व्यापार करते हैं।

शान्तिबाई का गृहस्थ जीवन सुखमय व्यतीत हो रहा था, पूजन-पाठ मे भी आपकी रुचि विशेष थी पर स्वभाव की चपलता अभी पूर्णतः गई नही थी। कर्मों की गति विचित्र होती है; पूर्व भवो मे जो कर्म बाँधे गए हैं उनका उदय आने पर उन्हे भोगना ही पड़ता है। शान्तिबाई का दाम्पत्य जीवन सुखमय व्यतीत नहीं होना था। सौभाग्य कहें या दुर्भाग्य—वि० सं० २००८ मिती बैसाख सुदी ६ शनिवार के पूर्वाह्न में श्री मूलचन्दजी कलकता महानगरी में गुम हो गए। सबको बड़ी चिन्ता हुई। दोनों परिवारो के सदस्यों ने खोजबीन के—रेडियो, अखबार, ज्योतिषी, मंत्र तंत्र-विद् के माध्यम से यथाशक्ति भरसक प्रयत्न किए परन्तु कहो भी पता न चल सका। श्री मूलचन्द अदृश्य हुए सो अदृश्य बन कर ही रह गये।

विवाह के तीन वर्ष बाद ही शान्तिबाई को पतिवियोग का यह असीम दुःख सहन करना पड़ा। पति के न मिलने के कारण शनैः शनैः आपके परिणामों में ससार, शरीर और भोगो से विरक्ति के भाव जागृत हुए। आप अपना समय बड़ी शान्ति और धीरतापूर्वक व्यतीत करती। धार्मिक ग्रन्थों का अभ्यास भी आपने शुरू कर दिया था।

पुण्योदय से विक्रम संवत् २०१५ में आचार्य श्री १०८ महावीरकीर्तिजी तथा आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी व आर्यिका १०५ श्री सुपार्श्वमतीजी का चातुर्मास नागौर में हुआ। यहाँ आप इनके सम्पर्क में आईं। बाद में संघ का आगमन डेह में भी हुआ। यहाँ पर विशेष रहने से आपने आर्यिका सुपार्श्वमतीजी के पास विद्याध्ययन प्रारम्भ कर दिया। इसी प्रान्त में आर्यिका द्वय के कई मास रहने तथा सम्वत् २०१६ का चातुर्मास लाडनूँ में करने से आपको इनके साथ रहने का सुखद सुयोग मिला जिससे आपकी भावना संयम-ग्रहण की ओर उन्मुख हुई तथा आपने संस्कृत व्याकरण, काव्य, न्याय, धर्मशास्त्र आदि के ग्रन्थो का विशेष अध्ययन करना प्रारम्भ किया। शनैः शनैः वैराग्य भावना बलवती हुई और आपके मन मे स्त्री पर्याय की उच्चतम स्थिति आर्यिका के व्रत ग्रहण करने की इच्छा ने जन्म लिया।

जीव का जब कल्याण होना होता है तब उसे निमित्त भी वैसे ही मिलने लगते हैं। विक्रम सम्वत् २०१७ मे पूज्य आचार्य १०८ श्री शिवसागरजी महाराज के विशाल संघ का तथा

आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी, सुपार्श्वमतीजी का चातुर्मास सुजानगढ़ में हुआ। यहाँ आपको महाव्रती मुनिराजों व आर्यिकाओं को आहार दान का अवसर मिला। अल्पवयस्क आर्यिकाओं की चर्या देख देखकर आपके मन ने आर्यिका के व्रत ग्रहण करने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

जब आपने अपनी यह भावना सब पर प्रकट की तो ससुराल और पीहर दोनों ही पक्षों ने आपके निर्णय का विरोध किया और सलाह दी कि अभी कुछ वर्ष और अध्ययन कर साधना करो। दीक्षाप्रदाता आचार्यश्री से भी प्रार्थना की गई कि शान्तिबाई को अभी आर्यिका दीक्षा न दी जावे। परन्तु आपका निश्चय पक्का था, भावना प्रबल थी। आप अब और गृहस्थी में रह कर अपना जन्म, समय व्यर्थ नहीं गँवाना चाहती थी।

विक्रम संवत् २०१७ कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी मंगलवार को लगभग पन्द्रह हजार जैनाजैन जनता के समक्ष आपने बड़े उत्साह के साथ आचार्य श्री १०८ शिवसागरजी महाराज से आर्यिका दीक्षा प्रदान करने की प्रार्थना करते हुए श्रीफल भेंट किया। आचार्य श्री ने स्त्री पर्याय की उत्कृष्ट स्थिति–आर्यिका (दीक्षा) की कठिनता बतलाते हुए स्वीकृति प्रदान की।

गुरुदेव की स्वीकृति पा कर शान्तिदेवी ने आर्यिका बनने हेतु प्रथम परीक्षा—केशलोच करना प्रारम्भ किया। अपने कोमल हाथों से अपने सघन सचिक्कण लम्बे-लम्बे श्याम केशों को दृढ़ता-पूर्वक उखाड़ने लगी। शरीर के प्रति पूर्ण निस्पृहता की सूचक इस क्रिया को देखकर विस्मयविमुग्ध हुआ जनसमुदाय जय जयकार करने लगा। केशलोच क्रिया की समाप्ति के बाद आचार्यश्री ने इनके मस्तक पर मंत्र न्यास पूर्वक स्वस्तिक लिखा और आर्यिका बनने की आज्ञा दी। आपकी शान्त वीतराग मुखाकृति अति शोभित होने लगी। फिर आचार्यश्री ने आपको ज्ञानोपकरण ग्रन्थ-शास्त्र, अहिंसोपकरण मयूरपिच्छिका और संयमोपकरण कमण्डलु ये तीन चीजें दीं और शेष अन्तरंग-बहिरंग समस्त परिग्रह का त्याग कराया। गुरुदेव ने आपका नाम आर्यिकाश्री १०५ विद्यामती घोषित किया।

आर्यिका १०५ विद्यामतीजी के निर्माण का अधिकांश श्रेय आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी और आर्यिका १०५ श्री सुपार्श्वमतीजी को है।

दीक्षा दिवस पर आर्यिका १०५ विद्यामतीजी का उपवास था ही। दूसरे दिन पारणे के वक्त अन्तराय आ जाने से आहार न हो सका और यह अन्तराय का क्रम लगातार छह दिन तक बराबर चलता रहा। दोनों माताजी आर्यिका विद्यामतीजी को संयम में दृढ़ रखती हुई हर समय सावधान रखतीं। समाज को बडी चिन्ता हुई परन्तु उपाय क्या ? समताभाव पूर्वक, उदय में आए कर्मों को भोगने से ही निर्जरा होती है।

नवदीक्षिता माताजी ने धैर्य एवं समतापूर्वक क्षुधा परीषह सहन किया। श्रावक श्राविकाओं की जिज्ञासा पर आपका उत्तर यही होता कि समाधि के लिए ही तो दीक्षा ग्रहण की है। कर्म अपना काम करते रहें मैं अपने व्रतनियम शील से कदापि विचलित नहीं होऊंगी। सातवें दिन आपका आहार निरन्तराय सम्पन्न हुआ। सबने आपकी दृढ़ निष्ठा और व्रत संरक्षण की भावना की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

दीक्षा दिवस से अद्यावधि पर्यन्त आपको पूज्य आर्यिका १०५ श्री इन्दुमतीजी व सुपार्श्वमतीजी का संरक्षण प्राप्त है। उनके साहचर्य में आपने अनेक ग्रन्थों व शास्त्रों का पारायण किया है तथा संस्कृत प्राकृत भाषाओं में भी दक्षता प्राप्त की है। वर्षायोग में एक स्थान पर अधिक लम्बे समय तक रहने का सुयोग मिलता है तब आप छात्र छात्राओं को रुचिपूर्वक धार्मिक अध्ययन भी कराती हैं।

—डूंगरमल सबलावत, डेह

देखो ! जानने के अनुसार जीवन बना या नहीं। हमारा ज्ञान हमें ही नहीं छू पाता। हम अपने विचारों को ही अपने जीवन मे नहीं उतार पाते। हमारा विवेक कहीं और है, आस्था कहीं और है। जैसे किसी ने प्लाट खरीदकर कोठी तो बनवाली हो स्वच्छ स्थान में, किन्तु रिहाईश अभी शहर की गन्दी गलियों के किराये के मकान में ही हो। वैसे ही बोध तो प्राप्त कर लिया—अयमात्मा ब्रह्म किन्तु आस्था अभी नाम, रूप, जाति आदि अनात्मस्वरूप शरीर में ही है।

आर्यिका १०५ श्री सुप्रभामती माताजी

आ० सुप्रभामतीजी

आपका जन्म कुर्डुवाड़ी जिला सोलापुर (महाराष्ट्र) में पिताश्री नेमचन्दजी शहा के घर माता रत्नाबाई की कुक्षि से १३ जनवरी १६२५ को हुआ। आपका नाम प्रभावती रखा गया। श्री नेमचन्दजी के चार पुत्र और छह पुत्रियाँ हैं। दो पुत्र व्यापार करते हैं—एक डाक्टर है और एक वकील।

प्रभावती का शिक्षण प्रायमरी चौथी कक्षा तक हुआ। १३ वर्ष की अल्पायु में ही मालेगाँव (तहसील बारामती, जिला-पूना) निवासी श्री मोतीचन्द जीवराज शहा के साथ विवाह कर दिया गया। दो वर्ष बाद ही विषम ज्वर के कारण पति की मृत्यु हो गई जिससे सभी परिवार एवं प्रियजनों को अपार दुःख हुआ। एक वर्ष तक पिताजी के घर पर ही रही। बाल्यावस्था के धार्मिक संस्कार थे। पति की मृत्यु के बाद इन्होंने मीठे (शक्कर, गुड़) का सर्वथा त्याग कर दिया और अपना समय धार्मिक पुस्तकें पढ़ने में व्यतीत करती थीं। इसी समय सोलापुर से पूज्य १०५ राजुलमती माताजी और १०५ अनन्तमती माताजी का कुर्डुवाड़ी में आगमन हुआ। प्रभावती का माताजी से सम्पर्क हुआ। माताजी के प्रवचन-उपदेश का प्रभावती पर बहुत प्रभाव पड़ा। चातुर्मास के चार माह में अध्ययन भी चलता रहा।

कुर्डुवाड़ी के चातुर्मास के बाद पू० १०५ राजुलमती अम्मा का विहार सोलापुर की ओर हुआ। प्रभावती भी माताजी के साथ सोलापुर पहुँची। सोलापुर में १०५ राजुलमती माताजी ने श्राविकाश्रम की स्थापना की थी। उस आश्रम में प्रभावती के अध्ययन और आवास की व्यवस्था की गई। यहाँ प्रभावती का सम्पर्क श्राविकाश्रम की संचालिका पं० ब्र० सुमतिबाई के साथ हुआ। प्रभावती के शुद्ध आचार-विचार से पण्डिता सुमतिबाईजी बहुत प्रभावित हुई। विवाह से पूर्व इनका शिक्षण प्रायमरी चौथी कक्षा तक हुआ था। आश्रम मे रहने से इनकी शिक्षा एस. एस. सी. डी. एड. होकर बाद में इन्टर आर्ट्स तक हुई। प्रभावती कुशाग्र बुद्धि वाली हैं, इस बात का पता इस तथ्य

से लगा कि उन्होंने इन्टर आर्ट्स के साथ-साथ ही धर्म विषय में न्यायतीर्थ की परीक्षा भी उत्तीर्ण कर ली और साथ ही अध्यापन कार्य भी प्रारम्भ कर दिया। एस. एस. सी. डी. एड. होने से आश्रम में ही उन्हें अध्यापिका बना दिया गया। मान्टेसरी कक्षा के छोटे-छोटे लड़के-लड़कियों को पढाने का काम बड़ी रुचि से करती थीं। बालक-बालिकायें भी आपसे बहुत प्रसन्न रहते थे। शनैः शनैः अध्ययन अध्यापन के साथ साथ आश्रम की व्यवस्था का उत्तरदायित्व भी आप पर आ पड़ा। उस समय आश्रम में लगभग सौ लड़कियाँ रहती थीं। आप उनकी देखभाल तो करती ही थीं। साथ ही उन्हें धार्मिक शिक्षा देकर उनमें अच्छे संस्कार डालने के लिए भी सचेष्ट रहती थीं। थोड़े ही दिनों में आपने संचालिका पं० सुमतिबाई शहा का विश्वास अर्जित कर लिया। अब तो श्राविकाश्रम का सभी महत्त्वपूर्ण काम आप ही फायनल करने लगी। बिल्डिंग-कन्स्ट्रक्शन का जितना भी काम होता था वह भी आपकी सूझबूझ से ही होता था। लगभग पच्चीस वर्ष तक आश्रम मे रह कर आपने संस्था का सभी कार्य उत्तम रीति से पूर्ण किया और अपने जीवन को अध्ययन-अध्यापन के माध्यम से सार्थक बनाया।

सन् १९६५ में पू० आचार्य विमलसागरजी महाराज तथा पूज्य १०५ ज्ञानमती माताजी के संघों का चातुर्मास सोलापुर मे हुआ था। चार माह तक आपका सम्पर्क संघ के त्यागियों व्रतियों से बराबर रहा। पूज्य ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से आपके हृदय में परिवर्तन जन्म लेने लगा। आप विचार करने लगी कि ससार मे रहकर कभी दुःखो से छुटकारा नहीं मिल सकेगा। आत्मानुभव संसार का त्याग करने पर ही सम्भव है। इसी भावना मे आपका मन उमंगित हो उठा और आप शीघ्र ही बाहुबली आश्रम, कुम्भोज में पूज्य १०८ आचार्य श्री समन्तभद्र महाराज के पास जा पहुँची। आपके मन में दीक्षा लेने की भावना प्रबल हो उठी तभी आपने माता-पिता व भाई बहिनों के साथ श्रवणबेलगोल महामस्तकाभिषेक देखने के लिए दक्षिण भारत की यात्रा की। दक्षिण भारत की यात्रा से लौटते हुए सब पुनः आचार्यश्री समन्तभद्र महाराज का दर्शन करने पहुँचे। वहाँ प्रभावती ने मुनिराज के समक्ष दीक्षा लेने की अपनी भावना व्यक्त की। आचार्य श्री ने अनुमति दी। इसी समय परम पूज्य १०५ इन्दुमती माताजी के संघ का वास्तव्य भी वर्षायोग निमित्त बाहुबली कुम्भोज में हुआ था। पूज्य इन्दुमती माताजी के वात्सल्य भाव तथा सुपार्श्वमती माताजी की विद्वत्ता से आप बहुत प्रभावित हुईं। यह सुखद समागम बहुत फलप्रद रहा। सन् १९६७ में कार्तिक शुक्ला द्वादशी विक्रम संवत् २०२४ के दिन पूज्य इन्दुमती माताजी के संघ की उपस्थिति में पूज्य १०८ समन्तभद्राचार्य से आपने 'आर्यिका' के व्रत ग्रहण किये। हमारा सारा परिवार वहाँ उपस्थित था। 'प्रभावती' अब पूज्य 'सुप्रभामाताजी' हो गई थीं। इस प्रकार प्रभावती का भाग्योदय हुआ जो वे संसार, मोह माया परिग्रह का त्याग कर नारी जीवन की उत्कृष्ट स्थिति आर्यिका पद तक पहुँची।

दीक्षा के बाद कुछ काल तक आप पू० समन्तभद्र महाराज के संघ में रही। फिर पूज्य इन्दुमती माताजी के संघ के साथ सम्बद्ध होकर बाहुबली कुम्भोज से आपने १३ नवम्बर, १९६७ को विहार शुरु किया, तब से आप पूज्य माताजी के ही साथ हैं। आपका पहला वर्षायोग अकलूज (जिला सोलापुर) में हुआ था।

दीक्षा से पूर्व गृहस्थाश्रम में भी आप व्रत नियम पालन करने में कट्टर थी। दीक्षा के बाद तो उनकी दृढता निरन्तर बढती जा रही है।

माताजी की दीक्षा के समय हमारे सम्पूर्ण परिवार को बहुत ही दुःख हुआ। यह तो इस भव में जब तक मोह माया है तब तक चलता ही है परन्तु एक अपेक्षा से आर्यिका के व्रत ग्रहण कर आपने अपनी इस पर्याय को सार्थक कर लिया है। आप ध्यान, अध्ययन में ही संलग्न रहती हैं। दीक्षा से पूर्व मीठे का त्याग तो कर ही चुकी थी. दीक्षा के बाद आपने आजीवन नमक का भी त्याग कर दिया। व्रतो मे स्थिर रहती हैं। आपकी दिनचर्या नियमित चल रही है। सघ में पठन-पाठन की प्रवृत्ति होने से आपके ज्ञान का भी काफी विकास हुआ है।

पूज्य आर्यिका १०५ सुपार्श्वमती माताजी एव सुप्रभामाताजी के सदुपदेश से हमारे सम्पूर्ण परिवार की प्रवृत्तियों में भी काफी परिवर्तन हुआ है। आपकी प्रेरणा से सन् १९७० में हम सब भाइयों ने तीर्थक्षेत्र सम्मेदशिखरजी पर सिद्धचक्रविधान किया था। इसके दस साल बाद फिर तीर्थक्षेत्र सम्मेदशिखरजी में ही उनके दर्शनों का लाभ प्राप्त हुआ। २४ दिसम्बर ८१ को उनके चरणों के दर्शन हुए व महान् पर्वतराज की वन्दना करने का अवसर मिला। आपने इन्द्रध्वज विधान, ऋषि-मण्डलविधान, नवग्रहविधान, भक्तामरविधान, दशलक्षणविधान करने की प्रेरणा दी। दस-बारह दिन आपके सान्निध्य में रहकर हम सब लोगों की आशा पूरी हुई। हम सब परिवार के लोग पू० १०५ इन्दुमती माताजी व सम्पूर्ण संघ के प्रति बहुत कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं कि उन्होंने पू० १०५ सुप्रभामाताजी के जीवन को धर्मकार्य के प्रति समर्पित होने के योग्य बनाया है। संघ को याद करते हुए हम उनका बहुत आभार मानते हैं।

—डा० चन्द्रकान्त नेमचन्द शहा, नीरा महाराष्ट्र

आर्यिका माता १०५ श्री इन्दुमतीजी, सुपार्श्वमतीजी, विद्यामतीजी एवं सुप्रभामतीजी की पूजन

स्थापना

दोहा—दयामयी प्रियदर्शिनी इन्दु सम सुखदान।
लोहरूप जड़ता हरण पारसमणी समान ॥
विद्यावती सुभाषिणी प्रभावती गुणखान।
पूज रचाऊं तव चरण भाव भक्ति उर आन ॥

ॐ ह्रीं मातेश्वरी इन्दुमती सुपार्श्वमती आदि अत्र अवतरत २ संवौषट्।
ॐ ह्रीं मातेश्वरी इन्दुमती सुपार्श्वमती आदि अत्र तिष्ठत २ ठः ठः।
ॐ ह्रीं मातेश्वरी इन्दुमती सुपार्श्वमती आदि अत्र मम सन्निहिता भवत २ वषट्।

अथाष्टक

शीतल और सुगंधित जल की, झारी लीनी है भरवाय।
हर्ष बढ़ाकर चरण कमल की, पूजन माता कीनी आय ॥
इन्दु सम शीतल सुखवंती, सरल सुपार्श्वमती तुम माय।
विद्या और सुप्रभामति की, गुण गण महिमा कही न जाय ॥

.... जलं०

चन्दन अरु कर्पूर सुगंधित, साथ में केशर घिस कर लाय।
चरण तुम्हारे करूं मैं चर्चित, मन वच तन कर पूज रचाय।

इंदु सम० .... चंदनं०

धवल अखंडित तंदुल लाकर, मणि मुक्ता सम थाल भराय।
करूं पूज चरणन में आकर, दो अक्षय पद राह बताय ॥

इंदुसम० ... . अक्षतान्०

फूल मोगरा और चमेली, कमल गुलाब लिये मँगवाय।
चहुं दिशि महक रही है फैली, चरणन मात दिये बिखराय ॥

इंदुसम०......... पुष्पं०

खुरमा मोदक बरफी लाजे, भांति २ पकवान बनाय।
क्षुधारोग के नाशन काजे, मात चरण ढिग मेलूं आय ।।
इंदुसम० ....नैवेद्यं०

कंचन दीप लिया घृत भरकर, करूं आरती माता आय।
मोह अंध अब जाये भगकर, ज्ञान ज्योति दो मात जगाय ।।
इंदुसम०... – ... दीपं०

खेऊं धूप सुगंधित लाकर, चहुं दिशि को देऊं महकाय।
कर्म पुंज की छार हो जलकर, देश्रो माता जोग मिलाय ।।
इंदुसम० . ... धूपं०

केला आम अंगूर छुआरा, अरु नारंगी सेब चढ़ाय।
मात ज्ञान को देय सहारा, मुक्ति फल दो प्राप्त कराय ।।
इंदुसम० .. .. फलं०

अष्ट द्रव्य का मिश्रण करके, अर्घ चढ़ाऊं मंगल गाय।
थका हूं जग का भरमण करके, दो अनर्घ पद राह बताय ।।
इंदुसम०.......... अर्घं०

जयमाला

दोहा—श्रद्धा सुमन संजोय के आये शरण जु मात।
चरणन पूज रचाय के पुलकित हो मन गात ।।

❀ चौपाई ❀

जय जय जय जय मात तुम्हारी, शात छवि तव है मनहारी।
घर चन्दनमल जडावबाई, जनमी डेह मोहनी बाई।।
वर्ष बारहवें डेहनिवासी, चम्पालाल ब्याहने आया।
छह ही मास में जीवन साथी, स्वर्गलोक का बन गया वासी।
रहती रत फिर धर्म श्रवण में, दान पुण्य तीरथ बंदन में।
'चन्द्र' 'वीर' गुरु क्रम से दीक्षा, लीनी थी क्षुल्लिका, अरजका।
धैर्य–शालिनी, दृढ श्रद्धानी, इन्दुमती इन्दु की सानी।
जय सुपार्श्वमती मात तुम्हारी, 'हरक' सुता 'अणची' की प्यारी।
दर्शन माता तव मंगलकर, जन्म लिया तुम ग्राम मैनसर।
भँवरीबाई नाम रखा था, वर्ष बारहवें ब्याह रचा था।
एक ही रात रहीं बस दुलहन, मास चार हो रहीं सुहागन।

सहसा वज्र विधी का टूटा, पतीदेव का साथ है छूटा।
धर्म ध्यान का लिया सहारा, सन्त समागम लागा प्यारा।
मात आर्यिका इन्दुमती से, शील धार हुई संग उन्हीं के।
ब्रह्मचारिणी आठ वर्ष रह, फिर खान्यां गुरु वीर शरण गह।
महावीरकीर्ति आचारज, अरु चतुर्विधि संघ समग्रज।
दीक्षा मात अरजका धारी, आगम ज्ञान बढ़ाया भारी।
संस्कृत प्राकृत ज्ञान अनूपम, ज्योतिष विद्या में भी नहिं कम।
जो भी आया हुआ सशंकित, समाधान कर लिया प्रभावित।
पार्श्वमणि सी सुखकर, शीतल, धन्य हुआ पा तुम्हें महीतल।
जय जय विद्यामती तुम्हारी, 'नेमी' 'भँवरी' सुता दुलारी।
जनम लालगढ़ ग्राम–डेह में, मूलचन्द से ब्याह किया था।
नाम 'शाती' शीलवती का, छूट गया फिर साथ पती का।
नव साल पति घर ना लौटे, मन विराग के अंकुर फूटे।
सुजानगढ़ में गुरु शिवसागर, चातुर्मास कीना जब आकर।
किया आर्यिका पद से भूषित, विद्यामती नाम से शोभित।
जय जय मा सुप्रभामती की, कन्या 'रतन' 'नेमचन्द' जी की।
जन्म कुड़ँवाड़ी में लीना, ब्याह उम्र बारह मे कीना।
मोतीचन्द से ब्याह रचाया, तीन मास ही साथ रहाया।
मेंहदी का रंग छुट नही पाया, विधना मांग सिंदूर मिटाया।
भर वैराग्य धर्म जिन ध्याकर, बाहुबली कुम्भोज में जाकर।
'समन्त' गुरु से दीक्षा लीनी, बनीं अरजका सद्आचरणी।
नगरों गांवों में विहार कर, गंगा ज्ञान बहातीं घर घर।
रहे मात साया तुम पर, रवि शशि जोलौं रहें गगन पर।

॥ पूर्णार्घं० ॥

दोहा—भक्ति भाव के फूल जो 'प्रभु' राखे पद, मात।
जीवन में ज्योती जगे, आये नया प्रभात ॥

❀ इत्याशीर्वादः ❀

आर्यिका इन्दुमती माताजी के आद्यगुरु

परम पूज्य आचार्यकल्प

१०८ श्री चन्द्रसागरजी महाराज

☼ आर्यिका सुपार्श्वमती
☼

जन्म :

भारतदेश के महाराष्ट्र प्रान्त में नांदगांव नामक एक नगर है। वहां खण्डेलवाल जाति में जैनधर्म परायण नथमल नामक श्रावक रत्न रहते थे। उनकी भार्या का नाम सीता था। वास्तव में, वह सीता ही थी अर्थात् शीलवती और पति की आज्ञानुसार चलने वाली थी। सेठ नथमलजी और सीता बाई का सम्बन्ध जयकुमार सुलोचना के समान था। शालिवाहन संवत् १६०५ विक्रम संवत् १६४० मिति माघ कृष्णा त्रयोदशी, शनिवार की रात्रि को पूर्वाषाढा नक्षत्र में सीता बाई की पवित्र कुक्षि से एक पुत्ररत्न ने जन्म लिया जिसकी रूप-राशि लखकर सूर्य चन्द्रमा भी लज्जित हुए। पुत्र के मुखदर्शन से माता को अपार हर्ष हुआ। पिता ने हर्षित होकर कुटुम्बी जनों को उपहार दिये। सभी परिवार जन हर्षित थे। दसवें दिन बालक का नामकरण संस्कार किया गया। जन्म नक्षत्रानुसार तो जन्म नाम भूरामल, भीमसेन आदि होना चाहिये था। परन्तु पुत्रोत्पत्ति से माता-पिता को अपूर्व खुशी हुई थी अतः उन्होंने बालक का नाम खुशालचन्द्र रखा हो—ऐसा अनुमान लगाया जाता है। महाराजश्री के हस्तलिखित गुटके में जो जन्म तिथि पौष कृष्णा त्रयोदशी शनिवार पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र, रात्रि के समय लिखी गई है, वह महाराष्ट्र देश की अपेक्षा है। मरुस्थल के और महाराष्ट्र के कृष्ण पक्ष में एक माह का अन्तर है; शुक्ल पक्ष दोनों के समान है अतः माघ कृष्णा त्रयोदशी कहो या पौष कृष्णा त्रयोदशी—दोनों का एक ही अर्थ है।

बालक खुशालचन्द्र द्वितीया के चन्द्रवत् वृद्धिङ्गत हो रहे थे। जिस प्रकार चन्द्रमा की वृद्धि से समुद्र वृद्धिगत होता है, उसी प्रकार खुशालचन्द्र की वृद्धि से कुटुम्बी जनों का हर्ष रूपी समुद्र भी बढ़ रहा था।

विवाह : पत्नीवियोग : ब्रह्मचर्यव्रत :

अभी खुशालचन्द्र ८ वर्ष के भी नहीं हुए थे कि पूर्वोपार्जित पापकर्म के उदय से पिता की छत्रछाया आपके सिर से उठ गई। पिताश्री के निधन से घर का सारा भार आपकी विधवा माताजी पर आ पड़ा। उस समय आपके बड़े भाई की उम्र २० वर्ष की थी और छोटे भाई की चार वर्ष की। घर की परिस्थिति नाजुक थी—ऐसी परिस्थिति में बच्चों के शिक्षण की व्यवस्था कैसे हो सकती है, इसे कोई भुक्तभोगी ही जान सकता है। बालक खुशालचन्द्र की बुद्धि तीक्ष्ण थी किन्तु शिक्षण का साधन नहीं होने के कारण उन्हें छठी कक्षा के बाद १४ वर्ष की अवस्था में ही अध्ययन छोड़ कर व्यापार के लिए उद्योग करना पड़ा। पढ़ने की तीव्र इच्छा होते हुए भी पढ़ना छोड़ना पड़ा—ठीक ही है, कर्मों की गति बड़ी विचित्र है, इस ससार में किसी की भी इच्छाएँ पूरी नहीं होतीं। युवक खुशालचन्द्र की इच्छा के विपरीत कुटुम्बी जनों ने बीस वर्ष की अवस्था होने पर उसकी शादी कर दी। विवाह से आपको ' न्तोष नहीं था, पत्नी रुग्ण रहती थी। डेढ़ साल बाद ही आपकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया। आपके लिए मानो 'रवात् नो रत्नवृष्टि' आकाश से रत्नो की वर्षा ही हो गई क्योंकि आपकी रुचि भोगों में नही थी। इस समय आप इक्कीस वर्ष के थे। अंग–अग में यौवन फूट रहा था, भाल देदीप्यमान था। तारुण्यश्री से आपका शरीर समलंकृत था अतएव कुटुम्बीजन आपको दूसरे विवाह के बन्धन में बांध कर सांसारिक विषयभोगों में फँसाने का प्रयत्न करने लगे। परन्तु खुशालचन्द्र की आत्मा अब सब प्रकार से समर्थ थी, सांसारिक यातनाओं से भयभीत थी अतः आपने मकड़ी के समान अपने मुख की लार से अपना जाल बना कर और उसी में फँस कर जीवन गमाने की चेष्टा नहीं की। आपने अनादिकालीन विषयवासनाओं पर विजय प्राप्त कर, आत्मतत्त्व की उपलब्धि के लिए दुर्बलता के पोषक, दुःख और अशान्ति के कारणभूत गृहवास को तिलाञ्जलि देकर, दिगम्बर मुद्रा अंगीकार करने का विचार किया। अतः आपने ज्येष्ठ शुक्ला नवमी विक्रम संवत् १९६२ के दिन आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार कर लिया। खिलते यौवन मे ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर आपने अद्भुत एवं महान् वीरता का काम किया।

मित्रलाभ : आत्मिक उन्नति की ओर :

उस दिन से आप अपने मनोमर्कट को वश में करने के लिए स्वाध्याय में संलग्न हो गए। गृहस्थ सम्बन्धी व्यवसाय करते हुए भी आप उससे जल में कमलवत् अलिप्त थे। यदि उस समय किसी त्यागी व्रती का सत्संग मिलता तो उसी समय घरबार छोड़ देते। व्यापार के प्रसंग में आपने बम्बई आदि महानगरों में भ्रमण किया। व्यापार में उन्नति की, व्यापारियों के विश्वासपात्र बने। घर के प्रति आपकी उदासीनता दिनानुदिन बढ़ती ही चली गई। आपके मन में सांसारिक

दुःखों से ग्लानि उत्पन्न हुई और वह किसी प्रकार शान्त नहीं हुई । इसी अवधि में आपकी मित्रता श्री ब्रह्मचारी हीरालालजी गंगवाल (अनन्तर आचार्य वीरसागरजी महाराज) से हुई, अब तो मानो सोने में सुगन्ध आ गई । वात्सल्यभाव से ओतप्रोत ब्रह्मचारी हीरालालजी विशेष धर्मानुरागी थे। इनकी शास्त्र स्वाध्याय में बहुत प्रवृत्ति थी; दिनभर शास्त्रसमुद्र का मन्थन कर सार निकालते थे। आप दोनों की संगति आत्मसिद्धि में सहायक हुई । आप दोनों जब कभी परस्पर मिलते थे तो यही विचार करते थे कि "आत्मिक उन्नति कैसे होगी।" आप दोनों ने समाज की सेवा करते हुए आत्मोन्नति करने का निश्चय कर लिया।

पाँचवी प्रतिमा :

वीर संवत् २४४६ में श्री १०५ ऐलक पन्नालालजी का चातुर्मास नांदगाँव में हुआ तब आपने आषाढ़ शुक्ला दशमी के दिन तीसरी सामायिक प्रतिमा धारण की । श्री ऐलक महाराज के प्रसाद से संसार से आपकी विरक्ति प्रतिदिन बढ़ती गई । भाद्रपद शुक्ला पञ्चमी को आपने सचित्त त्याग नाम की पाँचवी प्रतिमा धारण की।

चातुर्मास पूरा होने के बाद आपने ऐलक महाराज के साथ महाराष्ट्र के ग्रामों और नगरों में चार माह तक भ्रमण कर जैनधर्म का प्रचार किया, फिर आपने समस्त तीर्थक्षेत्रों की यात्रा की। क्षेत्रों में शक्त्यनुसार दान भी किया।

उस समय इस भूतल पर दिगम्बर मुनियों के दर्शन दुर्लभ थे । महानिधि के समान दिगम्बर साधु कहीं-कहीं दृष्टिगोचर होते थे । आपका हृदय मुनिदर्शन हेतु निरन्तर छटपटाता रहता था । आप निरन्तर यही विचार करते थे कि अहो ! वह शुभ घड़ी कब आएगी जिस दिन मैं भी दिगम्बर होकर आत्मकल्याण में अग्रसर हो सकूंगा।

आचार्यश्री शान्तिसागरजी महाराज के दर्शन :

एक दिन आपने आचार्यश्री शान्तिसागरजी महाराज की ललित कीर्ति सुनी । आपका मन उन गुरुवर के दर्शनों के लिए लालायित हो उठा । उनके दर्शनों के बिना आपका मन जल के बिना मछली के समान तड़फने लगा । इसी समय ब्र० हीरालालजी गंगवाल आचार्यश्री के दर्शनार्थ दक्षिण की ओर जाने लगे । यह वार्ता सुन कर आपका मन मयूर नृत्य करने लगा और आपने भी उनके साथ प्रस्थान किया । आचार्यश्री उस समय ऐनापुर के आसपास विहार कर रहे थे । आप दोनों महानुभाव उनके पास चले गये । तेजोमय मूर्ति शान्तिसागर महाराज के चरण कमलों में आपने अतीव भक्ति से नमस्कार किया, आपके चक्षु पटल निर्निमेष दृष्टि से उस संयममूर्ति की ओर

निहारते ही रह गये । आपका मानस आनन्द की तरंगो से व्याप्त हो गया । आपने आचार्यश्री की शान्त मुद्रा को देख कर निश्चय कर लिया कि यदि संसार में कोई मेरे गुरु हो सकते हैं तो यही महानुभाव हो सकते हैं और कोई नहीं । आपका चित्त आचार्यश्री के पादमूल में रहने के लिए ललचाने लगा । आप गोम्मट स्वामी की यात्रा कर वापस आये और उनसे सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये । कुछ दिन घर में रह कर आचार्यश्री के पास वीर निर्वाण संवत् २४५० फाल्गुन शुक्ला सप्तमी के दिन क्षुल्लक के व्रत ग्रहण किये । अब आप निरन्तर आचार्यश्री के समीप ही ध्यान, अध्ययन में रत रहने लगे । आचार्यश्री ने समडोली में चातुर्मास किया । आश्विन शुक्ला एकादशी वीर निर्वाण सवत् २४५० में आपने ऐलक दीक्षा ग्रहण की । आपका नाम चन्द्रसागर रखा गया । वास्तव मे आप चन्द्र थे । आपका गौर वर्ण, उन्नत भाल चन्द्र के समान था । आपके धवल यश की किरणें चन्द्रमा के समान समस्त संसार में फैल गईं । वीर संवत् २४५० मे आचार्यश्री ने सम्मेदशिखर को यात्रा के लिए प्रस्थान किया । ऐलक चन्द्रसागरजी भी साथ में थे । सघ फाल्गुन में शिखरजी पहुँचा, तीर्थराज की वन्दना कर सबने अपने को कृतकृत्य समझा । तीर्थराज पर संघपति पूनमचन्द घासीलाल ने पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा करवाई । लाखों नर-नारी दर्शनार्थ आये। धर्म की अपूर्व प्रभावना हुई । वहाँ से विहार कर कटनी, ललितपुर, जम्बूस्वामी सिद्धक्षेत्र मथुरा में चातुर्मास करके अनेक ग्रामों में धर्मामृत की वर्षा करते हुए सोनागिरि सिद्धक्षेत्र पर पहुँचे । वहाँ पर आपने वीर संवत् २४५६ मार्गशीर्ष शुक्ला १५ सोमवार मृग नक्षत्र मकर लग्न में दिन के १० बजे आचार्यश्री शान्तिसागरजी महाराज के चरणसान्निध्य मे दिगम्बर दीक्षा ग्रहण की । समस्त कृत्रिम वस्त्राभूषण त्याग कर आपने पंच महाव्रत, पंच समिति, तीन गुप्ति रूप आभूषण तथा २८ मूलगुणरूप वस्त्रों से स्वयं को सुशोभित किया—

जब धर्ममार्ग अवरुद्ध हुआ, पथ भूल भटकते थे प्राणी।
सद्गुरु के उपदेश बिना, नहीं जान सके थे जिनवाणी ॥
धर दीक्षा मुनिमार्ग बताया, स्वयं बने निश्चल ध्यानी ।
प्रणमूँ श्रीगुरु चन्द्र सिन्धु को, जिनकी महिमा सब जग जानी ॥

दिगम्बर मुद्रा धारण करना सरल और सुलभ नहीं है, अत्यन्त कठिन है । धीर-वीर महापुरुष ही इस मुद्रा को धारण कर सकते हैं । आपने इस निर्विकार मुद्रा को धारण कर अनेक नगरों व ग्रामों में भ्रमण किया तथा अपने धर्मोपदेश से जन-जन के हृदयपटल के मिथ्यान्धकार को दूर किया । सुना जाता है कि आपकी वक्तृत्व शक्ति अद्भुत थी । आपका तपोबल, आचार बल, श्रुतबल, वचनबल, आत्मिकबल और धैर्य प्रशंसनीय था ।

घोर तपस्वी मुनिराज श्री चन्द्रसागरजी महाराज

मिल गया । वास्तव में, वे लोग महाभाग्यशाली हैं जिन्हें ऐसे लोकोत्तर असाधारण महातपस्वी, सच्चे आगमनिष्ठ साधु के दर्शन का सुयोग मिला।

अपवाद-उपसर्ग विजयी :

आपकी यही भावना रहती थी कि 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' । आप संसारी जीवों को धर्माभिमुख करने हेतु सतत प्रयत्नशील रहते थे । गुरुदेव की तपस्या केवल आत्मकल्याण के लिए ही नही थी अपितु इस युग को धर्म और मर्यादा का विरोध करने वाली दूषित पापवृत्तियों को रोकने के लिए भी थी । मानवों की पापवृत्तियों को देख कर उनका चित्त आशङ्कित था । महाराजश्री ने इनका नाश करने का प्रयत्न असीम साहस और धैर्य के साथ किया । धर्मभावनाशून्य मूढ़ लोगों ने इनके पथ में पत्थर बरसाने में कोई कमी नहीं रखी परन्तु मुनिश्री ने एक परम साहसी सेनानी की भाँति अपनी गति नहीं बदली । यश और वैभव को ठुकराने वाले क्या कभी विरोधियों की परवाह कर सकते हैं ? कभी नहीं।

महाराजश्री हमेशा ही सत्य सिद्धान्त और आगम पक्ष के अनुयायी रहे। सिद्धान्त के आगे आप किसी को कोई महत्त्व नहीं देते थे । यदि शास्त्र की परिपालना में प्राणों की भी आवश्यकता होती तो आप निःसंकोच देने को तैयार रहते थे । जिनधर्म के मर्म को नहीं जानने वाले, द्वेषाग्नि दग्ध अज्ञानियों ने महाराजश्री पर वर्णनातीत अत्याचार किए जिन्हें लेखनी से लिखा भी नही जा सकता । परन्तु मुनिश्री ने इतने घोरोपसर्ग आने पर भी अपने सिद्धान्तों को नहीं छोड़ा। सत्य है— "न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः" घोरोपसर्ग आने पर भी धीर-वीर न्यायमार्ग से विचलित नहीं होते । आपत्तियों को दृढ़ता से सहन करने पर ही गुणों की प्रतिष्ठा होती है । गुरुदेव ने घोर आपत्तियों का सामना किया जिससे आज भी उनका नाम अजर-अमर है । एक कवि के शब्दों में—

लाखों सेती पूजनीय, यतियों में अग्रणीय,
चारित्र से शोभनीय कर्म मल धोंहिगे।

द्रव्यवन्त देख कर, खुशामदि होय कर,
दियो न आशीर्वाद धर्मधारी मोंहिगे।

रुग्ण सु अवस्था मांहि सुयात्रा करत रहे,
समाधिमरण कर स्वर्ग गये सोंहिगे ।

मोह हारी, गुणधारी, उपकारी सदाचारी,
मुनीन्द्र चन्द्रसिन्धु से हुए हैं न होंहिगे ।।

सिंहवृत्तिधारक :

जिस प्रकार सिंह के समक्ष श्याल नहीं ठहर सकते, उसी प्रकार आपके समक्ष वादीगण भी नहीं ठहर सकते थे । श्याल अपनी मण्डली में उहू-उहू कर शोर मचा सकते हैं परन्तु सिंह के सामने चुप रह जाते हैं, वैसे ही दिगम्बरत्व के विरोधी जिन-शास्त्र के मर्म को नहीं जानने वाले अज्ञानी दूर से आपका विरोध करते थे परन्तु सामने आने के बाद मूक के समान हो जाते थे ।

सुना है कि जिस समय आचार्यश्री का संघ दिल्ली में आया था, उस समय एक सरकारी आदेश द्वारा दिगम्बर साधुओं के नगर-विहार पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था । जब यह वार्ता निर्भीक चन्द्रसिन्धु के कानों में पड़ी तो उन्होंने विचार किया—अहो ! ऐसे तो मुनिमार्ग ही रुक जाएगा इसलिए उन्होंने आहार करने के लिए शुद्धि की और वीतराग प्रभु के समक्ष कायोत्सर्ग करके हाथ में कमण्डलु लेकर शहर में जाने लगे । श्रावकगण चिन्तित हो गए—क्या होगा ? परन्तु महाराजश्री के मुखमण्डल पर अपूर्व तेज था; आप सिंह के समान निर्भय और शान्त भाव से चले जा रहे थे । जब अंग्रेज साहब की कोठी के पास से निकले तो बाहर खड़ा साहब इनकी शान्त मुद्रा देख कर नतमस्तक हो गया, इनकी भूरि-भूरि प्रशसा करने लगा । सत्य ही है—महापुरुषो का प्रभाव अपूर्व होता है ।

रत्नत्रय की मूर्तिमन्त प्रतिमा :

वास्तव में, मुनिराज श्री चन्द्रसागरजी को देख कर रत्नत्रय की मूर्तिमन्त प्रतिमा को देखने का सन्तोष प्राप्त होता था । महाराजश्री का जीवन हिमालय की तरह उत्तुङ्ग, सागर की तरह गम्भीर, चन्द्रमा की तरह शीतल, तपस्या में सूर्य की तरह प्रखर, स्फटिक की तरह अत्यन्त निर्दोष, आकाश की तरह अन्तर्बाह्य खुली किताब, महाव्रतों के पालन में वज्र की तरह कठोर, मेरु सदृश अडिग एवं गङ्गा की तरह अत्यन्त निर्मल था ।

वे साधुओं में महासाधु, तपस्वियों में कठोर तपस्वी, योगियों में आत्मलीन योगी, महाव्रतियों में निरपेक्ष महाव्रती और मुनियों में अत्यन्त निर्मोह मुनि थे । वास्तव में, ऐसे निर्मल निःस्पृह और स्थितप्रज्ञ साधुओं से ही धर्म की शोभा है । विश्व के प्राणी ऐसे ही सत्साधुओं के दर्शन, समागम और सेवा से अपने जीवन को धन्य बना पाते हैं ।

पूज्य तरणतारण महामुनिराज श्री चन्द्रसागरजी महाराज अपने दीक्षागुरु परम पूज्य श्री १०८ आचार्य शान्तिसागरजी महाराज की शिष्य परम्परा में और आज के साधु जीवन में न केवल ज्येष्ठता में श्रेष्ठ थे वरन् श्रेष्ठता में भी श्रेष्ठ थे । उनके पावन पद-विहार से धरा धन्य हो गई, सच्चा अध्यात्म जगमगा उठा और आत्महितैषियों को आत्मपथ पर चलने के लिए प्रकाशस्तम्भ

मारवाड़ के सुधारक :

जिस समय हमारे श्रावक गण चारित्र से च्युत हो धर्मविहीन बनते जा रहे थे उस समय आपने जैन समाज को धर्मोपदेश देकर सन्मार्ग में लगाया । आप अनेक ग्रामों और नगरो में भ्रमण करके अपने वचनामृत के द्वारा धर्मपिपासु भव्यप्राणियों को सन्तुष्ट करते हुए राजस्थान प्रान्त के सुजानगढ़ नगर में पधारे । वि० सं० १९९२ में आपने यहाँ चातुर्मास किया । इस मारवाड़ देश की उपमा आचार्यों ने संसार से दी है । यहां उष्णता भी अधिक है तो ठण्ड भी अधिक पड़ती है । गर्मी के दिनों में भीषण सूर्य की किरणों से तप्तायमान धूलि से ज्वाला निकलती है । आपने जिस समय राजस्थान में पदार्पण किया, उस समय यहाँ के निवासी मुनियों की चर्या से अनभिज्ञ थे, खान-पान अशुद्ध हो चला था । आपने अपने मार्मिक उपदेशों से श्रावकों को सम्बोधित किया, उनके योग्य 'आचार' से उन्हें अवगत कराया । आपके सदुपदेश से कई व्रती बने । मारवाड़ प्रान्त के लोगों के सुधार का श्रेय आपको ही है ।

डेह में प्रभावना :

लाडनूं से मगसर सुदी चतुर्दशी को आचार्यकल्पश्री ने विहार किया । साथ में थे— मुनि निर्मलसागरजी, ऐलक हेमसागरजी, क्षुल्लक गुप्तिसागरजी और ब्र० गौरीलालजी ।

मिति पोष कृष्णा दूज वि० स० १९९२ के प्रातः ९ बजे मुनिसंघ का डेह में प्रवेश हुआ । सारा ग्राम मानो उलट पड़ा, विशाल शोभा यात्रा निकाली गई । जागीरदार का सरकारी लवाजमा तथा बैण्ड भी जुलूस में सम्मिलित था । लगभग २००० स्त्री पुरुष और बच्चे सोत्साह जय जयकार कर रहे थे । साधुओं ने पहले श्री पार्श्वनाथ नसियांजी के दर्शन किए, अनन्तर प्राचीन मन्दिर और नवीन मन्दिर के दर्शन करते हुए संघ श्री दिगम्बर जैन पाठशाला में पहुँचा । आचार्यकल्पश्री के उद्‌बोधन के बाद सभा विसर्जित हुई ।

सैकड़ों वर्षों से इस प्रदेश में दिगम्बर जैन साधुओं का आगमन न होने से सब लोग साधुओं की क्रियाओं से अनभिज्ञ थे । संघ की चर्या देख-देखकर सब लोग आश्चर्यान्वित होते थे । पूज्य चन्द्रसागरजी महाराज ने श्रावकों की शिथिलता और अशुद्ध खानपान को भाँप लिया था अतः आपके उपदेश का विषय प्रायः यही होता था । आपके उपदेशों से प्रभावित होकर और सच्चा मार्ग ज्ञात कर अनेक श्रावक-श्राविकाओं ने दूसरी प्रतिमा के व्रत ग्रहण किए जिनमें मोहनीबाई (अधुना आर्यिका इन्दुमतीजी) व इनके भाई-भाभी भी थे । अनेकानेक ने मद्य-मांस-मधु का त्याग किया, रात्रि भोजन छोड़ा तथा जल छान कर पीने का नियम लिया । यों कहना चाहिए कि आपके

आगमन से डेह वासियों का जीवन सर्वथा परिवर्तित हो गया—सब के सब शुद्ध खान पान और व्रत नियमों की ओर आकृष्ट हुए।

पौष बदी अष्टमी को महाराजश्री चन्द्रसागरजी का केश लोच हुआ। इस समारोह में नागौर, मेनसर, लालगढ़, भदाना आदि आस पास के गाँवों के नर–नारी सम्मिलित हुए। केश लोच की क्रिया देख कर सबने अपने दांतों तले उंगली दबा ली सबके मुँह से यही निकलता था कि वास्तव मे सच्चे निस्पृह साधु तो ये ही हैं!

डेह में उस समय दिगम्बर जैन समाज के कुल ६२ घर थे जिनमें २३८ पुरुष और २३८ ही स्त्रियां अर्थात् कुल ४७६ श्रावक–श्राविकाओं का निवास था। आचार्यकल्पश्री के मार्मिक उद्‌बोधन से समाज में जो चेतना उत्पन्न हुई उसके फलस्वरूप ७४ स्त्रीपुरुषों ने अशुद्ध जल ग्रहण का आजीवन त्याग किया और शेष में से अनेक ने यथाशक्ति व्रत नियम लिए। ब्रह्मचारिणी मोहनीबाई ने तो गुरुवर के सान्निध्य में ही रहने का निश्चय कर लिया।

संघ डेह मे २७ दिन ठहरा। पौष शुक्ला त्रयोदशी के दिन लालगढ की ओर विहार किया। लालगढ़ तक पहुँचाने के लिए लगभग ६० श्रावक–श्राविकाएँ साथ में थे। संघ का डेह आगमन डेहवासियों के लिए अविस्मरणीय घटना है। ब्र० मोहनीबाई का मन रूपी भ्रमर तो गुरुचरणकमलों में इतना रमा कि वे संघ के ही साथ हो गईं और त्याग मार्ग पर बढ़ते–बढते वि० सं० २००० में आश्विन शुक्ला दशमी के दिन कसावखेड़ा में आपने आचार्यकल्पश्री से क्षुल्लिका की दीक्षा ग्रहण की। वे क्षुल्लिका इन्दुमती हो गईं।

मेरी मधुर स्मृति :

महाराजश्री लालगढ़ से विहार कर मैनसर ग्राम में आये। मैनसर बहुत छोटा सा स्थान है। यहां एक जिनालय है जिसमें कृष्ण पाषाण की मूर्ति है भगवान पार्श्वनाथ की। शिखरबंध मन्दिर है। उस समय श्रावकों के २५ घर थे। वर्तमान में तो एक भी नहीं है केवल मन्दिर है। मैनसर ग्राम मेरी जन्मभूमि है। वहां पर बालू रेत के धोरे हैं, रेलगाड़ी, मोटर आदि वाहन का जाना दुष्कर है। माघ माह में वहां महाराजश्री का पर्दापण हुआ। जनता के हृदयसरोवर में उल्लास की ऊर्मियां लहराने लगीं। इस प्रदेश में ऐसे घोर तपस्वी का पदार्पण परम आश्चर्यजनक था। उस समय मेरी आयु सात वर्ष की थी। परन्तु महाराजश्री की उपदेश की मुद्रा आज भी मेरे हृदय पर अंकित है। उपदेश के समय एक हाथ में लाल रंग की पुस्तक, दाहिना पांव बायें पाँव के ऊपर, एक हाथ की अंगुली ऊपर उठी हुई—यह मुद्रा रहती थी उनकी। उनकी मृदु वाणी की

झंकार मेरे कानों में गूंज रही है। मेरे किसी महान् पुण्य का उदय था जो मैं उस अवस्था में आपके दर्शन कर सकी। आपके दर्शनों की मधुर स्मृति मैं कभी नहीं भूल सकती। मैं तो ऐसा मानती हूं कि उन्हींके संस्कार से आज मैं इस पद पर प्रतिष्ठित हुई हूं।

उत्कृष्ट धर्मप्रचारक :

गुरुओं की गौरवगाथा गाई नहीं जा सकती। आपके वचनों में सत्यता और मधुरता, हृदय मे विवक्षा, मन में मृदुता, भावना में भव्यता, नयन में परीक्षा, बुद्धि में समीक्षा, दृष्टि में विशालता, व्यवहार में कुशलता और अन्तःकरण में कोमलता कूट-कूट कर भरी हुई थी इसलिए आपने मनुष्य को पहचान कर अर्थात् पात्र की परीक्षा कर व्रत दिये; जन-जन के हृदय में संयम की सुवास भरी।

गगन का चन्द्र अन्धकार को दूर करता है परन्तु चन्द्रसागर रूपी निर्मल चन्द्र की ज्ञान ज्योत्स्ना ज्ञानियों के मन मन्दिर में ज्ञान का प्रकाश फैलाती थी। आपने धर्मोपदेश देकर जन-जन का अज्ञान दूर किया। देश-देशान्तरों में विहार कर जिन धर्म का प्रचार किया। उनका यह परमोपकार कल्पान्त काल तक स्थिर रहेगा। उनके वचनों में ओज था, उपदेश की शैली अपूर्व थी। उनके मधुर भाषणों से उनके जैन सिद्धान्त के अभूतपूर्व मर्मज्ञ होने की प्रखर प्रतिभा का परिचय स्वतः मिलता था। उनकी शमाम्बुगर्भा अगद्य वाक्य रश्मियों से साक्षात् शान्ति सुधारस विकीर्ण होता था जिसका पान कर भक्त जन झूम उठते और अपूर्व शान्ति का लाभ लेते थे।

अपूर्व मनोबल :

महाराज श्री की वृत्ति सिंहवृत्ति थी अतएव उनके अनुशासन तथा नियन्त्रण में माता का लाड़ न था, सच्चे पिता की सी परम हितैषिणी कट्टरता थी जिसके लिये उन्होंने अपने जीवनोपार्जित यश की बलि चढ़ाने में भी जरा सा भी संकोच नहीं किया।

अनेक क्षेत्रों और स्थानों में विहार करते हुए मुनि श्री संघ सहित संवत् २००१ फाल्गुन सुदी अष्टमी के सायंकाल बावनगजा में पधारे। उस समय आपके इस भौतिक शरीर को ज्वर के वेग ने पकड़ लिया था। इसलिये आपका शरीर यद्यपि दुर्बल हो गया था फिर भी मानसिक बल अपूर्व था। बड़वानी सिद्धक्षेत्र में श्री चादमल पन्नालाल की ओर से मानस्तम्भ प्रतिष्ठा थी। आपने रुग्णावस्था में भी अपने हाथ से प्रतिष्ठा कराई।

पूज्य गुरुदेव की शारीरिक स्थिति अधिकाधिक निर्बल होती गई तो भी महाराजश्री ने फाल्गुन सुदी १२ को फरमाया कि मुझे चूलगिरि के दर्शन कराओ।

लोगों ने कहा—"महाराज ! शरीर स्वस्थ होने पर पहाड़ पर जाना उचित होगा।" गुरुदेव बोले—"शरीर का भरोसा नहीं। यदि शरीर ही नहीं रहा तो हमारे दर्शन रह जायेंगे।"

महाराजश्री दर्शनार्थ पर्वत पर पधारे। उस समय उन्हें १०५° डिग्री ज्वर था। निर्बलता भी काफी थी। महाराजश्री ने बड़े उत्साह और हर्षपूर्वक दर्शन किये। संन्यास भी ग्रहण कर लिया अर्थात् अन्न का त्याग कर दिया। फाल्गुन शुक्ला १३ को मात्र जल लिया।

अन्तिम सन्देश :

त्रयोदशी को ही अन्न जल त्याग कर संन्यास धारण करते समय आपने पूछा था कि अष्टाह्निका की पूर्णता परसों ही है न ?

लोगो के हाँ' कहने पर महाराज ने फरमाया—"सब लोग धर्म का सेवन न भूलें। आत्मा अमर है।"

फाल्गुन शुक्ला चतुर्दशी को शक्ति और भी क्षीण हो गई। डाक्टरों ने महाराजश्री को देख कर कहा कि महाराज का हृदय बड़ा दृढ़ है। औषधि लेने पर तो शर्तिया स्वस्थ हो सकते हैं परन्तु गुरुदेव कैसी औषधि लेते ? उनके पास तो मुक्ति में पहुंचाने वाली परम वीतरागता रूप आदर्श महौषधि थी।

शरीर त्याग :

फाल्गुन शुक्ला १५ के दिन बारह बज कर बीस मिनट पर गुरुदेव ने इस विनाशशील शरीर को छोड़ कर अमरत्व प्राप्त कर लिया। यह सन् १९४५ की २६ फरवरी का दिन था। इस दिन अष्टाह्निका की समाप्ति थी। दिन भी चन्द्रवार था। परमाराध्य गुरुदेव चन्द्रसागर ने पूर्ण चन्द्रिका-चन्द्रवार के दिन सिद्धक्षेत्र पर होलिका की आग में अपने कर्मों को शरीर के साथ फूंक दिया। समस्त भक्त जन बिलखते रह गये, सबकी आंखें भर आयी।

चरण-वन्दना :

दृढ़ तपस्वी, आर्षमार्ग के कट्टर पोषक, वीतरागी, परम विद्वान्, निर्भीक प्रसिद्ध उपदेशक, आगम मर्मस्पर्शी, अनर्थ के शत्रु, सत्य के पुजारी, मोक्ष मार्ग के पथिक, संसारी प्राणियों के तारक, आत्मबोधि, स्वपर-उपकारी, अपरिग्रही, तारण-तरण, सन्तापहरण स्व. गुरुदेव के चरण कमलों में शत-शत वन्दन ! शत-शत वन्दन !!

☸

आर्यिका इन्दुमती अभिनन्दन ग्रन्थ

चतुर्थ खण्ड

लेखमाला

❖ डा० ज्योतिप्रसाद जैन, लखनऊ

जैन परम्परा में नारी का गौरवपूर्ण स्थान

☼

अनादिकालीन विश्व-व्यवस्था मे प्रत्येक पदार्थ उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुवों की भाँति दो परस्पर भिन्न एवं प्रतिपक्षी प्रकृतियों का युग्म है। 'पोलेराइजेशन' का यह सिद्धान्त सर्वत्र व्याप्त है। प्रकृति का यह अटल नियम है। इन दो रूपों के सयोग से ही पदार्थ का अस्तित्व है। जीवजगत् मे नर-मादा रूपों की सत्ता एवं संयोग पर ही प्रत्येक प्राणी का प्रजनन, सन्ततिक्रम एवं विकास निर्भर है। प्राणी-जगत् में सर्वश्रेष्ठ कहलाने वाले मनुष्य के भी दो अनिवार्य अङ्ग हैं—स्त्री और पुरुष । इन दोनों से मनुष्यसमाज निर्मित है और इन दोनों के सम्बन्ध-संयोग पर ही सन्तानोत्पत्ति, गृहस्थ-जीवन, कुटुम्ब-परिवार, समाज आदि की सत्ता स्थित है। दोनों मनुष्य गति के पञ्चेन्द्रिय-संज्ञी पूर्ण प्राणी हैं। आत्मदृष्टि से तथा अन्य अनेक दृष्टियों से वे एक दूसरे से भिन्न भी हैं अतएव एक दूसरे के पूरक हैं। मनुष्य के सांसारिक जीवन के लिए दोनों का वैध साहचर्य एवं सहयोग अनिवार्य है और धर्म-अर्थ-काम रूपी त्रिवर्ग या पुरुषार्थों की साधना में वे समानरूप से परस्पर सहयोगी होते हैं।

किन्तु, मोक्ष पुरुषार्थ ऐसी साधना है जो सर्व प्रकार के सांसारिक सम्बन्धों से हट कर एकाकी होती है। पूर्ण ब्रह्मचर्य उसकी अनिवार्य शर्त है। इस परम पुरुषार्थ के साधन मे भी पुरुषों और स्त्रियों को समस्त सांसाग्कि बन्धनों को तोड़ कर तप: साधना द्वारा आत्मकल्याण करने का पूरा-पूरा तथा समान अधिकार है। कम से कम, निर्ग्रन्थ श्रमण तीर्थङ्करों की आर्हत् अर्थात् जैन परम्परा में धर्म एवं मोक्ष की साधना के क्षेत्र में पुरुषों और स्त्रियों का भेद-विकल्प ही नहीं है। उनकी दृष्टि में आत्मधर्म लिंगातीत-वेदातीत है। स्त्री और पुरुष दोनों ही समान रूप से और स्वतन्त्र रूप से आत्मसाधना कर सकते हैं। कोई भी व्यक्ति—पुरुष हो या स्त्री, आठ वर्ष की आयु में सामान्यतया व्रत ग्रहण की क्षमता प्राप्त कर लेता है। यदि सम्यक्त्व की उपलब्धि हो जाए और संसार-शरीर-भोगों से सच्ची विरक्ति हो जाए तो संसार का त्याग करके साधु या साध्वी (मुनि या आर्यिका) का तप: पूत जीवन व्यतीत करते हुए परम प्राप्तव्य को प्राप्त करने का प्रयास कर सकता है। तात्पर्य यह है कि बालिका हो या युवती हो, प्रौढ़ा हो या वृद्धा हो, वह कुमारी हो या

विवाहिता, सधवा हो या विधवा, सन्तान सम्पन्न हो या निःसन्तान, किसी भी स्थिति में क्यों न हो, निर्वेद प्राप्त होने पर स्वेच्छा से समस्त बन्धनों को तोड़ कर गृहत्यागिनी होकर आत्मकल्याण में संलग्न हो सकती है। जैन परम्परा के इतिहास में इस प्रकार के अनगिनत दृष्टान्त उपलब्ध हैं।

युग की आदि में ही जिन प्रजापति स्वयम्भू प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने कर्मभूमि का प्रादुर्भाव किया था और विवाहप्रथा चालू की थी, स्वयं उन्हीं की पुत्रियों—ब्राह्मी और सुन्दरी ने विवाहबन्धन में बँधना स्वीकार नहीं किया और कौमार्यावस्था में ही जिनदीक्षा लेकर शेष जीवन आर्यिका के रूप में व्यतीत किया। ध्यातव्य यह है कि स्वयं भगवान ने अपने पुत्रों से पहले इन पुत्रीद्वय को ही शिक्षा प्रदान की थी; ब्राह्मी को लिपिज्ञान और सुन्दरी को अंकज्ञान प्रदान किया था; स्त्रियोचित अन्य चौसठ कलाओं की शिक्षा भी दी थी। ये दोनों साध्वियाँ ही वर्तमान अवसर्पिणीकाल की प्रथम आर्यिकारत्न तथा पुराण प्रसिद्ध सोलह सतियों में प्रथम थी। भगवान आदिनाथ के आर्यिका संघ में साढ़े तीन लाख आर्यिकाएँ थीं और उन सबकी प्रमुख - गणिनी महासती आर्यिकारत्न ब्राह्मी ही थीं। उस युग मे भी मुनियों की संख्या मात्र चौरासी हजार ही थी। उत्तरवर्ती तेईस तीर्थंकरों में से भी प्रत्येक के संघ मे मुनियो की अपेक्षा आर्यिकाओं की संख्या सदैव अधिक ही रहती रही, अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर के सघ में भी जबकि मात्र चौदह हजार मुनि थे, आर्यिकाओ की संख्या छत्तीस हजार थी और बाल ब्रह्मचारिणी महासती चन्दनबाला उनका नेतृत्व करती थीं।

इससे यह स्पष्ट है कि पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक श्रद्धालु, आस्थावान, दृढ़निश्चयी और धर्मप्राण होती हैं। दूसरे, इस तथ्य की भी पुष्टि होती है कि जैन परम्परा में नारी को अपना धार्मिक जीवन इच्छानुसार जीने और आत्मकल्याण के मार्ग का अनुगमन करने की स्वतन्त्रता कर्मयुग के प्रारम्भ से ही रहती आई है। तीसरे, यह कि जैन साहित्यकारों ने यदि त्रेसठ शलाका पुरुषों व अन्य प्रसिद्ध महापुरुषों के जीवनचरित्रों को अमरत्व प्रदान किया है तो उनके साथ ही ब्राह्मी, सुन्दरी, सुलोचना, अञ्जना, मन्दोदरी, सीता, दमयन्ती, द्रौपदी, राजुल, चन्दना प्रभृति पुराणप्रसिद्ध सोलह महासतियो तथा अन्य अनेक नारी रत्नों को भी अमर बना दिया है।

सतीशिरोमणि सीता ने अग्निपरीक्षा के बाद जैनेश्वरी दीक्षा ले ली और फलस्वरूप उत्तम देवपर्याय प्राप्त की। वहां से आकर उसने लक्ष्मण की मृत्यु के शोक से भ्रमित राम को सम्बोधा और आत्मकर्त्तव्य के प्रति सचेत किया था। अन्तिम तीन तीर्थङ्कर—अरिष्ट नेमि, पार्श्व और वर्द्धमान महावीर बाल ब्रह्मचारी रहे। उन्होंने कुमारावस्था में ही महाभिनिष्क्रमण किया था। उन तीनों की ही वाग्दत्ताओं ने—अरिष्टनेमि की वाग्दत्ता राजकुमारी राजीमती ने, पार्श्वनाथ की वाग्दत्ता राजकुमारी सुप्रभा ने और वर्द्धमान की वाग्दत्ता राजकुमारी यशोदा ने भी अपने-अपने

संकल्पित वर का अनुगमन करते हुए आर्यिका दीक्षा लेकर तप: साधना की थी। सम्राट महामेघ-वाहन खारवेल का सुप्रसिद्ध हाथीगुम्फा शिलालेख (दूसरी शती ईसापूर्व) कलिंग (उड़ीसा) देश के जिस पर्वत पर उत्कीर्ण है, उसी पर महावीर की वाग्दत्ता राजकुमारी यशोदा ने तपस्या की थी अत: तभी से वह कुमारी पर्वत के नाम से प्रसिद्ध हुआ। लगभग दो हजार वर्ष पूर्व के शुंग-शक-कुषाण कालीन जो शताधिक जैन शिलालेख मथुरा नगर के कंकाली टीले से तथा उसके आसपास से प्राप्त हुए हैं, उनमें पचासों महिलाओं के नामोल्लेख हैं, जिनमें से एक दर्जन से भी अधिक तो विदुषी एवं प्रभावक आर्यिकाएँ थीं तथा शेष धर्मप्राण श्रमणोपासिका दानशीला श्राविकाएँ थीं। कालान्तर मे भी इस महादेश के विभिन्न प्रदेशो में तथा विभिन्न कालों में अनेक राजमहिलाएँ, सम्भ्रान्त परिवारों की नारियाँ, जनसाधारण के विभिन्न वर्गो की अबालवृद्ध स्त्रिया, गृहस्थ में रहते धार्मिक श्राविकाओ का और गृहत्याग करके तपस्विनी आर्यिकाओं का जीवन व्यतीत करती रही हैं। इस तथ्य का प्रभूत एव प्रामाणिक साक्ष्य विभिन्न भाषाओं मे रचित जैन साहित्य, ग्रन्थप्रशस्तियों तथा विभिन्न स्थानों से प्राप्त जैन शिलालेखों व अन्य ऐतिहासिक अभिलेखो में उपलब्ध है।

गृहस्थ जीवन मे भी जैन नारियाँ अपने पति-पुत्रादि के धर्मकार्यों में सहयोगी तथा बहुधा प्रबल प्रेरक रहती आई हैं। अनेक बार उन्होंने अपने पति या अन्य परिजनों को कुमार्ग से हटा कर सन्मार्ग में लगाया है। दानप्रवृत्तियों में, जिनबिम्बो व मन्दिरो आदि के निर्माण में, कला के विकास में, साहित्य के प्रचार में, धर्मोत्सवों के संयोजन में, शील-सदाचार मे जैन नारियाँ बहुधा अपने पुरुषवर्ग से आगे रही हैं। उनकी सबल प्रेरणा और शक्ति तो रही ही हैं। उनमें से अनेक श्रेष्ठ साहित्यकार, संगीतज्ञा, चित्रकार व कलामर्मज्ञा भी रही हैं। अन्हिलपुर पाटन के चौलुक्य नरेश भीमदेव के मंत्रीश्वर विमलशाह की भार्या श्रीदेवी ने आबू (देलवाड़ा) का विलक्षण जिनालय विमलवसही बड़ी सूझबूझ से अपनी देखरेख में बनवाया था। उसके बाद उसके निकट ही सेनापति तेजपाल की पत्नी अनुपमादेवी के सहयोग से अतिसुन्दर लूणवसही का निर्माण हुआ जिसकी कारीगरी एवं उत्कीर्ण बेलबूटों का डिजाइन इस महिलारत्न ने ही बनाए बताए जाते हैं। होयसल नरेश के महादण्डनायक गङ्गराज की भार्या लक्कलें (लक्ष्मीदेवी) ने कई सुन्दर जिनालय बनवाए; जिनमें से श्रवणबेलगोलस्थ एरडुकटटें वसति नामक जिनालय तो अत्यन्त कलापूर्ण एवं भव्य था। इस महिलारत्न को अपने पति की 'कार्यनीतिवधु' तथा 'रणेजयवधु' कहा गया है। आहार-अभय-औषधि-शास्त्र रूप चतुर्विध दान में सतत तत्पर रहने के कारण उसे 'सौभाग्यखानि' उपाधि प्राप्त हुई थी। स्वयं होयसल नरेश महाराज विष्णुवर्धन की पट्टमहिषी महारानी शान्तलदेवी ने श्रवणबेलगोल में अपने उपनाम पर 'सवति-गन्धवारण वसति' नामक अत्यन्त सुन्दर एवं विशाल शान्तिनाथ जिनालय का निर्माण कराया था।

उपर्युक्त कतिपय उदाहरणों से सुस्पष्ट है कि जैन परम्परा एवं जैन समाज में जीवन के विविध क्षेत्रों में नारी का अत्युच्च, सम्मानपूर्ण एवं प्रतिष्ठित स्थान रहता आया है। वह प्रायः पुरुष के समकक्ष ही पुरुषार्थचतुष्टय की साधना में स्वतन्त्र रही है।

इसके विपरीत, अन्य सांस्कृतिक एवं धार्मिकपरम्पराओं में नारी का स्थान पुरुष की अपेक्षा गौण, हीन और प्रायः परावलम्बी ही रहा है। वह प्रायः पुरुष की भोग्या ही रही है, अधिक से अधिक उसे सन्तान देकर उसकी वंशपरम्परा चलाने वाली मात्र एक मशीन। ऋग्वेद (८-३३-१७) में लिखा है कि "स्त्री के मन को शिक्षित नहीं किया जा सकता, उसकी बुद्धि तुच्छ होती है।" अथर्ववेद में स्त्री के लिए सहगामिनी होने, पति के शव के साथ चिता में जलकर मरने का विधान है। ब्राह्मणधर्म के सर्वोपरि नियामक मनु महाराज कह गए हैं कि—

पिता रक्षति कौमार्ये, भर्त्ता रक्षति यौवने।
पुत्रस्तु स्थविरे भावे, न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥

और शङ्कराचार्यजी ने तो 'द्वार किमेकं नरकस्य नारी' की उद्घोषणा कर दी। ईसाई धर्म के ग्रन्थों में भी स्त्री को 'डेविल्स गेट' (नरक का द्वार) कहा गया है। बल्कि ईसाई और इस्लाम धर्मों में तो स्त्री में आत्मा का अस्तित्व ही अस्वीकार कर दिया गया है; केवल पुरुष में ही आत्मा, रुह या सोल होती है स्त्री मे नही। वस्तुतः जैसा कि एक पाश्चात्य विदुषी मादाम डी स्टील ने कहा है—"मेन एण्ड वुमन टुगेदर कम्पोज दी फुलनेस ऑफ ह्यूमैनिटी" : पुरुष और स्त्री दोनों मिलकर ही मनुष्यत्व को पूर्ण बनाते हैं। दोनों ही समकक्ष एवं अनिवार्य अंग हैं, किसी एक के बिना दूसरा अपूर्ण ही रहता है। जैन संस्कृति के प्रस्तोताओं ने इस सत्य को प्रारम्भ से ही मान्यता एवं प्रतिष्ठा प्रदान की है।

❖

❖ पूज्य १०५ गणिनी आर्यिका श्री विजयमती माताजी

धर्मध्वजा की प्रतीक नारी

✿

विश्व-इतिहास के व्यापक आकाश मे भारतीय आर्य ललनाओं का जीवन प्रत्येक क्षेत्र में ज्योतिर्मय दृष्टिगत होता है, तभी तो आबालवृद्ध एवं साधु-सन्त भी मुक्तकण्ठ से उसे "नारी नर की खान, धर्म की शान" कह कर पुकारते है। ममता का सागर उँडेलती हुई नारी एक ओर माता के वेश में आती है तो दूसरी ओर वात्सल्यमूर्ति भगिनी के रूप में। इधर वह चतुर सलाहकार मत्री है तो उधर स्नेह भरी अर्द्धाङ्गिनी भी। प्रत्येक धर्मकार्य में अग्रसर रह कर वह चतुर गुरुआनी की भूमिका भी निभाती है। अपने सरल, सद्व्यवहार से उभय लोक यात्रा को सुखमय बनाकर सिद्धालय के पथ पर प्रवृत्त होती है।

नारी-जीवन की गुणगरिमा और शालीनता के गीत गाकर साहित्य अपने को धन्य समझता है। उसके भाग्य सितारे से प्रकाशित हो धर्म गौरवान्वित होता रहा है। नारी के कला-चातुर्य, गरिमा और प्रभाव से समाज सतत पुष्ट होता आ रहा है। नारी का जीवन महान् है। उसकी महत्ता अद्वितीय है। उसका मस्तिष्क अपना सानी एक ही है और उसके हृदय सरोवर का तो कहना ही क्या! वह विचित्र रङ्गों से रञ्जित, अनेक कमलों से व्याप्त सुरभित पावन भावों का निकेतन है।

नारी की पावनता से भू-अम्बर पवित्र हुए है। उसका सर्वाङ्गीण विकास सर्वाभ्युदय का प्रतीक है। यद्यपि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नारी का अद्वितीय स्थान है किन्तु यहाँ मेरी लेखनी का विषय धार्मिक क्षेत्र में उसकी स्थिति का विवेचन करना मात्र है।

नारी अपने स्वभाव से धर्म की जननी है, खान है। धर्म के नेता सर्वज्ञ हैं और सर्वज्ञ-रूप बनने वाली उस आत्मा को पुरुष रूप में जन्म देने वाली माँ है, नारी है। नारी की ममता "माँ" शब्द के उच्चारण से क्या, स्मरणमात्र से ही छलक उठती है। विधर्मी को साधर्मी, कुधर्मी को सम्यग्ज्ञानी और अधर्मी को धर्मात्मा बनाना नारी का प्रमुख कर्त्तव्य है। यह है नारी का सर्वाभ्युदय; कहीं भी किसी डगर पर वह घबराती नही, पीछे हटती नहीं। अभिमान उसे छू नहीं पाता, दम्भ

उसके पास नहीं फटकता। छल-कपट से दूर आत्मसाधना में रत नारी अपने भावों में डूबकर सच्चे वीरत्व का परिचय देती है। प्रस्तुत निबन्ध का प्रमुख उद्देश्य नारी की धार्मिक शालीनता का विवेचन करना है।

प्राचीन इतिहास के अवलोकन से विदित होता है कि जैन नारियों ने जहां गृहस्थधर्म को अपने त्यागभाव से पुष्ट किया है वहां साधु धर्म को भी अपने संयम से विस्तृत किया है तथा "जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा" कहावत को चरितार्थ किया है। तमिलदेशीय जैन धर्म की एक उल्लेखनीय विशेषता आर्यिकाओं या जैन साध्वियों की संस्था का होना भी है। उस समय वे साध्वियाँ भी साधुओं की भाँति सामाजिक और धार्मिक प्रवृत्तियो में प्रमुख भाग लेती थी। वे अपने अनुयायी गृहस्थों का नियमन करती थी और वसतिकाओं के प्रमुख के रूप में सम्मानास्पद होती थी।

कर्नाटक-शिलालेखों में जैनधर्मानुयायी गृहस्थ स्त्रियों और गृहाश्रमत्यागी, साध्वी दीक्षा लेने वाली महिलाओं के प्रचुर उल्लेख प्राप्त होते हैं। तमिल देश के शिलालेखों से ऐसी वीर और धर्मनिष्ठ नारियों के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त होती है जो न केवल गृहस्थाश्रम की ही अधिष्ठात्री थीं अपितु साध्वीजीवन में भी गुरु और आचार्य रूप में धार्मिक प्रवृत्तियों का संचालन करने में अग्रसर थी।

शिलालेखों मे उल्लिखित इस प्रकार की धर्माधिकारिणी स्त्रियों के उत्तराधिकारियों की लम्बी सूची से यह मानना पड़ता है कि तमिल देश में साध्वियों की भी अपनी संस्थाएँ थीं। वे अपने मोक्षमार्ग की स्वयं नेता थी और उनमें से कुछ को तो प्रधान धर्माधिकारी का पद भी प्राप्त था (जैन साहित्य का इतिहास : ७७ पृ०) इस प्रकार की साध्वियों को कुरट्टियार कहते थे। ये कुरट्टियार श्राविकाओं और आर्यिकाओं या साध्वियों से भिन्न होती थी। सम्भवत: ये आर्यिका समुदाय की प्रमुख, गणिनी संचालिकाये हो सकती हैं। जो हो, इस विवेचन से यह अवश्य विदित होता है कि प्राचीन काल में आर्ष परम्परा में जिस प्रकार यति, ऋषि और मुनि और साधुओं का निराला संघ होता था, उसी प्रकार आर्यिकाओं—क्षुल्लिकाओं आदि का भी अपना संघ रहता था जिसका संचालन स्वयं प्रव्रजित प्रमुख नारी ही करती थी।

दसवीं शताब्दी में नारी का त्याग उच्चतम सीमा पर था। ९११ ई० में नागर खण्ड के अधिकारी सत्तरस नागार्जुन की मृत्यु हो गई। उसके स्वर्गारोहण के बाद उसकी पत्नी अक्कियब्बे को अधिकारी नियुक्त किया गया। अक्कियब्बे शासन चलाने में सुदक्ष थी और जिनशासन की परम भक्त थी। उसने नागर खण्ड की सुरक्षा करते हुए अपने अन्तिम समय में 'बन्दिनिके' नामक पवित्र स्थान में जाकर वहां के जिनालय में समाधिमरणपूर्वक प्राण विसर्जित किए। इसी समय अत्तिमब्बे

नामकी स्मरणीय महिला हुई जिसने शान्तिपुराण की १००० प्रतियाँ तैयार करायी । यह नारी-स्वातन्त्र्य का ज्वलन्त निदर्शन है ।

दसवीं शताब्दी में ही पामब्वे नामकी महिला हुई । यह राजा भूत्तुग की बड़ी बहिन थी । इसने राज्यवैभव का त्याग कर जिनदीक्षा धारण की और कठिन तपश्चरण कर ३० वर्ष पर्यन्त आत्म शोधना कर ९७१ ई० में समाधिमरण पूर्वक स्वर्गारोहण किया । ११४७ ई० के शिलालेख में विदुषी धर्मज्ञ पम्मादेवी का नाम बड़े गौरव के साथ उल्लिखित है । वह राजा तैल की पुत्री थी तथा विक्रमादित्य शान्तर की बड़ी बहिन थी । शिलालेख में उसकी बड़ी प्रशंसा की गई है । अष्टप्रकारी पूजा, जिनाभिषेक और चतुर्विधभक्ति में उसकी दृढ आस्था थी । उसने 'अष्टविधार्चन', 'जिनाभिषेक' और 'चतुर्विधभक्ति' आदि स्वतन्त्र ग्रन्थों की भी रचना की थी । इससे विदित होता है कि आचार्यादि की भाँति श्रमणसाध्वियाँ भी ग्रन्थरचना, शास्त्ररचना मे प्रमुख स्थान रखती थी । परन्तु आज उन रचनाओं की उपलब्धि न होने से उन्हे आगम-प्रणेताओं से पृथक् मान लिया गया है । आज पुनः जागरण का समय आ गया है । श्रमण परम्परा की साध्वियाँ अपने कर्त्तव्यों और अधिकारो के प्रति जागरूक हो रही हैं; यह नारी का भाग्योदय है ।

११२१ ई० के शिलालेख में लक्ष्मीमती का नामोल्लेख मिलता है । यह गंगराज की पत्नी थी और शुभचन्द्राचार्य की शिष्या थी । धार्मिक जीवन व्यतीत करते हुए इसने संन्यास धारण किया और आयु के अन्त में श्रवणबेलगोल में समाधिमरण किया । गंगराज ने लक्ष्मीमती का स्मारक श्रवणबेलगोल में बनवाया । विष्णुवर्धन की पटरानी शान्तलदेवी का नाम इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा । इसके जीवन का प्रत्येक क्षेत्र धर्मभावना से ओतप्रोत रहा है । इसके पिता कट्टर शैव थे परन्तु माता जिनधर्म की परम भक्त थीं । शान्तलदेवी अपने अनुपम लावण्य के कारण तथा गायन और नृत्यकला आदि में प्रवीणता के कारण प्रख्यात थी । उसने कई चिरस्मरणीय कार्य किये । सन् ११२३ ईस्वी में उसने श्रवणबेलगोल में श्री शान्तिजिनेन्द्र की मूर्ति स्थापित की तथा सवति गन्धवारण वसदि का निर्माण करवाया । इसके प्रबन्ध के लिए विष्णुवर्धन की आज्ञा से मोट्टेनविले गाँव भी प्रदान किया । श्रवणबेलगोल का एक शिलालेख शान्तलदेवी के दान का स्मारक है । उसमें लिखा है कि विष्णुवर्धन की पटरानी शान्तलदेवी ने—जो पातिव्रत, धर्मपरायणता और भक्ति में रुक्मिणी, सत्यभामा और सीता के समान थी—सवति गन्धवारण वसदि निर्मित करा कर अभिषेक के लिए एक तालाब बनवाया और उसके साथ एक गाँव दान दिया । ११३१ ईस्वी में उसने बंगलोर से उत्तरपश्चिम ३० मील दूर स्थित शिवगंग नामक स्थान पर सल्लेखनापूर्वक मरण किया । शान्तलदेवी की मृत्यु के पश्चात् उसकी माता माचिकव्वे ने भी श्रवणबेलगोल जाकर एक माह का संन्यास धारण कर अपने नश्वर शरीर का परित्याग किया ।

राजा विष्णुवर्धन की पुत्री हरियब्बरसि जैनधर्म की परम श्रद्धालु भक्त थी। ११२९ ईस्वी में हन्नियूर में उसने एक उतुङ्ग जिनालय बनवाकर उसकी सुरक्षा के लिए भूमि प्रदान की थी। इसीप्रकार वैष्णव चन्द्रमौलि की पत्नी अंचलदेवी जैनधर्मानुरक्ता परम श्रद्धालु सम्यक्त्ववती थी जिसने श्रवणबेलगोला में जिनालय निर्मित करवा कर अपनी असीम भक्ति का परिचय दिया था।

शांतर वंश में चट्टल देवी ने जिनधर्म की महती उन्नति की। उसने पोम्बुजपुर में अनेक मन्दिरों का निर्माण करवाया। वसदियाँ, तालाब, स्नानगृह तथा गुफाएँ बनवाईं और आहार, औषधि, शिक्षा तथा आवास दान की व्यवस्था की। गंगराजवंशीय महिलाओं ने जिनधर्म का डंका बजाया है। १११२ ई० मे गंगवाडी के राजा भुजबल गग की महादेवी जैनधर्म की बेजोड़ संरक्षिका थी। शिलालेख में उसका उल्लेख जिनचरणों की भ्रमरी कह कर किया गया है। इसकी सपत्नी बाचलदेवी ने भी जिनभवन निर्मित करवा कर जैनधर्म को अमर बनाने का पूर्ण प्रयास किया था।

उपर्युक्त इतिहास के परिप्रेक्ष्य में यदि हम उस युग का सिंहावलोकन करे तो हमें ज्ञात होगा कि नारी प्रत्येक क्षेत्र में सतत जागरूक रह कर, अपने बल पर अपने शील, संयम और धर्म को न केवल विधाता रही है अपितु उसकी रक्षिका और संवर्धिका भी रही है। वह अबला नहीं अपितु प्रबला है। क्या ऐसी नारियाँ भोगविलास की पुतलियाँ हो सकती हैं? कदापि नहीं।

नारी युद्ध में चण्डी, साहित्य मे विदुषी, त्याग में उदार, धर्मप्रचार में नेता और आत्मोत्थान मे अजेय वीरांगना रही है। त्याग-वैराग्य की सरल मूर्ति नारी निरन्तर अपने गौरव की रक्षा करते हुए ख्याति-पूजा-लाभ के प्रलोभनो से अपना रक्षण करती रही है। उसे दिखावे की चाह नहीं किन्तु उसमें कर्त्तव्यपरायणता की अटल आस्था अवश्य विद्यमान है। वह अपने जीवन को त्याग वैराग्य और संयम का साधन मानकर १२ प्रकार की तपोग्नि में झुलसते रहना उत्तम समझती रही है तभी तो रत्नत्रय की परम त्रिवेणी उसके उत्स से प्रवाहित होती हुई नजर आती है। महीनों की समाधि धारण कर शान्ति से निर्विकल्प हो शरीर परित्याग करना नारी के सत्पुरुषार्थ की पराकाष्ठा है।

उभयधर्म का द्योतन करने वाली नारी की गुणगाथा सर्वत्र उपलब्ध होती है। गृहस्थ जीवन में जहाँ उसके चरणाम्बुजों में सुरासुर नतमस्तक हुए हैं, वहां संयमी, यतिधर्मपालक नारियों की वन्दना में इन्द्र, नरेन्द्र, खगेन्द्र आदि निरत रहते आए हैं। जगद्वन्द्य नारी का गुणस्तवन करने में स्वयं वृहस्पति भी समर्थ नही है।

एक ओर स्वपर उपकार-रत नारी उभयकुलदीपक बनकर प्रदीप्त रहती है तो दूसरी ओर उभयलोक शान्ति-सुख प्राप्ति के हेतु चमकती-दमकती दृष्टिगत होती है। शीलशिरोमणि अनेक नारी रत्न बालब्रह्मचारिणी रह कर आत्मशोधन में समर्थ हुई हैं। विविध कष्टों में भी कुसुम सदृश

मुकुलित हो आत्मसौरभ से दिग् दिगन्त को सुरभित कर अमर हुई हैं। उपसर्ग-परीषहों की विजेता अनन्तमती और चन्दना युगारम्भ की कुमारिका ब्राह्मी और सुन्दरी की स्मृति दिला कर नारी के उज्ज्वल शील संयम का निदर्शन कराती हैं। महासती राजुल का आदर्श जीवन जन-जन का मार्गदर्शक है, त्याग की गरिमा का अद्वितीय निदर्शन है। सर्वत्र धर्म की ध्वजा फहराती हुई ये नारियाँ विजयनाद करती रही हैं।

गृहस्थ जीवन में प्रविष्ट, धन-दौलत की दलदल में निमग्न नारी भी धर्मभावो से ओत-प्रोत दृष्टिगत होती है। इसका कारण है उनकी धार्मिक सुशिक्षा—परम पूज्या महाव्रती, संयमी साध्वियो के सान्निध्य में विद्यार्जन करना। राजभवन का त्याग कर वनाश्रमो मे अर्जित अमूल्य शिक्षा नारी-जीवन की धार्मिकता और सात्विकता का पूर्ण विकास करने मे सक्षम होती थी तभी तो शूल को फूल, सागर को गोखुर, अग्नि को जल, पर्वत को राई, शूली को सिहासन, जल को थल, दुर्जन को सज्जन, विधर्मी को स्वधर्मी, लम्पट को त्यागी, पापी को धर्मात्मा, व्यसनी को साधु और नरकगामी को शिवमार्गी बनाना उसके बाये हाथ का खेल रहा है। युग-युगान्तर से नारी के चमत्कारों की झकार गूंजती आ रही है। स्वार्थत्याग की कठिन तपस्या मे उत्तीर्ण नारियाँ अपने बल पौरुष का प्रदर्शन करने में भी कभी पीछे नही हटी। इसका एक मात्र हेतु है—उसका आत्मबल, धार्मिक श्रद्धा और अटूट जिनभक्ति।

पुरुष को पुरुष बनाने का श्रेय भी नारी को है। मानव का सस्कार उसी की गोद में होता है। तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, नारायण आदि दिव्य महापुरुषों की खान नारी ही है। उनके जन्म, लालन-पालन-वर्धन का सम्पूर्ण श्रेय नारी को ही है। अपने हृदय की पावनता को आँचल में उँडेल कर आत्मशोधन की भावना का इजेक्शन देने वाली नारी बालक की रग-रग में धार्मिक सस्कारों का संचार करती है। वीर अभिमन्यु मृत्यु का वरण करके भी अपने न्याय और शौर्य से आज भी जीवन्त है। सेठ सुदर्शन श्रावक होकर भी अपने शीलव्रत से अमर हुए हैं। अन्याय और अनाचार के लिए नपुंसक सुदर्शन मोक्षमहल की सीढ़ियों पर महाबली होकर आरूढ हुए, यह क्या नारी का कौशल नही! महासती चम्पावती देवी ने अपने चातुर्य से अपने वेश्यागामी पति को सद्धर्मानुरागी बनाया। महालम्पटी वैश्य श्रेष्ठी और राजा को भी दुर्जन से सज्जन बनाकर दुर्गति के मार्ग से हटा कर शिवपुरी की राह में प्रवृत्त किया। धर्मपरायणा चेलना ने विधर्मी श्रेणिक को सुधर्मी महात्मा बना दिया। यही नहीं, नारी ने सर्वत्र हरक्षेत्र में धर्म को समुज्ज्वल बनाने का अथक प्रयत्न किया है। वह संकटों में सतत हँसती रही है। विपत्तियों में भी उसने धैर्य नही खोया। दुर्वासनाओं के चंगुल से बाल-बाल बचने का प्रयत्न कर अपना और अपने धर्म का रक्षण किया। गर्भवती सती सीता का विपिन-वास, गर्भधारी अंजना का गुहा निवास, अनन्तमती का हरण, मनोरमा का निर्वासन आदि चित्र नारी की

"हार की जीत" के निदर्शन हैं। नारी सर्वत्र अपने सम्यक्त्व की शीतल छाया में अपने आप को विश्राम देती रही है। अनेक विदुषी नारियो के कलाकौशल व गुणधर्मों के आख्यान ग्रन्थों में भरे पड़े हैं। वह स्वयं पर की परीक्षा करने में दत्तचित्त रही आई है, ठगों को ठग कर सचेत रही है, धूर्त-शिरोमणियों को भी धोखा देकर अपने धर्म का रक्षण कर जिनधर्म की पताका फहराने में समर्थ रही है। कडारपिंग पर पियंगुसुन्दरी की विजय इसका ज्वलन्त उदाहरण है। युद्धभूमि में, रथ की धुरी में अपना अंगूठा लगा कर विजय प्राप्त कराने वाली नारी का बुद्धि कौशल क्या सामान्य हो सकता है ? वह सतत अपना आदर्श जीवन बनाने में दत्तचित्त रही है, तभी तो देवता भी उसके किंकर बने रहे। वह दृढचित्त हो सन्देश देती है—

"उद्यमं, साहसं धैर्यं बलबुद्धि पराक्रमाः ।
षड़ेते यत्र विद्यन्ते तत्र दैव सहायकृत् ।।"

आत्मसाधना के मार्ग मे नारी ने अपना अप्रतिम कौशल प्रदर्शित किया है। धर्मपताका फहराने वाला नारी जीवन सर्वत्र बिखरा पड़ा है। त्यागमार्ग में अडिग नारी सर्वत्र विकारों की होली जलाती रही है। ज्ञानध्यानपरायणा महिलाओं ने धर्मोद्योत कर आत्मसाधना मे अमोघ फल प्राप्त किया है।

नारी जीवन की सफलता की कुंजी है—उसका स्वार्थत्याग, इन्द्रियनिरोध, भोगलिप्सा का परित्याग और कषायो की मन्दता। रस, ऋद्धि और सात गारवों से नारीजीवन अछूता रहा है तभी तो वह पतिभक्ति की भाति जिनभक्ति का भी आदर्श उपस्थित करने में समर्थ हो सकी है। आत्मध्यान में तत्पर नारी सम्यग्ज्ञान का चिराग ले चिदानन्द के अन्वेषण मे संलग्न रही है। बाह्याभ्यन्तर परिग्रह का त्याग कर परमोज्ज्वल महाव्रत धारण कर जिनशासन का आलोड़न करने में सफल हो सकी है। जैन साध्वियां ११ अंग तक श्रुत का पठन-पाठन करने में समर्थ है। अवधिज्ञान लोचना संयमश्री आर्यिका ने सपत्नी डाह से पीड़ित रानी को उपदेश दिया। स्वयं अन्तराय पाल कर निराहार रही। जिनप्रतिमा की अविनय करने का कुफल बता कर उसे कुमार्ग से हटाया, दुर्गति से बचाया और जिनबिम्ब को विनयपूर्वक यथास्थान विराजमान करवाया। कुमारी अनन्तमती को आर्यिका माता ने ही हस्तावलम्ब प्रदान कर मोक्षमार्ग में संलग्न किया। अपने सान्निध्य मे धार्मिक शिक्षण प्रदान कर सती मैना आदि के रूप में धर्म की आन और शान को बढ़ाया। पुरा काल में कन्याओं का शिक्षण साध्वियों के समूह में उन्हीं के समक्ष उन्हीं की छत्रछाया में होता था। सभी राजबालाएँ, श्रेष्ठिकन्यकाएँ आर्यिकाओं के पास रह कर सर्वकलाओं का परिज्ञान करती थीं। विविध विद्याओं में निपुण आर्यिकाये उन्हें संकेतमात्र से गृहस्थ और संन्यास दोनों जीवन की कलाओं में प्रवीण करतो थीं। धर्म, राजनोति, साहित्य, विज्ञान, गृहकर्म, शिल्पकर्म, चित्रकर्म, पुस्तकर्म आदि

सभी कलाओं का ज्ञान संयमी माताओं के द्वारा दिया जाता था। इसी से वह धर्मपरम्परा अक्षुण्ण रूप में रह कर निरन्तर संसार कल्मष का प्रक्षालन करती थी।

धर्म के क्षेत्र में नारी का स्थान सर्वोपरि है। आज भी वह धर्म के क्षेत्र में अग्रणी है। विज्ञान के चाकचिक्य और पाश्चात्य शुष्क वायु के गर्म झोकों से झुलसी कुछ नारियां पथच्युत अवश्य हो गई हैं; इसमें भी उनका अपराध उतना नही जितना विलासी, भोगी, कामुक पुरुषो की वासना का है। उन्होने नारी को फैशन के चंगुल में फँसा कर स्वतन्त्रता के स्थान पर स्वच्छन्दता प्रदान कर उनका जीवन नारकीय और घृणित बना दिया है।

शील, संयम, त्याग दया की मूर्ति नारी आज विलास लीला में अपने सौजन्य को खो चुकी है। यह अत्यन्त खेद की बात है कि आज वह लज्जा का परित्याग कर स्वच्छन्द चुस्त वेशभूषा में अपने उभरे अंगों का भद्दा प्रदर्शन करने में अपना गौरव समझने लगी है। कैसी शोचनीय स्थिति है कि असली स्वभाव नकली कलई में घुस कर सिसक रहा है। आज भी नारी यदि इस मोहन प्रयोग को समझ ले तो उसका वही सुनहरा, पावन, पुण्यस्वरूप प्रकट हो सकता है।

जो हो नारी आज भी धर्मपताका फहराकर धर्मरसायन का पान कराने मे सक्षम है। मध्यकाल में कुछ द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की प्रतिकूलता से नारी पर अत्याचार, अनाचार और अमानुषिक प्रहार हुए हैं, जिनके कारण उसका उज्ज्वल पक्ष धूमिल हुआ है, वह मात्र भोगविलास की वस्तु मान ली गई; पुरुष ने उसे अपने वासनाक्षेत्र की नर्तकी बनाकर बन्दी बनाया। पाशविक प्रवृत्तियों के उतार चढ़ाव की नटी बना कर उसके आध्यात्मिक जीवन को खोखला बना उसे अशक्त, अबला कह रंगीन चहारदीवारी के भीतर कैद कर लिया। सिसकता नारीजीवन घुटता रहा अकम्पनाचार्य के संघ की भाँति; परन्तु आज नारी का नारीत्व जागा है, उसने अपने गौरव को पहिचाना है। अब सही अधिकारों की माँग शुरु हुई है। कर्त्तव्यनिष्ठ नारी ने पुनः धर्म की बागडोर अपने हाथ में ली है।

नारी जागरण के प्रतीक हैं—बालब्रह्मचारिणी साध्वियां, साध्वी संघ, समयानुकूल शिक्षण, अध्ययन-अध्यापन आदि। परन्तु फिर भी वर्तमान स्थिति कोई विशेष सन्तोषजनक नहीं है। अभी विशेष जागरण की आवश्यकता है। धार्मिक क्षेत्र के माध्यम से ही अन्य क्षेत्रो में नारी जीवन उभर और पनप सकता है।

यदि वर्तमान नारी समाज पाश्चात्य शैली का अन्धानुकरण छोड़कर अपनी भारतीय परम्परानुकूल रहन सहन, रीतिरिवाज, खान-पान, आचार-विचार, शिक्षा अध्ययन, त्याग, साधना एवं संस्कृति संरक्षण को अपना ले तो आज भी वही पावन, मान्य, पूज्य एवं महान् स्थान उसे प्राप्त हो सकता है। अस्तु····

❖

❖ १०५ आर्यिका श्री सुपार्श्वमती माताजी

कन्या, कामिनी और जननी

१०५ आ० सुपार्श्वमती माताजी

समस्त चराचर जगत में नारी जाति का विशिष्ट स्थान है। नारी के बिना मानवी-सृष्टि की रचना, मनुष्य समाज का संगठन, गार्हस्थिक कार्य कलाप, धर्म अर्थ काम पुरुषार्थ का सेवन आदि सभी कार्य अधूरे रहते हैं। विश्व की विभूतियों में अर्धांश नारी का है। नारी विश्व जननी, उत्तमशिक्षिका, गृहस्वामिनी और निस्वार्थ सेविका है। शान्ति, शक्ति, स्नेह, धैर्य, क्षमा, त्याग, सौन्दर्य और माधुर्य आदि गुणों की सजीव मूर्ति है।

अनादि अनन्त विश्व के विकास एवं व्यवस्था में नर-नारी का जोड़ा प्रकृति की एक महती देन है। अपने अपने क्षेत्र में दोनों की उपयोगिता एवं महत्त्व निर्विवाद है तथापि पुरुष की जननी होने का गौरव धारण करने वाली होने से मातृत्व के नाते महिला जाति का महत्त्व विशेष है। सन्तान में प्रारम्भिक संस्कार डालने वाली जननी ही होती है। उसका पालन-पोषण कर उसको सबल बनाने का एवं उसको शिक्षित करके उन्नत बनाने का श्रेय भी नारी (जननी) को है।

अध्यात्म और मनोविज्ञान की दृष्टि से विचार करें तो स्त्री और पुरुष की स्थिति समान नहीं है। सम्पूर्ण कर्मों के नाशक शुक्लध्यान–निर्विकल्प ध्यान की अधिकारिणी नारी नहीं है। उसमें इस पर्याय में पूर्ण आत्मशक्ति का विकास करने का सामर्थ्य नहीं है। मनोवैज्ञानिकों ने तो स्त्रियों के मस्तिष्क की लघुता परिणामकृत स्वीकृत की है और उसका विकास भी इतना बतलाया है जितना सम्भव है। शरीर विज्ञान भी नारी को नर के समान सुदृढ़ और संहननयुक्त

स्वीकार नहीं करता है। व्यवहार और नैतिक शास्त्र की दृष्टि में स्त्री-स्वभाव में बहुत कमियाँ हैं। इन कमियों के दर्शन-दिग्दर्शन से भारतीय और विदेशी ग्रन्थ भरे पड़े हैं।[1]

दुर्बलता ! तेरा नाम नारी है। इसीसे नारी का एक नाम 'अबला' भी है। इस कथन में स्त्री स्वभाव का सम्पूर्ण रहस्य भरा है। परन्तु यह दुर्बलता शारीरिक है, संहनन की हीनता होने से वे इस भव में मुक्ति की अधिकारिणी नहीं है। मानसिक एवं आत्मिक बल में वे हीन नहीं है। अमितगति आचार्य ने 'धर्मपरीक्षा' ग्रन्थ में लिखा है—

"अबलीकुरुते लोकं येन तेनोच्यतेऽबला।"६/१६।

अर्थात् नारी हीनशक्ति होने से अबला नहीं है अपितु बलवान पुरुषों को निर्बल करती है इसलिए अबला है। यदि अञ्जना, सीता, मनोरमा, चन्दना आदि नारियाँ सबल नहीं होतीं तो अपने शील-संयम की रक्षा कैसे कर पातीं। इन शीलशिरोमणि नारियों ने विश्व के समक्ष जो आदर्श उपस्थित किये हैं, उनके कारण सबके सिर उनके चरणों में सश्रद्ध नमन करते हैं।

समन्तभद्राचार्य ने अपने 'रत्नकरण्डक श्रावकाचार' में सम्यग्दर्शन रूप लक्ष्मी की उपमा नारी के विवध रूपों से दी है—

सुखयतु सुखभूमिः कामिनं कामिनीव,
सुतमिव जननी मां शुद्धशीला भुनक्तु।
कुलमिव गुणभूषा कन्यका सम्पुनीता—
ज्जिनपतिपदपद्मप्रेक्षिणी दृष्टिलक्ष्मीः ॥१५०-५/२६॥

जिनेन्द्र भगवान के चरण-कमलों का दर्शन करने वाली सम्यग्दर्शन रूपी लक्ष्मी सुख का भूमि होती हुई मुझे उसी तरह सुखी करे जिस तरह कि सुख की भूमि कामिनी कामी पुरुष को सुखी करती है।

निर्दोष शील—तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत—से युक्त होती हुई सम्यग्दर्शन रूपी लक्ष्मी मुझे उस तरह रक्षित करे जिस तरह कि निर्दोष शील—पातिव्रत्य धर्म का पालन करने वाली माता पुत्र को रक्षित करती है।

मूलगुण रूपी अलंकारों से युक्त होती हुई सम्यग्दर्शन रूप लक्ष्मी मुझे उस तरह पवित्र करे जिस प्रकार कि शील-सौन्दर्य आदि गुणों से युक्त कन्या कुल को पवित्र करती है।

'सुभाषितरत्नसन्दोह' में आचार्य अमितगति ने लिखा है—

---

1 **FRAILTY, thy name is woman.**

स्त्रीतः सर्वज्ञनाथः सुरनतचरणो जायतेऽबाधबोधः,
तस्मात्तीर्थं श्रुताख्यं जनहितकथकं मोक्षमार्गावबोधः ।
तस्मात्तस्माद्विनाशो भवदुरिततते: सौख्यमस्माद्विबाधं,
बुद्ध्वैवं स्त्रीं पवित्रां शिवसुखकरणीं सज्जनः स्वीकरोति ॥६-११॥

स्त्री की कोख से तीन लोक के स्वामी तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं । तीर्थंकरों के सदुपदेश से धर्मतीर्थ की उत्पत्ति तथा सन्मार्ग का ज्ञान होता है जिससे भव्य प्राणी सन्मार्ग में लग कर आत्म-कल्याण करते हैं; ऐसे तीर्थंकर की जननी (महिला) किसी एक के द्वारा आदरणीय नही है अपितु समस्त विश्व के द्वारा पूजनीय है ।

नारी अपनी प्रथम स्थिति में कन्या है; कन्या-रत्न है । पुत्र से भी अधिक प्यारी है माता पिता को । भगवान आदिनाथ ने अपनी कन्याओं—ब्राह्मी और सुन्दरी का पालनपोषण, शिक्षण अपने पुत्रों की भाँति ही किया, उनको लौकिक और पारलौकिक ज्ञान प्रदान करके सर्वगुण सम्पन्न बनाया । दोनों पुत्रियों ने जगत्पूज्य आर्यिका पद स्वीकार कर स्व पर कल्याण किया ।

कन्या दोनों कुलों को उज्ज्वल करने वाली होती है, यही तो आगे चल कर वीर पत्नी एवं वीर जननी बनती है । राष्ट्रकवि मैथिलीशरणगुप्त ने 'साकेत' में 'सीताजी' के प्रति एक स्थल पर लिखा है—

दो वंशों में प्रकट करके पावनी लोकलीला ।
सौ पुत्रों से अधिक जिनकी पुत्रियाँ पूतशीला ॥

जैन ग्रन्थों में लौकिक और पारलौकिक दो तरह के मंगल माने गये हैं । पञ्च परमेष्ठी के गुणों का स्मरण पारलौकिक मंगल है तथा पूर्ण कुम्भ, राजा, श्वेतछत्र, सरसों, दर्पण, कन्या आदि लौकिक मंगल हैं । किसी शुभ कार्य को जाते समय कन्या का सम्मुख आना शुभ माना गया है । पंच-कल्याणक तथा वेदी प्रतिष्ठा आदि कार्यों में वेदी की शुद्धि, माता की गर्भशोधना आदि पवित्र कन्याओं से कराई जाती है । शास्त्रों में कुमारिका के हाथ से काती हुई सूत की माला से जप करने का विशेष फल कहा है । पूर्व काल में कन्याओं के जन्म से माता पिता गौरवान्वित होते थे, उसे अभिशाप नहीं समझते थे, उसकी शिक्षा की सुव्यवस्था कर उसे विदुषी बनाते थे । यथार्थतः कन्या एक कुसुम है जो पिता के घर के कोने-कोने को सुगन्धित कर देती है ।

जब नारी माता-पिता के दुलार को छोड़ कर दूसरे के घर की रानी बनती है तब उसका पत्नी रूप प्रकट होता है । अब वह गृहस्थ जीवन के बन्धन में बँध जाती है । पत्नी बन कर नारी जो उपकार करती है वह अविस्मरणीय है । 'सुभाषितरत्नसन्दोह' कार लिखते हैं—

भृत्यो मन्त्री विपत्तौ भवति रतिविधौ यात्र वेश्या विदग्धा,
लज्जालुर्या विनीता गुरुजनविनता गेहिनी गेहकृत्ये ।
भक्त्या पत्यौ सखी या स्वजनपरिजने धर्मकर्मैकदक्षा
साल्पक्रोधाल्पपुण्यैः सकलगुणनिधिः प्राप्यते स्त्री न मर्त्यैः ।।६-१२।।

विवाह वासना की पूर्ति का साधन नही है, सन्तानोत्पत्ति के लिए विवाह आवश्यक है। जो वासना पूर्ति हेतु गृहिणी को स्वीकार करते है वे भूल करते है। 'आदिपुराण' में लिखा है—

देवेमं गृहिणां धर्मं विद्धि दारपरिग्रहं ।
सन्तानरक्षणे यत्नः कार्यो हि गृहमेधिनां ।।१५-६४।।

गृहिणी गृहपति की सेवा-सुश्रूषा तो करती ही है साथ ही उसके अनेक कार्यों में भी सहयोग करती है। गृहलक्ष्मी की त्याग-वृत्ति और उदारता का दिग्दर्शन करना सरल नही है। वह अपने सुखों का त्याग करके परिवार को सन्तुष्ट करने में तत्पर रहती है, पति को परमेश्वर मानती है। घर की शोभा सुघड़ गृहिणी से ही होती है। जिस घर में सुशील, सदाचारी और गृहकार्य में कुशल नारी है वह घर स्वर्गतुल्य होता है, सुख, सम्पदा, शान्ति आदि सभी गुण वहां निवास करते है। गृहस्थ जीवन नारी के बिना एक कदम नही चल सकता। कहा भी है कि "गृहिणी का नाम ही घर है, कूड़े करकट का ढेर अथवा ईंट चूने से बने हुए मकान का नाम घर नही है।" सद्गृहिणी देश, कुल, जाति और मानवता का आभूषण है।

कन्या और पत्नी के बाद नारी का माँ रूप सर्वाधिक पूज्य है। सब गुणों में मेरे विचार से मातृत्व गुण ही ऐसा गुण है जिससे कोई नारी अपना गौरव सदा काल अक्षुण्ण रख सकती है। 'आदिपुराण' में जननी के रूप को बड़े सम्मान की दृष्टि से देखा गया है। इन्द्राणी, मरुदेवी की स्तुति करती हैं—"हे माता! तू तीनो लोकों की कल्याणकारिणी माता है, तू मंगल करने वाली है, तू ही महादेवी है, तू ही पुण्यवती है और तू ही यशस्विनी है।" जो माता चक्रवर्ती और तीर्थङ्करों को जन्म देती है, उस माता के महत्त्व का मूल्यांकन कौन कर सकता है! जिस माता के पवित्र उदर में तीर्थङ्कर ने अवतरण किया है, उसकी पवित्रता वचनातीत है। आचार्य मानतुङ्ग ने माता की स्तुति करते हुए कहा है—

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता
सर्वादिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ।।

"संसार में सैकड़ों स्त्रियाँ सैकड़ों पुत्रों को जन्म देती है। किन्तु हे भगवन्! आप जैसे अद्वितीय अनुपम पुत्र को जन्म देने वाली कोई विलक्षण स्त्री ही होती है। नक्षत्रों को तो सर्वदिशायें धारण करती हैं परन्तु अन्धकारनाशक सूर्य को पूर्वदिशा ही पैदा करती है।"

यद्यपि प्रसव के समय स्त्री को अपार कष्ट सहन करना पड़ता है तथापि उसके बाद जो वात्सल्य समुद्र उसके हृदय में उमड़ आता है, उसकी अगाधता का अनुमान नही किया जा सकता। जीवन में कोई भी अपनी माँ के उपकारों से उऋण नहीं हो सकता मां के समान सन्तान का कोई उपकारी होता भी नही। किसी ने ठीक ही कहा है कि "जो पालने का शासन करती है वह विश्व का शासन करती है।" जननी की गौरव गाथा सबने गायी है उसे "स्वर्गादपि गरीयसी" तक कहा गया है। यह अक्षरशः सत्य है।

अपनी सन्तान में साहस, वीरता और निर्भयता के भाव मातायें ही भर सकती हैं। अपनी सन्तान को योग्य, कुशल धर्मज्ञ बनाने का श्रेय माता को ही है। माँ की महिमा का वर्णन कहाँ तक किया जाए। वह स्वयं सूखी रोटी खाती है मगर सन्तान को सरस खिलाती है; स्वय गीले में सोती है पर सन्तान को सूखे में सुलाती है। इसीलिए तो नारी के मातृस्वरूप की पूजा करने हेतु भारतीय मनीषी सदैव सन्नद्ध रहे हैं—

जननी परमाराध्या, जननी परमा गतिः।
जननी देवता साक्षात्, जननी परमो गुरुः ॥

'माँ' शब्द से अधिक सुखद और मधुर शब्द सृष्टि में दूसरा नही है। संसार का समस्त त्याग, समस्त प्रेम, सर्वोत्तम उदारता एक माता शब्द में ही छिपी पड़ी है।

नर-नारी ये सृष्टि रूपी रथ के दो चक्र हैं। जिस प्रकार एक चक्र से रथ नहीं चलता, उसी प्रकार स्त्री और पुरुष दोनों में से किसी एक से सृष्टि नहीं चलती। स्त्री घर की रानी है तो पुरुष बाहर का राजा। पुरुष यदि गुलाब का फूल है तो नारी उसकी सौरभ। उसके धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ के सेवन में वह अभिन्न सहयोगिनी है।

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः" नारी सदैव सम्माननीय होती है। उसके सच्चरित्र के प्रभाव से देवों का आसन कम्पायमान हो जाता है तथा वे उसके पदकमलों की निरन्तर वन्दना करते हैं। जिस प्रकार पुरुषों में सुदर्शन सेठ ब्रह्मचर्य व्रत के पालन द्वारा जगत्प्रसिद्ध हुए हैं उसी प्रकार सीता ने भी अपने सतीत्व-संरक्षण का जो कठोरतम परिचय दिया है उससे उसने न केवल स्त्री जाति का कलंक ही धोया है अपितु भारतीय नारी के नत मस्तक को सदा सदा के लिए उन्नत बना दिया है।

भारतीय इतिहास के अवलोकन से ज्ञात होता है कि पूर्वकालीन नारी कितनी विदुषी, धर्मनिष्ठ और कर्त्तव्यपरायणा होती थी। यह नारी अबला और कायर नही थी अपितु निर्भय वीरांगना थी, अपने सतीत्व के संरक्षण में सावधान होती थी, ऐसे अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं। पतिव्रता नारी केवल पति के सुख दुःख में ही शामिल नहीं रहती अपितु वह विवेक और धैर्य से काम करना भी जानती थी। ऐसे कितने ही उदाहरण मिलते हैं जिनमें नारी ने पतिसेवा करते हुए, उसके कार्यों मे, राज्य के संरक्षण मे यहाँ तक कि युद्ध मे भी उसकी सहायता की है। कंकेयी ने युद्ध मे दशरथ की सहायता की। झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई ने तथा सिंहलादेवी ने शत्रुओं से लोहा लेकर अपने देश की रक्षा की। सुभद्राकुमारी चौहान ने लिखा है—

"सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी।
बूढ़े भारत में भी आई फिर से नई जवानी थी।
गुमी हुई आजादी की कीमत सबने पहचानी थी।
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी।
चमक उठी सन् सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुँह, हमने सुनी कहानी थी॥
खूब लड़ी मरदानी, वह तो झाँसी वाली रानी थी॥"

इस प्रकार नारी वीर जननी ही नही, साक्षात् वीरत्व की प्रतिकृति भी है।

ग्रन्थों में अनेक नारियों के उदाहरण मिलते है जिन्होंने अपनी ज्ञानधारा की अनुपम शक्ति से, मिथ्यामार्ग में लवलीन तथा आत्मज्ञान से पराङ्मुख अपने पतियो को आत्मज्ञानी, जिनधर्मावलम्बी बनाया।

राजा श्रेणिक बौद्ध धर्मावलम्बी व जैन विद्रोही था परन्तु सम्यक्त्वशिरोमणि जिनधर्मपरायणा चेलना ने (उसकी पत्नी ने) उसको जिनधर्मावलम्बी बनाकर मुक्ति पथ का राही बना दिया।

भीलनी की पर्याय में राजुलमती ने भीलपर्यायस्थित नेमिनाथ के जीव को हिंसामय पापाचार से छुड़ा कर सम्यक्त्व के सम्मुख किया।

जिनमती नीली आदि महिलाओं ने अपने समस्त कुटुम्ब को जिनधर्म में दृढ़ किया। सीता सती ने कष्टों की परवाह न कर राजकीय वैभव का त्याग करके अपने स्वामी के साथ वनवास में रहना स्वीकार किया।

मैनासुन्दरी ने अपने शीलसंयम की शक्ति तथा प्रभुभक्ति से सात सौ कुष्ठ रोगियों सहित श्रीपाल का कुष्ठ रोग दूर किया।

इनके अतिरिक्त चन्दना आदि अनेक महासतियों ने जिनेश्वरी दीक्षा धारण की।

कितनी ही वीरांगनाओं और वीर माताओं ने योद्धा का वेश धारण कर शत्रुओं से भीषण युद्ध किया।

अनेकानेक महान् कार्यों को करने वाली, शील-संयम की धुरा नारी की महिमा का क्या वर्णन किया जाए—

नारी नारी मत कहो, नारी रत्न-सुखान।
नारी से पैदा हुए, चौबीसों भगवान॥

नारी को ही तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलभद्र आदि पुण्यात्मा पुरुषों को जन्म देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

अधिक विस्तार में न जाकर मैं इतना ही लिखना उचित समझती हूँ कि प्रत्येक भारतीय ललना अपना महत्त्व समझे, अपनी शक्ति को पहिचाने; विषयवासनाओं के जाल में फँसे रह कर अपने शील संयम को तिलांजलि दे दीन-हीन, अपयश की भागिनी न बने। मवं कुटुम्ब और संसार के साथ सद्व्यवहार करके सबको सुखी रखने का प्रयत्न करे। इत्यलम्—

कोरी साधुता का उपदेश पाखण्ड है।
कोरी वीरता का उपदेश उद्दण्डता है।
कोरे ज्ञान का उपदेश आलस्य है।
कोरी चतुराई का उपदेश धूर्तता है।

—रामचन्द्र शुक्ल

❖ आर्यिका विशुद्धमती माताजी (स्व० आचार्यश्री शिवसागरजी महाराज की शिष्या)

पद्मपुराण के कतिपय नारी-चरित्र

✲

'पद्मपुराण' में चरितनायक राम की कथा अबाध प्रवाहित हुई है। यह कथा अनेक प्रासंगिक कथाओं एवं उपकथाओं से अभिमण्डित है। इनके अध्ययन-मनन और विश्लेषण से अनेक सती शिरोमणि सशक्त आदर्श नारी पात्रों के जीवन वृत्त और उनके महान् त्याग एवं साधना के अमिट चित्र हृदयपटल पर अंकित हो जाते हैं।

वर्तमान युग शोध का युग है। आज का प्रत्येक मनीषी स्नातक किसी-न-किसी विषय पर शोध (पी० एच० डी०) करता है। महिलाएँ भी इस क्षेत्र में स्पर्धापूर्वक आगे बढ़ रही हैं किन्तु नारी के अन्तस् में तरङ्गित भावोदधि के महारत्नों की शोध और खोज आज तक किसी ने नहीं की। शायद इसीलिए मानव मन उनके गुणों का यथार्थ मूल्यांकन नहीं कर सका।

शीलधर्म की ध्वजा से चिह्नित, वात्सल्य, श्रद्धा, लज्जा, चिन्ता, अनुराग और त्याग की मूर्ति नारी दूसरों के सुखों के लिए स्वयं दुःखरूपी हिण्डोलों पर झूलती रहती है। केवल इतना ही नहीं अपितु पति-पुत्रादि की उन्नति हेतु विद्युत्वत् मृति, संसृति और नति रूप अनेक परिवर्तन करने में भी अग्रसर रहती है। ममतामयी मातृत्वनिधि को लुटा-लुटा कर बदले में घृणा, तिरस्कार एवं अवहेलना प्राप्त करके भी सन्तुष्ट रहती है। इतना सब कुछ सहने पर भी उसे जो स्थान प्राप्त होना चाहिये था, वह अभी तक प्राप्त नहीं हो सका है।

'पद्मपुराण' के राम ने सीता को और राजा प्रह्लाद एवं राजा महेन्द्र ने अञ्जना को जिस प्रकार अपने देश से निष्कासित कर दिया था, उसी प्रकार यदि पुराणों में से नारीवृत्त निकाल दिया जाय तो मात्र एक पद्मपुराण एवं इतिहास ही नहीं अपितु समस्त संस्कृति विलय को प्राप्त हो जाय।

सीता :

आठवें बलभद्र राजा राम की धर्मपत्नी सीता के जीवन को देखिए—कष्टों की महा-गाथा है उसका जीवन ! जनकनन्दिनी के जन्म लेते ही भाई भामण्डल का हरण हुआ; विवाह के कुछ समय बाद ही पति एवं देवर लक्ष्मण के साथ वनगमन करना पड़ा, उसी अवधि में रावण द्वारा उसका अपहरण हुआ किन्तु महापराक्रमी त्रिखण्डाधिपति रावण जो दिग्विजय के समय फौलादी लोहे के कवचो से सुरक्षित अनेक बलशाली राजाओ के सिर, भुजाएँ एवं हृदयों को भेद सका था, वह सीता के कोमल हृदय में किञ्चित् भी स्थान नहीं प्राप्त कर सका क्योंकि सीता का हृदय शील रूपी दृढ़ कवच से सुरक्षित था। असीम धैर्यशालिनी सीता के कष्टों के क्रम की इतिश्री यहाँ भी नहीं होती; राम से मिलन होने पर पुनः उस पर दुःखों का पहाड़ टूट पड़ता है। ·········गर्भवती सीता का पति राम द्वारा परित्याग हुआ। ·········महाभयावह अटवी में सेनापति द्वारा एकाकी छोड़े जाने पर सन्तप्त हुई सीता विलाप तो अवश्य करने लगी परन्तु इस धर्मनिष्ठा ने भयङ्कर सङ्कट की उस वेला में भी अपने विवेक को जाग्रत रख पति के लिए उद्‌बोधन देने वाला सन्देश भेजा कि "हे प्राणनाथ ! अपवाद के भय से जैसे मुझे त्याग दिया है वैसे ही कभी धर्म का परित्याग मत कर देना·····"। अपवाद के मानसिक ताप से सन्तप्त सीता का भाई वज्रजंघ के यहाँ निवास, ···लव-अकुश और मदनाकुश का जन्म, इन दोनो का राम-लक्ष्मण से युद्ध, पितापुत्र मिलन आदि प्रसंग सीता के व्यक्तित्व को कञ्चन सा निखारते हैं परन्तु अभी भी उसके कष्टों की शृङ्खला समाप्त नही हुई है। विभीषण, हनुमान आदि महासामन्तो के आग्रह से सीता राजदरबार में प्रवेश तो करती है परन्तु उसे वहां फिर पति से उपेक्षा एव तिरस्कार ही मिलते हैं। सहिष्णु सीता कहती है—"हे प्राणनाथ ! कालकूट विष पान, तुला-आरोहण एवं अग्निप्रवेश आदि में से जिससे आपको प्रसन्नता हो, उसी दिव्य शपथ की परीक्षा देना मुझे अभीष्ट है।" राम आदेश देते हैं—"अग्नि में प्रवेश करो।" सीता इस कठोर आदेश को भी सहर्ष स्वीकार करती है क्योंकि उसके लिए पति की आज्ञा सर्वोपरि है।

रामाज्ञा से तीन सौ हाथ लम्बा और तीन सौ हाथ चौड़ा गड्ढा कालागरु और सूखे चन्दन से भर कर प्रज्वलित किया जाता है। सुमेरु सदृश दृढ़ श्रद्धा एवं अपूर्व धैर्ययुक्त शीलवती सीता प्रज्वलित अग्निकुण्ड की उत्तुङ्ग लपटों को देखकर भी भयभीत एवं विचलित नहीं होती। पञ्च परमेष्ठी को अनेकश· भावपूर्वक नमस्कार कर उदात्त विनय से युक्त सीता कहती है कि—मैंने राम को छोड़ कर किसी अन्य पुरुष को स्वप्न में भी मन, वचन एवं काय से धारण नहीं किया है; यह मेरा सत्य है। यदि मैं मिथ्याभाषण कर रही हूँ तो हे अग्ने ! तू मुझे राख (भस्म) के ढेर में परिणत कर दे; किन्तु यदि मैं सदाचार में स्थित सती हूँ तो तू मुझे नहीं जला सकेगी।" इतना कह कर अनुपम धैर्यशालिनी सीता अग्निकुण्ड में कूद पड़ती है। शील के प्रभाव से उसी क्षण वह

सम्पूर्ण अग्नि निर्मल जल से भरी हुई वापिका में परिणत हो जाती है और उसके मध्य एक विशाल सहस्रदल कमल प्रकट होता है। उस कमल के मध्य में चन्द्रमण्डल सदृश रत्नजड़ित सिंहासन पर समासीन सीता लक्ष्मी के समान दृष्टिगत होती है।

और अब.........जीवन के भीषण झंझावातों में भी निष्कम्प दीपशिखा की भाँति सबको प्रकाशित करती हुई सीता अपने मन मे स्त्रीपर्याय को सार्थक करने का संकल्प करती है और......... अग्नि में शुद्ध किए गए स्वर्ण सदृश जिसका शरीर अत्यधिक प्रभासमूह से व्याप्त था ऐसी सीता अपने अत्यन्त लम्बे, काले, कोमल केश उखाड़ कर राम के सम्मुख डालती है, जिन्हें देखकर राम मूच्छित हो जाते हैं।.........सीता पृथ्वीमती आर्यिकाश्री के पास जाकर उनसे आर्यिकादीक्षा ग्रहण कर लेती है। परिजन, पुरजन सहित राम, लक्ष्मण आर्यिका सीता के पास जा कर भक्ति एवं सम्मान के साथ बारम्बार नमस्कार करते हैं.......पश्चात् वे सब सती सीता की प्रशंसा करते हुए नगर को लौट आते हैं।

पुराणकार ने आर्यिका सीता की तपश्चर्या का जो वर्णन किया है वह पठनीय, मननीय और अनुकरणीय है। उसका साराश इस प्रकार है—....बासठ वर्ष पर्यन्त घोर तपश्चरण करती हुई सीता सूख कर दग्धायमान माधवी लता समान हो गई।....शील और मूलगुणों के पालन में तत्पर, रागद्वेष से रहित, अध्यात्म चिन्तन में तल्लीन सीता अन्य मनुष्यो के लिए दुःसह अत्यन्त कठिन तप करती थी, जिससे सम्पूर्ण शरीर रक्त और मांस से रहित, हड्डी और आँतों का पञ्जर मात्र दिख रहा था, वह जीव तत्त्व से रहित लकड़ी आदि से बनी प्रतिमा जैसी जान पड़ती थी। विहार के समय अपने पराए जन भी उसे पहचान नही पाते थे। सती सीता जीवन के अन्तिम ३३ दिनों में उत्तम सल्लेखना धारण कर उपभुक्त विस्तर एवं वस्त्रों के सदृश शरीर को छोड़ कर तथा स्त्रीलिङ्ग छेद कर अच्युत स्वर्ग मे प्रतीन्द्र पद को प्राप्त हुई। इस प्रकार सती सीता का सदाचार-पूर्ण जीवन शताब्दियों से भारतीय नारी का आदर्श बन रहा है; उसे आज्ञाकारी पुत्री, स्नेहमयी-बहिन, पतिव्रता पत्नी, वात्सल्यमयी माँ, कष्टसहिष्णु स्त्री और तपाचार से संयुक्त आर्यिका के रूप में युगों तक स्मरण किया जाता रहेगा।

मन्दोदरी :

विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी मे असुर-संगीत नाम नगरी के राजा मय एवं रानी हेमवती की पुत्री मन्दोदरी का विवाह रावण से हुआ। मन्दोदरी अनेकानेक गुणों का भण्डार थी, अतः अपनी गुणगरिमा के कारण रावण की पटरानी बनी। जहाँ रावण की प्रकृति में उत्तेजना थी वहाँ मन्दोदरी की प्रकृति शान्त थी, वह अपनी दीर्घदर्शिता एवं विवेकशीलता से समय-समय पर अनेक हितावह उपदेश देकर रावण को सुमार्ग पर लाती थी। जैसे उफनते हुए दूध में डाली हुई

पानी की एक अंजुली दूध के उफान को शान्त कर देती है, वैसे ही मन्दोदरी की समयोचित मृदु वाणी रावण के उफान को शान्त करती थी।

एक समय खरदूषण विद्याधर रावण की बहिन चन्द्रनखा को हर कर ले गया। रावण क्रोध से उबल पड़ा और खरदूषण पर आक्रमण करने हेतु उद्यत हो गया। अन्य किसी की अपेक्षा न कर सहायतार्थ मात्र एक तलवार लेकर युद्ध के लिए निकल पड़ा। उसी समय लोक-स्थिति से विज्ञ, मन्दोदरी बोली—"हे नाथ ! निश्चय से कन्या दूसरे को ही दी जाती है; क्योंकि संसार में उनकी उत्पत्ति ही इसलिये होती है। ....यदि किसी प्रकार खरदूषण मारा भी गया तो हरण दोष से दूषित कन्या दूसरे को नहीं दी जा सकेगी अतः उसे वैधव्य जीवन ही व्यतीत करना पड़ेगा। इसके सिवाय अलंकारोदय नगर को शत्रुओं से छीन लेने के कारण तुम्हारे स्वजन भी उससे उपकार को प्राप्त हुए हैं" ....इत्यादि। मन्दोदरी के नीतिपूर्ण वचन सुनते ही रावण शान्त हो गया।

राम, रावण का युद्ध प्रारम्भ हो जाने के कुछ समय बाद जब रणवास आदि में नाना प्रकार के अपशकुन होने लगे तब मन्दोदरी ने शुक आदि श्रेष्ठ मन्त्रियों को बुला कर रावण को समझाने हेतु गम्भीरतापूर्वक प्रोत्साहित किया, किन्तु जब मन्त्रियो ने अपनी असमर्थता प्रकट की तब मन्दोदरी ने स्वयं आयुध शाला में जाकर उसे नाना प्रकार से समझाया। करुणापूर्ण शब्दों में उसने कहा कि—"हे नाथ ! मुझे पति की भिक्षा प्रदान करो। ....वियोग रूपी नदी के दुःखरूपी जल में डूबती हुई मुझ को आलम्बन देकर रोको। ....प्रलय को प्राप्त होते हुए विशाल कुल रूपी कमल वन की उपेक्षा मत करो इत्यादि।" रावण ने उत्तर दिया कि—"हे मन्दमते ! इन चर्चाओं से तुझे क्या प्रयोजन है ? तू तो सीता की रक्षा के लिए नियुक्त की गई है सो यदि रक्षा करने में असमर्थ हो तो उसे मुझे वापिस सौंप दे।"

यह सुन ईर्ष्यायुक्त क्रोध वाली मन्दोदरी ने सौभाग्य की इच्छा से कर्णोत्पल द्वारा रावण को ताड़ना भी दी।

युद्ध में पति की मृत्यु होने एवं पुत्रों के दीक्षित हो जाने से दुःखाग्नि में जलती हुई मन्दोदरी महाशोक से विह्वल हो रही थी। विलाप करती हुई मन्दोदरी को शशिकान्ता आर्यिका ने उत्तम वचनों द्वारा प्रतिबोध प्राप्त कराया, जिससे अत्यन्त विशुद्ध जैनधर्म में लीन होती हुई मन्दोदरी ने एवं रावण की बहिन चन्द्रनखा ने अड़तालीस हजार नारियों के साथ आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। तीन खण्ड के अधिपति की भार्या तथा १८००० रानियों की तिलक मन्दोदरी सफेद वस्त्र से आवृत, रत्नत्रय रूपी विशाल-सम्पदा को धारण कर चन्द्रमा के समान सुशोभित हो रही थी।

स्वयं सती होते हुए भी मन्दोदरी ने सीता को रावण के प्रति आकर्षित करने के जो उपाय किये, उसमें मात्र पति भक्ति ही कारण थी।

विशल्या :

विदेह क्षेत्रगत चक्रधर नगर में रहनेवाले चक्रवर्ती त्रिभुवनानन्द की पुत्री अनंगशरा को उसके सामन्त पुनर्वसु ने हरण कर लिया। चक्रवर्ती का पीछा करने पर उसने वह कन्या श्वापद नाम की महा-भयंकर अटवी में छोड़ दी। बड़े-बड़े विद्याधरों को भी भय उत्पन्न करने वाली उस महा-अटवी में नाना प्रकार के करुण विलाप करती हुई अनंगशरा तीन हजार वर्ष पर्यन्त रही।

शीत, उष्ण एवं वर्षा आदि की तथा भूख-प्यास आदि की अनिर्वचनीय वेदना उसने शान्त भाव से सहन की। जब भूख की वेदना अधिक सताती तब वह पक कर स्वयं गिरे हुए फल खाकर नदी का प्रासुक जल पी लेती थी। वह बेला—तेला करती थी, जिसका पारणा कभी-कभी दिन में मात्र एक बार जल पाकर और कभी-कभी प्रासुक फलाहार से करती थी।

इस प्रकार तीन हजार वर्ष पर्यन्त बाह्य-तप किया। पश्चात् वैराग्य को प्राप्त हो उस धीर-वीर बाला ने चारों प्रकार के आहार का त्याग कर महाफल देने वाली सल्लेखना धारण कर ली। सौ हाथ से आगे गमन करने का भी त्याग कर दिया।

सल्लेखना के सातवें दिन सुमेरु पर्वत की वन्दना से लौटते हुए लब्धिदास नामक एक व्यक्ति ने उसे देखा। वह नीचे आया; उसने कन्या को ले जाने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु कन्या ने निषेध कर दिया और कह दिया कि मैंने सल्लेखना धारण कर ली है। लब्धिदास तुरन्त वापिस गया और चक्रवर्ती को लेकर आया। चक्रवर्ती जब तक वहाँ आया तब तक यहाँ एक भयंकर अजगर ने सल्लेखनारत कन्या को निगलना प्रारम्भ कर दिया था। यह देख चक्रवर्ती दुःखी और क्रुद्ध हो उठा, किन्तु अनंगशरा ने अजगर को प्राण दान दिलाया। सम्बोधन देकर पिता को शान्त किया, सबसे क्षमा याचना की और इस तरह समता परिणामों से मरण कर ईशान स्वर्ग में उत्पन्न हुई।

अनंगशरा का जीव स्वर्ग से च्युत हो राजा द्रोणमेघ की पुत्री हुई। चिरकाल की अनेक रोगों से पीड़ित माता, जिसके गर्भ में आते ही स्वस्थ हो गई। जन्म के बाद कन्या को स्नान आदि कराने वाली दाई के भी सभी रोग नष्ट हो गये। दाई उसका स्नात-जल प्रतिदिन ले जाती और सहस्रों रोगियों को रोग मुक्त करती थी।

किसी एक समय अयोध्या नगर में अनेक रोगों से पीड़ित और मनुष्यों के द्वारा सताया हुआ एक भैंसा मरा तथा अकाम निर्जरा के योग से वायुकुमार नामका महाबलशाली भवनवासी देव हुआ।

पूर्व भव की कष्ट कथा की स्मृति से प्रेरित हो उस देव ने कौशल देश में महाभयंकर वायु चलाई, जिसके प्रभाव से अयोध्याधिपति भरत और समस्त प्रजा रोग ग्रस्त हो गई। मात्र राजा

द्रोणमेघ और उनका परिवार नीरोग रहे। उस नीरोगता का कारण था उनकी पुण्यशालिनी पुत्री विशल्या के स्नान का जल। राजा भरत ने भी वह जल मंगाया। उस जल ने अन्त:पुर, जनपद नगर एवं मात्रकौशल देश को ही रोग विहीन नही किया, अपितु देवों द्वारा प्रसारित हजारों रोगों को उत्पन्न करने वाली अत्यन्त दु:सह एवं मर्मघात करने में समर्थ, महादूषित वायु को भी नष्ट कर दिया।

अनंगशरा को हरण करने वाला सामन्त पुनर्वसु भी कन्या को अजगर द्वारा निगले जाते देख, वैराग्य को प्राप्त हुआ उसने शीघ्र दीक्षा धारण की, अनन्तर घोर तपश्चरण किया और निदान-बंध कर स्वर्ग गया। वहाँ से च्युत हो राजा दशरथ का पुत्र लक्ष्मण हुआ। ज्येष्ठ भ्राता राम के साथ जगल में निवास किया। सीता-हरण के बाद राम-रावण का युद्ध हुआ, उसमे रावण ने लक्ष्मण को प्रज्ञप्ति की बहिन अमोघ विजया शक्ति द्वारा प्रताड़ित किया। शक्ति लगते ही लक्ष्मण वज्र से ताड़ित पर्वत के सदृश पृथ्वी पर गिर पड़े।

यदि सूर्योदय के पूर्व तक शक्ति नहीं निकली तो लक्ष्मण का जीवित रहना कठिन है। यह जान कर विद्याधर, एक हजार से भी अधिक अन्य कन्याओं के साथ राज कन्या विशल्या को कटक में ले आये। महा सौभाग्यशालिनी विशल्या जैसे-जैसे कटक की ओर बढ़ती जाती थी वैसे-वैसे ही लक्ष्मण आश्चर्यकारी सुख दशा को प्राप्त होते जाते थे।

विशल्या ज्यों ही लक्ष्मण के समीप आई वैसे ही कान्तिमण्डल से युक्त शक्ति लक्ष्मण के वक्ष:स्थल से बाहर निकल गई। तिलंगो और ज्वालाओं से युक्त उस शक्ति को हनुमान ने पकड़ लिया, तब वह दिव्य स्त्री का रूप धारण कर बोली कि—"हे नाथ ! प्रसन्न होओ और मुझे छोड़ो, इसमें मेरा कोई दोष नहीं है।"

"इस संसार में मैं, दु:सह तेज की धारक हूँ। विशल्या को छोड़ और किसी की पकड़ में नहीं आ सकती। मैं अतिशय बलवान हूं। देवों को भी पराजित कर देती हूँ, किन्तु इस विशल्या ने मुझे स्पर्श किये बिना ही पृथक् कर दिया है। यह सूर्य को ठण्डा और चन्द्रमा को गरम कर सकती है, क्योंकि इसने पूर्वभव में ऐसा ही अत्यन्त कठिन तपश्चरण किया है। अपने शिरीष के फूल सदृश सुकुमार शरीर को इसने पूर्व भव में ऐसे तप में लगाया था जो प्राय: मुनियों के लिए भी कठिन होता है। मुझे इतने ही कार्य से संसार सारभूत जान पड़ता है कि इसमें जीवों द्वारा ऐसे-ऐसे कठिन तप सिद्ध किए जाते हैं। तीव्र वायु से जिनका सहन करना कठिन था ऐसे भयंकर वर्षा, शीत और धूप से यह कृशांगी सुमेरु की चूलिका सदृश रंच मात्र भी कम्पित नहीं हुई। अहो ! इसका रूप धन्य है। अहो ! इसका धैर्य धन्य है और अहो ! धर्म में दृढ़ रहने वाला इसका मन धन्य है। इसने जो

तप किया है, अन्य स्त्रियां उनका ध्यान भी नहीं कर सकतीं। सर्वथा जिनेन्द्र भगवान के मत में ही ऐसा विशाल तप धारण किया जाता है कि जिसका फल तीनों लोकों में जुदा ही जयवन्त रहता है।"

इस प्रकार एक दिव्य विद्या अर्थात् देवता द्वारा प्रशंसित विशल्या एवं उसके द्वारा पूर्व भव में किया हुआ तीन हजार वर्ष पर्यन्त का कठोर तप युग-युग तक मूर्तिमान् रहेगा।

कैकया :

केकया (कैकेयी) राजा दशरथ की द्वितीय पत्नी और भरत की माता थी। यह सर्वकलापारंगत, मनोविज्ञान की पूर्णपण्डिता एवं स्वाभिमानी प्रवृत्ति की थी। एक बार राजा दशरथ द्वारा भेजा हुआ भगवान के अभिषेक का जल केकया के पास अन्य रानियों के साथ नहीं पहुँच पाया, इससे क्रोधित हो उसने आत्महत्या हेतु विष मगवा लिया था।

राम का राज्याभिषेक कर राजा दशरथ जब दीक्षा लेने को उद्यत हुए, तब धरोहर रूप मे रखे हुए वरदान के बहाने, पुत्र प्रेम अथवा कौशल्या राज-माता बन जाएगी इस सौतिया डाह से प्रेरित हो केकया ने अपने पुत्र भरत के लिए राज्य मांगा, जिससे राम, लक्ष्मण और सीता के साथ वन चले गये। राम जैसे महापुरुष के चले जाने के बाद अन्तःपुर, परिजन एवं पुरजनों की दारुण दु खमय स्थिति देख कर केकया बहुत पछतायी। भरत एवं अनेक सामन्तों को साथ लेकर वह वन में स्थित राम-लक्ष्मण को लौटाने स्वयं गई, किन्तु राम लक्ष्मण वापिस नहीं आये।

कौशल्या एवं सुमित्रा को राम-लक्ष्मण के वियोग में दुःखी देख कर, राजमाता बन जाने पर भी केकया सुख का अनुभव नहीं कर सकी। लक्ष्मण को शक्ति लगने के बाद जब हनुमान आदि विद्याधर अयोध्या आये तब केकया ने स्वाभिमान को तिलांजलि दे राजा द्रोणमेघ के पास जाकर स्वयं राजकुमारी विशल्या की याचना की। "भरत को राज्य मिले" केकया के इस वर ने ही 'पद्म पुराण' की कथा को गति प्रदान की है यदि वह ऐसा वर न मांगती, तो पद्मपुराण की कथा आगे बढ़ने में पंगु वा असमर्थ ही रहती।

अंजना :

अनुपम रूप लावण्य की पुञ्ज अंजना को यौवनवती देख पिता महेन्द्र एवं माता हृदय-वेगा के मन में उसके विवाह की चिन्ता उत्पन्न होना स्वाभाविक थी। मन्त्रियों से परामर्श कर पिता महेन्द्र ने आदित्यपुर के राजा प्रहलाद और रानी केतुमती से उत्पन्न पवनञ्जय कुमार को कन्या देने का निर्णय लिया। पश्चात् फाल्गुन मास का अष्टाह्निका पर्व मनाने हेतु राजा सपरिवार कैलाश पर्वत पर गये। वहाँ राजा प्रहलाद से मिलाप हुआ, चर्चा—वार्ता हुई, तथा तीन दिन पश्चात् ही अंजना

पवनञ्जय का विवाह होना निश्चित हो गया। रागोद्रेक में अंजना को देखे बिना पवनञ्जय को तीन दिन की अवधि एकाकी बिताना भी असह्य हो रहा था, अतः वे उसी रात्रि, मित्र प्रहसित को साथ ले अंजना को देखने हेतु उसके महल की छत पर जा पहुँचे, तथा झरोखे में से उसका रूपपान करने लगे। उसी समय अंजना के तीव्र पापोदय से प्रेरित होते हुए ही मानो मिश्रकेशी दासी ने अञ्जना के भावी पति पवनंजय की कटु आलोचना की, जिसे सुन कर कुमार क्रुद्ध हो उठे, तथा उन्होंने वहा से प्रस्थान करने का निश्चय कर लिया। यह समाचार सुन कर राजा प्रह्लाद और राजा महेन्द्र, पवनञ्जय के समीप आये तथा उन्हे बहुत समझाया। पिता और श्वसुर के गौरव को भंग करने में असमर्थ कुमार ने विवाह करना तो स्वीकार कर लिया किन्तु विवाह के तुरन्त बाद ही सुकुमार अजना का परित्याग कर दिया।

पति सुख से विहीन अंजना ससुराल मे अत्यन्त कष्ट पूर्वक जीवन व्यतीत करती हुई कभी रुदन करती, कभी विक्षिप्त हो उठती, कभी मूर्छित होती, कभी निराहार रहती, केवल इतना ही नही कभी-कभी तो उसे अपने प्रिय प्राणों के प्रति भी उपेक्षा भाव उत्पन्न हो जाता था। कमल-पांखुरी सदृश नेत्रों का निमीलन कर वह अपनी शोचनीय दशा का विचार करती हुई व्याकुल हो जाती थी। वह अपने आप से ही बाते करती, अतीत को याद कर थोड़ी देर के लिए स्वस्थ होती तो वर्तमान और भविष्य की विभीषिकाएँ उसे बेचैन कर देती। ऐसे ही कुछ क्षणों मे उसका अन्तरालाप देखिए—

"मुझे जीवित रह कर अब क्या करना है ? इस अमर वेदना का भार आखिर मुझे कब तक ढोना पड़ेगा ? मैं अपनी पीड़ा निधि किसे दिखाऊँ ? अपनी व्यथित कथा किसे सुनाऊँ ? मेरे जीवन की यह कटुता मुझे स्वयं क्षत कर रही है।"

कभी उसे याद आते—मानुषोत्तर पर्वत के वे नयनाभिराम सुन्दर दृश्य, उसी समय वसन्त का आगमन, सर्वत्र कुसुम कानन, उनसे निरन्तर बहता हुआ सौरभ समीर, शुभ्र चांदनी के सहयोग से उठती हुई मानसरोवर की स्वच्छ तरंगें ऐसे मनमोहक रमणीक स्थान पर शुभ बेला में मेरा, कुमार पवनंजय से परिणय का वचन बंधन ! कितना सुखद था वह समय, कल्पना का कितना बृहद् वितान बुना था मैंने उन तीन दिनों में, नवीनोत्साह से कितना भर उठा था मन मेरा, श्रुतपुटों से जो रूप लावण्य मैंने उनका सुना था, वही अंकित था मेरे हृदय पटल पर, उसी क्षण समर्पित कर दी थी मैंने आराध्य के पाद-पद्मों में अपनी जीवन पतवार, हृदय रूपी रत्ननिधि अर्पण कर मैं कुछ अन्य ही सोच रही थी; किन्तु हा ! मेरी आशाओं का वह वितान किसने क्षत-विक्षत कर दिया ? किसने मेरी अभिलाषाओं को लूटकर प्रत्येक निश्वास में निराशा भर दी ? मेरी समस्त आकांक्षाओं को वियोगरूपी दावाग्नि ने कैसे दग्ध कर दिया ? इत्यादि………।

इस प्रकार शोकसंतप्त अंजना जिस समय दु:ख-समुद्र में उन्मज्जन–निमज्जन कर रही थी, तभी उसे ये शब्द कर्णगोचर होते हैं कि राजा वरुण से रावण का युद्ध छिड़ गया है, अत. केहरि-किशोर सदृश वीर पवनंजय रावण की सहायतार्थ प्रस्थान कर रहे है। अजना अधीर हो उठी; उसकी वेदना नदी मे एकाएक बाढ़ आ गई। पति-दर्शन की आशा से प्रेरित वह कृशांगी प्रमुख द्वार पर आ पहुँची। महल से निकलते ही कुमार ने सहसा अजना को देखा। बिजली पर पड़ती हुई दृष्टि को मनुष्य जैसे सहसा संकुचित कर लेता है, वैसे ही कुमार ने अंजना पर पड़ती हुई अपनी दृष्टि को शीघ्र ही संकुचित कर लिया तथा कहा कि—"हे दुखलोकने ! तू इस स्थान से शीघ्र हट जा। उल्का रूप तुझे देखने के लिए मैं समर्थ नही हूँ। अहो ! कुलाङ्गना होकर भी तेरी यह धृष्टता है जो मेरे न चाहने पर भी सामने खडी है। बड़ी निर्लज्ज है।" कुमार की तिरस्कार पूर्ण कटु वाणी सुनकर अंजना मूर्च्छित हो गई। "मर" यह कहते हुए कुमार प्रस्थान कर गये।

कुमार अपने कटक सहित मानसरोवर तट पर पहुँचे वहां एक रात अपने पति चकवे से विरक्त एक चकवी की शोकाकुल दशा देख, उन्हे अंजना की स्मृति हो आई। वे बाईस वर्ष की दीर्घ कालीन विरह दशा का चिन्तन करने लगे कि हा ! एक निर्दोष बाला के प्रति मेरे द्वारा महा-अपराध हुआ ! यदि मैं इसी समय विरहाग्नि से दग्ध उस सुकुमारी से नही मिलूंगा तो वह अब निश्चित ही मरण को प्राप्त हो जाएगी। यह सोचकर पवनञ्जय उसी क्षण आवश्यक सामग्री लेकर मित्र प्रहसित के साथ प्रिया के भवन में आये। प्रहसित ने अंजना के पास बसन्तमाला द्वारा पति आगमन के समाचार भेजे। अपने आराध्य का आगमन सुनकर एव उन्हें साक्षात् सम्मुख देख कर अंजना विस्मित हो गई; उसे एकाएक विश्वास नहीं हुआ। वह सोचने लगी कि "कुछ क्षणों में ही मेराविषसिक्त कर्म-कलश अनुपम सुधा से कैसे आप्लावित हो गया ?" कुमार अपनी अनुनय विनय पूर्ण मधुर वाक् रूपी जल से अंजना की विषादाग्नि को शान्त कर समयोचित कार्यों में संलग्न हो गये।

इन दोनों को रतिभाव में संलग्न देख अंजना का क्रूर कर्म भविष्य रूपी स्तम्भ की ओट में खड़े होकर अट्टहास करता हुआ मानो कह रहा था कि "हे बाले ! तुम्हारी ये सुख की सुन्दर घड़ियाँ पूर्वोपार्जित कर्मों की भयंकर लड़ियों में शीघ्र ही उलझने वाली हैं।" अंजना के कर्णपुटों तक यह ध्वनि नहीं पहुँच सकी और उसने गर्भ धारण कर लिया। कडा-मुद्रिका निशानी देकर कुमार उसी रात युद्ध के लिए पुन: प्रस्थान कर गये।

चिर वियोग के बाद पति के मधुर मिलन से प्राप्त हुई, सुख देने वाली पुलक भरी मादक स्मृतियों को संजोये हुए अंजना कालचक्र की धुरी पर त्वारित गति से गमन कर रही थी। गर्भ चिह्न भी शनैः शनैः प्रगट हो रहे थे, जिन्हें देख कर सास केतुमती ने सती पर

कलंक का टीका लगाया और निर्ममतापूर्वक वसन्तमाला के साथ उसे राजा महेन्द्र के नगर के समीप छुड़वा दिया।

दिनमणि विपुल आतंक-त्रस्त एवं अन्तर्दाह में झुलसती हुई अजना को देख सकने में एवं पाषाण को तरल कर देने वाले उसके करुण क्रन्दन को सुन सकने में असमर्थ होने से ही मानो अस्ताचल की ओट में छिप गये।

जैसे-जैसे रात्रि घनी-भूत होती जा रही थी, वैसे वैसे ही अंजना का मनस्ताप बढ़ता जा रहा था। अब क्या होगा? अब क्या होगा? इसी व्याकुलता में वह एक रात्रि एक वर्ष के समान व्यतीत हुई। प्रातः वेला में मंगलमय णमोकार मंत्र का जाप्य कर अंजना सखी के सहारे चलती हुई, पिता की शरण प्राप्त करने हेतु उनके द्वार पर पहुंची, उसका पीला-पीला वदन एवं गर्भभार से युक्त शरीर देख सबके अन्तर्मन क्षुब्ध हो उठे।

जहां निरन्तर मान-सम्मान तथा अनिर्वचनीय प्यार प्राप्त होता था, वही से आज अंजना को घोर अपमान पूर्वक सखी के साथ द्वार से बाहर निकलवा दिया गया। पश्चात् आश्रय पाने की इच्छा से वह जिस जिस आत्मीय जन के यहां गई, सर्वत्र द्वार बन्द करो, द्वार बन्द करो की आवाज सुनाई देती थी। अर्थात् राजाज्ञा से उसने अपने लिए सब द्वार बन्द पाए। इस प्रकार उसकी आशा रज्जु के सहस्रों खण्ड हो गये। मानस दुःख से भर गया। अश्रुओं के समूह से शरीर गीला हो गया। उसने सखी से कहा—"हे माता! भयंकर अपमान रूपी झंझावात से मेरे जर्जर शरीर रूपी कुटिया का यह दीप जब तक नहीं बुझता, उसके पूर्व ही तू मुझे वन में ले चल।

"हमारे पापोदय के कारण यह समस्त संसार पाषाण हृदय हो गया है यहाँ के तिरस्कार-मय वायुमण्डल से तथा तज्जन्य दु ख से तो यहाँ मरना भी योग्य नहीं है। जो होना होगा, वहीं हो लेगा।"

सखी के साथ चलती हुई अंजना मातङ—मालिनी नामक भयंकर अटवी में जा पहुँची। वहाँ विचरण करने वाले क्रूर पशुओं को देख-देख कर जिसका मन कम्पायमान हो रहा था; जो पशुओं के हृदय में भी करुणा उत्पन्न कर देने वाला दीनता पूर्ण विलाप करते हुए चीत्कार एवं रुदन कर रही थी, मनस्ताप की अन्तस्—ज्वाला से जिसके अधर शुष्क हो रहे थे; विषम भूमि में पग रखने में जो असमर्थ हो रही थी, गर्भ भार से बोझिल ऐसी अंजना निराश्रित बेल के समान भूमि पर गिर पड़ी। सखी ने उसे नानाप्रकार से समझा कर उठाया और सामने दिखाई देने वाली गुफा तक किसी भी प्रकार चलने के लिए विनय किया। सखी के अनुरोध से तथा वनचर क्रूर प्राणियों के भय से वह उठी तथा ऊँची-नीची भूमि को अत्यन्त कष्ट से पार करती हुई गुफा के द्वार पर पहुँची। एकाएक

गुफा में प्रवेश करने का साहस नहीं हुआ, अतः अवसादमयी क्लान्त शरीर वाली अंजना ने कुछ क्षण विश्राम किया। पश्चात् अपनी दृष्टि गुफा पर डाली। वहाँ उन्होंने सुमेरु सदृश अचल, ध्यानमग्न, अमितगति नाम के निर्ग्रन्थ मुनिराज को देखा।

दोनों का मन-कमल आनन्द से प्रफुल्लित हो उठा, वे अपना अपरिमित दु ख भी भूल गईं। अन्दर जाकर भावपूर्वक तीन प्रदक्षिणा दी और भावपूर्वक बारम्बार नमस्कार किया। मुनिराज का ध्यान समाप्त हुआ। उन्होने उन दोनों को अमृत-सदृश प्रशान्त एवं गम्भीर वाणी में आशीर्वाद दिया।

वसन्तमाला ने गर्भस्थ बालक और अंजना के विषय में पृच्छा की। करुणासागर गुरु-राज ने दोनों के भवान्तर बतलाते हुए कहा कि—महारानी कनकोदरी की पर्याय में इसने अभिमान एवं सौतिया डाह के वशीभूत होकर भगवान जिनेन्द्र की प्रतिमा को घर के बाहरी भाग में फिकवा दिया था। पश्चात् संयमश्री आर्यिका का सम्बोधन प्राप्त कर यह, नरकों में उत्पन्न होने वाले दुःखों से भयभीत हो गई। उस समय इसने शुद्ध हृदय से सम्यक्त्व धारण किया। अर्हन्त बिम्ब को वापिस उठवा कर पूर्व स्थान पर विराजमान किया। तथा अत्युत्साहपूर्वक जिनेन्द्र की पूजन कर पुण्योपार्जन किया।

कनकोदरी रानी आयु के अन्त में मरण कर स्वर्ग गई, वहाँ से च्युत हो राजा महेन्द्र की पुत्री हुई। पूर्वभव में इसने जिनेन्द्र प्रतिमा को गृह से बाहर रखा था, उसीके फल स्वरूप यह इस प्रकार दुःखों की परम्परा को प्राप्त हुई।

हे बेटी ! स्वोपार्जित कर्मों के प्रभाव से ही तूने यह दुःख पाया है, अतः भविष्य में फिर कभी निन्द्य कार्य नही करना। गर्भस्थ पुत्र महाभाग्यशाली, अखण्डित पराक्रम वाला एवं चरम शरीरी है। तू इस पुत्र से परम विश्रुति को प्राप्त होगी। अल्पकाल में ही पति से मिलन होगा। मुनिराज के सन्तापहारी अमृत तुल्य वचन सुन कर दोनो के हृदय प्रफुल्लित हो उठे। अत्यन्त हर्षित होते हुए उन्होंने बार-बार मुनिराज को नमस्कार किया। निर्मल हृदय के धारी मुनिराज उन दोनों को आशीर्वाद देकर उस पर्यङ्क गुफा से उठ कर आकाश में विहार कर गये।

दिन बीता। रात्रि का आगमन हुआ। भयावह अन्धकार का साम्राज्य व्याप्त हो गया, तभी एक विकराल सिंह गुफा के द्वार पर आकर भयंकर गर्जना करते हुए नाना कुचेष्टाएँ करने लगा। सिंह की भयंकर आकृति देख, भयभीत अंजना ने निर्णय कर लिया कि अब मृत्यु अनिवार्य है।

जिस मृत्यु की कल्पना करते हुए भी यह लोक निरन्तर भयभीत रहता है। उस मृत्यु को साक्षात् सामने देख अंजना ने उसी क्षण शारीरिक मोह एवं आर्त्त-रौद्र ध्यान का त्याग कर दिया। उपसर्ग निवृत्ति पर्यन्त आहार जल का त्याग कर वह कायोत्सर्ग मे सलग्न हो गई।

अंजना और सिंह के बीच मात्र तीन हाथ का अन्तर अवशेष देख गुफावासी गन्धर्व देव ने अपनी रत्नचूला नामक देवी की दया पूर्ण सत्प्रेरणा से अथवा गर्भस्थ बालक के पुण्य से अथवा सती अंजना के शील माहात्म्य से अष्टापद का रूप धारण कर सिंह का पराभव किया, तथा अंजना के कष्ट पूर्ण जीवन की बीती हुई अनन्त घड़ियों को विस्मृत कराने में समर्थ अमृतवर्षी मनोहर गीतों में यह उद्घोषित किया कि "स्वोपार्जित कर्मों की जो-जो कड़ियाँ फलीभूत होकर टूट चुकी हैं अथवा भविष्य में जिनका टूटना अनिवार्य है, उन्हीं सुख-दुःख से सुलझी-उलझी लड़ियों को वर्तमान में अपने स्मृति पटल पर संजो कर बनाये रखना, मानव मन का अज्ञान-संकुलित व्यापार है। इसी से मन अधीर, अतृप्त एवं क्षोभ युक्त होता है।

"पश्चिम दिशा की लाली जैसे अंधकार का प्रसार करती है, उसी प्रकार पूर्व दिशा की लाली प्रकाश का विकास करती है। तुम्हारे भाग्य-गगन की प्राची दिशा से शीघ्र ही तेजपूर्ण बाल-रवि उदित होने वाला है, अतः हे बालिके! धैर्य रख, और हृदय का क्षुब्ध-मल-पटल जिनेन्द्र भक्ति रूपी जल से धोकर शुद्ध कर ले।"

करुणा प्रेरित यह गन्धर्व युगल उन दोनों की रक्षा में निरन्तर सजग रहता था।

चैत्र कृष्णा अष्टमी को प्रातः श्रवण नक्षत्र और मीन लग्न के उदित रहते कान्ति पुञ्ज सदृश पुत्र उत्पन्न हुआ। उसी क्षण गुफा का अन्धकार नष्ट हो गया, तथा वह ऐसी हो गई मानों स्वर्ण की बनी हो।

उत्तम लक्षणों से युक्त, शुभ एवं सुन्दर शरीर रूपी अत्यधिक सम्पदा को धारण करने वाले तेज पुञ्ज बालक को देख यद्यपि अंजना को अतुल आनन्द होना चाहिए था, किन्तु बियावान कानन में होने वाला जन्म उसकी अन्तर्वेदना को सचेत करने लगा।

विलाप करती हुई अंजना से वसन्तमाला ने कहा कि "हे शुभे! आप बालक का जन्मोत्सव मनाने हेतु व्यर्थ विषाद करती हो। देखो! राज-भवन में जन्म लेने पर तो मात्र परिजन, पुरजन ही इसका जन्मोत्सव मनाते, किन्तु यहाँ तो प्रकृति के द्वारा नैसर्गिक उत्सव मनाये जा रहे हैं। देखो! देखो! अंजने! ये वन पुष्प अपनी कोमल-कोमल पंखुड़ियाँ बिखेर कर बालक का अभि-नन्दन कर रहे हैं। अपने हृदय कोष में संचित मकरन्द रूपी कुंकुम एवं चन्दन की वृष्टि कर स्वागत कर रहे हैं। कोमल किसलय अपने चरमर-चरमर रव से जय-जय नाद कर रहे हैं। लता कुञ्जों से छन-छन कर आने वाली झिलमिल हेमाभ रश्मियाँ सद्योत्पन्न बालक को स्नान करा रही हैं। कुसुम कानन का सौरभ युक्त मन्द मन्द पवन व्यजन कर रहा है। शैल निर्झर चरण पखार रहे हैं, तथा पलाश एवं शीशम आदि के वृक्षों पर बैठे हुए पक्षी नाना स्वरों में संगीत लहरियाँ अर्थात् जन्मोत्सव के गीत गा रहे हैं।

इस प्रकार सखी समझाए जा रही थी और अंजना करुण विलाप किये जा रही थी। तभी आकाश मार्ग से जा रहे एक विद्याधर का विमान अंजना का मार्मिक क्रन्दन सुन नीचे उतरा। विद्याधर ने अपनी पत्नी सहित शंकित मन से गुफा मे प्रवेश किया। वसन्तमाला ने स्वागत किया और अंजना का पूर्ण परिचय दिया। हृदय विदारक वृत्तान्त सुन विद्याधर युगल अत्यन्त दुःखी हुआ। विद्याधर बोला—"हे पतिव्रते ! मैं हनूरुह द्वीप का राजा प्रतिसूर्य तेरा मामा हूँ। चिरकाल के वियोग ने तेरा रूप बदल दिया है अतः मैं पहिचान नही सका।"

"ये मेरे मामा-मामी हैं" यह ज्ञान होते ही अंजना मामा के गले से लग कर बहुत देर तक रोती रही। प्रतिसूर्य ने अंजना को धैर्य बधा कर उसका मुंह धुलवाया और पाश्र्वग नामक ज्योतिषी से बालक की ग्रह स्थिति पूछी। पश्चात् उन सबको विमान में बैठा कर हनूरुह द्वीप के लिए प्रस्थान किया।

थोड़ी दूर जाने पर सहसा बालक माता की गोद से छूट कर नीचे एक शिला पर जा गिरा। अंजना चीत्कार कर उठी। बालक के गिरते ही महाशब्द हुआ और शिला के हजारों टुकड़े हो गये। विमान नीचे उतरा तो सबने देखा कि बालक शिला पर सुख से चित्त पड़ा है। अंगूठा मुख में डाल कर चूसते हुए अपनी मन्द मुस्कान से सुशोभित हो रहा है।

इस प्रकार का अद्भुत दृश्य देख कर राजा प्रतिसूर्य ने कहा कि—"अहो ! बड़ा आश्चर्य है। सद्योत्पन्न बालक ने वज्र सदृश शिलाओं का चूर्ण कर दिया। इसकी यह देवातिशायिनी शक्ति तरुण होने पर क्या नही करेगी ? निश्चित ही यह चरम-शरीरी है।" ऐसा जानकर उन्होंने हस्त-कमल सिर से लगाये, स्त्रियों ने तीन प्रदक्षिणाएँ दी और उसके चरम शरीर को नमस्कार किया। तदनन्तर आश्चर्य से भरी माता ने बालक को उठा कर छाती से लगा लिया।

हनूरुह नगर पहुँच कर बालक का जन्मोत्सव मनाया गया। शिला को चूर-चूर कर देने से उसका नाम "श्रीशैल" रखा गया। चूंकि उसका संवर्धन हनूरुह नगर में हुआ था, अतः वह "हनुमान" नाम से भी प्रसिद्ध हुआ।

कुछ समय बाद अंजना पवनञ्जय का सुखद मिलन हुआ। दारुण दुःखमय घनघोर अन्धकार युक्त रात्रि का अवसान तथा सुखमय सुप्रभात का उदय हो जाने से अंजना, पति एवं पुत्रादिक के साथ सुखावस्था को प्राप्त हुई।

पद्म पुराण की जिस किसी भी प्रमुख नारी के जीवन का अवलोकन करते हैं, प्रायः उसी का जीवन अनुपम-आत्मसमर्पण, उत्कट अपमान, तिरस्कार, अपहरण, लांछन, निष्कासन

एवं वियोग जन्य भयंकर झंझावातों के बीच से बहता हुआ दिखाई देता है, फिर भी इन नारियों ने किसी भी परिस्थिति में 'देने' से मुख नही मोड़ा, क्योंकि नारी ने कभी देने में कमी की ही नहीं।

इन आदर्श नारियों ने अपने जीवन के माध्यम से वात्सल्य, करुणा, संयम, तप, त्याग, कष्टसहिष्णुता, निर्भीकता, क्षमा, मृदुता, सरलता, अहिंसा आदि इनके दिव्य गुणों के सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत कर जगत् के सम्मुख एक आदर्श उपस्थित किया है जो केवल अभिनन्दनीय और अभिवन्दनीय ही नही, अनुकरणीय भी है। उस आदर्श को ग्रहण कर प्रत्येक नारी को आत्मोत्थान करने का सत्प्रयत्न अवश्य करना चाहिए। अस्तु,

❖

'अब नहीं'—भूत, 'अभी नहीं'—भविष्यत्, 'अब'—वर्तमान। हर 'अभी नहीं' 'अब' होकर 'अब नहीं' में प्रवेश करता जा रहा है। हम तीनों के द्रष्टा हैं क्योंकि पहले के 'अभी नहीं' 'अब' बन कर 'अब नही' रहे। इसलिए शेष 'अभी नहीं' की प्रतीक्षा न करके 'अब' में ही रहें; अब को ही सुधारें; 'अब को ही सँवारें' अर्थात् वर्तमान का सदुपयोग करें।

❖ ब्र० कमलाबाई जैन, श्रीमहावीरजी

वैधव्य

अभिशाप या वरदान

✠

ब्र० कमलाबाई जैन

नारी समाज का अभिन्न अङ्ग है। भारतीय वाङ्मय में नारी के महत्त्व का विशद विवरण मिलता है। धर्म और संस्कृति की वाहिका नारी ही मानी गई है। देव समुदाय में भी देवियों को, ऋषियों-मुनियों ने प्रथम स्थान प्रदान किया है। आज तक भारतीय संस्कृति की सूत्रधारिणी नारी ही बनी हुई है भले ही वह शिक्षित हो या अशिक्षित। भारतीय नारी ने वस्तुतः यह महत्ता अपने असीम त्याग, पतिव्रत धर्म, दया, दानशीलता और सेवाभाव आदि के कारण प्राप्त की है। इसीलिए स्मृतिकार मनु ने लिखा है—

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।"

वर्तमान समय में भी जबकि पश्चिमी सभ्यता का प्रचार-प्रसार देश में अत्यधिक है, यहाँ ऐसी नारियाँ विद्यमान हैं जिनके जीवन में अग्नि परीक्षा के अनेक अवसर आए परन्तु जिन्होंने कभी धैर्य और साहस नहीं छोड़ा, जो कभी विवेकहीन नहीं हुई।

नारी का वास्तविक जीवन उसके विवाह के पश्चात् प्रारम्भ होता है। वैवाहिक जीवन में उसकी विवेकशीलता धीरजता, कर्त्तव्यपरायणता और सेवा निष्ठा की परीक्षा होती है। अशुभ कर्मोदय से यदि पति का वियोग हो जाता है तो वह नारी की कठोरतम अग्निपरीक्षा है। ऐसे समय में यदि नारी हृदय में धर्मभावना होती है तो वह प्रत्येक दुष्कर्म से बच कर अपने जीवन को सुरक्षित रख सकती है।

भारत में 'वैधव्य' एक ज्वलन्त समस्या है। यह वरदान है या अभिशाप ? यह विचारणीय है। आधुनिक युग क्रान्तिकारी परिवर्तनों का युग है। आज प्राचीन सांस्कृतिक मान्यताओं में गजब का परिवर्तन हो रहा है। कुछ लोग ऐसा सोचने लगे हैं कि नारी 'विधवा' बने ही क्यों ? वह इस स्थिति में आए ही क्यों ? पुरुष की भाँति उसे भी स्वेच्छानुसार अपना जीवन व्यतीत करने का अधिकार है। परन्तु मेरी दृष्टि में ऐसी स्वेच्छाचारिता मान्य नहीं हो सकती। सामाजिक, धार्मिक तथा अन्य किसी भी दृष्टिकोण से ऐसे विचारों का औचित्य नहीं समझाया जा सकता। ऐसा करना भारतीय धार्मिक संस्कृति की मर्यादाओं के प्रतिकूल है। जीवन में एक ही बार और एक ही पति का वरण करना नारी का आदर्श माना गया है। विदेशी साहित्यकार रोम्यां रोलां ने लिखा है— "भारतीय नारी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह जीवन में एक ही बार विवाह करती है तथा पति की मृत्यु के उपरान्त भी वह उसकी स्मृति को अक्षुण्ण रखते हुए मनसा, वाचा, कर्मणा पवित्र धार्मिक जीवन व्यतीत करती है। इसलिए वह श्रद्धा की पात्र है; वह देवी है, पूजनीया है, वन्दनीया है।"

जरा ध्यान से विचार करने की आवश्यकता है कि जब एक विदेशी विद्वान् भारतीय नारियों के पतिव्रत धर्म की इन गौरवपूर्ण शब्दों में व्याख्या कर रहा है तो हम भारतीय महिलाएँ क्यो न अपने गौरवशाली सम्मान को अपराजित रखे ?

सामान्यत: वैधव्य जीवन को अभिशाप की संज्ञा दी जाती है। इस स्थिति में नारी को जिस दयनीय दशा का सामना करना पड़ता है उसका वर्णन करना शब्दों की परिधि से बाहर है। निष्कासन, प्रताडना मार-पीट न जाने कितना कुछ सहना पड़ता है उसे, दिन का आरम्भ ही गाली रूप मन्त्रोच्चारण से होता है; परन्तु सबकी यह दशा नहीं होती। यह समय नारी की घोर परीक्षा का होता है, उसकी सहिष्णुता कसौटी पर होती है, कभी-कभी तो इस विषम परिस्थिति से घबरा कर कई नारियाँ अनुचित मार्गों का चयन कर लेती हैं तब वे न केवल अपने लिए अपितु परिवार, समाज तथा राष्ट्र के लिए एक घोर कलंक बन जाती हैं। ऐसा जीवन तो अभिशाप ही है।

जीवन एक विचित्र पहेली है। इसमें समस्याओं व संघर्षों का अद्‌भुत समन्वय है। दु:खों में अडिग रहना ही नारी की गरिमा है। वह अपनी वैधव्य अवस्था को अपने त्याग, बलिदान, धैर्य, सन्तोष, संयम, तप आदि गुणों से विभूषित कर अपने पथ को आलोकित कर सकती है तथा अभिशाप को वरदान में परिणत कर सकती है।

मेरे विचार से वैधव्य अवस्था नारी के मौलिक गुणों को निखारने का अवसर है। यह पवित्रता का पथ है। सामाजिक तथा धार्मिक क्षेत्र में अपनी शक्ति भर कार्य करने के लिये स्वर्णिम

अवसर है। मानवता की सेवा के लिए यह सबसे अच्छा सोपान है। प्रभु का सन्देश प्रसारित करने हेतु यह एक अच्छा माध्यम है तथा जिस सत्य की खोज के लिए गौतम बुद्ध और भगवान महावीर ने अपने राज्य तक का त्याग कर दिया था, उसी सत्य को पाने के लिए यह एक अडिग तथा अटल समाधि है।

भव्य भारतभूमि में ऐसे एक नहीं अनेक उदाहरण हैं जब नारी समाज का बोझ न बन कर दिव्य ज्योति की चिनगारी बनी तथा धर्म की ध्वजा बनी। अतीत में न भी जाएँ तो वर्तमान में भी अनेक नारी रत्न उस अभिशाप को वरदान बनाकर स्वपर कल्याण करते हुए देखे जा सकते है। जिनके अर्चन-अभिनन्दन के लिए प्रस्तुत ग्रन्थ की योजना हुई है उस दिव्य विभूति ने न केवल अपने जीवन को मंगलमय बनाया है अपितु विगत कई वर्षों से वे पूज्य १०५ इन्दुमती माताजी अपने त्याग तपस्यापूर्ण जीवन से भारत के कोने-कोने मे भगवान महावीर का दिव्य सन्देश प्रसारित कर रही हैं तथा ससार के समस्त प्राणियों को संयम, त्याग, करुणा तथा स्नेह का पाठ पढ़ा कर जीवन की सार्थकता सिद्ध कर रही हैं।

आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी जो आपके ही संघ की एक विभूति है इस अवस्था से उबर कर अद्वितीय धर्मप्रभावना कर रही हैं। और भी ऐमी आर्यिकाएँ हैं जिनकी सूची लम्बी है। इन साध्वियों के जीवन को देखकर कभी कभी विचार आता है कि यदि इन्हे वैधव्य अवस्था प्राप्त नहीं होती तो वे शायद ही स्वय को आत्मकल्याण के प्रशस्त पथ पर ले जा पाती। इस देश में ऐसे अनेक उदाहरण खोजे जा सकते हैं जब सुसम्पन्न होने के बावजूद वैधव्य अवस्था प्राप्त होते ही महिलाओं ने अपने लिए आत्मकल्याण का मार्ग चुना। ऐसी विदुषियो के लिए तो यह वैधव्य जीवन भी वरदान बन गया है क्योंकि इनके मन में निज और पर के आत्मकल्याण की भावना प्रकट हुई।

क्या ऐसे उदाहरण इस बात की पुष्टि नही करते कि भारत की नारी समाज की अमूल्य निधि है और वह चाहे तो अपने वैधव्य जीवन के अभिशाप को वरदान में बदल सकती है। सच्चे अर्थों में तो वह धर्म की वाहिका है। शायद ऐसी स्थिति मे देवी तुल्य किसी नारी को देख कर ही महाकवि जयशंकर प्रसाद का कविहृदय द्रवीभूत हुआ होगा और तब अनायास ही ये सौम्य पंक्तियाँ प्रस्फुटित हो गई होंगी।

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत नग पगतल में,
पीयूष स्रोत सी बहा करो,
जीवन के सुन्दर समतल में।"

❖

❖ पं० मनोहरलाल शाह, जैन शास्त्री, रांची।

स्त्रियों द्वारा जिनाभिषेक पर
शास्त्रीय प्रमाण

¤

अनादिकाल से यह प्राणी कर्मोदयवश चारों गतियों में भ्रमण करता हुआ दुःख पाता है। उसे तनिक भी शान्ति का अनुभव नही होता। विशेष पुण्योदयवश यह जीव नर पर्याय को प्राप्त करता है। इसमें भी उत्तम कुल, निरोगता, पवित्र जैन धर्म का संयोग, जिनवाणी श्रवण, मुनियों को आहार दान आदि बातों का प्राप्त होना तो और भी उत्तरोत्तर कठिन है। इसीलिए आचार्यों ने पापों के नाश, पुण्य की अभिवृद्धि एवं आत्मविशुद्धि के लिये देवपूजा आदि षट् कर्मों का उपदेश दिया है। आचार्य कुन्दकुन्द ने लिखा है—

"दाणं पूया मुक्खं सावयधम्मे ण सावया तेण विणा।"

अर्थात् श्रावकों के लिए जिनेन्द्र भगवान की पूजा करना एवं दान करना मुख्य धर्म है। अन्य आचार्यों ने गृहस्थों को षट् कर्मों का प्रतिदिन पालन करना आवश्यक बताया है। पूजा के अङ्गों को विशेष रूप से स्पष्ट करते हुए आचार्यों ने लिखा है—

स्नपनं पूजनं स्तोत्रं, जप ध्यानं श्रुतिश्रवः।
क्रियाः षड्विताः सद्भिः देवा सेवा सुगेहिताम्॥

अर्थात् गृहस्थ प्रतिदिन निम्नलिखित क्रियायें करते हुए अपने आपको पुण्य एवं यश का भागी बनावे। सर्वप्रथम जिनालय में जाकर स्नानादि कर पूजा हेतु शुद्ध वस्त्र पहन कर भगवान का अभिषेक करे। अनन्तर अष्ट द्रव्यों से पूजन करे, फिर स्तोत्रपाठ और तब जाप्य, ध्यान एवम् शास्त्रश्रवण। आचार्यों ने धर्म साधन का सामान्यतः यही प्रकार बताया है। पूजा करने वाले गृहस्थ को सर्वप्रथम भगवान का अभिषेक करना चाहिए, फिर जिनेन्द्रपूजन। आचार्यों ने इन षट् कर्मों का विधान गृहस्थों के लिये किया है जिनमें श्रावक-श्राविका दोनों आते हैं। श्राविकाओं के लिये कोई अलग विधान नहीं है। जैसे श्रावक भगवान की पूजा, अभिषेक एवं मुनीश्वरों को आहार देने की क्रिया कर सकता है उसी

प्रकार स्त्रियाँ भी भगवान की पूजा अभिषेक करने एवं मुनीश्वरों को आहार देने की अधिकारिणी हैं। स्त्रियों द्वारा भगवान की पूजा एवं मुनिराजों को आहार दान की बात तो सर्व मान्य है परन्तु स्त्रियों द्वारा अभिषेक करने में कुछ लोगों की असहमति है जो समीचीन नही है।

जैन शास्त्रों में अनेक स्थानों पर ऐसे उल्लेख एवं प्रमाण मिलते हैं जो स्त्रियों द्वारा जिनाभिषेक करने का समर्थन करते हैं।

❀ उत्तरपुराण के रचयिता भगवद् गुणभद्राचार्यकृत जिनदत्तचरित्र : सर्ग १—

गृहीतगन्धपुष्पादि, प्रार्चना सपरिच्छदा
अथैकदा जगामैषा, प्रातरेव जिनालयम् ।।५५।।
त्रि परीत्य ततः स्तुत्वा, जिनांश्च चतुराशया।
संस्नाप्य पूजयित्वा च, प्रयाता यति संसदि ।।५६।।

(एक दिन की बात है कि सेठानी जीवंजसा स्नानादि से शुद्ध होकर दास-दासियों के साथ सवेरे ही जिनमन्दिर गई। वहाँ पहुँच कर उसने पहले तो जिनदेव की तीन प्रदक्षिणा दी और बाद में स्तुतिपूर्वक भगवान के बिम्ब का अभिषेक किया, पूजन की, फिर मुनियों की सभा में गई।)

यह उपर्युक्त उल्लेख ही स्त्रियों द्वारा जिनाभिषेक करने का प्रबल समर्थक है, अन्य अनेक ग्रन्थों के उद्धरणों से क्या! क्योंकि यह 'जिनदत्तचरित्र' प्रातः स्मरणीय भगवद् गुणभद्राचार्य द्वारा रचित है। भगवद् गुणभद्राचार्य प्रत्येक विषय मे कितना अगाध पाण्डित्य रखते थे और महान् ग्रन्थों के रचने में उनकी कितनी असाधारण क्षमता थी, यह बात तो केवल इसी से जानी जा सकती है कि अनेक शिष्यों के होते हुए भी महापुराण को पूर्ण करने का उत्तरदायित्व भगवज्जिनसेनाचार्य ने अपना योग्यतम शिष्य जानते हुए आपको सौंपा। भगवद् गुणभद्राचार्य के वर्तमान में आदिपुराण के अवशिष्ट भाग के अलावा उत्तरपुराण, आत्मानुशासन और जिनदत्तचरित्र ये तीन ग्रन्थ मिलते हैं। ये तीनों ही ग्रन्थ टीका सहित प्रकाशित हो चुके हैं। इन्हे आर्ष ग्रन्थ माना जाता है, इसमें किसी को विवाद नहीं है। 'विद्वज्जनबोधक' के कर्ता ने भी इन तीनो का आर्ष ग्रन्थ होना स्वीकार किया है। ऐसे आर्ष ग्रन्थ में जब सेठानी जीवंजसा द्वारा भगवान के अभिषेक का उल्लेख मिलता है तो स्पष्ट है कि स्त्रियों को जिनाभिषेक का पूर्ण अधिकार है। इसमें सन्देह के लिए कोई स्थान ही अवशिष्ट नहीं रह जाता।

❀ जिनसेनाचार्य कृत हरिवंशपुराण : सर्ग २२—

इत्युक्तो नोदयद्व्गा, सारथि रथमाप सः।
जिनवेश्म समास्थाप्य, तौ प्रविष्टौ प्रदक्षिणं ।।२०।।

क्षीरेक्षुरसधारोघैर्घृतदध्युदकादिभिः ।
अभिषिच्य जिनेन्द्रार्चामर्चिताम् नृसुरासुरैः ॥२१॥

'हरिवंशपुराण' के भाषाटीकाकार पं० गजाधरलालजी ने उक्त श्लोकों का अनुवाद इस प्रकार किया है—"गन्धर्वसेना के ऐसे वचन सुनते ही सारथी ने रथ हाँक दिया और मन्दिर के पास जाकर खडा किया। रथ से उतर कर कुमार और गन्धर्व सेना ने जिनालय में प्रवेश कर भगवान की तीन प्रदक्षिणा दी तथा दूध, ईख का रस, घी, दही और जल से भगवान का अभिषेक किया।"

❀ भगवज्जिनसेनाचार्य कृत आदिपुराण : पर्व ४३—

तत्प्रतीष्ठाभिषेकान्ते महापूजाः प्रकुर्वती ।
महास्तुतिभिरर्थ्याभिः स्तुवती भक्तितोऽर्हतः ॥१७४॥
ददती पात्रदानानि मानयन्ती महामुनीन् ।
शृण्वती धर्ममाकर्ण्य, भावयन्ती मुहुर्मुहुः ॥१७५॥

'आदिपुराण' के भाषाटीकाकार श्री पण्डित दौलतरामजी ने उपर्युक्त श्लोकों का अनुवाद इस प्रकार किया है : "वह नाना प्रकार मणिमई अनेक जिनप्रतिमा करावै, अर तिनकी अनेक मणिमई हेममयी उपकरण करावै। अर वह सुलोचना अनेक जिनमन्दिर बणाय जिन प्रतिमा का अभिषेक करि महापूजा करै। अर निरन्तर पात्रदान करै, महामुनिन की स्तुति करै··· ····।"

❀ भगवद् रविषेणाचार्यकृत पद्मपुराण : पर्व ९६—

अभिषेकैर्जिनेन्द्राणां मत्युदारैश्च पूजनैः ।
दानैरिच्छाभि पूरैश्च क्रियतामशुभेरणम् ॥१५॥
एवमुक्ता जगौ सीता देव्यः साधु समीरितम् ।
दानं पूजाभिषेकश्च तपश्चा शुभसूदनम् ॥१६॥

(भावार्थ : यहाँ सीता से कहा गया है कि हे देवि ! अशुभ कर्म को दूर करने के लिये जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक तथा पूजन करो और दान दो। उनके इस प्रकार कहने पर सीता ने इसे स्वीकार किया।)

❀ आचार्य वीरनन्दिकृत चन्द्रप्रभ चरित्र : सर्ग ३—

तस्मिन् विधाय महतीमुपवासपूर्वां
पूजां जगद्विजयिनो जिनपुङ्गवस्य ।
स्नानं समीहितनिमित्तमथस्तवीय
बिम्बस्य स प्रविदधे सहितोऽग्रदेव्याः ॥६१॥

(भावार्थ : उस पर्व के दिन राजा ने व्रतधारणपूर्वक जगद्विजयी जिनेन्द्र की भारी पूजा की और फिर अपनी कामना पूर्ण होने की अभिलाषा से रानी सहित जिनबिम्ब का अभिषेक किया।)

❀ आचार्य सकलभूषणविरचित षट्कर्मोपदेशमाला—

इतीमं निश्चयं कृत्वा, दिनानां सप्तकं सती ।
श्रीजिनप्रतिबिम्बानां, स्नपनं सा तदाऽकरोत् ।।
चन्दनागुरुकर्पूरैः सुगन्धैश्च विलेपनैः ।
सा राज्ञी विदधे प्रीत्या जिनेन्द्राणां त्रिसन्ध्यकम् ।।

(भावार्थ : उस सती रानी ने ऐसा निश्चय कर सात दिन तक तीनों समय भगवान का अभिषेक किया और चन्दन, अगुरु, कपूर आदि सुगन्धित द्रव्यों से भगवान की पूजा की।)

(किसी एक मदनावली नामकी रानी ने पहले भव मे मुनि की निन्दा की थी। उस समय पाप कर्मोदय से शरीर में दुर्गन्ध उत्पन्न हुई थी। तब उसने अपने रोग की शान्ति के लिये किसी आर्यिका के उपदेश से यह धार्मिक क्रिया की थी। इसी से उसकी व्याधि दूर हुई तथा आयु पूर्ण कर वह पंचम स्वर्ग में देव हुई। इसी वर्णन में यह श्लोक कहा गया है।)

❀ आराधना कथाकोश : रात्रिभोजन त्याग कथा, पृष्ठ ४०२—

ततस्तयोर्जिनेन्द्राणां, महास्नपनपूर्वकम् ।
कल्याणदायिनीं पूजां, पात्रदानं सुखप्रदम् ।।१८।।
कुर्वतो सुखतः कैश्चि मासै र्जातः सुतोत्तमः ।

(भावार्थ : इसके अनन्तर सेठ और सेठानी ने अभिषेक पूर्वक पूजन करते हुए तथा पात्रदानादि करते हुए समय व्यतीत किया और कुछ दिनो बाद सेठानी धनमित्रा ने पुत्र प्रसव किया।)

❀ श्रीपालचरित्र बृहन्नेमिचन्द्र कृत पृष्ठ संख्या ६—

अथैकदा सुता सा च, सुधी मदनसुन्दरी ।
कृत्वा पञ्चामृतस्नानं, जिनानां सुखकोटिदम् ।।

(भावार्थ : इसके अनन्तर एक दिन गुणवती वह मैनासुन्दरी करोड़ों सुखों के देने वाले जिनेन्द्र भगवान का पञ्चामृत अभिषेक करके………)

❀ पण्डित भूधरदासजी कृत चरचा समाधान, पृष्ठ ६४—

"इहाँ कोई कहै स्त्री पूजा करे यह तो सुनी है पर अभिषेक न करै ताका उत्तर—पूजा तो अभिषेक बिना होती नाहीं यह नियम है। ऊपरि मैना सुन्दरी अभिषेक न कीना तो गन्धोदक कहाँ से

लाई तथा स्त्री के स्पर्श का ऐसा कुछ द्वेष होता तो स्त्री का किया तथा स्त्री के हाथ सौं आहार साधु काहे को लेते । तिसतैं उत्तम पतिव्रता स्त्रीनि को पूजा का अभिषेक का निषेध नाहीं ।"

शास्त्रों में जहां-जहां पूजा का विधान बताया है वहाँ वहाँ पूजा का एक अंग होने से अभिषेक को भी पूजन में ही सम्मिलित कर लिया गया है। पण्डित सदासुखजी ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार में पृष्ठ २२९ पर लिखा है कि निर्दोष जल करि अरहन्त के प्रतिबिम्ब का अभिषेक करना सो पूजन है।

प्रथमानुयोग के उपर्युक्त उल्लेखों से सिद्ध होता है कि स्त्रियों को अभिषेक करने का पूर्ण अधिकार है । अतः स्त्री हो या पुरुष, पूजन अभिषेक पूर्वक ही करना चाहिए । स्त्रियों द्वारा जिनाभिषेक के प्रमाणों से आर्ष ग्रन्थ भरे पड़े हैं, लेख बढ जाने के भय से उन सबका उल्लेख करना सम्भव नहीं होगा । इन्हें पढ़ कर विज्ञजनों को आगमानुसार अपनी श्रद्धा बनानी चाहिए ।

एक बात और, सुमेरु पर्वत पर भगवान का अभिषेक मात्र सौधर्म और ईशान इन्द्र ही करते हैं—ऐसी भ्रान्ति कुछ लोगों के अन्तस में भरी है परन्तु ग्रन्थावलोकन से यह बात भी सही प्रतीत नहीं होती । इसमें भी आगम प्रमाण निर्णायक है ।

※ पद्मपुराण, पर्व ३ : आदिनाथ भगवान का जन्मोत्सव—

इन्द्राणी प्रमुखा देव्यः सद्वर्णैरवलेपनैः ।
चक्रुः उद्वर्तनं भक्त्या, करैः कोमलपल्लवैः ।।१८४।।
महीध्रमिव तं नाथं, घटैर्जलधरैरिव ।
अभिषिच्य समारब्धा, कर्तु मस्य विभूषणं ।।१८५।।

(भावार्थ : इन्द्राणी है प्रमुख जिनमें ऐसी देवाङ्गनाओ ने अपने पल्लव के समान कोमल हाथों से भगवान के शरीर पर सुगन्धित चन्दन का लेप किया तथा महागिरि के समान जिनेन्द्र का मेघ के समान कलशों से अभिषेक करके इन्हें विभूषित करना प्रारम्भ किया ।)

※ हरिवंश पुराण, सर्ग ८ ऋषभ जन्मोत्सव—

अत्यन्त सुकुमारस्य, जिनस्य सुरयोषितः ।
शच्याद्या पल्लवस्पर्शात् सुकुमारकरास्ततः ।।१७२।।
दिव्यामोदसमाकृष्ट, षट् पदौघानुलेपनैः ।
उद्वर्तयन्त्यस्ता प्रापुः शिशुस्पर्श नवं सुखम् ।।१७३।।
ततो गन्धोदकैः कुम्भैरभिषिच्यन् जगत्प्रभुम् ।
पयोधरभरानम्रास्ता वर्षा इव भूभृतम् ।।१७४।।

(भावार्थ : इन्द्राणी आदि देवाङ्गना अत्यन्त सुकुमार प्रभू का शरीर को पल्लव हूते अधिक जो कोमल कर तिन कर अंगोछती भई, अर दिव्य सुगन्ध जा पर भ्रमर गुञ्जार करै है— ताका लेपन करती भई, बहुरि गन्धोदक के कलशनि करि (जगत्प्रभुम् अभिषिच्यन्) भगवान का अभिषेक करती हुई……… ।)

❀ हरिवंशपुराण, सर्ग ३८ भगवान नेमिनाथ जन्मोत्सव—

ततः सुरपतिस्त्रियः, जिनमुपेत्य शच्यादयः ।
सुगन्धितनुपूर्वकैः, मृदुकराः समुद्वर्तनम् ॥५३॥
प्रचक्रुरभिषेचनं, शुभपयोभिरुच्चैर्घटैः ।
पयोधरभरैर्निजैरिव समावर्जितैः ॥५४॥

(भावार्थ : इसके बाद शची आदि देवाङ्गनाओं ने भगवान के शरीर पर अपने कोमल हाथों से उद्वर्तन किया एवं जल से भरे हुए उन्नत घड़ो से प्रभु का अभिषेक किया ।)

❀ आदिपुराण : आदिजिनजन्मोत्सव प्रसंग—

गन्धैं सुगन्धिभिः सान्द्रैरिन्द्राणी गात्रमीशितुः ।
अवलिपच्चलिम्पद्भिरिवामोदैस्त्रिविष्टपम् ॥

(भावार्थ : इन्द्राणी प्रभू के शरीर नै जल सहित सुगन्धित गन्ध कर लेपन करती भई सो मानो सुगन्ध करि तीन जगत नै लेपन करती ही प्रभू के सर्वांग में लेपन कियो ।

विज्ञ जनों के लिए उपर्युक्त प्रमाण पर्याप्त हैं । पूजन के षडङ्ग बताये गये हैं । जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया गया है कि अभिषेक आदि पूजन के पहले की आवश्यक क्रिया है; जहां भगवान का अभिषेक ही नही किया वहाँ पूजन का जो सबसे बढ़ कर महत्त्व माना जाता है, वह प्राप्त नहीं हो सकता । अभिषेक क्रिया महत्पुण्य सम्पादक सातिशय क्रिया है । पूजन में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है, एवं यही प्रधान है ।

इसलिये जहाँ पूजन का विधान है वहाँ पर सर्वत्र अभिषेकविधान सुतरां सिद्ध है । अतः अभिषेक पूजन करना जैसे श्रावकों के लिये नियत है वैसे ही श्राविकाओं के लिये भी नियत है । शास्त्रों में सर्वत्र श्रावक-श्राविकाओं के लिये पूजनविधान समान ही मिलता है । अतः यह बात निर्णीत हुई कि जैसे पुरुष अभिषेक पूर्वक पूजन करते हैं वैसे ही स्त्रियाँ भी अभिषेक पूर्वक पूजन करने की अधिकारिणी हैं ।

भगवान के पूजन अभिषेक का अधिकारी वही हो सकता है जो मुनिराजों व संयमी जनों को दान देने का अधिकारी हो । मुनियों को आहारदान करने का अधिकार स्त्रियों को है अतः उन्हें भगवान् की पूजा एवं अभिषेक का अधिकार भी स्वयंसिद्ध है । ❖

❖ शशिप्रभा जैन 'शशाङ्क' द्वारा

नारीत्व गुणों से जिसने, पत्थर को मोम बना डाला।

¤

शशिप्रभा जैन

चन्दनं शीतलं लोके, चन्दनादपि चन्द्रमा।
चन्द्रचन्दनयोर्मध्ये, शीतलं साधुसंगमः ॥

भारत वसुन्धरा वीराङ्गनाओं, सती-साध्वियों, तपस्विनियो के गरिमापूर्ण शीलाचरण से गौरवान्वित होकर यशः श्री से विभूषित है, वन्दनीय है। भारतीय नारी अपनी अगाध धर्मनिष्ठा, देवगुरु में अचल भक्ति, गम्भीर परिश्रम एवं पुनीत विचारधारा की सजीव प्रतिमा है। उसके अन्त-स्थल में करुणा, वाणी में माधुर्य और मस्तिष्क में ज्ञान का प्रभावशाली आलोक प्रकाशित होता है। इतिहास साक्षी है कि—

अञ्जना सती ने पत्थर को आहों से मोम बना डाला।
सीता ने लेकर अटल प्रेम, पानी-पानी कर दी ज्वाला ॥

परम पूज्या १०५ आर्यिका माँ श्री इन्दुमतीजी ज्ञान की साक्षात् चन्द्रिका हैं; साधना तप त्याग की आदर्श महाभूति हैं; जिनधर्म और जैनसिद्धान्त की सफल उन्नायिका हैं। उन परम वीतरागमयी संयम की जाज्वल्यमान वीराङ्गना को मेरा विनम्र शत-शत नमन! श्रीसम्पन्ना कुल की पुत्री सरस्वती तुल्या माताजी वास्तव में जीती-जागती विद्याधीश्वरी हैं। अपने साधना काल में आपने नारी जाति को स्निग्धता और सुखद पवित्रता के आलोक से सम्यक् उपदेशामृत द्वारा आलोकित कर सजगता प्रदान की है; ऐसी विभूति पर सौ-सौ इन्दु सादर न्योछावर है। मैं आपमें विद्यमान नारीत्व गरिमा का सादर अभिवन्दन करती हूँ। एक अंग्रेजलेखक का कहना है कि—

Every woman is a volume if she knows how to read it. प्रत्येक नारी एक ग्रन्थ है यदि वह उसे भली प्रकार पढ़ना जाने तो।

बिहार प्रान्त में हुए माताजी के वर्षायोग विशेष महत्त्वपूर्ण रहे है। बिहार की पुनीत भूमि जैन साहित्य के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। भगवान वासुपूज्य, भगवान मल्लिनाथ, भगवान मुनिसुव्रतनाथ, भगवान नेमिनाथ और महाप्रभु वर्द्धमान स्वामी को जन्म देने वाली नारियों की यह भूमि अत्यन्त पुण्यशाली है। भगवान महावीर के प्रमुख गणधर—इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति की माताएँ प्राचीन मगध के अन्तर्गत गोवर नामक ग्राम की आवासिनी ही तो थीं। राजा श्रेणिक की दूषित मिथ्यात्वी मनोवृत्तियो को बदलने वाली उनकी पत्नी चेलना वैशाली नरेश चेटक की पुत्री थीं। इस देवी ने पति श्रेणिक को शुद्ध सम्यग्दृष्टि बनाकर भगवान महावीर को धर्म-सभा का प्रधान श्रोता बना दिया। राजा श्रेणिक ने रानी चेलना की पुनीत प्रेरणा से अनेक चैत्यालयों, धर्मस्थलों का निर्माण करवाया था। व्रतों का समीचीन रीत्या पालन कर जिस आदर्श श्राविका चेलना रानी ने जैनधर्म की महती प्रभावना की थी, उसे हम कैसे विस्मृत कर सकेंगे ?

नारी अपने विशिष्ट गुणों के कारण धर्म, समाज, राजनीति और शासन का ऐसी अपूर्वता से सचालन करती है कि उसे देखकर पुरुष जाति दांतो तले अंगुली दबा लेती है। भगवान महावीर के संघ में रहने वाली ३५००० साध्वियों सुश्राविकाओं ने अपने अथक परिश्रम द्वारा बिहार-भूमि ही क्या भारत के प्रत्येक प्रान्त मे सच्चे धर्म-अहिंसा धर्म का प्रसार किया और अपने तपश्चरण के द्वारा यह स्पष्ट कर दिखाया कि उनमें भी वही अलौकिक दिव्य शक्ति विद्यमान है जो पुरुष में है और जिसे प्राप्त कर लेने पर मुक्तिरमा भी दूर नहीं रहती। चन्दनबाला वह वीराङ्गना है जो छत्तीस हजार आर्यिकाओं के संघ की अधिष्ठात्री पूज्य नारी थी। यह चम्पानरेश दधिवाहन की सुपुत्री थी। राजघराने में जन्म लेकर भी इसे जीवन में संघर्षों के तूफानों ने झकझोरा किन्तु धन्य है इसके साहस और धैर्य को, जिसने सब कुछ सहा पर भगवद्भक्ति को अपने हृदय से कभी विलग नही होने दिया। प्रभु की अर्चना, अभ्यर्थना में शरीर को सुखा डाला फिर प्रभु को जिस भक्ति से आहार दिया कि वह कृतकृत्य हो गई।

सम्यक्त्व शुद्ध शीलवती चन्दना सती,
जिसके नगीच लगती थी जाहिर रती रती।
बेड़ी में पड़ी थी, तुम्हें जब ध्यावती हती,
तब वीर धीर ने हरी दुःख दंद की गति ॥

नारी समाज में अद्भुत चेतना, धर्म जाग्रति, सद्शिक्षा की पावन लहर प्रवाहित करने का शुभ्र श्रेय चन्दनबाला को ही प्राप्त है। मगध और विदेह की रम्य पुण्यभूमि में आज भी चन्दना के उपदेश गूंजते से प्रतिभासित होते हैं।

महागौरवशालिनी रानी जयन्ती ने भी बिहार की भूमि को अपने जन्म से कृतार्थ किया। यह कौशाम्बी के राजा सहस्रानीक की आज्ञाकारिणी पुत्री थी, शतानिक की आदर्श भगिनी थी। इसने भगवान महावीर के समवसरण में इन्द्रियदमन, संयम एवं कई अन्य आध्यात्मिक शंकाओं का समाधान प्राप्त किया था। इस धर्मानुरागिणी महिला मे सच्चे धर्म का, सच्ची जननी का आत्माभिमान दमक रहा था। इस महिमाशालिनी नारी ने भगवान महावीर का धर्मोपदेश श्रवण कर तेजोमयी साध्वीधर्म को अंगीकार कर नारी पर्याय को धन्य बना लिया था। जगह-जगह इनके पावन धर्मोपदेश हुए। नारी जगत में व्याप्त अज्ञान और मिथ्यात्व को इन्होंने दूर किया। इनकी धर्मसेवा और जनसेवा को इतिहास कभी नही भूल सकता।

वैशाली गणराज्य की अधिष्ठात्री कुमार देवी का भी जैन इतिहास मे गौरवपूर्ण स्थान है। इस वीरांगना ने अपने शासन काल में असीम धीरता और अपूर्व राजनैतिक चातुर्य का गौरव प्रस्तुत किया। इस ललना की भगवान महावीर के अनुयायिओ के प्रति अप्रतिम श्रद्धा-भक्ति थी। इसने अणुव्रतों का पूर्ण सच्चरित्रता के साथ पालन किया था।

केवल अतीत में ही नही वर्तमान में भी बिहार की भूमि ने जैनधर्म की प्रभावना करने वाली गौरवशालिनी नारियों को जन्म दिया है। सद्‌शिक्षा एवं नारी जागरण का अखण्ड व्रत धारण करने वाली पण्डिता विदुषीरत्ना माँ श्री चन्दाबाई जी का नाम जैन इतिहास में सदैव बड़ी श्रद्धा के साथ लिया जाएगा। इस बालब्रह्मचारिणी देवी के द्वारा नारीशिक्षा का जो अपूर्व अनूठा कार्य हुआ है वह समाज से अज्ञात नही है। इनकी कर्मठता, सेवापरायणता, धर्म और दर्शन के प्रति अटूट श्रद्धा को देखते हुए यही सोचना पड़ जाता था कि यह महाबुद्धिमती गार्गी इस बीसवी शताब्दी में कहाँ से अवतीर्ण हो गई! जीवन के ऐश्वर्यों सुखों को ठोकर मार कर बाईजी ने महिला समाज को समुन्नत शिक्षित करने के लिए प्राकृत, संस्कृत, व्याकरण, साहित्य, न्याय, दर्शन आदि का अगाध ज्ञान अर्जित किया और सन् १९०८ में स्वर्गीय बाबू देवकुमारजी द्वारा आरा मे एक कन्या पाठशाला की स्थापना करवाई। नारी शिक्षा के समारम्भ के लिए आपने अथक परिश्रम किया। आरा नगरी की यह प्राचीन सस्था आज भी निरन्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर है। जैन बाला विश्राम माँ श्री की अटूट नारी जागृति का आदर्श प्रस्तुत करने वाली द्वितीय संस्था है जिसकी स्थापना पुण्ययोग से सन् १९२१ ई० में हुई थी। आज नारी जागरण हेतु यह भारत की अद्वितीय संस्था मानी जाती है। यहाँ आई० ए० तक लौकिक शिक्षा और गोम्मटसार जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड तथा धार्मिक नैतिकशिक्षा देने का सुप्रबन्ध है। यहाँ के छात्रावासों की व्यवस्था शान्तिनिकेतन और वनस्थली विद्यापीठ के छात्रावासों से कम नहीं है। यहाँ का वातावरण विशुद्ध, पवित्र और अध्यात्म गङ्गा को प्रवाहित करने वाला है। छात्रावासों की विशाल भव्य इमारतें व कलात्मक मन्दिर कोरे ईंट-चूने से ही नहीं

बने हैं अपितु रक्तमांस की बनी माँ श्री स्वर्गीय चन्दाबाईजी की अटूट निष्ठा, सेवा और व्यक्तित्व का संस्पर्श भी उन्हें सम्प्राप्त हुआ है। माँ श्री की सेवाओं का मूल्यांकन और उनकी साधना, अपरिग्रह भावना का आकलन वही कर सकता है जिसे उनका समागम, सान्निध्य मिला हो। वे सप्तम प्रतिमाधारिणी थी परन्तु उनकी धार्मिक क्रियाएँ एक आर्यिकावत् ही थी।

अज्ञानता के घटाटोप पर्दे से नारी जाति को बाहर निकालने हेतु माँ श्री ने १९१८ ई० मे अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महिला परिषद की स्थापना करके नारी समाज मे व्याप्त कुरीतियों का निवारण किया। ज्ञान का सम्यक् प्रकाश विकीर्ण कर उन्होंने किशोरियों, युवतियों, प्रौढाओं को आगे लाकर उन्हे इस योग्य बनाया कि वे मञ्च पर खड़ी होकर धाराप्रवाह भाषण करने लगीं, अच्छे निबन्ध, लेख व कविताएँ लिखने लगी। 'जैन महिलादर्श' पत्रिका ५५ वर्ष तक इनके सम्पादन में नियमित निकलती रही। आज जैन जगत् मे नारी शिक्षा की जो चारों ओर धूम मची है उसका अधिकांश श्रेय माँ श्री को है। जैनबालाविश्राम की पढी महिलाएँ मोरिशस, कनाड़ा आदि देशों में भी हिन्दी भाषा का प्रचार-प्रसार करने मे तत्पर है, उनसे बराबर पत्राचार होता रहता है। यह समाज के लिए विशेष हर्ष की बात है कि फरवरी १९८२ मे यह सस्था अपनी हीरकजयन्ती मना रही है। संस्था को देशरत्न डॉ० राजेन्द्रप्रसाद, श्री जवाहरलाल नेहरू, जयप्रकाशनारायण, सुभाषचन्द्रबोस, सन्त विनोबा भावे, काका कालेलकर जैसे उद्भट विद्वानों व नेताओ का शुभाशीर्वाद प्राप्त है।

माँ श्री 'यथानाम तथा गुण वाली' अद्भुत महिला थी। उन्होने हजारों-हजारों हतप्रिय अभागिन बहनों के भाग्य को सँवारा और उन्हे वास्तविक जीवन प्रदान किया।

कबीरा सोई पीर है, जो जाने पर पीर।
जो पर पीर न जानई, सो काफिर बेपीर॥

सेवापरायणा माँ श्री पण्डिता व्रजबालादेवीजी जैन, विदुषी ब्र० पतासी बाई जी महिला-शिरोमणि रमा जी जैन आदि अनेकानेक महिलाओं द्वारा नारी हितार्थ जो कार्य हुए हैं वे उल्लेखनीय हैं।

"परखना है बहिन बल शौर्य तो मानव हृदय जीतो,
यही भूषण है नारी का, मनुजता से न तुम रीतो।
किनारा मिल नहीं सकता भँवर के जाल में फँस कर,
परमसुख की जो इच्छा हो, हृदय जीतो हृदय जीतो॥"

परम पूज्य १०८ इन्दुमती माताजी ने अपने जीवन में जो साधना की है वह स्तुत्य है, अभिनन्दनीय है। साधना का मार्ग अत्यन्त कठिन होता है। असिधारावत् होता है किन्तु माताजी ने

अपनी प्रवृत्ति से इसे सहज सुगम पथ घोषित किया है। संयम, तप, त्याग से विमुख जन की रुचि धर्म की ओर मोड़ने में आप सिद्ध हस्त हैं। कई वर्ष पूर्व जब आपका पावन आगमन इस संस्था में हुआ था तब आपकी चरणवन्दना करके मन मुदित होकर नाच उठा था। मैं कैसे उस भव्य मूर्ति के गुणों का बखान करूं? गूंगा गुड़ खाता है, उसकी मिठास का रस लेता है परन्तु क्या वह अपनी इस अनुभूति को किसी और को बता सकता है? नहीं, मेरी भी स्थिति ठीक इसी भाँति है।

आपकी सहज मुस्कान सभी को मुग्ध कर लेती है। अनुशासन, कठोर अनुशासन आपके जीवन का प्रमुख अंग है। आपका व्यक्तित्व बाहर से जितना आकर्षक है आन्तरिक गुण-सम्पन्नता उससे कहीं अधिक, तपतेज से विभूषित है। मैंने आपके दर्शन कर यही अनुभव किया है कि आप शब्दों से उतनी शिक्षा नहीं देती। कम बोलती हैं परन्तु उन थोडे शब्दो में ही कई शिक्षा-प्रद बातें गुंथी रहती हैं। अपनी धुंधली स्मृति के आधार पर मुझे उनके प्रवचन में सुना एक उदाहरण ध्यान में आ रहा है कि किस प्रकार हम अपनी आत्मा को संयम द्वारा समुज्ज्वल कर समर्थ, योग्य और सक्षम बन सकते हैं—

पानी तीव्रगति से बह रहा था। उसके साथ बहती हुई मिट्टी उस किनारे पर जाकर स्थिर हो गई जहाँ कुम्भकार द्वारा पकाया जाकर मिट्टी का घड़ा रखा था। गीली मिट्टी ने घडे से पूछा—"भैया! इसमें क्या रहस्य है कि जो जल हमें बहाकर इधर-उधर घुमाता है, उसे तुम आनन्द से अपने भीतर संजो लेते हो?" घड़े ने हँस कर उत्तर दिया—"मेरी भोली बहन! तुम मेरी कहानी सुनो। कुम्भकार मुझे तुम जैसी स्थिति से उठा कर लाया, फिर पैरों से रौद-रौद कर कुचल कुचल कर चिकना किया, फिर चाक पर घुमाया, अग्नि में तपाया। जब मैं तप कर लाल हो गया तो मुझे जल को अपने भीतर रख पाने का वरदान मिला।" मिट्टी सुनकर चकित हुई, बोली—"भैया! तुम्हारा यह रूप तो बड़ी कठोर साधना के बाद मिला है, मुझे तो कोई सुगम सा मार्ग बता दो जिससे मैं भी जल को अपने गर्भ में रख सकूँ।" घडे ने उत्तर दिया—"बहिन! सुगम पथ खोजोगी तो लक्ष्य मिलेगा नहीं। साधना का मार्ग कठिन तो अवश्य लगता है परन्तु शाश्वत सुख का वरदान इसी में छिपा है। अब तुम ही देख लो! पानी तुमको बहाता है, भटकाता है और मैं उसे अपने भीतर रख लेता हूँ। उसका मुझपर कोई वश नहीं चलता। अब मिट्टी चुप थी।

इस उदाहरण से स्पष्ट है कि साधनामयी जीवन त्याग तपश्चर्या की अग्नि में से गुजर कर इतना प्रखर तेजवान हो जाता है कि हृदय की पवित्रता, लोकोत्तर शान्ति, स्थायी-सुख के मिष्ट फल को प्राप्त करने में सक्षम हो जाता है। पूज्य माताजी ने अपनी जीवनचर्या से नारी समाज का सच्चा मार्गदर्शन किया है, वह वन्दनीय है, अभिनन्दनीय है। एक अंग्रेज लेखक का कथन है—"Self reverence self knowledge, self control, these three alone lead life to sovereign power."

आत्मश्रद्धा, आत्म बोध और आत्मसंयम ये तीनों ही जीवन को श्रेष्ठशक्ति प्रदान करते हैं। माताजी निस्सन्देह इस शक्ति की धनी हैं। हम सब, सम्पूर्ण समाज उनका ऋणी है।

संघस्था आर्यिका पूज्य सुपार्श्वमतीजी अपनी विद्वत्ता से, वक्तृत्वशैली से और चर्या से आर्यिका रत्न के रूप में वन्दनीय हैं। मैं इन विभूतियों को और इन जैसी अन्य विभूतियों को अपनी शत-शत श्रद्धामयी विनयाञ्जलि अर्पित करती हूँ।

"मृदुभाषिणी तुम शान्तिमूर्ति, समता-ममता की सुधा सिन्धु।
वक्तव्य कला में प्रखर कीर्ति, चमकी बन कर तुम स्वयं इन्दु ॥"

❖

❀ किं दुर्लभम् ?
नृजन्म ।

❀ प्राप्येदं भवति किं च कर्तव्यम् ?
आत्महितं, अहितसंगत्यागो, रागश्च गुरुवचने।

—प्रश्नोत्तररत्नमालिका : अमोघवर्ष

❖ कुमारी प्रमिला शास्त्री, एम० ए०; माताजी संघस्था

नारी-जीवन के सोपान

☼

कुमारी प्रमिला शास्त्री

साहित्यकारों ने नारी को अनेक नामों से अभिहित किया है। नारी के ये अनेक नाम उसके गुण-दोषों के वाचक हैं। प्रत्येक वस्तु अनेक धर्मवाली है। उन धर्मों में वस्तु के या तो गुण रहते हैं या फिर दोष। न तो कोई वस्तु पूर्णतः गुणात्मक ही है और न कोई समग्रतः दोषपरिपूर्ण ही। पानी के अनेक नामों में अमृत, जीवन और विष ये तीन नाम भी हैं। जीवन दाता होने से उसकी संज्ञा जीवन है तो मरते हुए को बचाने वाला होने से अमृत भी है। वह विष भी कहा जाता है क्योंकि "वेवेष्टि देहं शैत्येन व्याप्नोतीति विषं" शीत से शरीर को व्याप्त करता है। दूध सामान्यतः सर्वोत्कृष्ट और शक्तिवर्द्धक पदार्थ कहा जाता है परन्तु अजीर्ण वा संग्रहणी के रोगी के लिए वही दूध हानिकारक भी हो जाता है अर्थात् ये दोनों विरोधी शक्तियाँ उस दूध नाम के एक पदार्थ में ही विद्यमान हैं।

स्त्री अनेक गुणों की खान है। यद्यपि कंथचित् कोई दोष भी उसमें है तथापि गुणों का बाहुल्य है। उसके विविध नाम हैं—

स्त्री नारी वनिता मुग्धा भामिनी भीरुरङ्गना।
ललना कामिनी योषिद् योषा सीमन्तिनी वधूः॥
नितम्बिन्यबला बाला, कामुकी वामलोचना।
भामा तनूदरी रामा, सुन्दरी युवतिश्चला॥
भार्या जाया जनिः कुल्या कलत्रं गेहिनी गृहम्।
महिला मानिनी पत्नी तथा दाराः पुरन्ध्रिका॥ ....इत्यादि अनेक नाम हैं।

इनमें स्त्री, नारी, महिला, कान्ता आदि प्रमुख नाम हैं। ये सब नाम उसके विशेष-विशेष गुणों के द्योतक हैं जैसे—नारी का पहला गुण है उसका लज्जाशील होना। स्त्री शब्द का अर्थ ही

लज्जाशील है—"स्तृणात्याच्छादयति लज्जयात्मानमिति स्त्री" जो लज्जा से अपनी आत्मा को आच्छादित करती हो उसको स्त्री कहते हैं। "न रौति इति नर:" जो धैर्यशाली होता है, आपत्ति आने पर भी आकुल व्याकुल नहीं होता है वह नर कहलाता है। नर की स्त्री नारी कहलाती है। नारी भी धैर्यशालिनी होती है, आपत्तियाँ आने पर भी विचलित नहीं होती। यदि नारी धैर्यशालिनी नहीं होती तो सीता, अञ्जना, चन्दना, सोमा आदि नारियाँ कष्ट कैसे सहन करती। "जनयति पुत्रान् जनि:" तीर्थङ्कर जैसे पुत्रों को जन्म देती है इसलिए उसका जनि: नाम सार्थक है। "सुखी जायते आत्माऽत्र जाया" इसमें आत्मा सुख का अनुभव करता है, वह जाया है। "मह्यते पूज्यते सद्भि: इति महिला" सत्पुरुषों के द्वारा पूजनीय होती है अत: महिला कहलाती है। "दीर्यंते शतखण्डी भवति पुरुष: एभिरिति दारा" जिसके द्वारा मानव का मन खण्डित हो जाता है, वह दारा है। "साधयति त्रिवर्गं इति साध्वी" त्रिवर्ग का यथाशक्ति पालन करती है इसलिए साध्वी है। उदार मन वाली होने से मनस्विनी है। "अर्यंते सेव्यते इति आर्या सुचरिता", सज्जनो के द्वारा जो पूजनीय होती है, सच्चारित्र को धारण करती है इसलिये आर्या कहलाती है।

इस प्रकार और भी अनेक नाम इसके गुणदोष के वाचक हैं। वे सब सार्थक है। लज्जाशीला, धैर्यशालिनी, पवित्रा, पूज्या, सच्चरित्रा होने के कारण ही जगदुद्धारक तीर्थङ्करों का जन्म नारी की कुक्षि में होता है। यद्यपि आचार्यों ने नारी की निन्दा भी की है तथापि सर्व नारियाँ दूषित नहीं हैं।

पूज्य शुभचन्द्राचार्य ने 'ज्ञानार्णव' में लिखा है—

ननु सन्ति जीवलोके काश्चिच्छमशीलसंयमोपेता:।
निजवंशतिलकभूता: श्रुतसत्यसमन्विता नार्य: ॥१२।५७॥

"अहो! इस जगत में अनेक स्त्रियाँ ऐसी भी हैं कि जो शमभाव (मन्दकषायरूप परिणाम) और शीलसंयम से विभूषित हैं तथा अपने वंश में तिलकभूत हैं अर्थात् अपने वंश को शोभायमान करती हैं और शास्त्राध्ययन तथा सत्यवचनों सहित भी है।"

आचार्यों की इस प्रशस्ति से भारतभूमि की संस्कृति मुखरित हुई है। नारी के लिये प्रयुक्त ये विशेषण पुकार-पुकार कर कहते हैं कि शम, शील, संयम, सत्य और श्रुत ही यहाँ नारी का सच्चा स्वरूप है। जिन्होंने अपने आँचल से शील शरीर को ढके रखा, उन्ही का यश-सौरभ यहाँ कस्तूरी के समान दिगन्तों में फैला है। शीलवती नारी समाज की निधि है; यही चक्रवर्ती और तीर्थङ्कर जैसे रत्नों की जननी है। यदि नारी के गुणों का बखान किया जाए तो एक वृहद ग्रन्थ बन सकता है।

नारी जीवन को हम चार भागों में क्रमबद्ध कर सकते हैं—कन्या, गृहिणी (पत्नी), जननी (माता) और आर्यिका। ये चारों ही अवस्थाएँ नारी जीवन में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

कन्या :

कन्या का जन्म अशुभ नहीं है, कन्या माता पिता के लिए अभिशाप नहीं होती। यह तो एक मांगलिक एवं पुनीत वस्तु है इसीलिए तो जिनबिम्ब एवं जिनमन्दिर आदि की प्रतिष्ठादि में सर्व प्रथम पवित्र कन्याओं के हाथ से जिनबिम्ब और जिनमन्दिर की शुद्धि करवाई जाती है। किसी शुभ कार्य को जाते समय जितना शुभ कुमारी कन्या का दर्शन है उतनी शुभ सौभाग्यवती स्त्री भी नहीं है। आदिपुराणकार लिखते है कि "चन्द्रमा की कला के समान जन समूह को आनन्द देने वाली 'श्रीमति' कन्या को देख कर माता-पिता अत्यन्त प्रीति को प्राप्त हुए थे—

पितरौ तां प्रपश्यन्तौ, नितरां प्रीतिमापतुः।
कलामिव सुधासूतेः जनतानन्दकारिणीं ॥६।८३॥

इस प्रकार पूववर्ती आचार्यों के कथन से भी कन्या माता-पिता को बहुत प्यारी होती थी। कन्या का मानसपटल बहुत पवित्र होता है, इसलिए जो ऋद्धियाँ कन्या अवस्था में होती है वे विवाह के बाद नही रहती। कुमारी अवस्था मे विशल्या के स्नानजल के स्पर्श से कई शारीरिक रोग दूर हो जाते थे—लक्ष्मण का शक्ति बाण दूर हो गया था—वह शक्ति विवाह होने के बाद नही रही।

सत्कन्या उभयकुलवर्धिनी होती है। पहले कन्या अपने माता-पिता के घर को उज्ज्वल करती है अनन्तर पति के घर में पहुँच कर उसका घर समुज्ज्वल करती है। ब्राह्मी, सुन्दरी, चन्दना, अनन्तमती आदि कन्याये आजन्म ब्रह्मचारिणी रह कर जगत् के लिए महान् आदर्श छोड़ गई हैं। इस मार्ग से अतिरिक्त मार्ग है गृहस्थ जीवन का। उसका अवलम्बन लेकर कन्या 'वीरप्रसू' बन सकती है। कन्या एक पवित्र भूमि या देवी है जिसका आदर प्रत्येक स्त्री-पुरुष के हृदय में होना आवश्यक है।

पत्नी :

नारी का दूसरा महत्त्वपूर्ण रूप उसका पत्नी रूप है। यही ऐसा रूप है जो सर्वाधिक विचारणीय है। संसार या सृष्टि का प्रारम्भ यही से होता है। गृहस्थ को योग्य गृहिणी का मिलना उसके जीवन की कई समस्याओं का हल है, उसमें कमी रहने से गृहस्थ का जीवन कष्टपूर्ण बन जाता है।

नारी शान्ति, शक्ति, स्नेह, धैर्य, क्षमा, त्याग सौन्दर्य माधुर्य आदि अनेक गुणों की सजीव मूर्ति है। वह गृहलक्ष्मी है। जीवनसंगिनी है। गृहस्थी के सारे कार्य उसी के आधीन हैं।

अतिथि का सत्कार, सास-ससुर देवरानी जेठानी, देवर जेठ के साथ सद्व्यवहार सब सुघड़ गृहिणी के सहयोग से ही सम्भव है। गृहस्थ जीवन की शोभा सुशीला गृहिणी से ही होती है।

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि जहाँ नारी को अपमानित लाञ्छित और पीड़ित करने में पुरुष ने कोई कसर नहीं छोड़ी है, वहां यदा-कदा उसके आँसू पोंछने के लिये उसकी प्रशंसा भी की है। नारी के बिना पुरुष का काम नहीं चलता। विशेषत: काम के वशीभूत होने पर तो नारी के बिना पुरुष को अपने प्राण तक रखने कठिन हो जाते है। वही उसकी सौन्दर्यानुभूति का प्रमुख केन्द्र और विषयवासना की तृप्ति का प्रधान साधन है। सन्तान को जन्म देने का, उसका पालन-पोषण करने का और गृहस्थी का भार संभालने का एक मात्र साधन नारी ही है। शिवार्य ने भगवती आराधना मे लिखा है—

"नारी गुणवती धत्ते स्त्रीसृष्टेरग्रिमं पदम्"

गुणवती नारी संसार मे प्रमुख स्थान प्राप्त करती है। पत्नी की सेवा वचनातीत है।

जननी :

सुगृहिणी जब जननी बनती है तब विशेष समादरणीय हो जाती है। मुनिगण स्त्रियों को नमस्कार या उनका आदर नहीं करते परन्तु पूज्य मानतुंगाचार्य ने नारी के जननी रूप की प्रशंसा की है। इन्द्राणी ने जननी की स्तुति इस प्रकार की है—

त्वमम्ब भुवनाम्बासि, कल्याणी त्वं सुमङ्गला।
महादेवी त्वमेवाद्य, त्वं सुपुण्या यशस्विनी॥

जननी का उपकार अविस्मरणीय है। सन्तान को लायक बनाने का सम्पूर्ण श्रेय माता को है। माँ की ममता अन्यत्र नही मिल सकती है। इसीलिए प्रथम स्थान माता का है दूसरा स्थान पिता का। 'माता-पिता' कहा जाता है; पिता-माता कोई नही कहता। माँ का स्थान लेने में कोई समर्थ नही है।

नारी की गरिमा का पूर्ण विकास माता के रूप में होता है। कोमल और मधुर भावों से समाविष्ट मातृत्व का यह गौरवमय रूप सार्वयुगीन और सार्वदेशिक है, शाश्वत है। सभी सभ्य जातियों और सभी धर्मानुयायियों ने मातृत्व मे इस कोमल और मधुर रूप के दर्शन किये हैं तथा उस पर अपने को न्योछावर किया है।

हमारी संस्कृति मातृत्व में मानव-हृदय की सर्वोच्च गरिमा का दर्शन करती है। माता अपने रोम-रोम से अपनी सन्तान का कल्याण साधन करती है। वह जगज्जननी के रूप में सृष्टि करती है, लक्ष्मी के रूप में वैभव सौंपती है, सरस्वती के रूप में विद्या प्रदान करती है, शक्ति के

रूप में बल और ओज का संचार करती है और असुरनाशिनी के रूप में रक्षा करती है। माता को और माता के इन विविध उपकारों को कोई कभी भुला नही सकता। जननी को 'स्वर्गादपि गरीयसी' कहा जाता है।

आर्यिका :

स्त्री पर्याय का चरमोत्कर्ष आर्यिका के रूप को धारण करने में है। भगवान महावीर ने श्राविका के बाद आर्यिका का आदर्श उपस्थित किया है। जैनागम में आत्मसाधना के जो लिंग अर्थात् भेष कहे है उनमे आर्यिका का भी स्थान है—

एगं जिणस्स रूवं बीयं उक्किट्ठसावयाणं तु।
अवरट्ठियाण तइयं चउत्थ पुण लिंग दंसणं णत्थि ।।दर्शन पाहुड १८।।

जिनमत में तीन लिङ्ग कहे हैं—एक तो जिनेन्द्र का स्वरूप अर्थात् दिगम्बर रूप है। दूसरा उत्कृष्ट श्रावक (क्षुल्लक, ऐलक) का रूप है और तीसरा आर्यिकाओं का स्वरूप है। ये तीनों लिङ्ग पूजनीय है, चौथा लिङ्ग जिनमत मे है नही।

पञ्च महाव्रत, पञ्च समिति, पञ्चेन्द्रिय रोध, षडावश्यक, अस्नान, भूमि पर शयन, दतौन नही करना, केशलोच करना, एक बार भोजन करना, खड़े होकर अपने हाथ में ही भोजन करना और अचेलकत्व (नग्न रहना) ये २८ मूलगुण मुनियों और आर्यिकाओं के समान होते हैं तथापि स्त्रीत्व के कारण आर्यिकाओं के लिये ये कुछ अन्तर सहित है। जैसे—मुनि खड़े होकर आहार करते हैं तरन्तु आर्यिका बैठ कर आहार ग्रहण करती हैं। मुनिगण नग्न दिगम्बर होते हैं परन्तु आर्यिकाओं के लिए अचेलकत्व अर्थात् ईषत् थोडे वस्त्र का विधान है : १६ हाथ की एक शाटिका रखने का विधान है क्योंकि स्त्रियों को सावरण रहने की ही जिनाज्ञा है।

वस्त्र रखने का हेतु :

स्त्रियों के शरीर की आकृति विकृति रूप है। प्रति मास उससे चित्तशुद्धि का विनाशक रक्त स्राव होता है। उनकी कांख, योनि, स्तन आदि अवयवो में निरन्तर सूक्ष्म जीव उत्पन्न होते रहते हैं इसलिये जिनेन्द्र भगवान ने विरक्त अवस्था में भी स्त्रियों को सदैव वस्त्र सहित ही रहने का उपदेश दिया है। भोजन करते समय भी अपने शरीर को वस्त्र से आच्छादित रखने का आदेश है। स्त्रियाँ प्रमाद की मूर्ति हैं, प्रमादाधिक्य से ही उन्हें प्रमदा कहा जाता है; नित्य मोह, प्रद्वेष, भय, दुगंच्छा परिणाम रहते हैं; चित्त में विचित्र माया रहती है इसलिए इन्हें नग्न होना योग्य नहीं है। हां, यदि समाधिमरण के समय कोई आर्यिका वस्त्र मात्र का त्याग करना चाहे तो एकान्त में ऐसा कर सकती है।

"परमागम में आर्यिकाओं और श्राविकाओं का जो अपवाद लिङ्ग (वस्त्र का परित्याग) कहा है, वह लिंग भक्त प्रत्याख्यान के समय समझना चाहिए। अर्थात् आर्यिकाएँ भी इस समय एकान्त में वस्त्र त्याग कर सकती हैं।"

आर्यिकाओं के कर्त्तव्य :

वे परस्पर अनुकूल रहती है। एक दूसरी की प्रतिपालना करती हैं। ईर्ष्या, क्रोध, कलह, दुर्भावनादि दुर्गुणों से दूर रहती हैं। लोकापवाद के भय से लज्जा परिणाम, न्यायमार्ग में प्रवर्तना, मर्यादा तथा दोनों कुलों के योग्य आचरण रूप गुणों से सहित होती है। शील-संयम की प्रतिकृति आर्यिकायें पठन-पाठन, शास्त्रश्रवण, श्रुतचिन्तवन आदि शुभोपयोग में समय व्यतीत करती हैं। वे निर्विकार श्वेत शाटिका से अपने शरीर को आच्छादित करती हैं और साक्षात् क्षमा, त्याग दया की मूर्ति होती है।

वे शुद्धाशीला आर्यिकाएँ बिना प्रयोजन पराये स्थान पर नहीं जातीं। यदि भिक्षादि आवश्यक कार्यों मे श्रावकों के घर पर जाती हैं तो अपनी गणिनी से पूछ कर अन्य आर्यिकाओं को साथ में लेकर जाती हैं। रसोई करना, सूत कातना, बालक आदि को स्नान कराना, संयमी जनों के पैर धोना, वस्त्र सीना, रुदन करना, रागपूर्वक गीत गाना, भूमि स्वच्छ करना आदि क्रियायें आर्यिकाओ को नहीं करनी चाहिए।[1]

आर्यिकाएँ साधु को सात हाथ दूर से, उपाध्याय को छह हाथ दूर से तथा आचार्य को पाँच हाथ दूर से नमस्कार करती हैं।

किसी भी काल मे आर्यिकाओं के लिए अकेले स्वतन्त्र विहार करने का विधान नहीं है जैसे चतुर्थकाल में साधु अकेले जंगलों में पर्वत की गुफाओं में रहते थे वैसे चतुर्थकाल में भी स्त्रियों को जङ्गल में रहने का विधान नहीं है। आर्यिकाओं को ऐसे स्थान पर रहना चाहिए जहाँ से श्रावकों के घर नजदीक हों।

जैन ग्रन्थों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि आर्यिका माताएँ बहुत विदुषी होती थीं। प्राय:कर स्त्रियों को शिक्षा-दीक्षा देने वाली आर्यिका ही होती थी। उनकी छत्रछाया में रहकर कन्याएँ विद्याध्ययन करती थी। अनन्तमती और भीम की पत्नी हिडिम्बा ने तो आर्यिकाओं के आश्रय में रह कर जीवन का कुछ भाग बिताया था।

---

१. रोदणण्हाण भोयणपयणं सुत्तं च छव्विहारंभे।
विरदाण पादमक्खणधोवण गेयं च ण य कुज्जा॥ मू० आ० १९३॥

अञ्जना के जीव हेमोदरी ने जब लक्ष्मीरानी की ईर्ष्या से जिनप्रतिमा को जल में फिंकवा दिया था तब संयमश्री आर्यिका ने अपने अवधिज्ञान के द्वारा जान कर, हेमोदरी को समझाया था।

सम्वत् १४ में वर्मा की पुत्री जयदास की पत्नी गूढ़ा ने आर्यिका श्यामा की प्रेरणा से ऋषभदेव की प्रतिमा बनवाई।

सम्वत् १५ में वेणी सेठ की पत्नी भट्टसेन की माता कुमारमिश्रा ने आर्यिका जयभूति की शिष्या आर्यिका वसूला के उपदेश से सर्वतोभद्रिका प्रतिमा की स्थापना की।

सम्वत् ३१ में बुद्धदास की पुत्री तथा देवीदास की पत्नी गृहश्री ने आर्यिका गोदासा की प्रेरणा से जिनप्रतिमा की प्रतिष्ठापना की।

सम्वत् ३५ में आचार्य वलदिन्न की शिष्या तपस्विनी विचारशीला विदुषी कुमारमिश्रा आर्यिका की प्रेरणा से उसके पुत्र गंधिक कुमारभट्ट ने वर्धमान प्रतिमा का दान दिया।

सम्वत् ८४ मे दमित्र और दत्ता की पुत्री कुटुम्बिनी ने धरणीवृद्धि आर्यिका की प्रेरणा से वर्द्धमान भगवान की प्रतिमा स्थापित की।

इस प्रकार अनेक स्थलों पर उपदेश के द्वारा सम्बोधन करना, स्त्रियों कन्याओं को शिक्षा-दीक्षा देना आदि आर्यिकाओं का उपकार पाया जाता है।

यद्यपि आर्यिकायें सोलह हाथ की शाटिका रखती हैं तथापि वे एक हाथ की कौपीन रखने वाले ऐलक के द्वारा वन्दनीय होती हैं क्योंकि आर्यिकाएँ उपचार से महाव्रतधारिणी कहलाती हैं जबकि ऐलक अणुव्रत धारी श्रावक।

इन महासतियों का उपकार वर्तमान में भी कम नहीं है। कितनी ही पूज्य महिलायें वर्तमान मे आर्यिका पद पर अवस्थित हैं जो महाविदुषी हैं, तत्त्वज्ञा हैं, कठिन से कठिन व्रतों का निर्दोष रीत्या पालन करती हैं जैसे १०५ श्री वीरमतीजी, १०५ श्री इन्दुमतीजी, १०५ श्री धर्ममतीजी आदि। कितनी ही विदुषियां जैन धर्म और दर्शन की प्रौढ़ प्रवक्ता हैं विशुद्धमतीजी, विजयमतीजी, सुपार्श्वमतीजी आदि। कितनी ही कुमारिकायें हैं जो अनेक उच्चस्तरीय ग्रन्थों की रचयित्री हैं जैसे ज्ञानमतीजी, जिनमतीजी आदि। इन माताओं के अगणित उपकारों का विस्मरण कैसे किया जा सकता है। मुझे १० वर्षों से इन आर्यिका-माताओं के चरणसान्निध्य में रहने का सुयोग मिला है। इनके सान्निध्य में मुझे जो आत्मशान्ति प्राप्त हुई है, वह वचनातीत है।

यही कामना करती हूँ कि ये पूज्य आर्यिका माताएँ अपने ज्ञान, ध्यान, तपश्चरण में आगे बढ़ कर जिनशासन की प्रभावना में संलग्न रहें ताकि परम्परा निर्बाध गति से प्रवहमान होती रहे। इति शुभम्।

❖

❖ डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल, जयपुर

धार्मिक शिक्षण और नारी

☼

वर्तमान युग शिक्षाप्रधान युग है। चारों ओर शिक्षा-प्रसार का जोर है। क्या सरकार और क्या समाज दोनों ही इस ओर प्रयत्नशील है। सभी वर्गों में शिक्षा की प्यास जगी है। इसीलिये शिक्षाप्रचार पर प्रतिवर्ष देश का अरबों रुपया खर्च किया जा रहा है। आज देश में १०० से भी अधिक विश्व विद्यालय, हजारों महाविद्यालय, लाखों विद्यालय, प्राथमिक शालाएँ एवं गुरुकुल चल रहे है; जिनमे प्रतिवर्ष करोड़ों बालक-बालिकाओ को शिक्षित किया जा रहा है। यही कारण है कि आज हरिजन, गिरिजन, आदिवासी, अनुसूचित एवं जन जातियो में भी उच्च शिक्षित युवक-युवतियाँ मिलने लगे हैं।

जैन समाज देश का संभ्रान्त समाज माना जाता है। जब देश मे शिक्षा का एक दम अभाव था तथा कुल जनसंख्या का एक दो प्रतिशत से अधिक शिक्षित समाज नहीं था; उस समय भी जैन समाज में ४०-५० प्रतिशत शिक्षित समाज था और महिला वर्ग को छोड़कर अधिकांश पुरुष वर्ग चाहे उच्च शिक्षित न भी हो लेकिन साक्षर अवश्य था क्योंकि जैन समाज व्यापारी समाज रहा है और साथ में शासन में भी उसका प्रमुख सहयोग रहा है। मुस्लिम शासन एवं ब्रिटिश शासन दोनों में ही जैन बन्धु उच्च पदों पर कार्य करते रहे। कोष एवं हिसाब का कार्य तो हमेशा ही उनके पास रहा। जयपुर, जोधपुर, उदयपुर एवं बीकानेर जैसी बड़ी रियासतो में सैकड़ों जैन दीवान हुए जिन्होंने अत्यधिक कुशलता के साथ राज्य का शासन चलाया।

जैन-समाज में शिक्षा पर प्रारम्भ से ही ध्यान दिया गया है। जैन कथानकों के नायक श्रीपाल, भविष्यदत्त, जिनदत्त, करकण्डु, नागकुमार, आदि सभी ने विद्यालयों में जाकर शिक्षा प्राप्त की थी। जिनदत्त १५ वर्ष का होते ही जैन उपाध्याय के पास पढ़ने भेजा गया था।[1] भविष्यदत्त

---

१. वरस दिवस बाढइ जे तडउ, दिन दिन विरध करइ ते तडउ।
वरस पंच दस को सो उछाउ, बिज्जा पढरग उज्भाउरि जाइ ॥६३॥

एवं भविष्यदत्ता ने बहुत दिनों तक साहित्य संगीत एवं कला का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया था।[1] इसी तरह यशोधर को भी राजा ने चटशाला में पढ़ने भेजा जहां उसने लिखना-पढ़ना सीखा।[2]

ब्रिटिश शासनकाल में जब शिक्षा के प्रचार को सरकार का महत्त्वपूर्ण अंग माना जाने लगा, तो उस समय जैन समाज ने भी अपने युवकों को शिक्षित करने के लिये वाराणसी, जयपुर, मोरेना, सागर, ब्यावर जैसे बड़े नगरों में धार्मिक शिक्षण के लिए सस्कृत विद्यालय स्थापित किये। साथ ही, गांवों में भी धार्मिक पाठशालाएँ खोली गयीं जिनमें जैन बालक लौकिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक शिक्षा भी प्राप्त करते थे। प्रारम्भ में तो इन विद्यालयो में अच्छी संख्या में विद्यार्थी पढ़ने लगे क्योंकि दूसरे विद्यालय संख्या में कम थे लेकिन जैसे-जैसे अंग्रेजी शिक्षा का जोर बढ़ने लगा, नये-नये विद्यालय एवं महाविद्यालय खुलने लगे, जिनमें पढने से सरकारी नौकरियां मिलने लगीं तो जैन विद्यालयों में पढ़ने वाले छात्रों की संख्या भी कम होने लगी। गांवों में चलने वाले अधिकांश विद्यालय या तो बन्द हो गये या फिर रात्रि-पाठशालाओं के रूप में कार्य करने लगे। और आज स्थिति यह है कि समाज के ६० प्रतिशत विद्यार्थी इन पाठशालाओं में पढ़ने नहीं जाते हैं और इस कारण आजकल के युवकों में धार्मिक शिक्षा का पूर्णतः अभाव रहता है। डाक्टर, वकील, प्रोफेसर एवं चार्टर्ड अकाउन्टेन्ट बनने के बाद भी वे धर्म के प्रारम्भिक ज्ञान से वंचित हैं। तत्त्वार्थसूत्र, द्रव्य-संग्रह, छहढ़ाला, जैसे प्रारम्भिक ग्रन्थों का अध्ययन तो बड़ी बात है वे उनके नाम तक भी नही जानते। केवल जैन कुल मे पैदा होने के कारण वे जैन है।

युवकों में जैनधर्म-शिक्षा के अभाव की भयावह स्थिति से सारा-समाज चिन्तित है लेकिन चिन्तित होते हुए भी समाज का सभ्रान्त, धनिक एवं उच्च अधिकारी वर्ग अपने बच्चो को सेंट जेवियर, सेंटपाल, एवं सेंट एंजिला जैसे ईसाई स्कूलो में पढ़ने भेजता है। ऐसी स्थिति में समाज के बच्चों में धार्मिक शिक्षा आवे भी तो कहां से आवे। इसलिए समाज के नेताओं का चिन्तित होना मगरमच्छ के आंसू बहाने के बराबर है।

इसके अतिरिक्त समाज ने नारी-शिक्षा पर भी अभी तक विशेष ध्यान नहीं दिया है। उसने अपने बच्चों को डाक्टर, इन्जिनियर, वकील एवं पण्डित बनाने में तो रुचि ली है लेकिन बालिकाओं को धार्मिक शिक्षा किस प्रकार दी जावे, इसकी ओर कोई ध्यान नहीं है। आजकल नगरों में बी.ए., एम. ए. पास बालिकाएँ भी सैकड़ों की संख्या में मिलने लगी हैं और आधुनिक वातावरण के साथ-साथ

---

१. भविष्यदत्त रास—भास वीनतीनी।

२. पढन हेत मोंप्यौ चटसार, 'यशोधर चौपई' कविवर बूचराज एव उनके समकालीन कवि पृष्ठ सं. २०५।

उनका भी जीवन बदलने लगा है। विवाह होने के पश्चात् यदि पति धार्मिक ज्ञान से शून्य है तो वह खाने-पीने एवं मजे लूटने में ही जीवन की इति श्री मान बैठता है और उसी का साथ उसकी पत्नी को भी देना पड़ता है। वह भी धीरे-धीरे रात्रि भोजन करने लगती है और यदि मन्दिर घर से थोड़ी दूरी पर है तो प्रतिदिन देवदर्शन भी नहीं करती। इसलिये नारी-शिक्षा मे धार्मिक ज्ञान के पुट की अत्यधिक आवश्यकता है। आज श्री महावीरजी में ब्रह्मचारिणी कमलाबाई जी द्वारा संचालित आदर्श महिला विद्यालय एवं शोलापुर में पं० सुमतिबाई जी द्वारा संचालित श्राविकाश्रम जैसी संस्थाओं की आवश्यकता है जिनमें प्रतिवर्ष सैकड़ों छात्राएँ लौकिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक शिक्षा भी प्राप्त करती हैं। इन संस्थाओं में बालिकाओं मे जिस प्रकार धार्मिक सस्कार डाले जा रहे हैं वे अत्यधिक प्रशसनीय हैं। प्रतिदिन कतारबद्ध होकर, जब वहाँ की बालिकाएँ जिनमन्दिरजी को देव-दर्शनार्थ जाती हैं तो उनके संस्कारो मे परिवर्तन आना स्वाभाविक है।

यद्यपि नारी समाज में धार्मिक प्रवृत्ति होती है, वह धर्म भीरु भी होती है तथा व्रत, पूजा, दर्शन आदि करती है लेकिन आज के युवक एवं युवतियाँ जिस प्रकार भौतिक पाश में अपने आपको समर्पित करने लगे हैं उसकी रोक के लिए नारी शिक्षा हेतु ऐसे ही विद्यालयों की आवश्यकता है जहां का पूरा वातावरण ही धार्मिक सस्कारों से युक्त हो। इसलिये जिस नगर एवं गांव में जैन समाज के यदि १००-२०० घर भी हैं तो वहाँ आदर्श महिला विद्यालय श्रीमहावीरजी जैसे विद्यालयों की नितान्त आवश्यकता है। क्योंकि नारी-समाज में धार्मिक शिक्षा की जितनी आज आवश्यकता है उतनी पहले कभी नहीं रही।

आज विश्वविद्यालयों, विद्यालयों एवं पाठशालाओं में छात्राएँ जितने मनोयोग से एवं अनुशासित होकर अध्ययन करती हैं वह तो प्रशंसनीय है लेकिन वे धार्मिक शिक्षा से वंचित रहने के कारण धार्मिक संस्कारों से दूर होती जा रही है। धर्म क्या है? श्रावकों के षट् कर्म कौन से है? सप्त व्यसनों का सेवन मानव जीवन के लिये कितना घातक है? देवदर्शन, रात्रि भोजन त्याग तथा जल छान कर पीने के पीछे कितनी धार्मिकता एवं व्यावहारिकता है? आदि का उसे यदि सम्यक्ज्ञान करा दिया जावे तो उसका जीवन सहज में बदल सकता है। और इस तरह से शिक्षित युवतियाँ माता बनने के पश्चात् अपने संस्कारों को अपने बच्चों को भी दे सकेंगी। एक मां अपने पुत्र के लिये शत अध्यापकों से भी बढ़ कर होती है। माता ही बालक की आदर्श गुरु है, शिक्षिका है। बालक का अधिक समय मां के आस-पास ही बीतता है अतः प्रारम्भिक संस्कार उसे अपनी माता से ही प्राप्त होते हैं।

भारतीय नारी का इतिहास उज्ज्वलता का पृष्ठ है। उसकी परम्परा महासतियों ने सुरक्षित रखी है। ब्राह्मी, सुन्दरी, अंजना, अनन्तमती, दमयन्ती, चन्दना और सीता पर समाज की

संस्कृति ने गर्व किया है। वर्तमान समय में भी पूज्य आर्यिका ज्ञानमतीजी, आर्यिका विशुद्धमतीजी, आर्यिका इन्दुमतीजी, आर्यिका सुपार्श्वमतीजी एवं आर्यिका विजयमतीजी, ब्र० कौशलजी, जैसी महिलारत्न हैं जो परम विदुषी हैं तथा अष्टसहस्री, गोम्मटसार, त्रिलोकसार, समयसार जैसे महान् ग्रन्थों की वेत्ता हैं। यह समाज के लिये शुभ है। ऐसा अवसर सम्भवतः सैंकड़ों वर्षों के पश्चात् आया है, जब नारी समाज ने निवृत्तिमार्ग अपनाया है। इन साध्वियो के माध्यम से नारी समाज में धर्म के प्रति पर्याप्त रुचि बढी है लेकिन आज का वातावरण जिस प्रकार भौतिकता की चकाचौध में फँसता जा रहा है उसमें जितना इस ओर जाग्रत रहा जावेगा उतना ही वह देश एवं समाज के लिये श्रेयस्कर होगा।

आचार्य जिनसेन ने हरिवंश पुराण में लिखा है कि विदुषी नारी स्त्री जाति में अग्रगणनीय है। समाज का वह नेतृत्व कर सकती है तथा उसे सम्यक् मार्ग पर ढाल सकती है। इसलिये नारी शिक्षा में धार्मिक शिक्षा की अत्यधिक आवश्यकता है। वर्तमान में महिला समाज में भी समाज सेवा करने की रुचि पैदा होने लगी है तथा उसकी भी हार्दिक इच्छा होने लगी है कि वह भी सामाजिक कार्यों में पुरुष का हाथ बँटाए क्योंकि सामाजिक कार्यों में अब तक उसकी प्रायः उपेक्षा ही रही है। पुरुष-समाज ने समाज-संचालन के सारे अधिकार अपने पास ही रखे हैं इसलिये महिला समाज की इस ओर रुचि होना स्वाभाविक है। महिला समाज की इस रुचि का स्वागत किया जाना चाहिए।

लेकिन आज सबसे बड़ी आवश्यकता लौकिक शिक्षा के साथ धार्मिक शिक्षा को संयुक्त करने की है क्योंकि एक बार यदि महिला समाज भी पुरुष समाज के समान भौतिकता की चकाचौंध में फँस गया तो फिर उसे वापिस सुसंस्कारित करना बड़ा कठिन कार्य होगा। लेकिन यह कार्य अत्यधिक कठिन है। समाज महिला विद्यालय भी खोल सकती है। लाखों-करोड़ों रुपया भी व्यय कर सकती है लेकिन जब तक उन संस्थाओं में समर्पित जीवन बिताने वाली अध्यापिकाएँ नही होंगी तब तक छात्राओं के जीवन को प्रभावित नहीं किया जा सकेगा। प्रत्येक शिक्षासंस्था की प्रधान, ब्रह्मचारिणी कमलाबाई जी, एवं पं० सुमतिबाई जी जैसी समर्पित जीवन वाली महिलाएँ हों तो उनमें पढ़ने वाली छात्राओं के जीवन का कायाकल्प हो सकता है। इसलिये पहिले ऐसे समर्पित जीवन वाली महिलाओं की तलाश करनी पड़ेगी और फिर उन्हें सुसंस्कारित करके महिला विद्यालयों का उत्तरदायित्व सौंपना पड़ेगा, तभी इस दिशा में अधिक कार्य हो सकता है।

आज समाज में जितनी आर्यिकाएँ हैं उनका यह भी कर्त्तव्य है कि वे समाज को नारी-शिक्षा की ओर जाग्रत करें तथा साथ में ही समर्पित जीवन वाली बहिनों को भी तैयार करें; जिससे उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाली सभी बालिकायें भविष्य में आदर्श गृहिणियाँ बन कर समाज के जीवन का कायाकल्प कर सकें।

❖

❖ डॉ० लालबहादुर शास्त्री, दिल्ली

जैनधर्म और नारी

धर्म का सम्बन्ध प्राणी मात्र से है। अमुक प्राणी धर्म का आचरण करे, अमुक न करे, ऐसा कोई प्रतिबन्ध नही है। जिस प्रकार हर एक व्यक्ति को स्वस्थ रहने का अधिकार है, स्वस्थ रहने के लिए उस पर कोई प्रतिबन्ध नही है, यही बात धर्म के सम्बन्ध में भी है। 'स्वस्थ' शब्द का अर्थ निरोग रहना है। धर्म के पक्ष में इसका अर्थ आत्मस्थ रहना है। आत्मस्थ रहने के लिए किसी को इन्कार कैसे किया जा सकता है? पर हर एक व्यक्ति चाहे कि मैं आत्मस्थ हो जाऊं यह उसकी अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग शक्तियों पर निर्भर है, मात्र चाहने पर नही। स्वस्थ रहने के लिए पौष्टिक आहार और औषधियां उसी व्यक्ति के लिए उपयोगी होती हैं जिसकी पाचन शक्ति अच्छी है अन्यथा उसे चतुर वैद्य की सम्मति के अनुसार ही अपना खानपान बनाना होगा। धर्माचरण मे भी यही बात है।

धर्म दो प्रकार का है—एक श्रावकधर्म और दूसरा मुनिधर्म। इन दोनों ही धर्मों के लिए शारीरिक योग्यता और आत्मशक्ति उचित मात्रा में होनी चाहिए। यही कारण है कि विभिन्न प्राणियों में उनकी अपनी योग्यताओं के अनुसार उनमें धर्म की स्थिति कम-अधिक बतलाई गई है। उदाहरण के लिये पुरुष जो वज्रवृषभनाराचसंहनन धारण करने वाला है वह मोक्ष भी जा सकता है और सातवें नरक भी, क्योंकि उसकी शारीरिक योग्यता और उसके अनुसार उसके आत्मा के भाव अधिकाधिक अच्छे और अधिकाधिक बुरे हो सकते हैं। किन्तु स्त्री (कर्मभूमि से सम्बन्धित) के वज्रवृषभनाराचसंहनन कभी नहीं होता, अधिक से अधिक उसके अर्द्धनाराचसंहनन हो सकता है अत: वह उत्कृष्ट से उत्कृष्ट धर्म का आचरण करे तो १६वें स्वर्ग तक ही जा सकती है और जघन्य से जघन्य पाप करे तो छठे नरक तक जा सकती है। कहने का तात्पर्य यह है कि धर्म का पालन शारीरिक योग्यता के अनुसार हो सकता है और आत्मा भी शरीर से प्रभावित रहती है अत: धर्माचरण को लेकर शास्त्रकारों ने विभिन्न पहलुओं का वर्णन किया है।

मुनि सम्बन्धी धर्माचरण अर्थात् महाव्रतों का पालन पुरुष ही कर सकता है किन्तु स्त्री को महाव्रतों का पालन नहीं बताया क्योंकि उसकी शारीरिक योग्यता इस प्रकार की नहीं है। कहा

जा सकता है कि स्त्री भी नग्न हो सकती है और हिंसादि पापों का सर्वदेश त्याग कर सकती है फिर उसे मुनित्व का निषेध क्यों किया है ? समाधान यह है कि मात्र नग्न बनने से ही तो मुनि नहीं बना जाता किन्तु नग्न हो जाने पर भी मुनि जैसे भाव अर्थात् महाव्रतादिरूप परिणाम होने चाहिए, वे स्त्री के नहीं हो सकते। उसमें भावों की उतनी उत्कटता नहीं हो सकती। इसलिये व्यक्तित्व के अनुसार ही धर्माचरण की उपयोगिता शास्त्रों में बतलाई है।

जैनधर्म में नारी को अधिकाधिक उन्नत स्थान दिया है परन्तु उसकी सीमा के अन्दर ही और वह सीमा है उसकी बहिरंग और अन्तरंग शक्ति। नारी को दिगम्बर मुद्रा धारण करना नहीं बताया गया है फिर भी उसकी जो उत्कृष्ट सीमा आर्यिका का पद है उसे भी उपचार से लगभग मुनि के पद की तरह ही माना है। आर्यिका का पद श्रावक की ग्यारहवीं प्रतिमा तथा ऐलक (पुरुष) का भी उत्कृष्ट पद ग्यारहवीं प्रतिमा है, फिर भी आर्यिका को मुनि कल्प ही माना है क्योंकि उसके साड़ी मात्र परिग्रह है; उस साड़ी मे भी उसकी किसी प्रकार की ममता या आसक्ति नही है। उसके सामने ऐसी अनिवार्य परिस्थितियां हैं कि वह छोडना चाहते हुए भी उस साड़ी को छोड़ नहीं सकती जबकि ऐलक चाहे तो लंगोटी छोड़ सकता है लेकिन अभी लंगोटी से उसका लगाव है इसलिये वह उसे छोड़ना नही चाहता। अतः कहना होगा कि किसी अपेक्षा से आर्यिका का पद ऐलक से अधिक ऊँचा है। साधुओ मे आचार्यपद की भांति आर्यिकाओं में भी गणिनी का पद है जो आचार्य की तरह ही शिष्याओ के निग्रह-अनुग्रह, दीक्षा-प्रदान आदि की अधिकारिणी होती है जब कि ऐलकों में ऐसा कोई पद नही है।

साधुओं के २८ मूलगुणों की तरह आर्यिकाओं के भी उसी प्रकार मूलगुण होते हैं। यद्यपि उनमें नग्नता नही होती फिर भी आचेलक्य जो गुण है उसी मे उनका नग्नता गुण आजाता है। आचेलक्य शब्द अचेलक शब्द से बना है। अचेलक का अर्थ निर्वस्त्र और ईषद् वस्त्र दोनों ही होते हैं। अतः मुनि जहाँ निर्वस्त्र हैं वही आर्यिका ईषत् वस्त्र वाली है। अतः दोनों ही अपने-अपने अर्थानुसार अचेलक हैं। जहाँ तक अध्ययन-स्वाध्याय की बात है, स्त्री को सभी प्रकार के स्वाध्याय की छूट है। वैदिकों की तरह 'स्त्री और शूद्र वेद न पढ़े' इस प्रकार की कोई निषेधाज्ञा नहीं है। पुरुष जिन धर्मग्रन्थों का अध्ययन कर सकता है, नारी भी उन्हीं ग्रन्थों का अध्ययन कर सकती है। पूजा-अभिषेक आदि के लिये भी उसे किसी प्रकार का निषेध नहीं है। हाँ अशुचि दशा में नारी पूजा-अभिषेक नही कर सकती किन्तु पुरुष भी किसी प्रकार की अशुचि दशा में हो तो वह भी पूजादि नही कर सकता।

लोकाचार में भी नारी का पर्याप्त उच्च स्थान जैनधर्म में माना गया है। शास्त्रकारों ने मनुष्य के चारो पुरुषार्थों की सिद्धि सुयोग्य पत्नी के आधार पर ही मानी है। ११ वी शताब्दी के

महाविद्वान् आशाधरजी का कहना है कि सत् कन्या प्रदान करने वाला गृहस्थ चारो ही पुरुषार्थों को देता है। सुयोग्य पत्नी के बिना गृहस्थ का धर्म-अर्थ-काम में से कोई पुरुषार्थ सिद्ध नही हो सकता। कौन गृहस्थ धर्म का आचरण कर सकता है? इस सम्बन्ध में पण्डित आशाधरजी ने गृहस्थो के लिए अनेक निर्णय दिये हैं, उनमें एक पद है 'तदर्हंगृहिणी'। इसका अर्थ है कि श्रावक धर्म का आचरण करने वाले गृहस्थ के लिये उसके योग्य गृहिणी भी होनी चाहिए अन्यथा वह श्रावकधर्म का आचरण नही कर सकता है।

लोक में पत्नी के लिये धर्मपत्नी शब्द का प्रयोग होता है। इसका मतलब है कि जो धर्मपूर्वक धर्मविधि से परिगृहीत की गई है और जो सभी धर्मकार्यों में बायाँ हाथ वन कर साथ वैठती है, वह धर्मपत्नी है। अर्थात् जो धर्म कार्यों में सहायक है वह धर्मपत्नी है। इससे स्पष्ट है कि गृहस्थ का क्रियात्मक धर्माचरण बिना सुयोग्य सङ्गिनी के सम्पन्न नहीं हो सकता; इससे भी नारी की महत्ता प्रकट होती है। इसी अर्थ का द्योतन करने वाला सहधर्मिणी शब्द है अर्थात् पति के साथ जिसके कर्त्तव्य जुडे हुए हैं, वह सहधर्मिणी होती है।

'सागारधर्मामृत' में पति को स्त्री की उपेक्षा न करने को लिखा है—

स्त्रीणां पत्युरुपेक्षैव, परं वैरस्य कारणम्।
तन्नोपेक्षेत जातु स्त्रीं वाञ्छन् लोकद्वये हितम् ॥३।२७॥

"पति का स्त्री की उपेक्षा कर देना ही अत्यधिक वैर का कारण होता है। इसलिये यदि इस लोक और परलोक में हित की वाञ्छा है तो कभी स्त्री की उपेक्षा नही करनी चाहिए।" इस श्लोक में स्पष्ट रूप से नारी की उपेक्षा का निषेध किया है। साथ ही हेतु भी दिया है कि दोनों लोको में हित की वाञ्छा है तो स्त्री की उपेक्षा न करे। इससे स्पष्ट आभासित है कि योग्य पत्नी से दोनों लोक सुधरते हैं।

नारी के लिये एक और शब्द प्रयुक्त होता है—अर्द्धाङ्गिनी। अर्द्धाङ्गिनी शब्द का अर्थ है आधे अङ्ग वाली अर्थात् पति-पत्नी दोनों का अपने कर्त्तव्यों की अपेक्षा परस्पर इतना सामीप्य है कि वे दो न होकर एक व्यक्तित्व को लेकर रह रहे हैं अतः उनके एक अग में आधा हिस्सा पत्नी का भी है; इसलिये उसे अर्द्धांगिनी कहा जाता है। 'घर' शब्द का प्रयोग भी पण्डित आशाधरजी ने पत्नी के लिये किया है न कि पति के लिये। वे लिखते हैं—"गृहं हि गृहिणीमाहुर्न कुड्यकटसंहतिम् ॥२।५६॥ अर्थात् गृहिणी को ही घर कहा जाता है, ईंट पत्थरों के ढेर को घर नहीं कहा जाता। लोक में भी 'घरवाली', 'घर से' आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। अतः स्पष्ट है कि घर की स्थिति गृहिणी से है न कि पति से। यदि गृहस्थ के पत्नी नहीं है तो उसे किसी प्रकार के परिग्रह-सञ्चय की आवश्यकता नहीं है। यदि वह सञ्चय करता है तो उसके लिये लिखा है—"मृतमण्डन कल्पो हि

स्त्रीनिरीहे परिग्रहः" अर्थात् जिसे स्त्री की आवश्यकता नहीं है उसका परिग्रह संचय करना मुर्दे का शृंगार करने के समान है।

तीर्थङ्करों के माता-पिता में यह माता का ही प्रभाव है कि तीर्थङ्कर के गर्भ में आते ही छप्पन कुमारियां (देवियाँ) उनकी निरन्तर सेवा करती हैं जब कि पिता को इस प्रकार का कोई सौभाग्य प्राप्त नहीं होता। भगवान आदिनाथ की स्तुति करते हुए आचार्य मानतुङ्ग उनकी माता की भी प्रशंसा करते है—

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं,
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥२२॥

भावार्थ :— हे जिनेन्द्र ! सैकड़ों माताएं सैंकडों पुत्रों को जन्म देती है लेकिन आप जैसे (महान्) पुत्र को जन्म देने वाली आपकी माता के अतिरिक्त अन्य कोई दूसरी माता नही है। ठीक भी है— सूर्य की किरणों से दिशाएँ तो सभी प्रकाशित होती हैं परन्तु सूर्य को उत्पन्न करने वाली तो एक पूर्व दिशा ही है। इससे पूर्व दिशा की भाँति तीर्थङ्कर की माता को मांगलिक बताया है। तीर्थङ्कर जैसी महान् आत्मा को जन्म देने का श्रेय नारी को मिलता है पुरुष को नहीं जब कि पिता भी उस जन्म में सहायक है।

निस्सन्देह, नारी का अपना एक महत्त्व है। धर्म के अधिकारों के सम्बन्ध में नारी की वञ्चना नही की गई है किन्तु नारी की शक्ति, संहनन, योग्यता आदि को देखकर जैनधर्म में उसे पूरा-पूरा धर्माचरण का अधिकार दिया गया है। नारियों में ज्ञान और विद्वत्ता की भी कमी नहीं होती, उनमें सरस्वती का रूप भी रहता है।

सारांश यह है कि जैनधर्म में नारी को उच्चस्थान प्रदान किया गया है। यह बात दूसरी है कि संहनन की दृढ़ता, अंगोपांग की रचना एवं तन्निमित्तक आत्मशक्ति को लेकर नग्नता की आज्ञा न दी हो फिर भी उसे यथाशक्ति धर्माचरण करने की कोई रोकटोक नहीं है।

❖

❖ (डा० महेन्द्र सागर प्रचंडिया, अलीगढ)

जैनधर्म की अलौकिकता

संमार में सुख और शान्ति प्राप्त्यर्थ अनेक धार्मिक आस्थाएं और मान्यताएं प्रचलित हैं। व्यक्ति और वर्ग उदय की बाते लगभग सभी में उपलब्ध है। जैनधर्म में जरा इससे ऊपर उठकर सर्वोदय की बात भी कही गई है।

भारत और भारतेतर प्रचलित सभी मान्यताओ में व्यक्ति-शक्ति को सर्वोपरि माना गया है। प्रभु, ईशु, बुद्ध, मुहम्मद आदिक दिव्य संज्ञाओं मे वह व्यजित किया गया है। इनकी महती कृपा से बिगड़े काम बना करते हैं, ऐसी धारणाएं प्राय: इनके अनुयायियो में व्याप्त हैं। जिनेन्द्र-मार्ग इस धारणा को स्वीकार नही करता। यहां किसी व्यक्ति-शक्ति की वंदना नही की गई है। ऐसी स्थिति में उसकी कृपाकोर का प्रश्न ही नही उठता।

जिनेन्द्र मार्ग मे गुणों की वन्दना का विधान है। गुणी, परमेष्ठि कहे जाते हैं। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु नामक पदवियाँ दिव्य आत्मिक गुणों की धारिणी हैं। इन गुणों का चिन्तवन कर प्राणी अपने अन्तरङ्ग में व्याप्त इन आत्मिक गुणो के उदय–उत्कर्ष की कामना-भावना भाता है। गुणो के पुंज मात्र निमित्त हैं, सुख और ऐश्वर्य के निर्माता और दाता नहीं। व्यक्ति अपने कर्म-पुरुषार्थ द्वारा सुख और शान्ति को प्राप्त करता है। शुभ और अशुभ कर्मों का कर्त्ता और भोक्ता भी वही है। इस प्रकार अपने ही पुरुषार्थ से प्रत्येक प्राणी प्रभु बनने की शक्ति और सामर्थ्य रखता है। इसीलिए इस आर्षमार्ग को व्यक्ति और वर्ग की अपेक्षा सर्वउदय की संज्ञा प्रदान की गई है। व्यक्ति वित्त से नही वृत्ति से हीन और प्रवीण हुआ करता है। दर्शन अर्थात् तत्त्वों के स्वरूप को जानना, ज्ञान अर्थात् तत्व-बोध और भेदविज्ञान को मानना तथा चारित्र अर्थात् दर्शन और ज्ञान-भेदविज्ञान को जीवन में उतारना, उसमें लय हो जाना वस्तुत: कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है। व्यक्ति को इस मार्ग पर स्वयं चलना होता है और कर्म क्षय

करता हुआ आज नहीं तो कल अन्ततोगत्वा एक दिन अवश्य वह मोक्ष अर्थात् आवागमन के निरर्थक चंक्रमण से मुक्त हो सकता है।

जिनेन्द्र मार्ग की अतिरिक्त विशेषता है कि यहाँ स्वयं जीने और दूसरों को जीने देने की भावना भाई जाती है।

"सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे।
बैर-पाप अभिमान छोड़ सब, नित्य नए मंगल गावे॥"

❖

काल सदा रे! सावधान,
हम गाफिल क्यों सोते हैं?
क्यों न उच्च जीवन धारण कर
कालजयी होते हैं।

❖ उपाध्याय मुनिश्री भरतसागर

मानव दुःखी क्यों ?

☼

आशा-तृष्णा की दहकती आग से पीड़ित आज का जनमानस त्याग भावना को छोड़ कर परिग्रह सञ्चय में रत हो भ्रमित हुआ सा भटक रहा है। उसकी आवश्यकताएँ निरन्तर वृद्धिगत है यदि उसे तीन लोक की सम्पत्ति भी मिल जाए तो भी उसकी इच्छाएँ पूर्ण नही होतीं। चक्रवर्ती के पास कितना वैभव, कितनी सम्पदा होती है पर वह भी सबको निस्सार तृणवत् जानकर उन्हें छोड़ कर मुक्ति की राह लेता है; आज हमारे पास चक्रवर्ती की सम्पत्ति का एकांश भी नही है परन्तु आसक्ति में, इच्छाओं में डूबे हम एक जीर्ण-वस्त्र का भी परित्याग करने मे असमर्थ हैं। कैसी विचित्रता है ? परिणाम यह है कि आज चारों ओर अशान्ति, आकुलता एवं दु ख का साम्राज्य ही फैला दिखाई-पड़ता है।

माया मरी न मन मरा, मर-मर गया शरीर।
आशा-तृष्णा ना मरी, कह गए दास कबीर ।।

संसार की विषयवासनाओं के पंक में लिप्त इस जीव को यह नश्वर शरीर तो अनन्त बार प्राप्त हुआ और अनन्त बार छूटा किन्तु अदेहावस्था के उत्पाद की घातक आशा-तृष्णा आज तक नहीं मरी, नहीं घटी, नष्ट नहीं हुई। आचार्यों ने स्वानुभव से बताया है कि त्याग ही प्रशस्त सुख शान्ति का मार्ग है, भोग संसार समुद्र की वृद्धि का कारण है। कहा है—

जितने पास अभाव रहेंगे, उतनी मञ्जिल पास रहेगी।
जो मुश्किल में मुस्कायेंगे, मुश्किल उनकी दास रहेगी ।।

संयम, निष्परिग्रहत्व, निर्ममत्व हो एवं इच्छा का जितना-जितना निरोध होगा, मुक्तिवधू साक्षात् वरमाला-अर्पणार्थ प्रतीक्षा में रहेगी। जितनी-जितनी अभिलाषाये इच्छाये बढती जावेगी उतना-उतना संसार बढ़ता जाएगा, मुक्तिवधू सामने फटकना भी पसन्द नहीं करेगी।

प्रश्न है कि परिग्रह की लालसा बढ़ने के क्या कारण हैं ?

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने गोम्मटसार जीवकाण्ड में परिग्रह के वृद्धिगत होने के चार कारण बताए हैं—

१. उपकरणों को देखने से, २. भुक्त पदार्थों के स्मरण से, ३. ममत्व परिणामों के होने से और ४. लोभ कषाय के उदय-उदीरणा होने पर।

(१) आज अनुकरण की प्रवृत्ति विशेष है। फैशन का बोलबाला है। विज्ञान की प्रगति नित नई वस्तुओं, शृंगार प्रसाधनों, चलचित्रों को प्रस्तुत कर रही है। भोले सांसारिक प्राणी का चञ्चल मन उन सबके प्रति आकृष्ट होकर उन्हे पाने के लिए, अपनाने के लिए लालायित हो उठता है और ऐसा करने मे वह अपना विवेक और शील भी खो बैठता है। भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति आज ह्रासोन्मुख दिखाई देती है पश्चिम की अन्धानुकरण की प्रवृत्ति आश्चर्य नही कि उसका सर्वथा ही लोप कर दे। भारतीय नर नारियों को चाहिए कि वे अपनी संस्कृति और सभ्यता को सुरक्षित रखते हुए जीवन यापन करे। इस मशीनी युग मे मनुष्य भी मानो मशीनवत् होता जा रहा है, जड़ होता जा रहा है, भौतिकता की होड में, भौतिक वस्तुओं के संग्रह में इतना डूब गया है कि मानवीय मूल्य उपेक्षित हो गए हैं। नौ ग्रह तो प्रसिद्ध हैं ही परन्तु यह दसवां ग्रह 'परिग्रह' उन सबसे प्रवल है जो जन्म से लेकर मृत्यु तक जीव का पीछा नहीं छोड़ता।

(२) पापोदय से जीव की वर्तमान अवस्था यदि दयनीय है और पुण्योदय से पूर्व में वह बहुत सम्पदाओं का स्वामी रहा है तो ऐसी स्थिति मे उसे पूर्वकालीन समृद्धि का बार-बार स्मरण होता रहता है। वह विचार करता है कि पुनः कब मैं इनका स्वामी बन कर भोग विलास करूँ, परिग्रह सचय की यह भावना उसे जकड़े रहती है।

(३) करोड़ो की सम्पत्ति का स्वामी एक सम्राट यह विचार करता है कि कब मैं इनसे मुक्त होकर अकिंचनवृत्ति का धारी बनूँ—तो वह निष्परिग्रही है परन्तु एक सर्वथा दीन-हीन भिखारी जो सड़क पर भटक रहा है सोचता है कि मेरे पास कब सौ, हजार, लाख रुपये होंगे और मैं सांसारिक सुखों का भोग करूंगा, पूर्ण इन्द्रिय सुखो का आनन्द लूंगा, तो वह महा परिग्रही है।

अहमेदं एदमहं अहमेदं चावि अत्थि ममेदं।
अण्णं जं परदव्वं सचित्ताचित्त मिस्सं ॥

पर पदार्थों में—चाहे वे सचित्त हों या अचित्त—यह मेरा है, मैं इनका हूँ, ऐसे जो ममत्व परिणाम हैं वही परिग्रह है—"मूर्च्छा परिग्रहः"। कोई पदार्थ जीव का नही, जीव अकिंचन है यह निष्परिग्रहत्व का सूत्र है।

(४) यदि अन्तरङ्ग में लोभ कषाय की तीव्रता अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानादि जैसी हो तो बाह्य में वैसी ही परिग्रह संज्ञा होती है। लोभ ही समस्त पापों का जनक है। आज मनुष्य चन्द रुपयों के लोभ में अपना ईमान धर्म बेच कर जघन्य, घिनौने कर्म करने में भी नहीं हिचकता।

संयम के अभाव में परिग्रह का परिमाण न होने से भी परिग्रह संचय होता रहता है—

जो दस बीस पचास भये, शत लक्ष करोड़ की चाह जगेगी।
अरब खरब लों द्रव्य भयो तो, धरापति होने की आस लगेगी॥
उदय अस्त तक राज्य भयो पर, तृष्णा और ही और बढ़ेगी।
सुन्दर एक सन्तोष बिना नर, तेरी तो भूख कबहुं न मिटेगी॥

मनुष्य की इच्छाएं निरन्तर बढ़ती ही जाती हैं—

एक हुआ तो दस होते, दस होकर सौ की इच्छा है।
सौ होकर सन्तोष नहीं, अब सहस्र होय तो अच्छा है॥
यों ही इच्छा करते-करते, लाखों की हद तक पहुंचा है।
तो भी इच्छा पूरी नहीं होती, यह ऐसी डायनि इच्छा है॥

इच्छाओं से 'बस' होकर जब सन्तोषवृत्ति धारण करली जाए तभी सुख की प्राप्ति हो सकती है—एक अंग्रेज विद्वान् ने ठीक कहा है—

"Contentment is happiness and happiness is heaven."

जहाँ सन्तोष है वहाँ आनन्द है और जहाँ आनन्द है वहाँ स्वर्ग है। 'सन्तोषी सदा सुखी'।

एक धनाढ्य सेठ सानन्द सुखसमृद्धिपूर्वक जीवन यापन कर रहे थे। जीवन के सभी साधन उन्हें प्रचुरता से प्राप्त थे। एक दिन गद्दी पर बैठे बैठे कुछ सोचते हुए वे यकायक मूर्च्छित हो गए। नौकर-चाकर, मुनीम गुमाश्ता सभी दौड पड़े। डाक्टर बुलाया गया, सेठानी जी भी पहुँची। सामान्य उपचार के बाद सेठजी होश मे आ गए।

मुनीम ने यकायक अस्वस्थता का सबब पूछा तो सेठजी ने बताया कि मैं अपने आय-व्यय का लेखा जोखा लगा रहा था कि अचानक बुद्धि मे यह बात आई कि आवश्यकतानुसार यदि धन इसी प्रकार खर्च होता रहा तो सात पीढ़ी के बाद एक दिन यह सारी की सारी सम्पत्ति चुक जाएगी। इतने कठोर परिश्रम से अर्जित किया गया यह धन यदि इतना शीघ्र समाप्त हो जाए तो मेरे लिए इससे बढ़ कर और दुःख क्या हो सकता है?

सेठानी ने टोकते हुए कहा—क्या सात पीढी में और कोई कमाने वाला ही नहीं होगा?

मुनीम ने चापलूसी करते हुए कहा—नहीं! आप जैसे पुण्यवान को चिन्ता नही करनी चाहिए। आपको तो पद-पद पर सम्पत्ति मिलेगी।

सेठानी बोली—कल प्रातः मैं आपको एक ऐसा सरल उपाय बता दूंगी जिससे आपका धन कभी कम नहीं होगा बल्कि दिन दूना और रात चौगुना बढ़ता ही जाएगा।

सेठजी का चेहरा खिल उठा, वे बोले—सच ! तब तो मैं तेरा उपकार जन्मजन्मान्तर तक नही भूलूंगा ।

रात्रि बीती । सबेरा होते ही सेठजी ने सेठानी से पूछा तो सेठानी सेठ के हाथ में 'सीधा' (खाद्य सामग्री) भरी थाली थमाते हुए बोली कि यह ग्राप स्वयं जाकर शालिग्राम ब्राह्मण को दे ग्राग्रो । उसी को देना किसी ग्रौर को नहीं । ऐसा करने से ग्रापका खजाना ग्रटूट रहेगा ।

सेठ थाली लेकर ब्राह्मण के घर की ग्रोर चल दिया । शालिग्राम घर के बाहर बैठा हुग्रा मित्रों से धर्म-चर्चा कर रहा था । सेठ को ग्रपने घर की ग्रोर ग्राते देख कर उसने खड़े होकर ग्रावभगत की । सेठ ग्रपने हाथ की थाली को ग्रागे करके बोला—विप्रदेव ! ग्राज यह 'सीधा' मैं ग्रापके लिए लाया हूँ, ग्राप इसे स्वीकार करें । ब्राह्मण कुछ क्षणों तक मौन रहा, सेठ उसकी ग्रोर देखता रहा ।

ब्राह्मण ने ग्रपना मौन तोड़ते हुए कहा—सेठजी ! मैं इस सामग्री को तभी स्वीकार कर सकता हूँ जब कि ग्राज ग्रभी तक किसी ग्रौर घर से 'सीधा' न ग्राया हो; मैं ब्राह्मणी से पूछ कर ग्रभी ग्रापको बताता हूँ ।

शालिग्राम कुछ ही क्षणों में घर के भीतर जाकर लौट ग्राया ग्रौर सेठ को बोला—सेठजी ! क्षमा करें । ग्राज तो मैं इसे ग्रहण नही कर सकता क्योंकि ग्राज के लिए तो पर्याप्त 'सीधा' पहले ही ग्रा गया है ।

सेठ ने ग्राग्रहपूर्वक कहा— कोई बात नहीं ! इसे रख ले, यह कल काम ग्राएगा इसमें कोई खराब होने वाली चीज नहीं है ।

शालिग्राम ने उत्तर दिया—कल के लिए सग्रह करने जैसी भूल मैं नही कर सकता । ग्राज मेरे सामने है, कल पीठ के पीछे है । ग्राज के सामने कल पर मैं तो विश्वास नहीं कर सकता ।

सेठ के बहुत ग्रनुरोध करने पर भी ब्राह्मण देवता ने वह 'सीधा' स्वीकार नही किया । विवश हो सेठ को थाली सहित ज्यों का त्यों लौटना पड़ा । सेठानी ने भरी थाली देखकर सेठजी से पूछ ही लिया—क्यो ? क्या उसने 'सीधा' नहीं लिया ?

सेठ ने ग्रफसोस प्रकट करते हुए कहा—हाँ नही लिया क्योंकि ग्राज के लिए मुझसे पहले ही किसी ने उसके घर पर ग्राटा पहुँचा दिया था ।

सेठानी तपाक से बोली—तो क्या हुग्रा ? ग्राप दे ग्राते—यह 'सीधा' उसके कल काम ग्रा जाता ।

सेठजी बोले—वह ब्राह्मण दूसरे दिन के लिए आज ही संग्रह करना भी पाप समझता है। उसे आज जितनी आवश्यकता है बस वह उतना ही ग्रहण करता है, कल की चिन्ता नही करता।

अब सेठानी ने सेठजी को बोध देते हुए कहा—वह गरीब ब्राह्मण तो कल के लिए भी संग्रह करना पाप समझता है और आप इतने धनवान होते हुए भी सात पीढ़ियों के बाद धन पूरा हो जाने की चिन्ता करते हैं, क्या यह आपके लिए उचित है?

सेठजी को बात समझने में थोड़ा समय तो लगा पर अब उनका विवेक जागृत हो चुका था, अपनी भूल समझ मे आ गई थी।

बन्धुओं! अकिंचनवृत्ति ही सुख का साधन है। पुद्गल भी उपयोगी कब है—अकिंचन रूप होने पर, फिर जीव का तो यह स्वभाव ही है। केला छिलका उतार कर खाया जाता है, नारियल से भी छिलके रूप परिग्रह उतारना पडता है, नारंगी, मौसम्बी आदि अनेकानेक पदार्थ परिग्रह रूप आवरण हटाने पर ही उपयोगी बनते हैं। इसी प्रकार जब तक यह जीव अन्तर्बाह्य रूप परिग्रह का परित्याग नही करता तब तक कर्मों के बन्धन से मुक्त नही हो सकता, स्व स्वरूप को प्राप्त नहीं कर सकता। परिग्रहानन्दी दुर्ध्यान में लगा हुआ यह जीव रत्नत्रय रूप अपने सच्चे वैभव को भूल गया है और जड़ पदार्थों से अपना वैभव मानने लगा है पर सच्चा धन क्या है—

"गौधन, गजधन, बाजिधन और रतन धन खान।
जब आवे सन्तोष धन, सब धन धूरि समान॥"

समता, सन्तोष, आकिञ्चन्य, निर्ममत्व, निस्पृहत्व ही जीव के सच्चे सुख के साधक रत्न हैं। ये ही शाश्वत अजर अमर पद तक पहुँचाने वाले परममित्र एवं परममंत्र हैं।

❖ आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी

एक एव मनोरोध: सर्वाभ्युदयसाधक:

☼

आर्यिका सुपार्श्वमतीजी

मानव अहर्निश सुख प्राप्त करने की चेष्टा करता है किन्तु भीतर और बाहर दोनों के अशान्त वातावरण के कारण उसे एक क्षण भी शान्ति नही मिलती है। शान्ति प्राप्त करने के लिए मन की स्थिरता अत्यावश्यक है। चित्त की अस्थिरता से अनावश्यक सकल्प-विकल्प उठते हैं जो दु.ख के कारण होते हैं। मोहजन्य विषयवासनाएँ मानव के हृदय को मथ कर विषयों की ओर प्रेरित करती हैं जिससे व्यक्ति के जीवन में अशान्ति का अंकुर पैदा होता है।

शान्ति के अभिलाषी मनुष्य को सर्वप्रथम अपनी चित्तवृत्तियो के निरोध का अभ्यास करना चाहिए। पानी मे हम अपना प्रतिबिम्ब तभी देख सकते हैं जब वह पानी वायु के झकोरों से चंचल न हो अन्यथा उसमें मुखावलोकन नहीं हो सकता है। उसी प्रकार जब तक हमारा मन रूपी निर्मल सरोवर रागद्वेष तथा संकल्प विकल्प रूपी वायु के झकोरों से अस्थिर रहेगा तब तक आत्मावलोकन या आत्मानुभव सम्भव नही है। और आत्मानुभव के बिना सच्ची शान्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती। आत्मानुभूति का प्रधान कारण मन की चंचलता पर पूर्ण आधिपत्य कर लेना ही है।

पूज्य शुभचन्द्राचार्य ने 'ज्ञानार्णव' में लिखा है—

यमादिषु कृताभ्यासो, निः सङ्गो निर्ममो मुनिः।
रागादिक्लेशनिर्मुक्तं, करोति स्ववशं मनः॥२२-३॥

एक एव मनोरोधः, सर्वाभ्युदयसाधकः।
यमेवालम्ब्य सम्प्राप्ता, योगिनस्तत्त्वनिश्चयम्॥२२-१२॥

मनः शुद्धचैव शुद्धिः स्याद्देहिनां नात्र संशयः ।
वृथा तद्व्यतिरेकेण, कायस्यैव कदर्थनम् ॥२२-१४॥

जिसने यमादिक मे अभ्यास किया है, जो परिग्रह और ममता से रहित है ऐसा मुनि ही अपने मन को रागादिक से निर्मुक्त तथा अपने वश में करता है ।

एक मन को रोकना ही समस्त अभ्युदयों का साधक है क्योंकि मनोरोध का आलम्बन करके ही योगीश्वर तत्त्वनिश्चयता को प्राप्त हुए हैं ।

निस्सन्देह, मन की शुद्धि से ही जीवों के शुद्धता होती है, मन की शुद्धि के बिना केवल काय को क्षीण करना वृथा है ।

चित्तवृत्तियो के निरोध के लिए योगाभ्यास आवश्यक है । आत्मिक उत्कर्ष योगाभ्यास पर अवलम्बित है । योगाभ्यास के बल से केवलज्ञान की प्राप्ति होती है । साधारण ऋद्धि-सिद्धियाँ तो उनके चरणों में किङ्करी के समान लोटती रहती है; अनादिकाल से सञ्चित कर्म-कालिमा भी नष्ट हो जाती है ।

व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक उन्नति का अमोघ साधन योगाभ्यास ही है । जैनग्रन्थों मे योगाभ्यास की बड़ी महत्ता प्रतिपादित की गई है । पूज्यपाद स्वामी ने लिखा है—

योगीश्वरान् जिनान् सर्वान्, योगनिर्धूतकल्मषान् ।
योगैस्त्रिभिरहं वन्दे, योगस्कन्धप्रतिष्ठितान् ॥

जिन्होंने योग के द्वारा सम्पूर्ण पापों का नाश कर दिया है और जो योगस्कन्ध में प्रतिष्ठित है उन सब जिनेन्द्रों को मैं मन, वचन, काय त्रियोग से नमस्कार करता हूँ ।

आचार्य शुभचन्द्र ने 'ज्ञानार्णव' में योगो का विस्तृत वर्णन किया है । श्वेताम्बराचार्य हरिभद्र सूरि द्वारा रचे गये योगबिन्दु, योगदृष्टि समुच्चय, योगविंशिका, योगशतक आदि षोडशग्रन्थ हैं । बौद्ध ग्रन्थों में भी योग का वर्णन आया है । पातंजलि का 'योगदर्शन' बहुख्यात है ।

पूज्यपाद स्वामी ने 'इष्टोपदेश' में लिखा है—

ब्रुवन्नपि हि न ब्रूते गच्छन्नपि न गच्छति ।
स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु, पश्यन्नपि न पश्यति ॥४१॥

किमिदं कीदृशं कस्य, कस्मात्क्वेत्यविशेषयन् ।
स्वदेहमपि नावैति, योगी योगपरायणः ॥४२॥

आत्मतत्त्व में रुचि से स्थिर रहने वाला सम्यग्दृष्टि तो बोलता हुआ भी नहीं बोलता है, चलता हुआ भी नहीं चलता है, बाहरी चीजों को देखता हुआ भी कुछ नही देखता। आत्मध्यान में लगा हुआ योगी यह क्या है, कैसा है, किसका है, किस कारण से है और कहाँ है इस तरह विशेष विचार न करता हुआ अपने शरीर को भी नहीं जानता है तो फिर दूसरी बाहरी वस्तु के सम्बन्ध में तो कहना ही क्या !

योगाभ्यास में वह शक्ति है जिसके प्रभाव से समरसीभावनाप्राप्त योगी प्राणघातक घोरोपसर्ग आने पर भी अपने समभाव से तथा आत्मध्यान से विचलित नही होते क्योंकि समाधि में लीन हो जाने के बाद उनको बाह्य सुख दुःख का अनुभव ही नही होता; इसी के बल पर सुकुमाल, सुकौशल, पाण्डव, चिलाती आदि मुनियों ने घोरोपसर्ग आने पर भी आत्मध्यानरूपी तीक्ष्ण खड्ग के प्रहार से कर्मशत्रुओं का नाश कर अनुपम कल्याणमयी अविनाशी शिव सुख को प्राप्त किया है।

योग का ही नामान्तर ध्यान है। 'अमरकोश' में लिखा है—

योगः संनहनोपाय ध्यान संगति युक्तिषु
योगोऽपूर्वार्थ सम्प्राप्तौ संगतिध्यान युक्तिषु
वपुः स्थैर्यं प्रयोगे च विष्कम्भादिषु भेषजे ।

युज् समाधौ········। योग अनेकार्थवाची शब्द है। योग संनहन अर्थात् कवच है। जिस प्रकार कवच धारण करने वाले योद्धा के शरीर में शत्रुओं के बाण प्रवेश नही करते हैं उसी प्रकार योग रूपी कवच को धारण करने वाले योगी के अन्तरंग में मोहशत्रु के बाण प्रवेश नही करते हैं। योग का अर्थ औषधि भी है, जिस प्रकार औषधि सेवन करने से रोग नष्ट हो जाता है उसी प्रकार योगाभ्यास से जन्मजरामरणादि रोग नष्ट हो जाते हैं। योग का नाम उपाय है। यह मोक्ष का उपाय है। शरीर की स्थिरता का नाम योग है। सगति, ध्यान, युक्ति सब योग के नाम हैं। योग शब्द युज् धातु से घञ् प्रत्यय कर देने से सिद्ध होता है। योग शब्द मे वि, उप, सम् उपसर्ग लगाने से वियोग उपयोग, संयोग शब्द बनते हैं। इसका अर्थ आत्मसिद्धि भी है—आत्मनि आत्मानं युक्ति युज्यते इति योगः। अपनी परिणति को अपनी आत्मा में स्थिर करना योग है। पर पदार्थों से अपने चित्त को वियुक्त करना वियोग है। उपयुक्त करना उपयोग है और संयुक्त करना संयोग।

उपाध्याय यशोविजय ने 'अध्यात्मसार', 'अध्यात्मोपनिषद्' में योगविषय का निरूपण किया है। दिगम्बर आचार्यों ने भी आध्यात्मिक ग्रन्थों में ध्यान या समाधि का विस्तृतवर्णन किया है। समाधि भी योग का नामान्तर है। "ध्यान, ध्यानाभ्यास, समाधि, चित्तवृत्तिनिरोधः योगः"।

योग या ध्यान का फल बताते हुए पूज्यपाद स्वामी कहते हैं—

आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य व्यवहारबहिः स्थितेः ।
जायते परमानन्दः कश्चिद्योगेन योगिनः ॥४७॥
आनन्दो निर्दहत्युद्धं कर्मेन्धनमनारतम् ।
न चासौ खिद्यते योगी बहिर्दुःखेष्वचेतनः ॥४८॥इष्टोपदेश॥

लोक व्यवहार को छोड़ कर आत्मानुष्ठान में निमग्न भेदविज्ञानी योगी को अध्यात्मयोग के कारण परमानन्द प्राप्त होता है। उस आत्मानन्द के द्वारा वह योगी बाह्य विषयों में संज्ञाशून्यवत् हो जाता है तथा योग द्वारा निरन्तर कर्मेन्धन को भस्म करता है। जिस प्रकार स्वात्मा में लीन होना योग है तथा निर्जरा का कारण है उसी प्रकार पूर्वावस्था मे अपने चित्त को वीतराग प्रभु के चरणों में स्थिर करना भी योग है। उससे भी कर्मों की असंख्यातगुणी निर्जरा होती है। हे भगवन्! हृदय में आपके प्रवेश कर जाने पर दुष्कर कर्म भी उसी तरह ढीले पड़ जाते हैं जिस प्रकार चन्दन के वृक्ष पर मयूर के आजाने से सर्पों की कुण्डलियाँ ढीली पड़ जाती हैं।

शास्त्रस्वाध्याय तथा प्रभुभक्ति चित्त को एकाग्र करने के उत्कृष्ट आलम्बन हैं अतः सदैव चित्त की एकाग्रता का प्रयत्न करना चाहिए।

❖

आदहिदं कादव्वं,
जदि सक्कइ परहिदं च कादव्वं।
आदहिदं परहिदादो,
आदहिदं सुट्ठु कादव्वं ॥

❖ पं० तनसुखलाल काला, मुम्बई

सम्यक्त्व और संयम

✡

संसार में सुखोपभोग के लिए मनुष्य की खटपट रातदिन अनवरत चालू है। खानपान, कपड़ा-लत्ता, घर-द्वार, बालबच्चे, धन सम्पत्ति इत्यादि परिग्रह उसके बढ़ता ही जाता है। साथ ही क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषायों की भी वृद्धि होती जाती है। संसार में कुछ लोग धनवान हैं तो कुछ निर्धन। इस विषमता तथा बड़ा बनने की महत्त्वाकांक्षा से परस्पर संघर्ष, लूट-खसोट, चोरी, अनीति, अन्याय आदि अहितकारक वृत्तियां पैदा होती हैं जो मनुष्य को रसातल की ओर ले जाती हैं। सम्पत्ति की विषमता दूर करने के लिए जैनधर्म में कुछ मौलिक आचरणीय सिद्धान्त बताये गये हैं।

जैनधर्म में साधुओं को महाव्रती और श्रावकों को अणुव्रती कहा गया है अर्थात् साधुओं को पञ्च पापों का—हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह—पूर्ण त्याग करने वाला और गृहस्थों को एकदेश त्याग करने वाला होना चाहिए। गृहस्थों को एकदेश व्रत से प्रतिमा रूप चारित्र का पालन करना चाहिए। अभयदान, समदान, पात्रदान और दयादान ये चार प्रकार के दान करते रहना चाहिए। एक कवि ने कहा है—

> **कोई धन दे के मरता है,**
> **कोई मर कर के देता है।**
> **जरा से फर्क से बन जाते हैं,**
> **ज्ञानी से अज्ञानी ॥**

धन का उपयोग परोपकार के लिए अवश्य करना चाहिए। धन की तीन गतियों में—दान, भोग और नाश—पहली गति दान ही उत्तम मानी गई है। एक धर्मानुरागी गृहस्थ को लक्ष्मी ने कहा—मैं अब तुम्हारा घर छोड़ कर जाऊंगी। तुम्हारा पुण्य समाप्त हो गया है। गृहस्थ बोला—खुशी से जाओ। और उसने उसी समय से सप्तक्षेत्रों में दान करना प्रारम्भ कर दिया। लक्ष्मी गई नहीं। गृहस्थ ने लक्ष्मी से कहा—अरे तू अभी यहीं है, गई नहीं। वह बोली—तुमने दान करके फिर मुझे अपने यहां ही बांध लिया है, अब मैं नहीं जाऊंगी। भगवान को आहार दान करने से राजा

श्रेयांस को चक्रवर्ती पद, कामदेव पद तथा तीर्थङ्कर पद का बन्ध हुआ था। जंगल में बाघ ने एक मुनि पर आक्रमण किया तब एक शूकर ने बाघ से लड़ कर मुनि के प्राण बचाये और पारस्परिक मुठभेड़ में मर कर वह स्वर्ग में देव हुआ। कुछ काल के बाद वही जीव इस भरतभूमि में जन्म लेकर रुक्मिणी हुआ।

सद्गुरु के सिवाय इस अन्धकार मे हमारा मार्गदर्शन करने वाला कोई नहीं है। हमें भगवान के बतलाये हुए मार्गानुसार आचरण करना चाहिए। अष्टकर्मों का नाश करने के लिए उद्यम करने से कर्म नष्ट होकर आत्मा को परमात्मा बनाया जा सकता है। कहा है कि करणी करे तो नर का नारायण बन जाता है।

जैनत्व के लिए जिस प्रकार अष्टमूलगुणों—मद्य, मांस, मधु तथा पंच उदुम्बर फलों का त्याग—का पालन आवश्यक है उसी प्रकार अभक्ष्य भक्षण, अनछने जल और रात्रि में भोजन करने का भी त्याग आवश्यक है। गृहस्थ को प्रतिदिन देवदर्शन-पूजन भी अवश्य करना चाहिए। आज समाज में प्राय: इन मूलभूत बातों का पालन भी बहुत कम देखा जाता है। सच्चे देव, शास्त्र गुरु की आराधना जो व्यवहार सम्यक्दर्शन का कारण है मिथ्यात्व के सबब उसकी भी हीनता देखी जाती है तब मुक्ति के अमोघ उपाय—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की प्राप्ति कैसे हो?

आज शरीर जरा भी रोगाक्रान्त हुआ कि रोगी की भावना अशुद्ध दवा लेने की हो जाती है। अंग्रेजी दवायें—चाहे सूखी हो या गीलीं—प्राय: अशुद्ध होती हैं क्योंकि उनके निर्माण में अहिंसा का पालन नही होता और उनमें मद्यादिक का मिश्रण होता है। अहिंसापालन के लिए बहुत विचार-शील होना चाहिए। आधुनिक शिक्षाप्राप्त नवयुवकों को शुद्धि-अशुद्धिका कोई विवेक नही है। हिंसा-अहिंसा का कोई लक्ष्य नही है। चमडे के जूते बनाने के लिए क्रूम लैदर जिस विधि से प्राप्त किया जाता है उसका परिचय पाकर तो दिल काँप उठता है। विदेशो मे, चमड़े से बनी वस्तुओं का उपयोग कम होता जा रहा है परन्तु हम उनका खुल कर उपयोग करते है, यह दु.ख की बात है।

जैनधर्म का प्रमुख सन्देश अहिंसा के पालन का है। व्यक्ति को अपनी प्रत्येक क्रिया प्रमाद का परित्याग कर करनी चाहिए। भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने अहिंसा का जो लक्षण दिया है उसे हम ध्यान में लेवें तो हिंसा से बच सकते है। क्रोध, मान, माया, लोभादिक कषायों व रागादिक का उत्पन्न नहीं होना यही अहिंसा है। इनकी उत्पत्ति होना ही हिंसा है। अत: हमें अपने आपको, अपने परिणामों को निर्मल बनाने के लिए सम्यक्चारित्र का पालन करना चाहिए। आत्मस्वभाव को प्राप्त करने का यही उत्तम मार्ग है।

हम आजकल शरीर की पुष्टि तथा तुष्टि में ही अपना सारा जीवन नष्ट कर मूढ़ बन जाते हैं। संयम की तो बात भी हमें नही सुहाती। होटल के खान पान का त्याग कर देखें तो सही

एक बार, निश्चय ही शुद्ध खान पान से परिणामो में निर्मलता आएगी। उसी निर्मलता की प्राप्ति के लिए अगालित जल, अभक्ष्य भक्षण और रात्रिभोजन का निषेध किया है आचार्यों ने। प्रथमानुयोग के ग्रन्थों के स्वाध्याय से ज्ञात होगा कि साधारण व्रतादि के संयमपूर्वक पालन करने से जीवों ने दुर्गति का त्याग कर उत्तमगति प्राप्त की है। तिर्यञ्च प्राणी भी सुधर कर तीर्थङ्कर पद तक पहुँच गए तब क्या हम यदि इस दिशा मे प्रयत्न करे तो हमारा आत्मकल्याण नही हो सकता।

पापों की निवृत्ति के लिए गृहस्थ को षडावश्यकों का—देवपूजा, गुरुपास्ति, स्वाध्याय, संयम, तप, दान—नियमित पालन करना चाहिए। अणुव्रत रूप में व्रतों का पालन करना चाहिए ताकि उत्तम गति की प्राप्ति हो। देव पर्याय मे विदेहक्षेत्र मे जाकर साक्षात् तीर्थङ्कर के दर्शन कर अपनी भवावलि का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। आज इस पचमकाल में इस क्षेत्र से मोक्ष प्राप्त नही किया जा सकता किन्तु विदेहक्षेत्र से मुक्ति हो सकती है अतः स्वर्गीय चारित्र चक्रवर्ती परमपूज्य १०८ आचार्यश्री शान्तिसागरजी महाराज ने अपनी समाधि के २६ वे दिन अपने अन्तिम उपदेश मे कहा था—"डरो मत; मिथ्यात्व छोड़ो और संयम धारण करो।"

संयोग और वियोग

यह तो हो सकता है कि किसी का किसी से संयोग न हो, किन्तु यह नहीं हो सकता कि संयोग का वियोग न हो।

हर मिले हुए के बिछुड़ने का समय समीप आ रहा है।

❖ (स्व०) पण्डित तेजपालजी काला

श्रावक-धर्म

¤

धर्म की परिभाषा :

'वत्थु सुहावो धम्मो'। वस्तुस्वभाव को धर्म कहते हैं। धर्म की यह अत्यन्त, स्पष्ट, सरल, तर्कसगत और तत्त्वनिष्ठ परिभाषा है। संसार मे अनन्त वस्तुएँ है, उनके अपने जुदे जुदे स्वभाव हैं। वे स्वभाव ही उनके धर्म हैं। उन धर्मों से ही वस्तु की पहचान होती है, जैसे अग्नि का स्वभाव उष्णता है। पानी का स्वभाव शीतलता है अतः उष्णता से अग्नि की पहचान होगी और शीतलता से पानी की।

जीव और जड़ का स्वभाव :

ससार की अनन्त वस्तुओ को मुख्यत· दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—एक जीव और दूसरा अजीव। ये दोनो परस्पर विपरीत स्वभाववाले हैं। जीव का स्वभाव चैतन्य-शील ज्ञानदर्शन है और अजीव का स्वभाव इसके विपरीत ज्ञानदर्शनोपयोग रहित जड़ है अर्थात् ज्ञानदर्शनोपयोग जीव का धर्म है और जडता अजीव का धर्म। ये दोनों पदार्थ अपने-अपने धर्म या स्वभाव को कभी छोड कर नही रहते तथापि बाह्य निमित्त पाकर संसार में दोनों एक-दूसरे को प्रभावित अवश्य करते हैं जैसे पानी का स्वभाव शीतल है तथापि अग्नि और ईंधन का निमित्त पाकर पानी गरम भी हो जाता है। शुद्ध सोने में चांदी मिला देने से सोने का मूल पीला रग कुछ सफेदी लिए हुए बदल जाता है, यही बदल वस्तु का विकार है, विभाव है, अधर्म है; फिर भी सोना उस मिश्र अवस्था में भी अपने मूल स्वभाव पीतत्व को छोडता नही है और न चाँदी अपने सफेदीपन को छोड़ती है। तथापि सोने और चाँदी की मिश्र अवस्था (विकारअवस्था) में से दोनो वस्तुओं को अपनी मूल अवस्था में लाने के लिए अग्नि में रखने की प्रक्रिया करनी पड़ेगी। इस प्रक्रिया के बाद दोनों वस्तुएँ अलग होकर अपने मूल स्वभाव (धर्म) में आ जाएँगी। मूल स्वभाव को प्राप्त करना ही धर्म है, सच्चा सुख है, वास्तविक शान्ति है। इसी तरह गरम पानी से ईंधन के अलग करने पर पानी भी धीरे-धीरे अपनी उष्णता (विकार) को छोड़ अपने मूल स्वभाव शीतलता में आ जाएगा क्योंकि यह नियम है कि कोई भी पदार्थ अपने मूल स्वभाव को छोड़कर कभी रहता

नहीं है। धर्म धर्मी से कभी तीन काल में भी अलग नही हो सकता है। यदि वस्तु अपने मूल स्वभाव को छोड़ दे तो वह वस्तु, वस्तु ही नही रहेगी। गरम पानी में पानी की मूल शीतलता (स्वभाव) प्रच्छन्न है; वह पानी से अलग नही है, भले ही पानी की उष्णता (विकार) ने उसे दबा दिया है।

जीव और कर्मबन्धन :

संसार में जीव और अजीव ये दो पदार्थ मुख्य हैं। अनादिकाल से ये दोनों संसार में एक साथ रहते आए हैं और दोनों परस्पर में प्रभावित होकर विकारी (अधर्मी) बन रहे है। चैतन्यशील जीव का जड़रूप शरीर (अजीव) से दूध और जल की तरह एक क्षेत्रावगाही सम्बन्ध है। इसलिए दोनों की स्वतन्त्रता पहचानी नही जाती। यह अनादिकालीन एक क्षेत्रावगाही सम्बन्ध ही चैतन्यरूप जीव के लिए अत्यन्त घातक बना हुआ है। वह अपने मूलस्वरूप (धर्म) को भूल गया है और शरीरादि परपदार्थों के साथ आत्मीयता कर विकारी (दुःखी) रहता है। इस एक क्षेत्रावगाही सम्बन्ध में कारण जीव के स्वयं के किये हुए कर्म हैं। ये कर्मप्रचय जड़ और अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं। ये पुद्गल कर्मपरमाणु संसार में सर्वत्र ठसाठस भरे हुए हैं। यह जीव जब प्राप्त शरीर के सम्बन्ध से अपने स्वभाव को भूल उससे विपरीत संयोग-वियोग जनित अवस्थाओ में राग-द्वेष करता है, तब इसके आत्मप्रदेशों मे सकम्प अवस्था प्राप्त होती है। यह सकम्प अवस्था ही बाहर की जड़ सूक्ष्म पुद्गल कर्मवर्गणाओ को अपनी ओर खीचती है जैसे लोहे का गोला गरम हो जाने पर पानी को अपने में खीच लेता है तब जीव अपने तीव्र मन्द नाना परिणामों के अनुसार विविध प्रकार के अज्ञान, अदर्शन, सुख-दुःख, नीच-ऊँच, आयु, गति, शरीर, लाभ-अलाभ आदि नाना प्रकार की कर्मप्रकृतियों से बद्ध होता है। ये कर्मप्रकृतियाँ ही जीव को विकारी बनाती है और इसे अपने मूल स्वभाव से भुला देती हैं। ये कर्मप्रकृतियाँ अपनी स्थिति पूरी होने पर नाना प्रकार से अपने स्वाभावानुसार जीव को सुख-दुःख देकर निर्जीर्ण हो जाती हैं और उसी समय जीव पुनः कर्मफलों को भोगते समय जब राग-द्वेष करता है तो फिर पुनः नवीन कर्मों से बँधता है एवं चार प्रकार की गतियो में अपने कर्मों के अनुसार जन्म-मरण करते हुए संसार के अथाह सागर में निरन्तर डुबकी लगाए हुए दुःखी होता है। कभी इसे स्थायी शान्ति नहीं मिलती है। वास्तव मे, बन्धन मे शान्ति की आशा बबूल के पेड़ से आम के फल की आशा करने जैसा मूर्खतापूर्ण है।

गरज यह कि चैतन्यशक्ति जीव का इस शरीर आदि जड परपदार्थों के साथ बद्ध होना ही इसका विभाव है, अधर्म है, पाप है या दुःख है और शरीर आदि जड़ कर्मों से सर्वथा अलग अपने मूल ज्ञानदर्शन स्वरूप में लीन होना ही इसका स्वभाव है, धर्म है, पुण्य है या सुख है।

सच्चे सुख का उपाय :

यह निर्विवाद है कि संसार का हर प्राणी सदैव सुखी रहना चाहता है, दुःख की अवस्था में कोई क्षणभर भी नही रहना चाहता किन्तु संसार के समस्त प्राणियों में सच्चे सुख की

उपलब्धि केवल संज्ञी मनुष्य प्राणी को ही सुलभ है तथापि बहुत कम मनुष्य ऐसे होते हैं जो अपने मनुष्यत्व का उपयोग अपने जीवन में सच्चे सुख को प्राप्त करने की दृष्टि से करते हैं। क्योंकि उसे अपने मूल (स्वभाव) धर्म में सच्चे सुख का अथाह सागर भरे होने की कल्पना ही नहीं है। जिन्हें है वे इस पर दृढ श्रद्धा नहीं करते हैं। अनादिकाल की विभाव परिणति के कारण श्रद्धा से डगमगा जाते हैं। मोहवश संसार के वैभाविक क्षणिक सुखों को ही सुख मानकर बार-बार उसके लिए ही दुःखी बन कर भी प्रयत्नशील रहते हैं। मकड़ी के जाल की तरह ससार जाल में ही फँस-फँस कर मरते है; दुःखी होते हैं पर जाल बनाना नही छोडते। मकड़ी की तरह जाल में भी सुख प्राप्त करने की भ्रान्ति का अपने में सतत पोषण करते है।

भगवान तीर्थङ्करों ने सुख के वास्तविक स्वरूप को जान कर आत्मध्यान की अग्नि से सर्वप्रकार की विभाव परिणतियों से अपनी आत्मा को दूर किया और वे अपने मूल ज्ञानदर्शन स्वरूप मे स्थिर हो गए। उनका इस आत्मस्वरूप में लीन हो जाना ही सच्चा सुख है, धर्म है, पुण्य है। इस आत्मस्वरूप को प्राप्त करते ही वे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और सर्वतन्त्र स्वतन्त्र बन गये। शरीर की पराधीनता और कर्म के बन्धन सदा के लिये छूट गये। वे परमात्मा और शाश्वत अनन्त सुखी बन गये। उन्होंने ही अपनी सर्वज्ञता से उसी सच्चे सुख का, स्वाधीनता का, धर्म का, पुण्य का मार्ग संसार को बताया।

व्रत साधना :

इस स्वात्मपरिणति रूप धर्म (सुख) को प्राप्त करने के लिए जीवन में व्रत की साधना करना अत्यन्त आवश्यक है। साधना से ही साध्यवस्तु की प्राप्ति सम्भव है। ये व्रत पाँच प्रकार के हैं--

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।

इनमें अहिंसा सब व्रतो का सरदार है। वास्तव में अहिंसा ही आत्मा है। जिसने जीवन में अहिंसा की पूर्णतः साधना कर ली, वह अपने आत्मा को जान लेता है और फिर उसमें हमेशा के लिए लीन हो जाता है। उसकी यह आत्मलीनता ही धर्म है, सुख है। इसीलिए आत्मा को परम ब्रह्म परमात्मा कहा है।

साधना के दो मार्ग : महाव्रत :

इन पाँच महाव्रतों की साधना के दो मार्ग हैं। एक मार्ग पूर्णता का है, नजदीक का है जिसे महाव्रत कहते हैं। इसका आचरण वे शक्तिशाली, आत्मसंयमन शील महाव्रती साधु करते हैं जिनको संसारपरिभ्रमण के दुःखों से शीघ्र ही छूटने की तीव्र उत्कण्ठा लगी है। वे धर्म (सुख) को

प्राप्त करने के लिए अब संसार में ज्यादा समय खोना नहीं चाहते। नजदीक के मार्ग से शीघ्र ही अपने लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते हैं। यह मुक्तिमार्ग है। यह कठोरमार्ग है। इसमें अहिंसादिक महाव्रतों का, पूर्णता से, निर्मलता से एवं अत्यन्त कठोरता से पालन करना होता है।

अणुव्रत :

दूसरा मार्ग है अणुव्रतों का। यह मार्ग दूर का है फिर भी देर-अबेर सही साधक को अपने लक्ष्य स्थान पर अवश्य ही पहुँचा देता है। यह सरल मार्ग है। इसमें साधक को ज्यादा कष्ट नही उठाना पड़ता है। उसे अपनी शक्त्यनुसार शनैः शनैः आत्मविकास की ओर बढ़ने की सुविधा है, यह श्रावकमार्ग है।

इस मार्ग में साधक को अहिंसादिक पाँच व्रतों का पूर्णता से तो नहीं किन्तु आंशिक रूप से पालन करना होता है। इसको अणुव्रत कहते हैं। आंशिक रूप का यह अर्थ है कि जीवन की एक ऐसी अवस्था जिसमें साधक अपने आप को अहिंसा की पूर्ण साधना करने में असमर्थ पाता है, अतः वह ऐसा सरल मार्ग अपनाना चाहता है कि जिस पर चलने से भले ही आत्मस्वरूप (सुख) को प्राप्त करने में देर हो तथापि उसका लक्ष्य आत्मस्वरूप की उपलब्धि से हटता नहीं है। अपने मूल स्वरूप को प्राप्त करने की उसकी श्रद्धा अचल हो जाती है। उसका सम्पूर्ण ज्ञान आत्मस्वरूप पर केन्द्रित हो जाता है और उसको प्राप्त करने के लिए वह अपने मे छटपटाता है क्योंकि वह सश्रद्ध हो जाता है कि जीव का मूल स्वभाव ज्ञानदर्शनोपयोग रूप है और उसका प्राप्त हो जाना ही सच्चा सुख है—धर्म है।

संसार के दुःखी प्राणियों को दुःख से उन्मुक्त होकर शाश्वत सुखी बनने के लिए भगवान सर्वज्ञ तीर्थङ्करों ने अपनी धर्म सभाओं में इन्हीं दो मार्गों का उपदेश दिया है। ये ही दो मार्ग ऐसे हैं जिनकी साधना से आत्मा के विकार जल कर आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप में आ जाता है।

मुनिमार्ग की साधना कठोर होने से कम शक्तिशाली मनुष्यों को वह साध्य नहीं है। कम शक्तिशाली मनुष्य अपनी शक्ति के अनुसार श्रावकमार्ग का भी अनुसरण कर आत्मस्वरूप को (सुख को) प्राप्त कर सकते हैं। प्राचीन दिगम्बर जैनाचार्यों ने भगवान महावीर की वाणी के अनुसार इस श्रावक धर्म का भी अपने ग्रन्थों में बहुत सुन्दर सविस्तर विवेचन किया है।

प्रमुख श्रावकाचार ग्रन्थ :

भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य का रयणसार, समन्तभद्राचार्य का रत्नकरण्डश्रावकाचार, अमृतचन्द्राचार्य का पुरुषार्थसिद्धयुपाय, अमितगति आचार्य का श्रावकाचार, सोमदेवाचार्य का उपासकाध्ययन आदि श्रावकाचार सम्बन्धी उल्लेखनीय जैन साहित्य उपलब्ध है। उमास्वामी आचार्य के

तत्त्वार्थसूत्र और अन्य आचार्यों के पुराण ग्रन्थों में भी इसका निरूपण किया गया है। पण्डित आशाधरजी यद्यपि आचार्य नहीं थे तथापि वे बहुत भारी प्रतिभाशाली महाविद्वान् थे। उनका अध्ययन बहुत गहन था। उनके द्वारा रचित अनगारधर्मामृत और सागारधर्मामृत जैन वाङ्मय की ऐसी अमूल्य निधियाँ हैं जो आचार्यों के ग्रन्थों के समान ही प्रामाणिक मानी जाती हैं। उनके सागारधर्मामृत में भी श्रावकधर्म पर अच्छा विशद प्रकाश डाला गया है।

श्रावक का स्वरूप :

श्रावक उस आत्मसाधक व्यक्ति को कहते है जिसकी भगवान अर्हन्त परमात्मा मे सच्चे देव के रूप में, अर्हन्त सर्वज्ञ परमात्मा की वाणी में सच्चे शास्त्र के रूप में और सर्वज्ञ वाणी के निर्देशित मार्ग पर चलने वाले दिगम्बर जैन मुनियो पर सच्चे गुरु के रूप में अविचल भक्ति और श्रद्धा होती है। उनको छोड़ वह अन्य किसी भी कुदेव, कुशास्त्र और कुगुरु को नहीं मानता, न उनकी वन्दना भक्ति करता है। जो अपने आत्मज्ञान के बल पर अपनी शक्ति के अनुसार श्रावकधर्म का अनुसरण कर मोक्षमार्ग पर चलता है, यह श्रावक सम्यग्दृष्टि होता है। उसको यद्यपि आत्मानुभूति नहीं होती है तथापि वह आत्मस्वरूप को जानते हुए उसमें अपनी गाढ़ रुचि रखता है।

श्रावक के भेद :

अपनी शक्ति के अनुसार श्रावकधर्म का अनुसरण करने वाले श्रावक मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं—(१) पाक्षिक (२) नैष्ठिक और (३) साधक। ये जघन्य, मध्यम और उत्तम के रूप में भी जाने जाते हैं।

पाक्षिक श्रावक :

पाक्षिक श्रावक को यद्यपि कोई व्रतरूप चारित्र नही होता है तथापि उसे जिनप्रणीत धर्म पर अटल श्रद्धा होती है। वह सम्यग्दृष्टि होता है और अपने भेदज्ञान के बल पर अपनी मन वचन काय के द्वारा ऐसा कोई अन्यथा काम नहीं करता है जिससे किसी को पीड़ा पहुँचे या किसी के प्राणों का हनन हो। वह त्रस हिंसा नही करता है और अकारण स्थावरजीवों की भी हिंसा नहीं करता है। कम से कम अष्ट मूलगुण का पालन अवश्य करता है।

अष्ट मूलगुण :

अष्ट मूलगुण सामान्य रूप से इस प्रकार हैं—तीन मद्य-मांस-मधु का और बड़, पीपल, पाकर, ऊमर, कठुमर पाँच उदुम्बर फलों का त्याग करता है। इनका त्याग किये बिना कोई भी जैनी जैनकुल में उत्पन्न होने पर भी जघन्य श्रावक भी कहलाने का पात्र नहीं होता है। कहा भी है—

> मद्यमांसमधुत्यागैः सहोदुम्बर पञ्चकैः।
> अष्टावेते गृहस्थानामुक्ता मूलगुणाः श्रुते॥ यशस्तिलकचम्पू॥

समन्तभद्राचार्य ने 'रत्नकरण्डश्रावकाचार' में अष्ट मूलगुणों का वर्णन इस प्रकार भी किया है—

मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपञ्चकम् ।
अष्टौ मूलगुणानाहुर्गृहिणां श्रमणोत्तमाः ॥

अर्थात् तीन मद्य-मांस-मधु का त्याग और स्थूल रूप से अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह इन पांच अणुव्रतों का पालन करना श्रावकों के आठ मूलगुण हैं। श्री जिनसेनाचार्य ने आठ मूलगुण इस प्रकार बताये हैं—

हिंसासत्यस्तेयादब्रह्मपरिग्रहाच्च बादरभेदात् ।
द्यूतान्मांसान्मद्याद्विरतिर्गृहिणोऽष्ट सन्त्यमी मूलगुणाः ॥आदिपुराण॥

अर्थात् पांच प्रकार के अणुव्रतों का पालन एवं जुआ, मांस और मद्य का त्याग ये श्रावक के मूलगुण हैं।

कहीं-कहीं अष्ट मूलगुणों का इस प्रकार भी कथन मिलता है। जैसे—मद्य-मांस-मधु का त्याग, पांच उदुम्बर फलों का त्याग, रात्रि भोजन न करना, सङ्कल्पी हिंसा का त्याग करना, जल छान कर पीना और प्रतिदिन जिनदर्शन करना—

मद्यपलमधुनिशाशनपञ्चफलीविरतिपञ्चकाप्तनुती ।
जीवदया जलगालनमिति च क्वचिदष्टमूलगुणाः ॥ २।१८ सा.ध. ॥

ये सब भेद विवक्षाभेद के कारण हुए है। वास्तव में, तत्त्वत. इनमे कोई भेद नही है। इन सबमे मुख्य लक्ष्य त्रस हिंसा के हनन से बचना है और जिनधर्म पर अटल श्रद्धान रखना है।

आज के समय में पाक्षिक श्रावकों की चर्या बहुत ही मलिन और निन्दास्पद होती जा रही है। भौतिक क्षणिक जड़ सुखों के मोह में आत्महित की अपेक्षा होती जा रही है जो अनन्त संसार का कारण है। अतः अन्त के आठ मूलगुणों के पालन का प्रचार जैनसंस्कृति की रक्षार्थ जैन-समाज में होना अत्यन्त आवश्यक है।

नैष्ठिक श्रावक :

इस प्रकार अष्ट मूलगुण पालन के द्वारा पाक्षिक श्रावक के मन में अब उत्तरोत्तर आत्म-विकास की भावना को बल मिलता है तो आगे वह व्रत धारण करने हेतु प्रवृत्त होता है। यह व्रत प्रवृत्ति ही श्रावक की आत्मस्वरूप में लीन होने की निष्ठा को व्यक्त करती है। यह व्रतनिष्ठा ही पाक्षिक श्रावक को नैष्ठिक श्रावक के पथ पर आरूढ़ करती है। नैष्ठिक श्रावक की ग्यारह श्रेणियाँ होती हैं जिन्हें जैनशास्त्रों में 'प्रतिमा' के नाम से कहा जाता है। इस नैष्ठिक पथ पर श्रावक निष्ठा के

साथ अपनी आत्मा का विकास करते हुए इन श्रेणियों में धीरे-धीरे आगे बढता जाता है और आत्म-साधना की अन्तिम मञ्जिल पर पहुँचने को आतुर हो जाता है। इस पथ पर साधक अब अव्रती नहीं रहता। अब वह व्रती बन कर आत्मसाधना करता है। शरीरादिक पर-पदार्थों से उसकी आसक्ति कम होने लगती है। विकारों से हट कर वह स्वभाव की ओर गमन करता है।

१. दार्शनिक प्रतिमा :

पहली प्रतिमा में नैष्ठिक श्रावक को सम्यग्दर्शन की विशुद्धि के साथ सप्त व्यसन का सातिचार त्याग करना चाहिए। अष्ट मूलगुणों का पालन भी नैष्ठिक श्रावक निरतिचार करता है। यह 'दार्शनिक श्रावक' कहलाता है। इस प्रतिमा में श्रावक शुद्ध खान-पान करता है। मर्यादा के बाहर के पदार्थ जिनमे दुर्गन्ध आ गई हो, पदार्थ सड़ गल गए हो और उनका स्वाद बिगड़ गया हो ऐसे आटा, दूध, दही, घी, आचार-मुरब्बे, आसवादि पदार्थ सेवन नही करता है। भाँग, चरस, गांजा आदि मादक पदार्थ भी नही खाता है। कन्दमूलादि बहुस्थावरघातक पदार्थ भी नहीं खाता है।

जुआ खेलना, माँस खाना, शराब पीना, वेश्यासेवन करना, चोरी करना, शिकार खेलना और परस्त्री सेवन करना इन सात व्यसनों से दार्शनिक श्रावक सर्वथा विरक्त रहता है। अहिंसादिक पञ्चाणुव्रतों का पालन करता है तथा अन्यायपूर्वक अपनी आजीविका नहीं करता है।

दार्शनिक प्रतिमा का स्वरूप पण्डित आशाधरजी ने इस प्रकार बताया है—

पाक्षिकाचारसंस्कारदृढ़ीकृतविशुद्ध दृक्।
भवाङ्गभोगनिर्विण्णः परमेष्ठिपदैकधीः॥
निर्मूलयन्मलान्मूलगुणेष्वग्रगुणोत्सुकः।
न्याय्यां वृत्तिं तनुस्थित्यै तन्वन्दर्शनिको मतः॥ सा.ध.॥

अर्थात् पाक्षिकाचार के पालन से जिसके दृढता आ गई है, जिसका सम्यग्दर्शन निर्मल है, संसार शरीर और भोगों से जो उदासीन है, पञ्च परमेष्ठी की भक्ति में जो लीन रहता है, कुदेवादिकी जो कभी आराधना नहीं करता है, मूलगुणों का निरतिचार पालन करता है तथा न्यायपूर्वक अपनी आजीविका करता है, वह दार्शनिक श्रावक कहलाता है।

दर्शनप्रतिमा के पालने के बाद जब मोक्षाभिलाषी श्रावक अपनी आत्मसाधना को आगे बढ़ाना चाहता है तो वह दूसरी व्रत प्रतिमा धारण करता है।

२. व्रत प्रतिमा :

दूसरी व्रत प्रतिमा का स्वरूप इस प्रकार है—

पञ्चधाऽणुव्रतं त्रेधा गुणव्रतमगारिणाम् ।
शिक्षाव्रतं चतुर्धेति गुणाः स्युर्द्वादशोत्तरे ।। सा.ध. ।।

अर्थात् पाँच प्रकार के अणुव्रत तीन प्रकार के गुणव्रत और चार प्रकार के शिक्षाव्रत इस प्रकार व्रती श्रावक के बारह प्रकार के उत्तरगुण होते हैं ।

पञ्चाणुव्रत :

स्थूल रूप से हिंसा, झूठ, चोरी, कुशीलसेवन और परिग्रहसंचय आदि पांच पापों को न करना अणुव्रत कहलाते हैं ।

१. **अहिंसाणुव्रत** : प्रमाद से संकल्पपूर्वक त्रसजीवों की हिंसा का त्याग करना अहिंसाणुव्रत है । अहिंसाणुव्रती त्रस जीवों के किसी अवयव का छेद नहीं करता है । उनको कठोर बन्धन से नहीं बांधता है, चाबुक लाठी आदि से नहीं मारता है । उन पर शक्ति के बाहर ज्यादा बोझ नहीं लादता है और उनको समय पर खान-पान कराने में बाधा नहीं करता है ।

२. **सत्याणुव्रत** : लोभ, भय या प्रमादवश जीवों को पीड़ाकारक एवं धर्म आगम विपरीत वचन न बोलना सत्याणुव्रत है । सत्याणुव्रती मोक्षमार्ग के विपरीत मिथ्यावचन नहीं बोलता है । किसी की गुप्त बातों को बुरे हेतु से बाहर प्रकट नहीं करता है । किसी की निन्दा नहीं करता है । खोटे दस्तावेज नहीं बनाता है और किसी के धन का अपहरण भी नहीं करता है ।

३. **अचौर्याणुव्रत** : लोभ या प्रमाद के वश होकर किसी की भी वस्तु को बिना पूछे ग्रहण नहीं करना अचौर्याणुव्रत है । अचौर्याणुव्रती किसी को चोरी करने के प्रयोग नहीं बताता है । किसी से चोरी कर लाया हुआ माल भी नहीं लेता है । अन्याय से ज्यादा मूल्य का माल कम कीमत में नहीं लेता है । भारी वस्तु में हल्की वस्तु मिला कर कभी नहीं बेचता है या दूध में पानी मिलाकर नहीं बेचता है । कम ज्यादा वजन से धोखा देकर माल खरीदता, बेचता नहीं है ।

४. **ब्रह्मचर्याणुव्रत** : स्वविवाहिता स्त्री को छोड़कर परस्त्री के साथ कामसेवन नहीं करता और उन्हें माता, बहिन, पुत्री के समान समझना ब्रह्मचर्याणुव्रत है । ब्रह्मचर्याणुव्रती अपने पुत्र-पुत्रियों को छोड कर अन्य पुत्र-पुत्रियों के विवाह नहीं कराता है । सम्भोग के स्थान को छोड़ कर अन्य स्थानों से कामक्रीड़ा नहीं करता है । शरीर या वचन से वीभत्स (अश्लील) कृति नहीं करता है । कामसेवन में तीव्र लालसा नहीं रखता है और व्यभिचारी स्त्री या वेश्या के साथ सम्बन्ध नहीं रखता है ।

५. परिग्रहपरिमाणव्रत : धनधान्यादिक परिग्रहों का आवश्यकतानुसार परिमाण करके उससे अधिक के प्रति लालसा नही रखना परिग्रहपरिमाणव्रत कहलाता है। इसको इच्छापरि-माणव्रतभी कहते हैं। परिग्रहपरिमाणुव्रती श्रावक अपने नौकरों या पशु आदिको से शक्ति के बाहर काम नहीं लेता है। लोभवश धनधान्यादिकों का अधिक संग्रह नही करता है। दूसरे के वैभव को देख कर आश्चर्य या ईर्ष्या नहीं करता है। नफे मे ज्यादा आशा या तृष्णा नही रखता है और शक्ति के बाहर किसी के ऊपर ज्यादा बोझ नही लादता है।

वास्तव में अणुव्रती सभी व्रतो को मनवचनकाय और कृत कारित अनुमोदना से पालन करता है।

तीन गुणव्रत :

पाँच अणुव्रतों मे विशेषता गुणव्रतों के पालन करने से होती है। इसलिए गुणव्रतों का भी परिणामो की विशुद्धि की दृष्टि से वड़ा भारी महत्त्व है। वे गुणव्रत तीन प्रकार के हैं—

१. दिग्व्रत : अणुव्रती अपने स्थूल पापो के त्याग से अधिक बचने के लिए जन्म भर तक दसों दिशाओं में आने-जाने का परिमाण कर लेता है। फिर कभी भी लोभवश मर्यादा का उल्लंघन नही करता है। इसे दिग्व्रत कहते है।

२. देशव्रत : जीवन पर्यन्त गमनागमन की, की हुई मर्यादा मे से भी परिणामों को अधिक निर्मल बनाने को दृष्टि से घडी, दिन, सप्ताह, महिना आदि को समय की मर्यादा बाध कर ग्राम, मुहल्ला, नगर आदि की सीमा के बाहर न जाने का नियम ले लेना देशव्रत कहलाता है।

३. अनर्थदण्डव्रत : बिना प्रयोजन के जिन कामों में पाप का आरम्भ होता हो, उन कामों का त्याग करना अनर्थदण्डव्रत है। अनर्थदण्डव्रती किसी को भी जिन कामों के करने में हिंसादि पाप होते हों, उनको करने का उपदेश नही देता है। हिंसा के उपकरण शस्त्र तलवार, विष आदि किसी को नही देता है। किसी के भी अनिष्ट होने का चिन्तवन नही करता है। मन में कषाय उत्पन्न करने वाले खोटे शास्त्र, साहित्य आदि न पढता है न सुनता है। बिना प्रयोजन आरम्भजनित कार्य न स्वयं करता है और न दूसरों से करवाता है।

चार शिक्षाव्रत :

शिक्षाव्रत, साधक को सर्वसंग परित्याग रूप मुनिपद को धारण करने की शिक्षा प्रदान करते हैं, इसलिये इनका नाम शिक्षाव्रत है।

१. **सामायिक** : सामायिक का अर्थ है अपने समय (आत्मा) में गमन करना (लीन होना) साधक प्रतिदिन सूर्योदय के पूर्व प्रात: और सूर्यास्त के अनन्तर कम से कम दो घड़ी तक एकान्त में बैठकर एकाग्र हो आत्मचिन्तन करता है। णमोकार मन्त्र की मालाएँ फेरता है और ऐसे पाठ पढता है जिससे आत्मस्वरूप को जानने की और उसमें लीन होने की प्रेरणा मिले।

२. **प्रोषधोपवास** : प्रोषध का अर्थ है एकासन और उपवास का अर्थ है चारों प्रकार के आहार का त्याग। अष्टमी और चतुर्दशी के पर्व के दिनों में व्रती उपवास करता है और उसके पहले और अन्त के दिन में अर्थात् सप्तमी, नवमो और त्रयोदशी पूनम को एकासन पूर्वक भुक्ति (भोजन) करता है। प्रोषधोपवास से इन्द्रियाँ संयमित होकर आत्मबल जागृत होता है।

३. **भोगोपभोग परिमाण** : भोग का अर्थ है जो वस्तु एक बार ही भोगने में आती है जैसे पानी, भोजन आदि और उपभोग का अर्थ है जो वस्तुएँ बार-बार भोगी जा सकती हैं जैसे वस्त्र, मकान, पलंग, बर्तन आदि। इन दोनों प्रकार की वस्तुओं का परिमाण कर अधिक से ममत्व नहीं करना भोगोपभोगपरिमाणव्रत कहलाता है।

४. **अतिथिसंविभाग** : अतिथिसंविभाग का अर्थ है—त्यागी, व्रती, मुनि आदि चतुर्विध संघ के अतिथियों को प्रतिदिन भक्तिपूर्वक आवश्यकतानुसार बिना फल की इच्छा किए आहार, औषध, शास्त्र और अभय प्रदान करना अतिथि सविभाग व्रत कहलाता है।

इस प्रकार दूसरी प्रतिमाधारी श्रावक बारहव्रतों का निष्ठापूर्वक पालन करते हुए आगे की श्रेणियों में चढ़ने का पुरुषार्थ करता है। पाँच अणुव्रतों के बाद तीन गुणव्रत और ४ शिक्षाव्रत ये सात शील कहलाते हैं। ये सात व्रत अणुव्रतों को निरतिचार पालन करने की क्षमता प्रदान करते हैं इसलिए इन्हें शीलव्रत कहा जाता है।

३. सामायिक प्रतिमा :

दूसरी व्रत प्रतिमा में साधक प्रतिदिन प्रात: सायं दो बार सामायिक करता है तब तीसरी प्रतिमा में साधक को दोपहर में भी मिला कर प्रतिदिन तीन बार सामायिक करना आवश्यक होता है। सामायिक में पूर्व या उत्तर दिशा में मुंह करके क्रमश: चारों दिशाओं में तीन-तीन आवर्त और एक नमस्कार ऐसे बारह आवर्त और चार नमस्कारपूर्वक अत्यन्त एकाग्र मन से खड़े रह कर या बैठ कर निराकुलता से ममत्व रहित होते हुए आत्मचिन्तन करना चाहिए।

४. प्रोषध प्रतिमा :

दूसरी व्रतप्रतिमा में बताये गए प्रोषधोपवास व्रत को चौथी प्रतिमाधारी श्रावक प्रतिमा रूप से पालन करते हुए अपना समय स्वाध्याय आदि धर्मध्यान में लगाता है।

५. सचित्तत्याग प्रतिमा :

सचित्तत्यागप्रतिमाधारी श्रावक दयार्द्रचित्त होकर अप्रासुक ऐसे अंकुर, बीज, पानी, नमक, कन्द-मूल फल, पत्ते आदि नहीं खाता है, गरम पानी पीता है या प्रासुक करके पानी पीता है। अनन्तकाय कन्दमूल को नहीं खाता है।

६. रात्रिभक्त प्रतिमा और रात्रिभुक्तित्याग प्रतिमा :

रात्रिभुक्ति त्याग प्रतिमा मे समन्तभद्राचार्य के मतानुसार रात्रि मे चारो प्रकार के आहार का त्याग बताया है। अर्थात् इस प्रतिमा में श्रावक सूर्योदय के बाद दो घड़ी और सूर्यास्त के पूर्व दो घडी तक ही आहार पानी ग्रहण करता है, उसके बाद नहीं। अन्य आचार्यों के मत में रात्रि-भक्त प्रतिमा का अर्थ है कि मात्र रात्रि में ही स्त्रीसेवन करे, दिन मे कदापि नहीं।

७. ब्रह्मचर्य प्रतिमा :

सातवी प्रतिमा वाला श्रावक योनि को अनन्त सूक्ष्म जीवों का उत्पत्ति स्थान एवं मल-मूत्रादिक घृणित वस्तुओं का निर्गमन स्थान जान कर स्व स्त्री से भी कामसेवन का त्याग करके सदैव अपनी आत्मा को आत्मस्वरूप के चिन्तन में लगाता है।

८. आरम्भत्याग प्रतिमा :

इस प्रतिमा वाला श्रावक अब व्यापार, खेती, नौकरी आदि आरम्भजनित कार्यों से— जिनमें जीव हिंसा से बचना सम्भव नही है—भी निवृत्त हो जाता है। जीवन निर्वाह के लिए वह किसी भी प्रकार का आरम्भ नहीं करता है। दान, पूजा-अभिषेक आदि पापनाशक क्रियाओं के करने का निषेध नही है।

९. परिग्रहत्याग प्रतिमा :

अब आगे जैसे जैसे साधक श्रावक के परिणामों में अधिक विरक्ति के भाव जाग्रत होते हैं तो धन-धान्यादि सभी प्रकार के दस परिग्रहों को आसक्ति का कारण जानकर वह शरीर की रक्षा के लिए कम से कम आवश्यक वस्त्र, बर्तन और धर्मसाधन के लिए आवश्यक उपकरण रख कर शेष परिग्रह का त्याग करता है और धीरे-धीरे अपने क्रोधादिक अन्तरंग चौदह परिग्रहों का भी त्याग करने में प्रवृत्त होता है।

१०. अनुमतित्याग प्रतिमा :

इस प्रतिमा में श्रावक धीरे-धीरे विरागता की ओर बढ़ते हुए अब किसी के व्यापारादि कामों में और विवाहादिक कामों में भी कोई अनुमति नहीं देता है। इन कामों में किसी को होने वाले नफा-नुकसान में भी वह कोई हर्ष विषाद नही करके समवृत्तिरूप परिणति रखता है।

११. उद्दिष्टत्याग प्रतिमा :

इस प्रतिमा वाला श्रावक अपने उद्देश्य से बनाए हुए आहार को ग्रहण नही करता है। अब वह तप की सिद्धि के लिए गृहत्याग करके मुनिसंघ में रहता है। इस प्रतिमा को धारण करने वाले दो प्रकार के होते हैं—१. क्षुल्लक २. ऐलक।

क्षुल्लक अपने पास एक लगोटी और एक छोटा सा चादर शरीर ढँकने के लिए रखता है। शरीरशुद्धि के लिए कमण्डलु तथा जीवरक्षा के लिए पास में मोरपिच्छिका रखता है। गोचरी-पूर्वक श्रावकों के यहाँ दिन में एक बार आहार के लिए जाता है। जहां भी श्रावक आदरपूर्वक प्रति-ग्रहण करता है, उस घर में जाकर, बैठकर, विधिपूर्वक शुद्ध आहार मौन से, अन्तराय टाल कर ग्रहण करता है। अपने पास आहार के लिए एक कटोरा (पात्र) रखे; उसी में श्रावक के द्वारा दिये हुए आहार को शोधपूर्वक ग्रहण करे। आहार मिलने न मिलने पर हर्ष-विषाद नहीं करे। क्षुल्लक अपने बाल स्वय या दूसरे से कंची या उस्तरे से काट सकता है।

ऐलक मात्र लगोटी रखता है। आहार खड़े रह कर अपने हाथ में करता है और अपने बालों का स्वयं अपने हाथ से लोच करता है, कंची आदि का उपयोग नही करता है।

यहाँ तक नैष्ठिक श्रावक के भेदों का स्वरूप बताया, किन्तु एक बात जान लेना अत्यन्त आवश्यक है कि पाक्षिक श्रावक जब आत्मस्वरूप (सुख) को प्राप्त करने के लिए धर्मपथ पर आगे बढ़ने को उत्सुक होता है तो उसके लिए यह आवश्यक नही है कि वह व्रत की श्रेणियों में क्रमशः ही बढे। वह अपनी शक्ति के अनुसार किसी भी श्रेणी को धारण कर आगे बढ़ सकता है तथापि जिस किसी भी श्रेणी को धारण करता है उसे उसके पहले की सभी प्रतिमाओं के (श्रेणियों के) नियम अवश्य ही पालन करने होते हैं।

साधक श्रावक :

साधक श्रावक उसे कहते हैं जो अपने पूर्वव्रतों को निरतिचार पालन करते हुए संसार, शरीर और भोगों की निस्सारता अच्छी तरह से समझ लेता है तो अपने जीवन के अन्तिम समय में शरीर से धर्मसाधन करने में जब अक्षम बन जाता है तब जड़ शरीर से भी निर्मोही बन कर उसको धीरे-धीरे अन्न, दूध, छाछ, फलरस एवं पानी को छोड़ते हुए शान्त एवं निष्कषाय परिणामों से छोड़

देता है। वह निरुपयोग शरीर से भी फिर मोह नहीं करता है किन्तु उसे जबरदस्ती अन्य उपायों के आश्रय से दुःख से घबराकर नहीं छोड़ता है। उसे छोड़ते समय इस लोक में अपने सम्मान आदि की कोई अपेक्षा नहीं करता है और न परलोक में किसी अहमिन्द्र या चक्रवर्ती के भोगों की अपेक्षा करता है। आत्मस्वरूप की प्राप्ति ही उसके जीवन का एक मात्र लक्ष्य होता है। माया, मिथ्या, निदान के शल्य से रहित होकर शरीर को शान्त परिणामों से छोड़ने की इस प्रक्रिया को समाधिमरण या पण्डितमरण कहते हैं। यह मृत्यु महोत्सव है न कि मृत्युशोक या अपघात। जो साधक इस प्रकार के समाधिमरण को विरागी बन कर साधता है वह साधक श्रावक कहलाता है। यह उसके व्रती जीवन की अन्तिम साधना होती है जो श्रावक के जीवन को सफल बना देती है। साधक श्रावक अपनी इस विरागी साधना के बल पर कुछ ही भवों मे शीघ्र ही आत्मस्वरूप (मोक्ष) को प्राप्त कर लेता है। यह साधक जीवन ही सार्थक जीवन है।

मनुष्य पर्याय पाकर भी जो अपनी शक्ति के अनुसार सम्यक् श्रद्धा, विवेक और आचार को धारण कर श्रावक जीवन नही जीता, वह वास्तव में पण्डित आशाधरजी के सही शब्दों में 'नरत्वेऽपि पशूयन्ते' की तरह है।

श्रावकधर्म का पालन कर मानव जीवन को मोक्षपथ पर लगाने की आशा संसार के सभी मानवों से तो नहीं की जा सकती है क्योकि उनके पास वैसा उपयुक्त जिनसाहित्य नही जिसके आधार से वे अपने मानव जीवन को सम्यक् (श्रावक) पथ पर लगा सके तथापि उनमें से जिन्होंने जिन साहित्य का अध्ययन किया है, कुछ ऐसे मनीषी अवश्य हैं कि जो श्रावक जीवन की यथार्थता का महत्त्व स्वीकार करते हैं। किन्तु दुःख इस बात का अवश्य होता है कि जिनको श्रावककुल में जन्म लेने का सौभाग्य मिला है, जिनके पास जिन साहित्य, जिन संस्कार के साधन सभी सहज उपलब्ध हैं, ऐसे असंख्य श्रावक आज पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षा, कुसंगति एवं कुसस्कारों के प्रभाव से ऐसे बनते जा रहे हैं कि जिन्हें साधारण पाक्षिक श्रावक कोटि में भी नही गिनाया जा सकता है। वे वास्तविक मानव जीवन से बहुत दूर-दूर हैं। लक्ष्यभ्रष्ट की तरह अथाह संसारसागर में गोते लगा कर दुःखी होते हैं। उनका श्रावक कुल में जन्म लेना निरर्थक हो जाता है।

भाग्योदय से आज देश में ऐसे मोक्षमार्ग रत महाव्रती विद्वान् साधु मौजूद हैं जिनकी धर्मदेशना से त्याग और संयम की निर्मल गंगा प्रवाहित हो रही है। स्व० १०८ परमपूज्य आचार्य प्रवर शान्तिसागरजी महाराज, स्व० १०८ आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज, स्व० १०८ आचार्यकल्प श्री चन्द्रसागरजी महाराज, स्व० १०८ आचार्य श्री महावीरकीर्तिजी महाराज एवं वर्तमान में परमपूज्य १०८ आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज, श्री १०८ आचार्य श्री देशभूषणजी महाराज, श्री १०८ आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज, पूज्य १०५ वयोवृद्ध आर्यिका रत्न श्री इन्दुमती माताजी,

पूज्य १०५ विदुषी आर्यिका श्री सुपार्श्वमती माताजी, पूज्य १०५ आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी, पूज्य १०५ आर्यिका श्री विशुद्धमती माताजी आदि के द्वारा मुनिधर्म और श्रावकधर्म की वह गंगा आज भी अविरल गति से बह रही है। समाज को चाहिए कि इस धर्मगंगा में नहा कर प्राप्त मानव जीवन को सार्थक बनावे।

वस्तुतः प्रत्येक श्रावक को अपने जीवन को सफल बनाने और धर्मसंस्कृति की परम्परा बनाये रखने की दृष्टि से मुख्यतः दो बातों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है और वे हैं—दान तथा पूजा। भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य ने भी अपने 'रयणसार' ग्रन्थ में इन दोनों कर्त्तव्यों का स्पष्ट निर्देश करते हुए लिखा है कि—"दाणं पूया मुक्खं सावयधम्मे ण सावया तेण विणा।"

श्रावकधर्म में दान और पूजा मुख्य कर्त्तव्य है; उसके बिना श्रावक नहीं कहलाता है।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने तो यहाँ तक लिखा है कि जो जिनदेव की पूजा करता है और शक्ति के अनुसार मुनियों को दान देता है, वही वास्तव में सच्चा सम्यग्दृष्टि श्रावक है और वही मोक्षमार्ग का अधिकारी है।

मोक्षमार्ग की परम्परा को गतिमान रखने में श्रावकों का विशेष हाथ रहा है। मन्दिर, क्षेत्र, शास्त्र और मुनि जिन संस्कृति के प्रधान प्रतीक हैं। इनको जीवित रखना है तो प्रत्येक श्रावक के घर में जिनपूजा और दान की परम्परा का निर्वाह होना अत्यन्त आवश्यक है। आज इन दोनों मुख्य कर्त्तव्यों के प्रचार में ही जैन समाज की शक्ति का लगाना आवश्यक, उपयुक्त और सार्थक है।

वास्तव में गृहस्थ जीवन की सफलता अणुव्रतों पर ही निर्भर है। जिस सुख की खोज में समस्त राष्ट्र, समाज और मनुष्य लगे है उसकी पूर्णता अणुव्रतों से ही सम्भव है। अन्य कोई रास्ता राष्ट्र, समाज या व्यक्ति का उत्थान नहीं कर सकता है। समस्त अशान्ति, छीनाझपटी, गरीबी, भ्रष्टाचार, अनाचार, विषमता और अव्यवस्थाओं का उन्मूलन यदि हो सकता है तो एक मात्र अणुव्रत की शक्ति से हो सकता है।

अणुव्रतहीन जीवन से आज का मानवजीवन पशु से भी बदतर बन गया है। अणुव्रत के पालन करने में मनुष्य कठिनाई का अनुभव करता है। यह अविचारिता ही उसके और राष्ट्र के पतन का कारण है। वास्तव में, अणुव्रत के पालन करने में जितनी सहजता है उतनी व्रतहीन, पापी, अमर्यादित और स्वच्छन्द जीने में नहीं है। किसी को सताने में जितना कष्ट है उतना भ्रातृभाव से रहने में नहीं। सत्य बोलना है, किसी को दुःख की बात नहीं बोलना है तो उसे कोई आपत्ति नहीं झेलनी पड़ेगी, पर झूठ बोलने में तो आपत्तियाँ ही आपत्तियाँ रहती हैं। अपने में ही सन्तुष्ट व्यक्ति को कोई क्या सतायेगा, पर जो दूसरे की वस्तु पर नाजायज तरीके से हावी होता है तो उसको

अनेक संकटों का सामना करना पड़ सकता है जो अपनी वासनाओं को सीमित रखता है तो उसका जीवन आसान स्थिर रहता है किन्तु जो अपनी वासनाओं पर काबू नहीं रखता वह कभी जीवन में स्थिरता और शांति का अनुभव नहीं कर सकता है। इसी तरह जो जीवन की आवश्यकता से अधिक संग्रह करने की मनोवृत्ति से काम लेता है, उसे उसके लिए कितनी झंझटें उठानी पड़ती हैं; यह सभी जानते हैं, लेकिन जो अपनी आवश्यकता में सन्तुष्ट भावना से रहता है उसे न तो कोई झंझट, चिन्ता या दु:ख होता है, न कोई भय। अत: अणुव्रत जीवन की सहज प्रवृत्ति है। केवलमात्र उसको जीवन में श्रद्धापूर्वक साधने की आवश्यकता है।

वास्तव में, अणुव्रत मानवजीवन को सुरभित बनाने वाला ऐसा सुकोमल पुष्प है जो किसी को कष्ट तो नहीं देता है लेकिन जो भी उसे अपने पास रखता है उससे उसका जीवन सुरभित हो जाता है। सब उसको चाहने लगते हैं।

अणुव्रत जीवन को पवित्र बनाता है। यह एक ऐसा उज्ज्वल प्रकाशस्तम्भ है जो जीवन विकास के गन्तव्य मार्ग को प्रकाशित करता है। यह वह स्वच्छ जल का प्रवाह है जो व्यक्ति के जीवन की कल्मषताओं को धोकर उसे निष्पाप और परमात्मा बना देता है।

अत: अणुव्रत के द्वारा श्रावक बनने का शंखनाद आज घर-घर में फूंके जाने की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

मनुष्य जन्म के आठ फल

पूज्यपूजा, दयादानं, तीर्थयात्रा जपस्तपः।
श्रुतं परोपकारश्च, मर्त्यजन्मफलाष्टकम् ॥

❖ वैद्य राजकुमार शास्त्री, निवाई-टोंक, राजस्थान

स्वास्थ्य और जैनाचार

☼

'त्रिदोषः समः स्वास्थ्यः, त्रिदोषे विकृतिः व्याधिः।' वात, पित्त और कफ ये तीन दोष हैं। जब ये सम अर्थात् समान अवस्था में रहते हैं तब तक शरीर स्वस्थ रहता है। जहां इन तीनों में से किसी एक में भी विकृति आती है तो वही रोगों का प्रादुर्भाव हो जाता है। इन तीनों को समान रखने के लिए सही चर्या व सही आहार विहार अपेक्षित है।

भोजन तीन प्रकार का होता है—सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। भोजन का प्रभाव शरीर के घटकों पर पड़ता है। मन और मस्तिष्क शरीराश्रित हैं अतः भोजन का प्रभाव इन पर एवं इनसे उत्पन्न विचारों पर सीधा पड़ता है। इसी को दृष्टिगत रखते हुए यह उक्ति बनी है कि—

"जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन।
जैसा पीवे पानी, वैसी होवे वाणी॥"

सात्त्विक आहार जहाँ शरीर को स्वस्थ रखता है, वहाँ विचारों में भी सात्त्विकता लाता है। शुद्धतापूर्वक शोधा हुआ अन्न, घी, छाछ और (गृद्धता, मद-बेहोशी पैदा करने वाले, अनेक जीवों के पिण्ड ऐसे फलों को छोड़ कर) प्राकृतिक फल, आम, अंगूर, अनार, नारंगी, मुनक्का, खरबूजा, बादाम, पिस्ता आदि का आहार, शुद्ध व मर्यादित दूध, अचित्त मसाले, सात्त्विक आहार में आते हैं। हाल का छना हुआ और अचित्त प्रासुक किया हुआ जल सात्त्विक आहार कहलाता है।

चमड़े में रखे हुए पदार्थ, मर्यादारहित आचार, मुरब्बे, मक्खन, बिना फाड़ी हुई फलियाँ, वर्षा ऋतु में पत्ते वाले शाक—ये सभी अभक्ष्य हैं। इनमें अनेक सूक्ष्म जीव उत्पन्न होते रहते हैं। जैनाचार में इसी की तरह मद्य मधु मांस, द्विदल का भी त्याग बताया है।

जैनाचार्यों ने अपने दिव्य ज्ञान और अनुभूति से प्रत्येक वनस्पति के गुण, प्रभाव व क्रिया को अच्छी तरह जान लिया था और उन्हें इस बात का भी पूर्ण ज्ञान था कि जीवों के भिन्न-

भिन्न शरीरों में अनेक अंश ऐसे हैं कि उनमें कुछ थोड़े से अंश भी मनुष्य के शरीर में चले जावें तो वे भयङ्कर रोग पैदा कर सकते हैं। मक्खी व जूँ के खा जाने से क्रमशः वमन व जलोदर, चींटी के खा जाने से शीत पित्ती और मकड़ी के खा जाने से कोढ़ आदि हो जाते हैं। इसलिए उन्होंने सभी भक्ष्य पदार्थों की शुद्धि पर विशेष ध्यान दिया है और जो जीवाणुओं द्वारा सम्भावित-पोषित भी हैं, चाहे वे कितने ही लाभकर क्यों न बताये जावे, उनका त्याग करने को दृढ़ता से आदेश दिया है।

यह बात भी सब जानते हैं कि जैन साधु पदयात्रा करते हैं। वे ग्राम-ग्राम, नगर-नगर में पैदल विहार करते हुए धर्मोपदेश द्वारा जीवो का असीम उपकार करते हैं। पदयात्रा में उन्हें अनेक स्थानों से होकर जाना पड़ता है। वहाँ की आबो हवा भी विभिन्न प्रकार की होती है। दूषित जल पीने से अनेक रोगों की उत्पत्ति सम्भव है अत: उनसे सुरक्षित रहने और शरीर को स्वस्थ रखने हेतु वे प्रासुक (उष्ण) जल का उपयोग करते हैं। इससे उनके देह और मन पर तत्तत् क्षेत्रवर्ती जल का असर नही होता है। यद्यपि अपने शरीर का पोषण करने का उनका लक्ष्य नहीं है तथापि वे यह अच्छी तरह समझते हैं कि स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन व सात्त्विक विचार उत्पन्न होते हैं। तपश्चर्या हेतु मन और शरीर दोनो का स्वास्थ्य परमावश्यक है। कहा भी है—"शरीरमाद्यं खलुधर्म-साधनम्" अर्थात् धर्मसाधना के लिये स्वस्थ शरीर की आवश्यकता है।

स्वास्थ्य की रक्षा सात्त्विक भोजन ही कर सकता है। सात्त्विक भोजन के प्रभाव से जीवन में हेय-आदेय का विवेक, सरलता और सहिष्णुता प्राप्त होती है। तामसिक और राजसिक भोजन विवेकहीनता, कर्त्तव्यशून्यता तो प्रदान करते ही हैं वे पास-पड़ोसियों व समाज के लिए भी भय के कारण बन जाते है। वैज्ञानिकों ने अनुसन्धान कर सिद्ध कर दिया है कि दोनों प्रकार के भोजनसेवियों में रोगो का प्रतिशत अधिक है जबकि सात्त्विक भोजन कर्त्ताओं में प्रति-शत अल्प है।

जैनाचार के इसी क्रम में जल छान कर पीना और रात्रि में भोजन न करना बड़े महत्त्व के हैं। इन्हें वैज्ञानिकों ने स्वास्थ्य संरक्षण के लिए बहुत उपयोगी माना है। बहुत दिन पहले प्रकाशित विश्व स्वास्थ्य संगठन (W. H. O.) की एक रिपोर्ट के अनुसार अनछना पानी पीने से विश्व में प्रतिवर्ष पचास लाख लोग रोगग्रस्त हो जाते हैं जिनमें बहुत से तो मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। रात्रिभोजन के निषेध में अनेक पुराणों में अनेक महर्षियों ने बड़े ही मार्मिक शब्दों में लिखा है। 'मार्कन्डेय पुराण' में मार्कण्डेय ऋषि ने लिखा है—

"अस्तंगते दिवानाथे, तोयं रुधिरमुच्यते।
अन्नं मांस समं प्रोक्तं मार्कण्डेय महर्षिणा॥"

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने अपनी पुस्तक 'गांधी विचार' में अपना अनुभव व्यक्त करते हुए लिखा है कि जबसे मैंने रात्रिभोजन करना छोड़ा है, मैं अनेक परेशानियों से बच गया हूँ।

जैन आचार-शास्त्र में क्या भक्ष्य है? और क्या अभक्ष्य है? इस पर बहुत ही गहराई से सूक्ष्म विचार किया गया है। यदि हम निष्पक्ष, सही दृष्टि से—मात्र धर्म की दृष्टि से नहीं अपितु शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से—उन निष्कर्षों के आधार पर पदार्थों का उपयोग करें तो मेरा विश्वास है कि राष्ट्र में व्याप्त अनेक भयानक व्याधियों से सहज में ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है।

उत्थरइ जा ण जरओ, रोयग्गी जा ण डहइ देहउडिं।
इन्दियबलं न वियलइ ताव तुमं कुणहि अप्पहियं ॥१३२॥

—भावपाहुड

रोगाग्नि देहकुटि ना जब लौं जलाती,
दुर्वार मारक जरा, जब लौं न आती।
पञ्चेन्द्रियां शिथिल हों, बल ना घटातीं,
रे आत्म का हित करो जिनवाणि गाती॥

❖ आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी

नरस्य सारं किल व्रतधारणं

☆

आर्यिका सुपार्श्वमतीजी

अनादि काल से मोहरूपी मदिरा का पान कर यह संसारी प्राणी, संसार में जन्म-मरण के दुःख भोग रहा है—

मोह महामद पियो अनादि,
भूल आपको भरमत बादि ।

अनन्त काल तो इस जीव ने एकेन्द्रिय शरीर को धारण कर निगोद के अन्दर बिताया, जहाँ पर एक श्वास में अठारह बार जन्मा और अठारह बार ही मरण किया ।

काल अनंत निगोद मंझार, बीत्यो एकेन्द्रिय तनधार ।
एक श्वास में अठ दस बार, जन्म्यो, मरयो भरयो दुःख भार ।।

वहाँ से निकल कर, पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय तथा प्रत्येक वनस्पति हुआ । जिस प्रकार चिन्तामणि रत्न का प्राप्त होना दुर्लभ है, उसी प्रकार त्रस-पर्याय दुष्प्राप्य है—

निकसि भूमि, जल, पावक भयो, पवन प्रत्येक वनस्पतिथयो ।
दुर्लभ लहि ज्यों चिन्तामणि, त्यों पर्याय लहि त्रस तणि ।।

इनमें सबसे दुर्लभ मानव पर्याय है । जैसा कि बताया गया है—"एकेन्द्रिय से व्याप्त इस जगत में त्रसत्व, संज्ञित्व, मनुष्यत्व, आर्यत्व, सुगोत्र, सद्गात्र, विभूति, आजीविका, विद्वत्ता, जिनधर्मादि एक से एक दुर्लभ हैं ।" सम्राट अमोघवर्ष अपने अनुभव के आधार पर मनुष्य जन्म को

ही असाधारण महत्त्व की वस्तु बताते हैं। अपनी अनुपम कृति 'प्रश्नोत्तर रत्न मालिका' में उन्होंने कितनी उद्‌बोधक बात लिखी है—

"किं दुर्लभं ? नृजन्म ! प्राप्येदं भवति किं च कर्तव्यं ?
आत्महितमहितसङ्गत्यागो रागश्च गुरुवचने

"दुष्प्राप्य मानव जन्म को प्राप्त कर क्या करना चाहिए ? आत्मा की अकल्याणकारी परिणति का त्याग कर आत्महित करना चाहिए और गुरु वचनों में अनुराग करना चाहिए।"

वैभव, विद्या प्रभाव, ऐश्वर्य आदि के अभिमान में मस्त हो, यह प्राणी अपने को अजर-अमर मान, अपने जीवन की बीतती हुई स्वर्णिम घड़ियों की महत्ता पर बहुत कम ध्यान देता है। वह सोचता है कि हमारे जीवन की आनन्द–गङ्गा अविच्छिन्न रूप से बहती ही रहेगी, किन्तु वह इस सत्य का दर्शन करने से अपनी आँखों को बन्द कर लेता है कि परिवर्तन के इस प्रचण्ड प्रहार से बचना किसी के वश की बात नहीं है। महाभारत में एक सुन्दर घटना आई है—एक बार पाँचों पाण्डव युधिष्ठिरादि प्यास से व्याकुल होकर एक सरोवर में पानी पीने के लिए पहुँचे। जब वे पानी पीने के लिये तत्पर हुए, तब जलाशय के समीप निवास करने वाली देवांगना ने कहा—'हे महाशय ! जगत् में आश्चर्यकारी वस्तु क्या है ? आप इस प्रश्न का उत्तर देकर ही पानी पी सकते हैं।' भीम, नकुल, अर्जुनादि के उत्तर से देवी सन्तुष्ट न हुई, तब युधिष्ठिर ने कहा—

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यममन्दिरम्।
शेषा जीवितुमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परं॥

"प्रतिदिन प्राणी यमराज के ग्रास बनते जा रहे हैं। यह देखकर भी शेष प्राणी जीना चाहते हैं। यह आश्चर्यकारी बात है।" इस मानव–पर्याय का जीवन काल बहुत कम है। इसमें जिन्होंने अपना हित सम्पादन किया, उन्होंने ही इसका सार प्राप्त किया है।

'मानव पर्याय का सार व्रतों का धारण करना है।' 'यशस्तिलक चम्पू' में लिखा है—

पर्याप्तं विरसावसानकटुकैरब्धा वचोर्नाकिनां।
सौख्योमोनसदुःखवावबहुलव्यापारदग्धात्मभिः॥
इत्थं स्वर्गसुखावघरिणपरैराशास्यते तच्चिह्नं।
यत्रोत्पद्यमनुष्य जन्मनि मनोमोक्षाय धास्यामते॥
यस्तु लब्ध्वापि जन्मेदं न धर्माय समीहते।
तस्यात्मकर्मभूमीषु विजृम्भन्तां भवांकुराः॥

स्वर्ग के देव भी निरन्तर यह विचार करते हैं, कि जिनका विपाक हलाहल विष के समान कटु है, मानसिक दुःखरूपी दावानल से व्याप्त ऐसे देवों के स्वर्गीय सुखों से हमें क्या प्रयोजन है ? हमें वह दिन कब प्राप्त होगा जिस दिन मानव-जीवन को प्राप्त कर हम भी मुक्ति प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करेंगे ?

जिन्होंने इस मानव जीवन को प्राप्त करके, मुक्ति के लिये प्रयत्न नहीं किया, उन्होंने मानो कर्मभूमि में भवांकुर को ही बढ़ाया है। मुक्ति का पूर्ण साधन मानव-पर्याय में ही है।

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणिमोक्षमार्गः।

सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इन तीनो के समुदाय को मोक्षमार्ग कहते हैं। सच्चे देव, शास्त्र, गुरु में दृढ श्रद्धान एवं तीन मूढ़ता, आठ मद रहित, आठ अंग सहित दृढ विश्वास तथा जीवादि सात तत्वों का विश्वास हो उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं।

श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागम तपोभृताम्।
त्रिमूढ़ापोढ़मष्टांगं, सम्यग्दर्शनमस्मयम्॥४॥
तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्।

जिससे तत्वों का यथार्थ बोध मिलता हो, हेयोपादेय का विवेक उत्पन्न होता हो उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

अन्यूनमनतिरिक्तं।

जिस आचारप्रणालिका के द्वारा अन्तःकरण की वृत्तियों को नियन्त्रित किया जाता है, जीवन के अन्तरंग व बहिरंग को स्वस्थ एव शुद्ध रखा जाता है ऐसी दोषनिर्नाशिनी, गुणविकासिनी पद्धति को सम्यग्चारित्र कहते हैं। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील तथा परिग्रह के परित्याग को चारित्र कहते हैं।

हिंसानृतचौर्येभ्यो मैथुनसेवापरिग्रहाभ्यां च।
पापप्रणालिकाभ्यो विरतिः संज्ञस्य चारितम्॥

कर्मादान--क्रियायों का निरोध करना भी चारित्र है। यही जैनधर्म की परम पावन त्रिवेणी है, जिसमें स्नान करने वाला मानव, निर्मल, निर्विकार और निष्कालुष्य बन जाता है। जीवनशोधन और मुक्ति-लाभ के लक्ष्य की उपलब्धि के लिये अग्रसर होने वाले साधक के जीवन में ज्ञान, अज्ञान-अन्धकार को दूर कर आलोक को प्राप्त कराता है। श्रद्धान ज्ञान तथा चारित्र में समीचीनता लाता है और चारित्र उस प्रकाश में दृष्टिगोचर होने वाले दोषों को दूर कर, ज्ञान के द्वारा आलोकित स्थान (आत्मा) को स्वच्छ बनाता है। जो इस त्रिपुटी का अवलम्बन लेता है। वही संसार में सच्ची आध्यात्मिकता लाता है। वही मुमुक्षु है। वही अन्त में चरम सीमा का आत्म-विकास प्राप्त कर सकता है। वस्तुतः ज्ञान और विश्वास का सार शुद्धाचार और चारित्र है। 'यशस्तिलकचम्पू' में लिखा है—

"श्रुताय येषां न शरीरवृद्धि श्रुतं चरित्राय च येषु नैव।
तेषां बलित्वं ननु पूर्वकर्मव्यापार भारोद्वहनाय मन्ये॥"

जिनके शरीर की वृद्धि श्रुत के लिये नहीं है श्रुतज्ञान चरित्र के लिये नहीं है उनका शक्तिशालित्व केवल कर्म व्यापार के भार के वहन करने के लिए है, ऐसा मैं मानता हूँ।

जिसप्रकार सम्यग्दर्शनरहित ज्ञान, सम्यक्ज्ञान नहीं उसी प्रकार सम्यक्ज्ञानहीन, कर्मकाण्ड, क्रियाकलाप, जप-तप, काय-क्लेश, देहदमनादि से मुक्ति की सिद्धि नहीं हो सकती।

"आतम अनातम के ज्ञान हीन, जं जै करनी तन करन छीन।"

आत्मा व अनात्मा के भेद विज्ञान के बिना जो क्रियाकाड किया जाता है वह मुक्ति का साधन नहीं, केवल मात्र शरीर का शोषण करने वाला है। उसी प्रकार चरित्रहीन ज्ञान से भी मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती।

मानव-जीवन में सम्यक्चारित्र का स्थान सर्वोपरि है। यद्यपि क्षायिक सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति कर्मभूमिया मानव के ही होती है पर उसे लेकर प्राणी चारों गतियों में जा सकता है शेष सम्यग्दर्शन चारों गतियों मे हो सकते हैं। परन्तु सम्यक्चारित्र मानव पर्याय को छोडकर अन्य पर्यायो मे नही मिल सकता। इसलिये मानव पर्याय को सार्थक करने के लिये चारित्र धारण करना चाहिए। चारित्रहीन मानव जोवन पशु-तुल्य है अन्तर इतना है कि पशु के सीग और पूँछ है, और मानव सीग, पूँछ रहित पशु है।

"पशु घड़तां मनु घड़े, भूले सींग और पुच्छ।
ज्यों पशु के पुच्छ है त्यों मनु की मुच्छ॥"

मानव की सच्चाई कोरे ज्ञान एव विश्वास से नही आंकी जाती है। व्यवहार में भी जिसका चरित्र जितना विशेष होता है, उतना हो वह मानव माननोय और सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। जोवन की दिव्यता का माप-दण्ड चरित्र है। लौकिक व्यवहार मे भी हम देखते हैं कि विश्वास और ज्ञान, जब तक मानव के जीवन में साकार नही होते, तब तक मानव किसी भी सासारिक उद्देश्य में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता।

सरिता के सतत गतिशील प्रवाह को नियंत्रित रखने के लिए दो किनारों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार मानव जीवन को नियन्त्रित रखने के लिए चरित्र रूपी किनारों की परम आवश्यकता है। जिस प्रकार बांध के बिना नदी का प्रवाह छिन्न-भिन्न हो जाता है तथा प्रगतिशील नहीं बनता है, ठीक उसी प्रकार व्रत रूपी बांध के बिना मानव जीवन का प्रवाह भी छिन्न-भिन्न हो जाता है, प्रगतिशील नही बनता है। अतएव जीवन शक्ति को केन्द्रित करने के लिए तथा उसका योग्य दिशा में उपयोग करने के लिए व्रतों को परमावश्यकता है।

आकाश मे ऊँची उड़ने वाली पतंग सोचती है कि उसे बन्धन की क्या आवश्यकता है? यह बन्धन न हो तो वह स्वच्छन्द गगन में विहार कर सकती है। परन्तु हम जानते हैं कि

डोरी के टूटने के साथ ही वह पृथ्वी की ओर नष्ट होने के लिये गिरने लगती है, उसी प्रकार मानव जब तक संयम के बन्धन में रहता है, तब तक शोभा को प्राप्त होता है, संयम का बन्धन नष्ट होते ही वह पतित होने लगता है और दुर्गति को प्राप्त होता है।

जिस प्रकार ब्रेक के बिना गाड़ी का खड्डे में गिरना अवश्यम्भावी है, उसी प्रकार संयम के बिना मानव जीवन हितकारी नहीं। रात्रि की शोभा चन्द्रमा से, भोजन की शोभा नमक से, मुख की शोभा आँख से, राज्य की शोभा न्याय से, दिन की शोभा सूर्य से, कुल की शोभा पुत्र से और स्त्री की शोभा शील से होती है, उसी प्रकार मानव जन्म की शोभा संयम से होती है। संयम के बिना मानव जीवन पशु तुल्य है। जिन्होंने मानव जीवन को प्राप्त कर संयम धारण नहीं किया है, उन्होंने प्रमादवश चिन्तामणि रत्न को पाकर समुद्र में डाल दिया है।

यः प्राप्य दुष्प्राप्यमिदं नरत्वं, धर्मं न यत्नेन करोतिमूढः।
क्लेशप्रबन्धेन स लब्धमब्धौ, चिन्तामणिं पातयति प्रमादात्॥

जो अज्ञानी दुष्प्राप्य इस मनुष्य पर्याय को प्राप्त कर, धर्म धारण नही करता है, वह अज्ञानी कष्ट से प्राप्त हुए चिन्तामणि रत्न को समुद्र में फेंकता है। जिन्होंने संयम धारण नहीं किया, वह मूढ़ चन्दन के बगीचे को जलाकर कोदूं को बोता है।

श्रीपुर नगर मे धार्मिक, परोपकारी, कारुण्यमूर्ति रत्नसिह नामक राजा राज्य करता था। एक दिन भूपाल अपनी सभा में बैठा था। एक दूत ने कहा—"राजन्! शत्रु पक्ष ने आपके राज्य को घेर लिया है। वह आपका प्रजा को दुःख देता है।" पृथ्वीपति ने कहा—"तब तक ही हरिण वन में स्वेच्छापूर्वक उछल-कूद मनाते हैं, जब तक वे केसरी की गर्जना को नहीं सुनते हैं।" ऐसा कहकर नृपराज सिंहासन से उठा और सेना लेकर युद्ध के लिए निकल पड़ा। पूर्वोपार्जित पुण्योदय से तथा अपने पराक्रम से शत्रुओं को जीतकर अपने नगर को लौटा। सारी प्रजा शत्रु-विजयी नरेश की अगवानी करने के लिए निकली। नरेश ने समस्त पुरजन-परिजन को दानादि के द्वारा सन्तुष्ट किया। इतने में दूर खड़े हुए दीन दशा को प्राप्त किसी व्यक्ति पर भूमिपाल की नजर पड़ी। उसको देखकर नरपति ने स्वकीय सचिव से पूछा—"मन्त्रिन्! यह दरिद्र कौन है?" मन्त्री ने कहा—"नरनाथ! कुल परम्परागत नगर स्वच्छ करने वाला आपका महत्तर है।" मेदिनीनाथ ने कहा—"मन्त्रिन्! आज तक तुमने मुझे इसका हाल क्यों नहीं बताया? क्योंकि राजाओं का राज्य मन्त्रियों पर चलता है, गृहस्थियाँ स्त्रियों पर आधारित है। मन्त्रियों का यह कर्तव्य होता है, कि प्रजा का सुख-दुःख राजाओं से कहे।" मन्त्री ने कहा—"प्रभो! अब भी दानादि के द्वारा इसका दुःख दूर कीजिये।" राजा ने उस दरिद्री को अपने निकट बुलाया और एक ग्राम उसे देना चाहा। यह सुनकर

दरिद्र ने कहा—"हे नाथ ! मैं ग्राम का क्या करूं ? जिनके भृत्य वर्ग होते हैं, वे ही ग्रामाधीश बन सकते हैं।" राजा विस्मयान्वित हो कर बोला—"जिसके निकट ग्रामादि विभूतियाँ होती हैं उसके नौकरादि अपने आप हो जाते हैं।" राजा के बार-बार कहने पर भी उसने ग्राम लेना स्वीकार नहीं किया और कहा—"नाथ ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो एक खेत दे दीजिए।" उसकी इच्छा अनुसार नराधिपति ने अपना बहुमूल्य चन्दन का बगीचा उसको दे दिया। दूसरे दिन दरिद्र खेत में गया, तो उसने देखा कि पूरे खेत में चन्दन के वृक्षों पर महाकाय अजगर लिपटे हुए थे और चन्दन की सुगन्धि से भँवरे मंडरा रहे थे। उस चन्दन के उपवन को देखकर वह सोचने लगा, कि राजा ने खेत तो दिया, परन्तु सर्पों और लकड़ी से व्याप्त इस खेत का मैं क्या करूंगा। अल्पकाल विचारने के बाद उसने मन ही मन में विचार किया कि अपने को (मुझे) पुरुषार्थ करना चाहिए—

"उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः ।
दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति ।।"

"उद्योगी पुरुष को लक्ष्मी प्राप्त होती है। भाग्य से मिलेगी, ऐसा तो कायर लोग कहते है।" इसलिये भाग्य का आश्रय छोड़कर पुरुषार्थ करना चाहिए। यदि पुरुषार्थ करने पर भी सिद्धि न प्राप्त हो तो अपना क्या दोष ? ऐसा विचार कर वह कुल्हाड़ी लेकर दूसरे दिन खेत मे आया। धीरे-धीरे सारे बगीचे को काटकर जला दिया और उसमें कोंदू बो दिये। जब कोंदू का खेत हरा भरा हो गया, तब उस दरिद्र ने राजा को अपना खेत दिखाने के लिए बुलाया। चन्दन के बगीचे का अभाव देख कर नरेन्द्र ने पूछा—"रे वत्स ! यह क्या बोया है ?" उसने कहा—नाथ ! आपने मुझेलकड़ी का भरा हुआ जंगल दिया। मैंने अपने परिश्रम से स्वच्छ कर कोदू बोये है। जब यह खेती पक जायेगी, तब मेरी सन्तान का पोषण होगा।" उसकी इस बात को सुनकर नृप ने कहा—"तूने सारी लकड़ी जला दी या कुछ शेष रखी है।" उसने कहा—"प्रभो ! एक हाथ लकड़ी का टुकड़ा मेरी पत्नी ने कपड़ा धोने के लिए मंगवाया था, वह घर पर रखा है।" राजा ने कहा—"उसे बाजार में बेचकर आओ।" दरिद्र ने सोचा एक हाथ लकड़ी से क्या मिलने वाला है, परन्तु राजाज्ञा शिरोधार्य है, ऐसा सोचकर वह उस टुकड़े को लेकर बाजार मे गया। वह दाहज्वरनाशक बहुमूल्य चन्दन था। किसी वणिक् ने उस टुकड़े को ५० रु० देकर खरीद लिया। इसे देख कर दरिद्री पश्चाताप करने लगा। हाय ! मैंने बिना विचारे ही मूल्यवान वस्तु को नष्ट कर दिया। यदि मैं इसका सदुपयोग करता तो सुखी बन सकता था। जो बिना विचारे कार्य करता है, उसको अन्त में पश्चाताप ही करना पड़ता है। यह तो दृष्टान्त है। दार्ष्टान्त कहते हैं—चन्दन के बगीचे के समान ही मानव पर्याय है। राजा के समान कर्मों का लघु विपाक है, अर्थात् कर्म फलचेतना भोगते-भोगते कर्मों का कुछ लघु विपाक होता है, तो मानव पर्याय की प्राप्ति होती है, और कोंदू विषय भोग-रूप है।

जिस प्रकार महती कठिनता से दरिद्री को चन्दन का बगीचा मिला था। उस मूर्ख ने उसकी कीमत न जानकर, उसे व्यर्थ में ही नष्ट कर दिया, ठीक उसी प्रकार प्राणी को भी बडी कठिनता से मानव पर्याय प्राप्त होती है। उसकी कीमत न जानकर विषय वासना रूपी कोंदू को बोकर वह उसे व्यर्थ में ही नष्ट कर देता है। यदि मानव मानव-पर्याय का सदुपयोग करे तो जन्म जन्मान्तर के कर्मों का नाश कर वास्तविक सुख प्राप्त कर सकता है। सुख की प्राप्ति अनादिकालीन बँधे हुए कर्मों के नाश से होती है। कर्मों का नाश चारित्र से होता है। चारित्र की प्राप्ति मानवपर्याय में हो होती है, इसलिये मानव पर्याय को सार्थक करने के लिये व्रतों को धारण करना चाहिये।

❖

जगत मूल यह राग है, मुक्ति मूल वैराग।
मूल ढुढुन को यह कह्यो, जाग सके तो जाग॥

❖ डॉ० आदित्य प्रचण्डिया 'दीति', अलीगढ़

समता का देवता

¤

बात पुरानी ही समझिये। बिहार प्रदेश के किसी छोटे से गाँव में सुमाली नामका एक मालाकार रहता था। उसका एक सुन्दर उद्यान था। उद्यान में उसके कुल देवता का प्राचीन मन्दिर था।

सुमाली सुबह होते ही नैत्यिक क्रियाओं से फारिग होता और अपनी पत्नी सुमुखि के साथ उद्यान जाता। सर्वप्रथम पति-पत्नी दोनों अपने आराध्य कुलदेवता की बड़ी भक्ति के साथ उपासना-अर्चना किया करते फिर रंग-बिरंगे, हँसते-विहँसते नाना फूलों को चुन कर उनके गुलदस्ते, गजरे तथा मालाएँ बनाते और समीपस्थ नगर में जाकर बेचते। इस प्रकार इस दम्पति की जीविका चलती।

एक दिवस की बात है कि उद्यान से कुछ बदमाशो का गुजरना हुआ। फूल चुनते हुए सुमुखि के सुकुमार सौन्दर्य को बदमाशों ने देखा। अपलक निहारते रहे। वासना का सागर उनमें हिलोरें लेने लगा। अवसर पाकर उन्होंने सुमाली को रस्सियों से बाँध दिया। कामातुर वे सब सुमुखि के साथ मन-मानी करने लगे।

अपने ही समक्ष दुष्टों का अत्याचार-अनाचार देखकर सुमाली का खून खौल उठा। रस्सियों से बँधा हुआ वह अवश-विवश था। क्या कर पाता? उसने क्रोधावेश में अपने कुलदेवता को कोसना शुरू कर दिया—"हे गुरुदेव! मैं आरम्भ से तुम्हारी ही पूजा-उपासना करता आया हूँ लेकिन आज मैं आपत्ति-विपत्ति मे फंसा हूँ तो तुम प्रस्तर की नाईं निश्चेष्ट खड़े मेरा अपमान होता देख रहे हो। लगता है तुममें कुछ भी सत्व नहीं है।"

सुमाली की तड़पभरी पुकार का असर हुआ। कुलदेवता सुमाली की देहयष्टि में प्रविष्ट हो गये। सुमाली के बन्धन टूट गए। रोष-आक्रोशवश सुमाली उन्मत्त-प्रमत्त हो गया। उसने कामरत सुमुखि सहित बदमाशों की हत्या कर डाली। इतने पर भी उसका क्रोध शांत

नहीं हुआ। उसके मन में मनुष्यजाति के प्रति भयंकर घृणा का भाव अनुस्यूत हुआ। वह भूखे शेर की भाँति प्रतिदिन दस-बीस मनुष्यों पर झपटकर उनकी हत्या करके ही सांस लेता। कुछ ही दिवसों मे रमणीय उद्यान के परिपार्श्व में नर कंकालों का ढ़ेर लग गया। सुमाली के आतंक से जनता का आवागमन बन्द हो गया। मार्ग सुनसान हो गए। उद्यान की दिशा में जाने का सख्त प्रतिरोध कर दिया गया।

एक सन्त का उधर से गुजरना हुआ। सुदीर्घ अन्तरालोपरान्त मनुष्य को आया देख सुमाली उत्फुल्ल-प्रफुल्ल हो गया। वह मुद्गर ले सन्त की ओर लपका। सन्त उपसर्ग जानकर ध्यानस्थ हो गये। मुद्गर उठा का उठा रह गया। सन्त की सौम्यता के समक्ष सुमाली की क्रूरता-दानवता पराभूत हो गयी। सुमाली स्तब्ध हो सन्त-चरणों में गिर पड़ा।

सन्त ने उसे उठाया। उसकी क्रूरता-दानवता को करुणा और स्नेह के हाथों से दुलारा-पुचकारा। वे बोले—"भले प्राणी! घबराओ नही। तुम मनुष्य हो। तुम्हारे रक्त में दनुजता के सस्कार प्रवेश पा गए थे अतएव तुमने अनेक निरपराध प्राणियो की हत्या कर डाली। अब तुम प्रबुद्ध हो गये हो।"

सन्त की हृदयग्राही उपदेश-वृष्टि से सुमाली के रक्त की दानवीय उष्मा शान्त-प्रशान्त हुई। करुणा का स्रोत फूट पड़ा। पश्चात्ताप के आँसू बह चले। अन्त में सुमाली ने सन्त के समक्ष प्रायश्चित कर उसी क्षण कठोर साधना स्वीकार कर ली।

साधना में लीन-तल्लीन सुमाली को देख लोग आवेश में आ जाते और कहते—"यही है हमारे प्रिय स्वजनों-इष्ट मित्रों का हत्यारा।" लोग सुमाली को मारते-पीटते, त्रास देते, साधक सुमाली सब परीषह सहन करते।

वस्तुतः सुमाली जन्मना आर्य था किन्तु उसमे देवदुर्विपाक से अनार्यता के क्रूर संस्कार समाहित हो गए थे। सन्त ने संस्कार शुद्धि की प्रक्रिया द्वारा क्रूरता के उस दैत्य को समता का देवता बना दिया। महामानव महावीर से सौहार्द, सौजन्य तथा विचार सहिष्णुता का मार्ग प्रशस्त किया था। दूसरों के प्रति हितैषी और अपने प्रतिशोधक बनने का उपदेश दिया था। फलस्वरूप जनमानस में व्याप्त विषमता का विसर्जन हो समता का संचार हो उठा। आज भी उनके उपदेशामृत का स्वर भास्वर है—

> हे श्रमण तुम्हारी वाणी के,
> अमृत रस का हम पान करें।
> विष दूर विषमता का होवे,
> सम रस जीवन निर्माण करें॥

❖

❖ मदनलाल बाकलीवाल, नागौर

नागौर की भट्टारक - परम्परा

¤

नागौर राजस्थान का एक प्रमुख ऐतिहासिक नगर है जो प्रान्त के मध्य भाग में स्थित है। वर्तमान में यह एक जिला केन्द्र है। इसके प्राचीन नाम नागपुर, अहिच्छत्रपुर, नागपट्टन, अहिपुर आदि मिलते हैं। पहले इस प्रान्त का नाम सपादलक्ष था जो अब सवालाख नाम से जाना जाता है। 'नागौर का उल्लेख महाभारत में भी मिलता है। यह प्रदेश अर्द्ध रेगिस्तानी है।

७वीं सदी में इस क्षेत्र पर चौहानों का राज्य था। प्रसिद्ध गुजराती सम्राट जयसिंह व कुमारपाल चालुक्य का भी यहां शासन रहा। पृथ्वीराज चौहान के पिता सोमेश्वर के राज्यकाल मे विक्रम सवत् १२११ की बैशाख सुदी तीज को यहाँ का किला बनना शुरु हुआ था। चौहानों के बाद में मुसलमानों का, उसके बाद नागवंशियों का और फिर प्रतिहारों का शासन हुआ। सन् १४०० के लगभग गुजराती सुल्तानों का शासन हुआ। सन् १४२० के लगभग मेवाड़ के महाराणा का राज्य हुआ, पुनः वापस गुजराती सुल्तानों का शासन हुआ। मुगल सम्राट अकबर ने यहाँ सन् १५६५ के लगभग अपना अधिकार जमाया था। सन् १५७० में स्वयं अकबर नागौर आया था। उसने यहा मस्जिद बनवाई। शेख मुबारिक तथा उसके पुत्र अब्दुल फजल तथा फैजी नागौर के ही थे। शाहजहाँ के राज्यकाल में यह नगर प्रसिद्ध राठौड़ अमरसिंह को जागीर में दिया गया। अमरसिंह राठौड़ ने शाहजहाँ के दरबार मे सलावत खाँ को कटार मार कर मार दिया था और स्वयं घोड़े पर सवार होकर आगरा के किले पर से कूद गये थे। इनके पुत्र इन्द्रसिंह के बाद में यहाँ पर फिर मुगलों का अधिकार हो गया। बरवतसिंह को यह फिर जागीर में दिया गया। उसके बाद भारत स्वतन्त्र होने तक नागौर जोधपुर के राठौड़ों के अधीन रहा। बङ्गाल का प्रसिद्ध जगत सेठ का घराना भी नागौर का था।

नागौर एक प्रसिद्ध धार्मिक केन्द्र भी है। यहां मुस्लिम सन्त तारकीन की दरगाह बनी है। सन्त तारकीन ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती अजमेर वाले के शिष्य थे। यहाँ रामसनेही सम्प्रदाय की भी

गद्दी है। श्वेताम्बर जैन धर्म का तो यह प्रमुख केन्द्र है। नागपुरीय तपागच्छ संघ की स्थापना नागौर में ही हुई थी। सम्वत् १५९५ में श्री पार्श्वचन्द्र सूरि ने पार्श्वचन्द्रसूरि गच्छ की स्थापना की थी। बारहवी सदी में होने वाले श्वेताम्बर विद्वान् सिद्धसेनसूरि ने नागौर का तीर्थ के रूप मे उल्लेख किया है। गुजरात के प्रसिद्ध श्वेताम्बर जैनाचार्य हेमचन्द्रसूरि का संवत् ११६६ वि० वैशाख सुदी तीज को यहाँ पट्टाभिषेक हुआ था। अकबर को जैनधर्म का प्रतिबोध देने वाले प्रसिद्ध हीरविजयसूरि ने संवत् १६४४ में यहाँ चातुर्मास किया था। नागौर नाथ सम्प्रदाय का भी केन्द्र रहा है।

नागौर दिगम्बर जैन सम्प्रदाय का भी प्रमुख धार्मिक स्थल है। पहले यहां दिगम्बर जैनों की सख्या काफी थी। अंग्रेजी राज्य की स्थापना के बाद अधिकांश दिगम्बर जैन आजीविका हेतु भारत के अन्य प्रदेशों में जाकर बस गये। यहाँ के दिगम्बर जैन बड़े मन्दिर का निर्माण काल करीब १०वीं सदी है। कुछ मूर्तियाँ शिलालेखरहित है किन्तु उनकी कला पाँचवीं—छठी शताब्दी की है। मूलनायक आठवें तीर्थङ्कर भगवान चन्द्रप्रभ का बिम्ब संवत् १२४० का है। शिलालेखवाले जिनबिम्बों में यही प्राचीनतम है। इसी मन्दिरजी में भट्टारक गद्दी भी है जिसकी स्थापना प्रसिद्ध भट्टारक जिनचन्द्र के शिष्य रत्नकीर्ति ने संवत् १५७१ में की थी। इसी मन्दिरजी में राजस्थान का विशालतम शास्त्र भण्डार भी है। इसमें सबसे प्राचीन ग्रन्थ समयसार संवत् १३०३ का लिपि किया हुआ था। भण्डार मे अपभ्रंश, प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी इन सभी भाषाओं के अनेकानेक हस्तलिखित ग्रन्थ हैं।

पट्टावलियों के अनुसार भट्टारक प्रभाचन्द्र पहले भट्टारक हुए। इनका जन्म संवत् १२९० की पोह सुदी १५ को हुआ था। वे बारह वर्ष की अवस्था मे साधु हो गये थे। चौबीस वर्ष की अवस्था में भट्टारक बने। इन्होने दिल्ली मे फिरोजशाह तुगलक के दरबार में राघोचेतन नामक विद्वान् को वाद-विवाद में हराया था। फिरोजशाह तुगलक पर इनका प्रभाव था। इनके समय में भट्टारकों ने राजसी ठाट-बाट अपना लिया था। ये भी राजाओं की तरह छत्र, चमर, पालकी, मोर-छल, नकारा, नरसिंहा आदि रखने लगे। मुसलमान राज्य में इनके बेरोकटोक बिहार के लिये बादशाहों ने फरमान जारी किये थे। जयपुर, आवाँ, बयाना तथा दिल्ली में इनके द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियाँ मिलती हैं। संवत् १३१६ की प्रशस्ति में प्रभाचन्द्र व फिरोजशाह तुगलक का नाम 'आराधना पञ्जिका' में लिखा मिलता है। प्रभाचन्द्र का नागौर आना जाना होता था क्योकि नागौर भी फिरोज-शाह तुगलक के आधीन था। इनके समय के लिपिकृत ग्रन्थ नागौर शास्त्रभण्डार में विद्यमान हैं। इनका स्वर्गवास १३८५ में हुआ।

इनके पट्ट पर पद्मनन्दी १३८५ में बैठे। इनकी पन्द्रह रचनाएँ संस्कृत भाषा में मिलती हैं। इनके द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियाँ सांगानेर के संघीजी के मन्दिर में तथा भरतपुर के मन्दिर में

मिलती हैं। इनके शिष्य सकलकीर्ति ने ईडर में, देवेन्द्रकीर्ति ने सूरत में तथा शुभचन्द्र ने दिल्ली में भट्टारक गद्दियों की स्थापना की। यह भी कहा जाता है कि इन्ही पद्मनन्दी ने गिरनार पर्वत पर अम्बिकादेवी को मुख से बुलवाया था।

इनके पट्ट पर विक्रम संवत् १४५० में शुभचन्द्र बैठे। शुभचन्द्र के पट्ट पर संवत् १५०७ में जिनचन्द्र बैठे। इनके समय में नागौर जैनधर्म का एक प्रमुख केन्द्र बन गया था। इनके विद्वान् शिष्य रत्नकीर्ति स्थायी रूप से यहीं रहने लगे थे। आगे चल कर इन्ही रत्नकीर्ति ने नागौर की भट्टारक गद्दी की स्थापना की थी। भट्टारक जिनचन्द्र की एक रचना 'सिद्धान्तसार' माणिकचन्द ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित हो चुकी है। इनके द्वारा रचित एक श्रावकाचार भी मिलता है। सवन् १५०२, १५०६, १५१५, १५३७, १५४२, १५४५ व १५४८ मे इनके द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियां भी मिलती हैं।

भट्टारक जिनचन्द्र ने राजस्थान गुजरात की सीमा पर डूंगरपुर के पास स्थित मोडासा-नगर मे विक्रम संवत् १५४८ की वैशाख सुदी तोज को हजारो प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करवायी थी। साह जीवराज पापड़ीवाल प्रतिष्ठाकारक थे। उत्तरी भारत के प्राचीन मन्दिरो मे इनके द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियाँ मिलती हैं इनके शिष्य प्रभाचन्द्र ने चित्तौड़ गद्दी की स्थापना की। सिंहकीर्ति ने अटेर गद्दी की स्थापना की। रत्नकीर्ति ने नागौर गद्दी की। इनके अलावा इनके संघ में बहुत से साधु, आर्यिका, ब्रह्मचारी पण्डित आदि भी थे जिन्होने जैनधर्म का बहुत प्रचार किया। इनका स्वर्गवास १५७२ में हुआ था।

पण्डित मेधावी ने अपना 'धर्मसंग्रह श्रावकाचार' नागौर मे ही सम्पूर्ण किया था। इसकी प्रशस्ति में उन्होंने रत्नकीर्ति एवं नागौर का सुन्दर वर्णन किया है—

सूरि श्री जिनचन्द्रकस्य समभूद्रत्नादिकीर्तिमुनिः,
शिष्यस्तत्त्वविचारसारमतिमान्सद्ब्रह्मचर्यान्वितः।
योऽनेकैर्मुनिभिस्त्वणुव्रतिभिराभातीह मौण्डंयगंणो,
चन्द्रो व्योम्नि यथा ग्रहे परिवृतो मेघोल्लसत्कान्तिमान् ॥१४॥
सपावलक्षे विषयेऽतिसुन्दरे, श्रियापुरं नागपुरं समस्ति तत्।
पेरोजखाना नृपतिः प्रयाति, न्यायेन शौर्येण रिपून् निहन्ति च ॥१८॥
नन्दन्ति यस्मिन् धनधान्यसम्पदा, लोकाः स्वसन्तानगणेन धर्मतः।
जैना घना चैत्यगृहेषु पूजनं, सत्पात्रदानं विधत्यनारतम् ॥१६॥

(१) श्री रत्नकीर्ति नागौर गद्दी के प्रथम भट्टारक थे। इन्होंने परबतसाह पाटनी द्वारा आदिनाथ भगवान की वेदी बनवाई। इसका शिलालेख मन्दिरजी में लगा हुआ है।

(२) श्री भुवनकीर्ति दूसरे भट्टारक थे जो १५८६ में गद्दी पर बैठे। इन्होंने अञ्जनासुन्दरी चरित्र की रचना। (३) भट्टारक धर्मकीर्ति १५६० में, (४) विशालकीर्ति १६०१ में, (५) लक्ष्मीचन्द्र १६११ में, (६) सहस्रकीर्ति १६३१ मे, (७) नेमिचन्द्र १६५० वि० में और (८) यशःकीर्ति संवत् १६७२ में गद्दी पर बैठे। यश·कीर्ति के उपदेश से प्रभावित होकर रायसाल के मन्त्री देवीदास के पुत्र जीतमल एवं नथमल ने रेवासा में आदिनाथ का मन्दिर बनवाया था। (९) भानुकीर्ति संवत् १६९० में गद्दी पर बैठे। इन्होंने रविव्रत कथा, वृहद्सिद्धचक्रपूजा, रोहिणीव्रतकथा एवं पार्श्वनाथ स्तोत्र की रचना की थी। इनके समय में अनेक ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ की गई। (१०) श्रीभूषण संवत् १७०५ मे गद्दी पर बैठे। ये ७ वर्ष तक भट्टारक रहे, बाद मे इन्होंने अपने शिष्य धर्मचन्द्र को भट्टारक बना दिया। भट्टारक पद छोड़ने के बाद आप करीब १२ वर्ष तक जीवित रहे थे। यही एकमात्र भट्टारक थे जिन्होंने अपना पद छोडा था। इनके द्वारा रचित कुछ ग्रन्थ हैं—अनन्तचतुर्दशी पूजा सस्कृत, अनन्तनाथ पूजा संस्कृत, भक्तामरपूजाविधान, श्रुतस्कन्धपूजा, सप्तर्षिपूजा, लक्ष्मी सरस्वती संवाद और पाण्डवपुराण। इनके अलावा भी इनकी रचनायें और हो सकती हैं।

(११) भट्टारक धर्मचन्द्र संवत् १७१२ में गद्दी पर बैठे। ये ९ वर्ष की अवस्था में ही साधु बन गए थे, २९ वर्ष की अवस्था में भट्टारक बने। इन्होंने संवत् १७२६ की जेठ सुदी दूज को मारोठनगर के आदिनाथ जिनालय मे 'गौतमस्वामी चरित्र' की रचना सस्कृत में की थी। नागौर के भट्टारकों द्वारा रचित साहित्य में से एकमात्र यही ग्रन्थ है जो सूरत से प्रकाशित हुआ है। इन्होंने नेमिनाथ विनति, सम्बोधपञ्चासिका एव सहस्रनामपूजा भी लिखी थी।

(१२) देवेन्द्रकीर्ति संवत् १७२७ में भट्टारक बने। इन्होने पूजाएँ लिखी जो अद्यावधि अप्रकाशित हैं। (१३) सुरेन्द्रकीर्तिसंवत् १७३८ मे गद्दी पर बैठे। इन्होने संवत् १७४० मे रविवार-व्रत कथा लिखी। (१४) भट्टारक रत्नकीर्ति (द्वितीय) विक्रम सवत् १७४५ मे भट्टारक बने। ये बड़े प्रभावशाली थे। मन्त्र-तन्त्र के विशेष ज्ञाता थे। इन्होने करीब १७५१ वि० में अजमेर में स्वतन्त्र भट्टारक गद्दी की स्थापना की थी। कालाडेहरा मे इनका पुनः पट्टाभिषेक हुआ। (१५) इनके बाद सम्वत् १७५२ में भट्टारक ज्ञानभूषण नागौर गद्दी पर बैठे। इनका बड़ा प्रभाव था। इनके समय में इस प्रान्त में सब जगह नागौरी तथा अजमेरी पंचायतें बनी तथा इनके अलग-अलग मन्दिर भी बने। इन्होंने अजमेर में भी नागौरी आम्नाय का मन्दिर बनवाया। (१६) भट्टारक चन्द्रकीर्ति सम्वत् १७८७ में नागौर गद्दी पर बैठे। ये हिन्दी सस्कृत के विद्वान् थे। मन्त्र-तन्त्र शास्त्री भी थे। इन्होंने नागौर-गद्दी की आम्नाय की रक्षा करने के लिये जोधपुर के महाराजा से फरमान प्राप्त किए। इनके बाद होने वाले भट्टारकों को चन्द्रकीर्ति की परम्परा में होने का गौरव था। इनके समय में अनेक शास्त्रो की प्रतिलिपियाँ की गईं।

(१७) भट्टारक पद्मनन्दी संवत् १८२२ में, (१८) सकलभूषण सम्वत् १८४३ में, (१९) सहस्रकीर्ति संवत् १८६३ में, (२०) अनन्तकीर्ति सम्वत् १८६६ में, (२१) हर्षकीर्ति संवत् १८९६ में, (२२) विद्याभूषण संवत् १९०८ में और (२३) हेमकीर्ति सम्वत् १९०९ में भट्टारक बने। श्री हेमकीर्तिजी विद्वान् प्रभावशाली भट्टारक थे। इन्होंने कई जगह मन्दिर बनवाये तथा पुराने मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाया। नागौर के शास्त्रभण्डार में वृद्धि की। इन्होंने अपने आम्नाय क्षेत्र में विहार किया। अंग्रेजी राज्य में इस प्रान्त के श्रावक अन्यत्र जा कर बस गये थे। वहाँ भी आपने पहुँच कर धर्म प्रचार किया। इनके समय में अनेक ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ तैयार की गईं।

(२४) भट्टारक क्षेमेन्द्रकीर्ति सम्वत् १९३६ में गद्दी पर आसीन हुए। ये विद्वान् भट्टारक थे, इन्होंने दक्षिण भारत में भी विहार किया था। गजपन्था सिद्धक्षेत्र की खोज का श्रेय इन्हीं को है। इन्होंने गजपन्था पर्वत के मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाया। म्हसरूल गाँव में धर्मशाला तथा मन्दिर बनवाया। दक्षिण भारत से शास्त्र लाकर नागौर भण्डार को समृद्ध किया। गजपन्था में इन्होंने पञ्चकल्याणक महोत्सव की व्यवस्था की थी परन्तु महोत्सव से पूर्व ही गजपन्था में इनका स्वर्गवास हो गया। गजपन्था पर्वत की तलहटी मे ही आपका अन्तिम संस्कार किया गया। वहाँ छतरी बना कर चरण पादुका विराजमान की गई है तथा छोटा सा उद्यान भी बनाया गया है।

(२५) भट्टारक मुनीन्द्रकीर्ति सम्वत् १९४३ में गजपन्था में भट्टारक बने। इन्होंने वहां पर पंचकल्याणक महोत्सव सम्पन्न कराया। स्थान-स्थान से शास्त्र एकत्र कर उन्हें सुरक्षित रखने की व्यवस्था की। श्रुत संरक्षण की आपको बड़ी चिन्ता थी। इनके समय में शास्त्रों की सुरक्षा व व्यवस्था पर विशेष ध्यान दिया गया। आपने ही श्री क्षेमेन्द्रकीर्तिजी की छतरी गजपन्था में बनवाई। श्री हेमकीर्तिजी की छतरी और चरण चिह्न डेह मे बनवाये। आपका विहार उत्तर भारत के साथ-साथ दक्षिण भारत में भी हुआ। आपने गजपथा सिद्धक्षेत्र की भी उत्तम व्यवस्था की। आपके समय में ही इस प्रान्त की समाज तेरह तथा बीस पन्थों में विभाजित होने लगी थी। (२६) श्री कनककीर्ति सम्वत् १९६० के आसपास भट्टारक बने। (२७) श्री हर्षकीर्ति सम्वत् १९६६ में गद्दी पर बैठे।

(२८) श्री महेन्द्रकीर्तिजी सवत् १९८० में भट्टारक बने। इनके समय में नागौर में नसियांजी का निर्माण हुआ।

(२९) सम्वत् १९९५ में श्री देवेन्द्रकीर्ति भट्टारक बने। ये एक प्रभावशाली विद्वान् थे और मंत्र-तंत्र शास्त्री थे। इन्होंने जगह-जगह विहार कर धर्म का प्रचार किया। हिसार (हरयाणा) में

एक जगह जमीन खुदवा कर मूर्तियां निकलवाई तथा वहां पर मन्दिर बनवाया। नागौर शास्त्र-भण्डार की सूची का काम भी आपने अपनी देखरेख मे करवाया। यहां का शास्त्रभवन भी आपके समय में ही बना। शास्त्रों को आधुनिक तरीके से सुरक्षित कर आपने नये भवन में लोहे की आलमारियों में रखवाया। आपने आचार्य महावीरकीर्तिजी के साथ नागौर में चातुर्मास किया। आपका स्वर्गवास १९२४ की भादवा बदी १५ को हैदराबाद में हुआ और आपके साथ ही नागौर भट्टारक परम्परा की इतिश्री हो गई।

❖

❖ डा० सुशीलचन्द्र दिवाकर, जबलपुर

मध्यप्रदेश में जैन संस्कृति

✡

पृष्ठभूमि :

मध्यप्रदेश में जैन संस्कृति लगभग कोने-कोने मे अपनी ऐतिहासिकता पर आधारित है। इस प्रदेश में पुरातत्व की प्रचुर सामग्री उपलब्ध है। स्पष्टतः जैन पुरातत्व की दिशा मे भी यह प्रदेश अत्यधिक समृद्ध है। वाकाटक गुप्त, परमार, कलचुरि और चन्देलों के शासनकाल में जैन कला को अपनी अभिवृद्धि के अवसर प्राप्त हुए। यहाँ की जैन स्थापत्य कला, चित्रकला एवं मूर्तिकला से संबन्धित सामग्री इसकी साक्षी है। पौराणिक काल से ही जबलपुर की समीपवर्ती त्रिपुरी एक महान् क्षेत्र रहा है। चीनी यात्री ह्वेनसांग तक ने इसकी गौरव गरिमा का उल्लेख किया है। यहा अन्य राजसत्ताओं के साथ ही पश्चात्वर्ती कलचुरि नरेशों ने भारत की वैदिक, जैन एवं बौद्ध संस्कृति रूपी त्रिवेणी को सरक्षण प्रदान किया था। इनका सम्बन्ध जैनधर्म के उपासक राष्ट्रकूटों से भी था। प्रो० रामास्वामी आयगर के अनुसार कलचुरिवंश की शाखा के रूप में विख्यात कलभ्र जैनधर्म के अनुयायी थे। अनुमान है कि इन्हीं कलभ्रों को आज कलार कहा जाता है। इनमे कितने ही अभी भी जैन कलार के रूप में सम्बोधित किये जाते हैं। त्रिपुरी में जैनधर्म के जो अवशेष मिले हैं, उनसे स्पष्ट होता है कि जैन कला उन दिनों अपने उच्चतम शिखर पर थी। वैसे तो सम्पूर्ण चेदि जनपद में मध्ययुग में उत्कीर्ण जैन शिल्प, स्थापत्य बहुतायत से उपलब्ध हैं, फिर भी त्रिपुरी की कला देख कर प्रतीत होता है कि जैनधर्म कभी लोकधर्म रहा होगा। यहां से प्राप्त नेमिनाथ की यक्षिणी अम्बिका के नीचे उत्कीर्ण है—"मानादित्य की पत्नी सोम तुम्हें रोज प्रणाम करतो है।" मानादित्य की पत्नी के माध्यम से मानो इस भूभाग की धर्मप्राण जनता ही वैराग्यमूर्ति तीर्थङ्करों को प्रणाम कर रही है। ग्वालियर के विशाल दुर्ग की प्राचीरों में निर्मित विशाल जैन प्रतिमाएं ग्वालियर के ऐतिहासिक राजवंश की धार्मिक उदारता को उजागर करती हैं। खजुराहो का जैन शिल्प चन्देल राजाओं की धार्मिक सहिष्णुता को स्पष्ट करता है। कुण्डलपुर में प्रतिष्ठित 'आदि जिन' धार्मिकता और उदारता की गाथा गा रहे हैं। इस प्रकार जनता और

राजा दोनों से इस संस्कृति को सुरक्षा और संवर्धन प्राप्त हुआ। फलस्वरूप मध्यप्रदेश में आज तक जैन संस्कृति की सरिता अविरल रूप से प्रवाहित है।

जैन सांस्कृतिक स्थल :

पुरातत्ववेत्ता श्री फरलांग ने लिखा है कि यदि भारत में दो मील के व्यास वाला वृत्त कही भी बनाया जाए तो आपको जैन संस्कृति से सम्बन्धित पुरातत्त्व सामग्री मिल जायेगी। फरलांग का यह कथन मध्यप्रदेश पर शब्दशः चरितार्थ होता है। मध्यप्रदेश के कोने-कोने मे इतनी प्रचुर मात्रा में मन्दिरों, मूर्तियों, ग्रन्थों, स्तम्भों आदि के रूप में सामग्री है कि देख कर आश्चर्य होता है। यदि उत्खनन कार्य तेजी से हों तो न जाने कितनी सामग्री और उपलब्ध होगी। मुझे स्वयं अनुभव है। छत्तीसगढ़ के वनप्रान्तर में बसे हुए डोंगरगढ के जंगली भाग में मैं अपने कुछ साथियों के साथ घूम रहा था। वहां एक वृक्ष के नीचे अत्यन्त रमणीय, पुरातन विशाल बिम्व तीर्थंकर का दिखा। इसी प्रकार विन्ध्यप्रदेश के शहडोल जिले में जैन मूर्तिया इतनी अधिक प्राप्त होती रही हैं कि सिवाय आश्चर्य के दूसरी अनुभूति नही होती। नरसिंहपुर जिले में बरायठा ग्राम में न जाने कब से तीर्थंकरों की सुन्दरतम प्रतिमाएं स्थापित हैं। समूचे प्रान्त में पुरातन तीर्थस्थान हैं। जैन परम्परा के अनुसार ये तीर्थस्थान (i) निर्वाणक्षेत्र अथवा (ii) अतिशय क्षेत्र के रूप मे प्रसिद्ध हैं। निर्वाण भूमि वह है जहां से तीर्थंकरों अथवा अन्य महान् सन्तों ने निर्वाण (मुक्ति) की प्राप्ति की है। अतिशय क्षेत्र अपनी स्थापत्य संबंधी सुन्दरता तथा कतिपय चमत्कारो के कारण ख्याति प्राप्त करते हैं। मध्यप्रदेश में दोनो प्रकार के अनेक क्षेत्र उपलब्ध हैं।

निर्वाण क्षेत्रों में ग्वालियर के समीप सोनागिरि, बड़वानी के समीप चूलगिरि, सागर के समीप नैनागिरि, छतरपुर के समीप द्रोणगिरि, खण्डवा के समीप सिद्धवरकूट, खरगौन के समीप पावागिरि ऊन, बैतूल के पास मुक्तागिरि अपना विशेष महत्त्व रखते हैं। अतिशयक्षेत्रो में कुण्डलपुर (दमोह), अहार, थूबोन, खजुराहो (पन्ना), चन्देरी, पपौरा (टीकमगढ़), कोनी बहुरीबन्द, पिसनहारी मढ़िया (जबलपुर), बजरंगगढ (गुना), मक्सीपार्श्वनाथ (इन्दौर), उदयगिरि (विदिशा), अवन्तिका आदि की ख्याति है। इन पावन क्षेत्रों के अतिरिक्त राज्य के लगभग सभी नगरों में जैन मन्दिर हैं। इनमें सिवनी, जबलपुर, सागर, पनागर, इन्दौर आदि के जैन मन्दिरों की कलात्मक दृष्टि से बहुत प्रशंसा हुई है। कुछ वर्ष पूर्व लखनादौन में एक अत्यन्त भव्य प्रतिमा की प्राप्ति हुई थी। इसी प्रकार सिवनी के समीप धसौर में अत्यन्त प्राचीन जैन अवशेष प्राप्त होते रहे हैं। धंसौर में प्राप्त अनेक प्राचीन मूर्तियां सिवनी के जैन मन्दिर मे स्थानान्तरित की गई हैं। भोपाल के समीपवर्ती समसगढ़ मे जैन संस्कृति के अद्भुत चिह्न प्राप्त हुए हैं। सागर में देवरी का समीपवर्ती क्षेत्र बीना-वारहा का उल्लेख भी इस अवसर पर आवश्यक हो जाता है। इन्दौर के समीप बनेड़िया के मन्दिर भी प्रशंसनीय हैं।

मुक्तिधाम :

निर्वाणभूमि मुक्तागिरि बैतूल से ६५ मील की दूरी पर स्थित है। यहाँ पर्वत पर गुफाओं के आस-पास ५२ मन्दिर हैं। इस रम्य पर्वत के जलप्रपात मनोहर हैं। यहाँ १४८८ ई० से लगातार १६५० तक के मन्दिर हैं। समीपवर्ती ग्राम खपरी के भट्टारक पद्मनन्दि का नाम जुड़ा हुआ है। मुक्तागिरि का अपर नाम मेघ्यगिरि [मेढ़ागिरि] भी है।

अच्चलपुरवरणयरे, ईसाणे भायमेढ़गिरिसिहरे ।
आहुट्ठय कोडीयो, णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१६॥निर्वाणकाण्ड॥

विंध्यप्रदेश के दतिया के समीप स्थित सोनागिरि (श्रमणगिरि) इतिहास की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। यहाँ चन्द्रप्रभ भगवान की अत्यन्त प्राचीन प्रतिमा है। सं० ३५५ में श्रवणसेन कनकसेन ने यहाँ मन्दिर का निर्माण कराया था।

अजमेर—खण्डवा के बीच बड़वाह के समीप स्थित सिद्धवरकूट नर्मदा के तट पर स्थित है। बड़वानी के समीपवर्ती वनप्रांतर में स्थित चूलगिरि निर्वाणक्षेत्र के रूप में एक विशिष्ट तीर्थक्षेत्र है। वहाँ आदिजिन की ८४ फीट ऊंची भारत की विशालतम प्रतिमा है। प्रतिमाओं के लेखो के अनुसार यहाँ १३वीं शताब्दी का उल्लेख उपलब्ध होता है; यद्यपि क्षेत्र अति प्राचीन है।

बुन्देलखण्ड के सांस्कृतिक निर्वाणक्षेत्रो में रेशंदीगिरि (नैनागिरि) एवं द्रोणगिरि विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। वरदत्त एवं गुरुदत्त महामुनियों के निर्वाणक्षेत्रों के रूप में इन दोनों स्थानों की ख्याति है। द्रोणगिरि सागर-मलहरा मार्ग पर सघनवन-प्रदेश में स्थित है। यहाँ पर्वत पर २७ मन्दिर हैं। सं० १६४६ का लेख इसकी प्राचीनता का परिचायक है।

फलहोडीबडगामे पच्छिमभायम्मि दोणगिरि सिहरे।
गुरुदत्तादि मुणिंदा णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१६॥निर्वाणकाण्ड॥

विशिष्ट सांस्कृतिक स्थल :

श्रीधर मुनि की सिद्धभूमि कुण्डलपुर, दमोह से १८ मील दूरी पर स्थित ऐतिहासिक, प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यहाँ के कुण्डलाकार पर्वत पर, जिसके नीचे वर्धमान-सागर है, ५७ जैन मन्दिर हैं। मध्यवर्ती मन्दिर में ऋषभनाथ तीर्थंकर की १६ फीट ऊँची पद्मासन सातिशय मूर्ति है। यहाँ के शिलालेख से स्पष्ट है कि कुन्दकुन्द की आम्नाय वाले यशःकीर्ति, ललितकीर्ति, पद्मकीर्ति, सुरेन्द्रकीर्ति की गुरु परम्परा में सुचंद्रगण एवं तदुपरान्त ब्रह्मचारी नेमिसागर ने सं. १७५७ की माघ-पूर्णिमा को पुरातन मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया था। बुंदेलकेशरी महाराजा छत्रसाल

आदि-जिन की मूर्ति के परमभक्त थे और उन्होंने मन्दिर के लिए अनेक सम्पत्तियाँ भेंट की थीं। महाराजा छत्रसाल की प्रशस्ति अपना विशेष महत्व रखती है। आदिनाथ की मूर्ति "बड़े बाबा" के रूप में ख्यात है।

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति की सांस्कृतिक नगरी खजुराहो में कलापूर्ण भव्य जैन मन्दिर हैं। १३वी शताब्दी में चंदेलों के राज्य-काल में अनेक हिन्दू मन्दिरों का निर्माण हुआ। जैन मन्दिरों का भी समूह कधरिया महादेव मन्दिर से दो किलोमीटर की दूरी पर है। यहाँ के शान्तिनाथ जिनालय, पार्श्वनाथ मन्दिर, आदिनाथ मन्दिर और घण्टाई मन्दिर विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। मूल नायकों की मूर्तियों के अतिरिक्त इन मन्दिरो में अप्सराओं, सरस्वती, चक्रेश्वरी आदि शासनदेवताओं, नवग्रह आदि का अत्यन्त सजीव अंकन किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है मानो शिल्पकार ने पत्थर को मोम बनाकर ही सूक्ष्मतम शिल्प-कार्य किए हों। इन मन्दिरों मे मिथुन-कलाकृतियों का लगभग अभाव ही दृष्टिगत होता है।

तीर्थङ्कर शीतलनाथ की जन्मस्थली विदिशा से कुछ मील दूर उदयगिरि पर स्थित मन्दिरों में दो जैन मन्दिर हैं। यहाँ की गुफाओं मे उपलब्ध शिलालेखो से ज्ञात होता है कि गुप्तवंश के एक जैन सेनापति ने मुनियों के निवास एवं अध्ययन-ध्यान हेतु इनका निर्माण कराया था। साँची के समीपवर्ती विदिशा के परिकर में लोहांगी, बेसनगर के अत्यन्त पुरातन भग्नावशेष हैं।

मध्यप्रदेश के भोपाल, विंध्यप्रदेश, महाकोशल, बुंदेलखण्ड एवं छत्तीसगढ़ क्षेत्रों में सर्वत्र जैन संस्कृति के गौरवपूर्ण ऐतिहासिक अस्तित्व के जीवन्त प्रमाण उपलब्ध हैं। इन क्षेत्रों में वैदिक और बौद्ध संस्कृतियों के साथ जैन संस्कृति भी फलती-फूलती रही है। भारत की सर्व-धर्म समभाव की स्वर्णिम नीति का यह प्रबल प्रमाण है। अशोक द्वारा रूपनाथ (जबलपुर) में स्थापित पाषाण-लेख के समीपवर्ती क्षेत्र बहोरीबंद में सन् १०४३ की १२ फुट ऊंची शान्तिनाथ की भव्यमूर्ति और जबलपुर में नर्मदा के तटवर्ती क्षेत्र में, जहाँ कलचुरि सत्ता थी, सुन्दर पर्वत पर "पिसनहारी की मढ़िया, मानो हमारी राष्ट्रीय धार्मिक नीति की यशो-गाथा स्वयं सुना रही हो। सर सेठ हुकमचंदजी आदि द्वारा निर्मित इन्दौर के भव्य जिनमन्दिर अनेक दृष्टियों से अद्वितीय हैं।

जैन श्रमणों का उल्लेख :

भारत के मध्य में स्थित होने के कारण सहज-स्वाभाविक रूप से उत्तर से दक्षिण या किसी भी अन्य दिशा में विहार करते समय जैन श्रमणों को मध्यप्रदेश से होकर गुजरना पड़ता होगा। मूर्तियों के पट्टलेख, शिलालेख और सम्बन्धित साहित्य के अध्ययन से इस बात की पुष्टि भी होती है। महावीर के निर्वाण के उपरान्त प्रख्यात जैनाचार्य भद्रबाहु मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त के राज्यकाल में

उज्जयिनी पधारे थे और तब ही उनके साथ संघ ने दक्षिण भारत के लिए प्रस्थान किया था। इस अवधि के बाद मध्यप्रदेश के कोने-कोने में जहां-जहाँ भी मन्दिरों का निर्माण हुआ और उनमें तीर्थङ्करों की मूर्तियां स्थापित की गई, वहां अनेक जैनाचार्यों के नामों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। निम्नलिखित संक्षिप्त तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है :—

श्रमण परम्परा का अविरल प्रवाह :

स्थल	शताब्दी	जैनाचार्य का उल्लेख
उदयगिरि (विदिशा)	चौथी	योगशर्मा के शिष्य शंकर मुनि
ग्वालियर	आठवीं	वप्पभट्टि, नन्नसूरि आदि
धारा	नौवी	देवसेन
खजुराहो	नौवीं	वासवचन्द्र
बडोह (विदिशा)	दसवी	उभयचन्द्र एवं देवचन्द्र
बहोरीबंद (जबलपुर)	दसवी	आचार्य सुभद्र
चूलगिरि (बड़वानी)	ग्यारहवीं	आचार्य रामचन्द्र
पावागिरि (खरगोन)	बारहवी	देशनन्दि
सोनागिरि (ग्वालियर)	बारहवीं	धर्मचन्द्र
बड़वानी	तेरहवीं	शुभकीर्ति
ग्वालियर	चौदहवीं व पन्द्रहवीं	यश:कीर्ति, गुणभद्र, जिनचन्द्र सिंहकीर्ति
मालवा प्रान्त	सत्रहवीं	ललितकीर्ति, धर्मकीर्ति, विश्वकीर्ति, केशवसेन आदि
बुंदेलखण्ड (पपौरा, अहार आदि)	सोलहवीं	सकलकीर्ति, सुरेन्द्रकीर्ति आदि
सोनागिरि	अठारहवीं	कुमारसेन, देवसेन, वसुदेवकीर्ति महेन्द्र-भूषण, महेन्द्रकीर्ति आदि
छतरपुर	सत्रहवीं	जिनेन्द्रभूषण
प्रकीर्णक	उन्नीसवीं	विजयकीर्ति, सुरेन्द्रभूषण, चारुचन्द्र, लक्ष्मीसेन, नरेन्द्रभूषण, हरिचन्द्र आदि

इस प्रकार उक्त तालिका के अनुसार इस क्षेत्र में जैनाचार्यों की विहार-गाथा अत्यधिक पुरानी है। बीसवीं शताब्दी में चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर, सूर्यसागर, नेमिसागर, धर्मसागर, देशभूषण, विद्यानंद, विद्यासागर, विमलसागर, सुबल, भूतबलि, पुष्पदंत, माघनंदि, आर्यनंदि, सिद्धसेन, संभवसागर, सुवर्णभद्र, वीरसागर आदि अनेक निर्ग्रन्थ जैनाचार्यों ने इस क्षेत्र में यत्रतत्र विहार किया और वर्षायोग धारण किया है। स्पष्ट है कि विंध्या–सतपुड़ा सदृश विशाल पर्वतों के वन, उनकी कदराएं और गुफाएं उन्हें ध्यान-अध्ययन और मनन के लिए उचित जची है। रेवा-तट तो जैन साहित्य में आत्म-साधना में निमग्न साधुओ के लिए सदा ही आकर्षक रहा है।

जैन साहित्यकार :

आचार्य भद्रबाहु और सिद्धसेन दिवाकर सदृश प्रतिभाशील संतों के समान अनेकानेक चरित्रशील व्यक्तियों ने यहां अपार साहित्य की रचना की है। एक ओर इन महापुरुषों के निर्देशन में मन्दिरों और मूर्तियो का निर्माण तथा प्रतिष्ठाएँ हुई तो दूसरी ओर से धार्मिक साहित्य-सृजन में भी संलग्न रहे। इन कृतियो में प्रवन्धकोष, प्रभाकर चरित्र, धनंजय–नाम माला, आदि सस्कृत ग्रन्थों का निर्माण उल्लेखनीय है। अपभ्रंश के क्षेत्र में नयनरिन्द का काव्य, सुदर्शनचरित, रइधु कवि का पउमचरिउ, दामोदर कवि का नेमिनाथ चरित, धनपाल कवि का बाहुबलि चरित, धर्मकीर्ति का पद्मपुराण आदि अनेक सुन्दर ग्रन्थों की रचना कर इन आचार्यों एवं कवियों ने सरस्वती की क्रियात्मक उपासना की है। वर्तमान में भी बुंदेल गौरव श्री गणेशप्रसादजी वर्णी, विद्वद्रत्न श्री सुमेरुचन्द्रजी दिवाकर, डॉ० प० पन्नालालजी साहित्याचार्य, पं० जगन्मोहनलालजी, स्वर्गीय पं० देवकीनन्दनजी, पं० मक्खनलालजी, पं० खूबचन्द्रजी, पं० बंशीधरजी, आदि ने जैन साहित्य निर्माण की दिशा मे अथक परिश्रम किया है। स्वर्गीय डॉ० हीरालाल जैन की साहित्यिक उपलब्धियों से तो सभी सुपरिचित हैं। इन सभी महान् विद्वानों ने एक ओर प्राचीन साहित्य का सम्पादन किया है तो दूसरी ओर अनेकानेक उच्चकोटि के ग्रन्थ भी लिखे हैं। मध्यप्रदेश के सभी जैन मन्दिरों में प्रचुर मात्रा में जैन साहित्य सुरक्षित रूप से उपलब्ध होता है। इस प्रकार वाणिज्य-प्रधान जैन समाज ने साहित्यिक क्षेत्र में अपना अनूठा योग प्रदान किया है।

❖

❖ पद्मश्री पण्डिता सुमतिबाई शहा

समाधिशतक : एक दिव्य दृष्टि

☆

नमः श्री पूज्यपादाय लक्षणं यदुपक्रमम् ।
यदेवात्र तदन्यत्र यन्नात्रास्ति न तत्क्वचित् ।।
—जैनेन्द्र प्रक्रिया : गुणनन्दी

पृष्ठभूमि :

जैन वाङ्मय में दर्शन सम्बन्धी साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहाँ अध्यात्म को विशद करने वाले ग्रन्थो की कोई कमी नही है। महर्षियों ने परम तत्त्व के चिन्तन द्वारा बहुत ही सरस एवं सुन्दर विचारों का प्रतिपादन किया है। अध्यात्मविषयक ग्रन्थों के सम्बन्ध में जब मैं विचार करती हूँ तो मेरा ध्यान आचार्य पूज्यपाद द्वारा रचित समाधितन्त्र की ओर विशेषरूप से आकृष्ट होता है। आचार्यश्री ने इस ग्रन्थ में अपनी सरल एवं हृदयग्राहिणी शैली में जनसाधारण के लिए आत्म रस की जो सरिता प्रवाहित की है वैसी मुझे अध्यात्म विषयक अन्य संस्कृत एवं प्राकृत ग्रन्थों में नही दिखाई देती है। इस महान् ग्रन्थ के गत कई वर्षों से सतत आस्वादन के उपरान्त मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि आकार से लघु किन्तु विचारो से महान् यह ग्रन्थ अध्यात्मप्रेमियों को एक नवीन एवं दिव्य दृष्टि प्रदान करने में बड़ा उपयोगी है।

अध्यात्म जीवन का नवनीत है, जिसे प्राप्त करना सरल कार्य नहीं है। जिसे 'समाधि-शतक' में अध्यात्म रस का आस्वादन प्राप्त हुआ वह शायद ही अन्य ग्रन्थों के परिशीलन में अपना समय व्यतीत करे। शास्त्रसमुद्र का मन्थन और अध्यात्मवाणी का दोहन इस ग्रन्थ में एक साथ उपलब्ध है।

आचार्य पूज्यपाद का कृतित्व :

आचार्य पूज्यपाद एक प्रभावशाली विद्वान् और युगप्रधान योगीन्द्र थे। आपका समय विक्रम की पाँचवीं छठी शताब्दी माना जाता है। आपका जीवन एक साहित्यकार का जीवन था। जहाँ आपने सर्वार्थसिद्धि और जैनेन्द्र व्याकरण जैसे महान् दिग्गज ग्रन्थों का निर्माण किया है, वहाँ

इष्टोपदेश और समाधितन्त्र या समाधिशतक जैसे श्रेष्ठ अध्यात्मग्रन्थों की भी रचना की है। ऐसा माना जाता है कि 'समाधिशतक' ग्रन्थकार के जीवन की अन्तिम कृति है। साहित्य के सर्व क्षेत्रों में प्रविष्ट होने के बाद ग्रन्थकार का धवल यश यदि किसी ग्रन्थ ने बिखेर दिया हो तो वह ग्रन्थ समाधिशतक ही हो सकता है। भाषा एवं विचार की मधुरिमा से स्वाध्याय में लीन स्वाध्यायी के मन में हमेशा ही अध्यात्म की शहनाई गूंजने लगती है। वह आत्मदर्शी रसिक प्रफुल्लित कमलिनी से निस्सृत पराग के प्रवाह में भ्रमर के समान आत्मानन्द में विभोर हो जाता है, तल्लीन हो जाता है।

आत्मतत्त्व :

भारतीय सभी विचारकों ने आत्मा को एक गूढ तथा जटिल तत्त्व माना है अतः आत्मज्ञानी रसिक के लिए यह बात अवश्य विचारणीय बन जाती है कि आत्मतत्त्व का निरूपण करने में कितनी सरल एव सरस पद्धति का अवलम्बन लिया गया है। अध्यात्म सम्बन्धी अनेक विवेचन विद्यमान हैं परन्तु सरल विचार ही उपादेय होते हैं। इस दृष्टि से समाधि तन्त्र की निर्मिति सुन्दरता एवं सरलता से परिपूर्ण है।

भ्रम-निरास :

इस ग्रन्थ में पूज्य आचार्यश्री ने ससारी दुःखी मानव को चिरन्तन, नित्य चैतन्यरूप आत्मतत्त्व की ओर आकृष्ट करने के लिए प्रथमतः भेदविज्ञान का निरूपण किया है। वही भ्रम का निरास करके आत्मज्ञान की निर्मिति मे समर्थ है। मनुष्य का मन भ्रान्त है, इस भ्रान्ति से मुक्ति पाना आवश्यक है। शास्त्र के अध्ययन से आत्मरस के प्रति जागृति अवश्य होती है, कैवल्य की स्पृहा उत्पन्न हो सकती है। इस ग्रन्थ मे आचार्यश्री ने आत्मोन्नति की विभिन्न अवस्थाओं का विश्लेषण किया है जो अतीव सुन्दर एवं मधुर है।

बहिरात्मा :

आचार्य पूज्यपाद ने आत्मा का बिवेचन बड़ी ही रोचक शैली में किया है। मोक्षमार्ग में जिस-जिस तत्त्व का कथन किया है उसे बहिरात्मा यथार्थ रूप से नही जानता। दर्शन मोहनीय कर्म के उदय से वह जीव मे अजीव की तथा अजीव मे जीव की कल्पना करता है। दुःख देने वाले रागद्वेषादि विभावों को वह सुखदायी समझता है। बहिरात्मा आत्मतत्त्व से परावृत्त होकर कैसे संसार मार्ग में पड़ता है इसका तर्कबद्ध वर्णन केवल आचार्य पूज्यपाद ने ही इस ग्रन्थ में किया है।

बहिरात्मा की दृष्टि बहिर्गत होती है, वह जिस पर्याय में जाता है उसी को अपना स्वरूप मान लेता है; मनुष्य का शरीर प्राप्त करने पर वह अपनी आत्मा को मनुष्य मानता है, तिर्यञ्च में जन्म लेने पर वह स्वयं को तिर्यञ्च मानने लगता है, परन्तु इस बात को नही समझता कि ये सब कर्मोपाधि से होते हैं। शुद्ध निश्चय दृष्टि से आत्मा का इन अवस्थाओं से कोई भी सम्बन्ध

नहीं। आगे चलकर आचार्य कहते हैं कि अपने शरीर के साथ स्त्री-पुत्र-मित्रादिक के शरीर सम्बन्ध को अपनी आत्मा से जोड़ता है और उनको उपकारक मानता है, उनकी रक्षा का प्रयास करता है; उनकी समृद्धि हो तो अपनी वृद्धि मानता है। इस प्रकार यह मूढ़ात्मा इनमें व्यर्थ ही निजत्व-बुद्धि कर-करके आकुलित होता है। इसे देहबुद्धि कहा जाता है क्योंकि यह शरीर को ही आत्मा मानता है। जब तक यह देहसम्बन्धी इस आत्मबुद्धि को नहीं छोड़ता तब तक इसे निराकुल निजानन्द रस का आस्वाद नहीं होता। अपितु संयोग-वियोग में हर्ष विषाद कर अपना संसार बढ़ाता रहता है। संसार-दुःख का मूल कारण यह देहबुद्धि ही है—

मूलं संसारदुःखस्य देह एवात्मधीस्ततः।
त्यक्त्वैनां प्रविशेदन्तर्बहिरव्यापृतेन्द्रियः ॥१५॥

आत्मा का ज्ञान प्राप्त करना हो तो आचार्यश्री ने मानव की व्यावहारिक भूमिका का विचार कर यह सूचित किया है कि बाह्यार्थवाचक वचन प्रवृत्ति को त्याग कर अन्तरंग वचनप्रवृत्ति को भी पूर्णतया छोड़ देना चाहिए। यह बाह्याभ्यन्तर रूप से जल्पत्यागलक्षणवाला योग—स्वरूप में चित्तनिरोध-लक्षणात्मक समाधि—ही संक्षेप से परमात्मा के स्वरूप का प्रकाशक है।

एष योगः समासेन प्रदीपः परमात्मनः ॥१७॥

आचार्यश्री ने इस बात का विवेचन बड़े मार्मिक ढंग से किया है। हम जब बात करते हैं तो इन्द्रियों के माध्यम से ही करते हैं। जो जानने वाला है वह दिखाई नही देता तथा जो दिखाई देता है वह चेतनारहित होने से कुछ भी नही जान सकता है अतः इन दोनों में सम्भाषण ही सम्भव नहीं है यह समझना भी हमारी मूर्खता है कि हम किसी को आत्मतत्त्व समझाने का प्रयत्न करते हैं या किसी के द्वारा स्वयं समझने का प्रयास करते हैं। यह तो उन्मत्त पुरुष जैसा व्यवहार कहा गया है।

जब तक इस जीव को शुद्ध चैतन्यरूप अपने निज स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती तब तक यह मोह रूपी गाढ़ निद्रा में पड़ा हुआ सोता रहता है। जब इसकी अज्ञानभावरूप निद्रा का नाश होता है तब शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति होती है।

समाधि की प्राप्ति :

समता ही समाधि का प्रमुख स्रोत है। आत्मज्ञानी विचार करता है कि शत्रु-मित्र की कल्पना परिचित व्यक्ति में ही होती है। आत्मस्वरूप को न देखने वाला यह अज्ञानी जीव न मेरा शत्रु है, न मित्र है तथा प्रबुद्ध प्राणी न मेरा शत्रु है न मित्र। इसलिए इसका विचार कर 'सोऽहं' अनन्तज्ञान रूप परमात्मा ही मैं हूँ, इस संस्कार की दृढ़ता से ही चैतन्य की स्थिरता प्राप्त होती है। स्थिरता से समत्व प्राप्त होता है। आत्मा की शरीर से भिन्नता ही निर्वाणपद की आधारशिला है।

मुक्ति का मार्ग :

आचार्यश्री ने मुक्ति प्राप्त करने के लिये जो सुगम उपाय बताए हैं वे वास्तव में हमें नई दृष्टि प्रदान करने में समर्थ हैं। मन रूपी जलाशय में रागद्वेषादि रूप अनेक तरंगे उठती हैं, जिससे वस्तु का स्वरूप स्वच्छ एवं स्पष्ट नही दिखाई देता है। सविकल्प मन के द्वारा आत्मा का दर्शन नही होता। वास्तव में निर्विकल्प मन ही आत्मतत्त्व का बोधक है। मान-अपमान के विकल्प भी वहां नही होते अतः इन्द्रियों के संयोग से निर्मित होने वाले बिकल्प ज्ञानी को छोड़ने चाहिए।

शरीर में आत्मबुद्धि रखने वाले मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा को यह विश्व विश्वास करने लायक लगता है। वह उसे ही सुन्दर मानता है। परन्तु आत्मदृष्टि सम्यग्दृष्टि को इस जगत में स्त्री-पुरुषादि पर पदार्थों में विश्वास उत्पन्न नही होता, इसलिए उसकी आसक्ति उनमें नही होती।

अनासक्त अन्तरात्मा यह विचार करता है कि जो कुछ शरीरादि बाह्य पदार्थों के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करता हूँ, वह मेरा स्वरूप नही है। तब वह अविद्यारूप इस भौतिक आडम्बर को त्याग कर विद्यामय प्रज्ञान ज्योति में प्रविष्ट होता है। मूढात्मा व प्रबुद्धात्मा की प्रवृत्ति मे बड़ा अन्तर होता है। मूढात्मा बाह्य पदार्थों में रत होता है जबकि प्रबुद्धात्मा इन्द्रिय व्यापार को हटाकर अपने आत्मस्वरूप में लीन होता है। वीतरागी वह परम शान्ति, परम सुख का अनुभव करता है। अतएव जिसके चित्त में अचल आत्मस्वरूप की धारणा है उसे मुक्ति प्राप्त होती है। आचार्यश्री कहते हैं—

व्यवहारे सुषुप्तो यः स जागर्त्यात्मगोचरे।
जागर्ति व्यवहारेऽस्मिन् सुषुप्तश्चात्मगोचरे ॥७८॥

जो कोई प्रवृत्ति-निवृत्यादि रूप लोकव्यवहार में सोता है—अनासक्त एवं अप्रयत्नशील रहता है वह आत्मा के विषय में जागता है—आत्मानुभव में तत्पर रहता है और जो इस लोक व्यवहार में जागता है—उसकी साधना में तत्पर रहता है वह आत्मा के विषय में सोता है—आत्मानुभव का कोई प्रयत्न नहीं करता है।

आत्मजागृति ही वास्तविक जागृति है। जटाधारी तपस्वी होकर शरीराश्रित होने से वह संसार की वृद्धि करता है। बाह्य वेष से मुक्ति प्राप्त हो जाती है, ऐसा मानना हठ है।

यत्त्यागाय निवर्तन्ते भोगेभ्यो यदवाप्तये।
प्रीतिं तत्रैव कुर्वन्ति द्वेषमन्यत्र मोहिनः ॥९०॥

जिस शरीर के त्याग के लिए—उससे ममत्व दूर करने के लिए—और जिस परम वीतराग पद को प्राप्त करने के लिए इन्द्रियों के भोगों से निवृत्त होते हैं अर्थात् उनका त्याग करते हैं उसी शरीर और इन्द्रियों के विषयों में मोही जीव प्रीति करते हैं और वीतरागता आदि के साधनों में द्वेष

करते हैं। अतएव आत्मा की उपासना श्रेष्ठ है। अन्तरात्मा को प्राप्त कर ही एकमेव आत्ममय परमात्म तत्त्व प्राप्त हो सकता है। वह उपादेय है। भगवान परमात्मा शक्तिरूप से वास्तव में अपने स्वरूप में विद्यमान है, उसे बाहर खोजने की कोई आवश्यकता नहीं। अन्तरात्मा उसे खोज कर उसकी उपासना द्वारा भगवान परमात्मा को प्राप्त करता है। भगवान परमात्मा उपास्य है, आराध्य है तथा अन्तरात्मा उपासक है, साधक है। बहिरात्मा तो सर्वथा हेय-त्याज्य है।

निष्कर्ष : दिव्यदृष्टि की प्राप्ति :

संसारी दुःखी मनुष्य को यदि आत्मस्वरूप की प्राप्ति करनी है तो उसे भेदविज्ञान की आवश्यकता होगी तभी आत्मा-आत्मा में लीन होकर परमात्मा की अवस्था में पहुँच सकेगा। आत्मस्वरूप की प्राप्ति कैसे हो? इसका प्रतिपादन पूज्यपादाचार्य ने इस ग्रन्थ में अतीव सरल पद्धति से किया है।

समाधि तन्त्र या समाधिशतक पूज्य आचार्यश्री की महान् कलात्मक (अध्यात्मकला-विषयक) रचना है। आचार्यप्रवर ने अध्यात्म जैसे गूढ़ एवं गम्भीर विषय को बड़ी रोचकता से प्रस्तुत किया है। आत्मदृष्टि की उपलब्धि जीवन में नई ज्योति विकीर्ण करती है। महान् अध्यात्म ग्रन्थ 'समाधिशतक' ने इस दिशा में हमारा महत्त्वपूर्ण मार्गदर्शन किया है। यह बात स्वानुभव से ही प्रतीत हो सकती है।

❖

सीलेण विणा विसया णाणं विणासंति ॥२॥

—शीलपाहुड

शील, चारित्र के अभाव में पञ्चेन्द्रियों के विषय ज्ञान का विनाश कर देते हैं।

❖ प० पूज्य आचार्यकल्प श्री श्रुतसागरजी महाराज

शुभोपयोग

☆

उपयोग दो प्रकार का है, एक शुद्धोपयोग दूसरा अशुद्धोपयोग। आगम भाषा व अध्यात्म भाषा की अपेक्षा शुद्धोपयोग दो प्रकार का है।

अध्यात्म भाषा की अपेक्षा जिन जीवो के बुद्धिपूर्वक राग नहीं है परन्तु चारित्र मोहनीय का उदय, बन्ध व सत्त्व मौजूद है, ऐसे सातिशय अप्रमत्त गुणस्थान से उपशान्त मोह तक के जीवो के शुद्धोपयोग कहा है तथा आगम भाषा की अपेक्षा जिन जीवों ने चारित्रमोहजन्य कर्मों के सत्त्व, बन्ध व उदय का सर्वथा अभाव कर दिया है, ऐसे वीतराग सम्यग्दृष्टि को शुद्धोपयोगी कहा है। इनमें भी जिनके चारित्र मोह सम्बन्धी संज्वलन कषाय व नोकषाय का आस्रव, बन्ध व उदय हो रहा है ऐसे २४ प्रकृतियों की सत्ता वाले द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि के परिणाम तथा क्षपक श्रेण्यारूढ़ २१ प्रकृतियों की सत्ता वाले क्षायिक सम्यग्दृष्टि के परिणामो की तरफ दृष्टि डालें तो भिन्नता है ही तथापि बुद्धिपूर्वक राग के अभाव की अपेक्षा अध्यात्मशास्त्रो में इन्हे वीतरागसम्यग्दृष्टि व शुद्धोपयोगी कहा है। हाँ, आगम (करणानुयोग) की दृष्टि में ये सराग सम्यग्दृष्टि ही हैं; कारण उनके उपयोग में मलिनता के कारणों का अभाव नहीं हुआ और सत्ता में बैठे हुए कर्मों की अपेक्षा शक्ति में भिन्नता है। एक अन्त-र्मुहूर्त काल तक कर्मों की शक्ति को दबाये रखने में जो परिणामों की विशुद्धि का प्रयोग है उससे कर्मों के निरन्वय नाश करने में प्रकृष्ट विशुद्ध परिणामों की आवश्यकता है।

अशुद्धोपयोग के भी दो भेद हैं—एक अशुभोपयोग और दूसरा शुभोपयोग। अशुभोपयोग मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनों के होता है परन्तु स्वामी-भेद से नाम एक होते हुए भी बन्ध की शक्ति में भेद हो जाता है, जैसे मिथ्यादृष्टि का अशुभोपयोग परिणामों की तारतम्यता से चारो आयु-बन्ध का सामर्थ्य रखता है परन्तु सम्यग्दृष्टि के अशुभोपयोग में नरक व तिर्यञ्च आयुबन्ध का सामर्थ्य नहीं।

दूसरे शुभोपयोग के विषय में अध्यात्मशील भाई-बहनों की लेखमालाओं में इस तरह का विषय प्रतिपादित किया जाता है कि भगवान की पूजा, स्तुति, भक्ति आदि में तथा साधुओं को आहारदान आदि देने में रागभाव होते हैं और वे रागभाव नियम से बन्ध कराने वाले हैं। यह ध्रुव सत्य है कि राग से बन्ध होता ही है; इसे स्वीकार नही करे तो वह भी बन्ध तत्त्व की भूल में विचरण करने वाला अज्ञानी मिथ्यादृष्टि ही है, पर जो राग के भेदों की व स्वामी की ओर दृष्टि नही देता, केवल बन्ध के ही गीत गाता है अर्थात् जो राग के विशेषों को ही नही जानता अथवा जानते हुए भी किसी पक्षव्यामोह के वशीभूत होकर उसका प्रतिपादन नही करता, वह भी अधम अज्ञानी मिथ्यादृष्टि ही है। दृष्टान्त—एक अभव्य मिथ्यादृष्टि पूर्व पुण्य के संयोग से धर्मनिष्ठ जैन कुल में उत्पन्न हुआ है और पञ्चेन्द्रियों के विषयों का अनीति पूर्वक सेवन नहीं करता है तथा निर्मल परिणामो सहित कुल परम्परागत भगवान की पूजा-भक्ति आदि करता है तथा साधुओं को आहारादि भी देता है; इससे पुण्यास्रव होता है। इसी प्रकार एक सम्यग्दृष्टि भी पञ्चेन्द्रियों के विषयों का अनीतिपूर्वक सेवन नहीं करता तथा साधुओं को आहारदानादिक देता है, भगवान की पूजा भक्ति आदि भी करता है, इससे उसे भी पुण्यास्रव होता है। उमास्वामी विरचित तत्त्वार्थसूत्र मे कहा है—"सद्वेद्यशुभायुर्नाम-गोत्राणि पुण्यम्" ।।२५–८।। (साता वेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम और शुभ गोत्र ये पुण्यप्रकृतियां हैं।) अतः बन्ध की दृष्टि से देखें तो दोनों के शुभायु, शुभ नाम कर्म व शुभ गोत्र का बन्ध होता ही है परन्तु परिणामों को निश्छल (कपट रहित) बनाकर सोचे व देखें कि बन्ध में तारतम्यता है अथवा नही? देखो, वह मिथ्यादृष्टि पुण्यप्रकृतियों का बन्ध करते हुए भी आहारक द्विक और तीर्थङ्कर प्रकृति को छोड़कर ११७ प्रकृतियों के बन्ध का स्वामी है तथा सम्यग्दृष्टि के पुण्यप्रकृतियों का बन्धक होने पर भी दो आयु का सवर और ४१ प्रकृतियों की सवर पूर्वक निर्जरा होती है अर्थात् वह ७७ प्रकृतियों का बन्धक है। इस तरह बन्ध की अपेक्षा से तो दोनों का उपयोग बन्ध कराने वाला ही है पर कार्य की अपेक्षा से विचार करे तो एक संसार की स्थिति और वृद्धि का कारण है तथा दूसरा संसार-परिभ्रमण की स्थिति को क्षीण करने में कारण है। जैसे किसी व्यक्ति के शरीर में व्रणादि के कारण तीव्र वेदना हो रही हो, वहाँ यदि सर्जन (Surgeon) के द्वारा ऑपरेशन का प्रसंग आता है तो ऑपरेशन के समय रोगी को और भी तीव्र वेदना होती है परन्तु वेदना की वह अवस्था ही वेदना के नाश का कारण बनती है। इसी भाँति कर्मों के बन्ध और उदय की अवस्था में ही कर्मों का नाश होता है। जैसे एक सातिशय मिथ्यादृष्टि के मिथ्यात्व का अभाव (करणलब्धि के चरम समय तक) मिथ्यात्व के उदय और बन्ध की अवस्था में ही होता है तथा संज्वलन क्रोधमानादि का नाश उनके बन्ध, उदय और सत्त्व की अवस्था में ही होता है। (अतः सूक्ष्म विचार करना चाहिए, 'सभी धान बाइस पंसेरी' वाली कहावत यहाँ लागू नही होती)।

ग्राचार्यों ने कहा है कि सम्यग्दृष्टि के भोग निर्जरा का कारण है। इस प्रकार सिद्धान्त के वचनों को जानते हुए भी यह कहना कि भगवान की पूजा, भक्ति व साधुग्रों को दान ग्रादि का देना बन्ध का कारण है ग्रौर वह बन्ध संसार का कारण है, इसलिए वह हेय है, मानो जिनबिम्ब की पूजन-भक्ति का निषेध करना ही है। ऐसी मान्यता वाला व्यक्ति परोक्षतः मूर्ति व मूर्तिपूजा का निरोधक तथा निरोध करने वालों—तारणपन्थी, श्वेताम्बर, तेरापन्थी व स्थानकवासी का प्रचारक ही कहा जा सकता है ग्रतः पक्षव्यामोह को दूर कर निर्मल परिणामों सहित स्वाध्याय करना चाहिए तभी श्रद्धा व ज्ञान में दृढ़ता ग्राती है।

वरं वयतवेहि सग्गो मा दुक्खं होउ गिरइ इयरेहिं।
छायातवट्ठियाणं पडिवालंताण गुरुभेयं ॥मो० पा० २५॥

ग्रच्छा व्रतादिकतया सुरसौख्य पाना,
स्वच्छन्दता ग्रति बुरी, पडे श्वभ्र जाना।
उत्ता हि ग्रन्तर व्रताव्रत में कहा है,
छाया रु धूप द्वय में जितना रहा है॥

ग्रनु० ग्राचार्य विद्यासागर

❖ आर्यिका सुपार्श्वमती माताजी

जैन दर्शन : एक विहगावलोकन

☼

भारतीय दर्शन के अनेक स्रोत हैं। उन स्रोतों का अध्ययन करना ही भारतीय दर्शन का इतिहास और परिचय है। प्राकृतिक साधनों से सम्पन्न भारत देश में उत्पन्न होने वाले जन समूह में जीवन और जगत् की गुत्थियों को समझने और सुलझाने की प्रवृत्ति स्वाभाविक है। ऐहिक सुखों से परिपूर्ण या सांसारिक दुःखों से दुखित मनुष्य ही अध्यात्म और परलोक की अपेक्षा करते हैं। उन्हीं का झुकाव अध्यात्म की ओर होता है।

अध्यात्मवाद की बुनियाद डालने का श्रेय हमारे तीर्थङ्करों को है। तीर्थङ्कर आत्मा के विकास मे विश्वास करते हैं। इन्होंने स्वयं अर्हन्त पद प्राप्त कर सिद्धत्व की उपलब्धि की। निगोदावस्था से सिद्ध पर्याय तक पहुँचने की एक सुदीर्घयात्रा का वर्णन तीर्थङ्करों ने अपने दिव्यज्ञान द्वारा किया और बतलाया कि आत्मा के विकास में मुख्य कारण सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र हैं। जिन आत्मीय गुणों को आज के दार्शनिकों ने संसार के समक्ष रखा है उन्हीं गुणों का प्रतिपादन तीर्थङ्करों ने किया है। उन्होंने बताया कि "ज्ञान आत्मा है, आत्मा ज्ञान है। अरे संसार के जीवो! ज्ञान प्राप्त करो। आत्मा का ज्ञान प्राप्त करो। अन्य वस्तुओं को जानने से कोई विशेष लाभ नहीं क्योंकि जो एक (आत्मा) को पूर्णतः जान लेता है वह सबको जान लेता है।" इस प्रकार की अध्यात्ममूलक शिक्षा तीर्थङ्कर परमदेवों की थी।

भौतिकता से ऊपर उठा कर अध्यात्म के मार्ग से चरम लक्ष्य (सिद्धावस्था) तक पहुँचाना ही तीर्थङ्करों के द्वारा प्रतिपादित धर्म का लक्ष्य है। इसका श्रेय कर्मयुग के प्रथम तीर्थङ्कर भगवान श्री ऋषभदेव को है जो भारत के प्रथम संस्कृत पुरुष थे। अनन्तर इसी अध्यात्मवाद के अनेक रूप बन गये। कोई-कोई अध्यात्मवादी एकान्त से आत्मा को शुद्ध मानकर चारित्ररूप क्रियाओं का त्याग कर स्वेच्छाचारी हो गए तो कोई क्रियाकाण्ड को मुख्य मानकर दर्शन और ज्ञान की उपेक्षा करने लगे।

जैनदर्शन की प्रमुख स्थापनाएँ निम्नलिखित प्रकार से अङ्कित की जा सकती हैं—

१. त्रिरूप सत् :

वस्तु सत् है और वह त्रिरूप है। यह मान्यता अति प्राचीन है। उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ।।त० सू० ५।३०।। जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य सहित हो वह सत् है। द्रव्य में नवीन पर्याय की उत्पत्ति को उत्पाद कहते हैं जैसे मिट्टी की पिण्डपर्याय से घट का। पूर्व पर्याय के विनाश को व्यय कहते हैं जैसे घटपर्याय उत्पन्न होने पर पिण्ड पर्याय का। दोनों पर्यायों में मौजूद रहने को ध्रौव्य कहते हैं जैसे पिण्ड तथा घटपर्याय में मिट्टी का।

भाव (पदार्थ) का नाश नहीं होता और अभाव का उत्पाद नहीं होता। वस्तुओं के गुण और पर्यायों में ही उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य देखने में आते हैं।

सत् उसे कहते हैं जिसमें पर्यायों की दृष्टि से उत्पाद और व्यय होते हैं और गुणों की दृष्टि से जो ध्रौव्य सहित होता है। वस्तु की एक पर्याय (मोडीफिकेशन) का नाश होना व्यय है और नवीन पर्याय का उत्पन्न होना उत्पाद है किन्तु पर्याय बदलते हुए भी वस्तु के वस्तुत्व, अस्तित्व आदि गुणों का अचल रहना ध्रौव्य है। जैसे लकड़ी जल कर राख हो जाती है, इसमें लकड़ी रूप पर्याय का व्यय होता है और क्षार रूप पर्याय का उत्पाद होता है किन्तु दोनों अवस्थाओं में वस्तु का अस्तित्व अचल रहता है, यह ध्रौव्य गुण है। यह क्रियात्मक वस्तु प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय है। हाथ-कङ्गन के लिए दर्पण की आवश्यकता नहीं होती; प्रत्येक वस्तु क्रियात्मक सिद्ध होती है। यदि वस्तु टङ्कोत्कीर्ण ध्रौव्य ही होती तो बालकपन, युवावस्था, वृद्धावस्था; नर-नारकादि पर्याय, पूर्वोपार्जित कर्मों का फल भोगना; गेहूँ की रोटी, रोटी का भक्षण, उससे रसादि की उत्पत्ति आदि नहीं होते। यदि वस्तु को सर्वथा क्षणिक मान लिया जाय तो माता-पिता, व्यवहार, लेन-देन आदि नहीं बन सकते। यह बात प्रत्यक्षज्ञान के द्वारा अनुभव में भी आती है कि यह वस्तु वही है जिसे मैंने दो वर्ष पूर्व देखा था और साथ में यह भी अनुभव में आता है कि दो वर्षों में इसमें काफी परिवर्तन आ चुका है।

२. परमाणुवाद :

आज परमाणुवाद की चर्चा सर्वत्र है। एटम बम जैसे विस्फोटक बमों के आविष्कार ने जगत को चकित और भयभीत किया है। किन्तु क्या हम जानते हैं कि अणु की इस शक्ति की खोज किसने की ? इसका अनुसन्धान भी तीर्थङ्करों के मस्तिष्क की प्रयोगशाला में हुआ। वैशेषिकों तथा ग्रीक दार्शनिकों ने भी यहीं से प्रेरणा प्राप्त की। अरहन्त परमदेव ने कहा है कि अन्त ही जिसका आदि है, अन्त ही

जिसका मध्य है और अन्त ही जिसका अन्त है तथा जो इन्द्रियों से ग्रहण नहीं किया जा सकता, ऐसा जो अविभागीपुद्गल द्रव्य है, उसे ही परमाणु समझो। इस प्रकार परमाणुवाद या विज्ञानवाद की नीव डालकर द्वैतवाद की भी सृष्टि का श्रेय उन दिव्य पुरुषों को है जिन्होंने जैन भौतिकवाद की स्थापना की। इन मूल परमाणुओं से उपलब्ध स्कन्धों से ही भौतिक जगत् की निर्मिति हुई है। यह सिद्धान्त भी जैन दर्शन की महती देन है। जैनदर्शन परमाणुओं में अनन्त शक्ति मानता है, उसी के अनुसार विज्ञानवादियो ने उसका अनुसन्धान करके विकास किया।

३. नयवाद :

नयवाद जैनदर्शन की अद्भुत देन है। विश्व के सारे दर्शन वस्तुतत्त्व की कसौटी के रूप में प्रमाण को अङ्गीकार करते हैं किन्तु जैनदर्शन इस सम्बन्ध में एक नयी सूझ देता है। उसकी मान्यता है कि वस्तुतत्त्व को परखने के लिए अकेला प्रमाण पर्याप्त नहीं है। वस्तु की यथार्थता का ज्ञान प्रमाण और नय दोनों के द्वारा ही हो सकता है। जैनेतर दर्शन नयवाद को स्वीकार नहीं करने के कारण एकान्तवाद के पोषक और समर्थक बन गये हैं। दार्शनिकों ने प्रमाणशास्त्र पर विचार किया और उसके सिद्धान्त स्थापित किये किन्तु जहाँ तक नय पक्ष का सम्बन्ध है, उस पर किसी ने विचार ही नहीं किया। इसी कारण अन्य न्यायशास्त्र अपूर्ण हैं, अधूरे हैं। वस्तु तत्त्व की विवेचना प्रमाण और नय दोनों के द्वारा होनी चाहिए।

आचार्य उमास्वामी ने लिखा है—प्रमाणनयैरधिगमः ।। त० सू० १/६ ।। यह न्याय प्रतिपत्ति का प्रतिपादक प्रथम सूत्र है। नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत ये सात नय क्रमशः नैयायिक, वेदान्त, व्यवहारवाद, बौद्ध, शब्दवाद, रूढ़िवाद तथा अर्थक्रियावाद के प्रतिपादक हैं। इनमें समग्र दार्शनिक सिद्धान्त समाविष्ट किए जा सकते हैं। नयों का वर्गीकरण निश्चय और व्यवहार रूप भी किया गया है। मुख्यतया यह परम्परा श्री कुन्दकुन्दाचार्य की है। वेदान्त ने भी इसी को ग्रहण किया और परम 'संग्रह' को उत्कृष्ट तत्त्व मानकर ब्रह्म द्वैतवाद की स्थापना की। इस नयवाद का उपयोग मनुष्यों को अपने अच्छे पुत्रों के साथ किये जाने वाले व्यवहार की भाँति करना चाहिए। तभी दार्शनिक क्षेत्र में कौटुम्बिक भावना उत्पन्न हो सकती है तथा इसी प्रकार की कौटुम्बिक भावना के आधार पर आधारित दर्शन ही किसी लक्ष्य पर पहुँच सकते है। अन्यथा तो दार्शनिक कलह जीवन और जगत के क्षेत्र को अन्ध करके मनुष्यों को पथभ्रष्ट करने में ही सहायक होती हैं। अतः हमें नयवाद का आश्रय लेकर दृष्टि-समता या भाव ही पैदा करना चाहिए।

अनन्त धर्मात्मक वस्तु में सामान्यतः द्विमुखी कल्पना होती है। एक तो अत्यन्त अभेद की ओर जाती है तथा दूसरी अत्यन्त भेद की ओर। नित्य, व्यापी, एक, अखण्ड, सत् रूप से चरम

अभेद की कल्पना से ब्रह्मवाद का विकास हुआ है तथा इसके विपरीत क्षणिकवाद पनपा है। इन दोनों आत्यन्तिक कोटियों के बीच में अनेक प्रकार से पदार्थों का विभाजन करने वाले अन्य अनेक—न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, चार्वाक आदि दर्शन हैं। सभी दर्शनों का अपना-अपना दृष्टिकोण है और वे अपने-अपने दृष्टिकोण से पदार्थों को देखते हैं और उनका निरूपण करते हैं। जैनदर्शन का दृष्टिकोण बहुत स्पष्ट है। उसका कहना है कि वस्तु की स्वरूप मर्यादा अनन्त है; उसमें सभी दृष्टियों के विषय-भूत धर्मों का समावेश हो सकता है। शर्त यह है कि वे दृष्टियाँ एकान्तिक आग्रह नहीं करें। प्रत्येक दृष्टि यह समझे कि मैं वस्तु के एक क्षुद्र अंश का स्पर्श कर रही हूँ, दूसरी दृष्टियाँ भी जो मुझसे विरुद्ध हैं वस्तु के एक-एक अंश को ही छू रही हैं। इस प्रकार परस्पर विरोधी दृष्टिकोणों का वस्तुस्थिति के अनुसार समन्वय करना जैन दर्शन का दृष्टिकोण है और इसीलिए इसमे नयचर्चा का प्रमुख स्थान है।

४. अनेकान्त :

श्रमण संस्कृति के प्रतिष्ठापक और समन्वय सिद्धान्त के प्रणेता जैन तीर्थङ्करों ने तत्त्वविचार की एक मौलिक और अतिशय दिव्यपद्धति जगत् को प्रदान की है। इतना ही नहीं उन्होंने वस्तु के सर्वाङ्गीण स्वरूप को समझाने की सापेक्ष भाषा पद्धति भी दी। उन्होंने बतलाया कि विचार अनेक हैं और वे परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं, परन्तु उनमें एक सामंजस्य है, अविरोध है। इसको स्पष्ट करता है अनेकान्तवाद क्योंकि वस्तु अनेक धर्मात्मक है। श्री समन्तभद्राचार्य ने युक्त्यनुशासन मे लिखा है कि तत्त्व अनेकान्त स्वरूप है। इस दार्शनिक तथ्य ने नित्य-अनित्य, एक-अनेक, भाव-अभाव, सत्-असत् आदि अनेकान्त वादों का निराकरण किया है। अनेकान्त सापेक्षता को स्वीकार करता है और बतलाता है कि वस्तु का समीचीन स्वरूप एकान्तिक न होकर अनेकान्तात्मक है। अनेकान्त तत्त्व हो विरोध, अनवस्था आदि दोषों से रहित हो सकता है। यह परमागम का बीज है। इसका प्रतिपादन जन्मान्ध व्यक्तियो के हस्ति-प्रतिपादन के समान नहीं है। यह विरोध का विध्वंसक है। जिसने अनेकान्त स्वरूप को जान लिया वही केवलज्ञानी है। इस प्रकार अपेक्षावाद की सृष्टि कर जैनदर्शन ने दार्शनिक क्षेत्र में सामंजस्य के एक महान् सिद्धान्त की नीव डाली है। आधुनिक अपेक्षावाद सिद्धान्त (Theory of Relativity) के बीज इसमें हैं। जैनदर्शन की यह अपूर्व देन है।

जैनाचार्यों का कथन है कि द्रव्य के दो रूप हैं—१ अन्तरङ्ग और २ बहिरंग, अन्तरंग रूप द्रव्य और बहिरंग रूप पर्याय कहलाती है। पदार्थ का अन्तरंग रूप एक है, नित्य है, अपरिवर्तनशील है और बहिरंगरूप अनेक है, अनित्य है और परिवर्तनशील है। द्रव्य परस्पर विरुद्ध अनन्त धर्मों का समन्वित पिण्ड है। चाहे वह जड़ हो या चेतन, सूक्ष्म हो या स्थूल, उसमें विरोधी धर्मों का

अद्भुत सामंजस्य है। ऐसी स्थिति में किसी एक धर्म को छोड़कर एक धर्म को स्वीकार करना ठीक नहीं। आचार्य सिद्धसेन ने अनेकान्त को निखिल जगत् के गुरु के रूप में स्मरण किया है।

५. स्याद्वाद :

स्याद्वाद अनेकान्तवाद से प्रतिफलित सिद्धान्त है। स्याद्वाद शब्द एकान्त या सर्वथापने का निषेधक और अनेकता का सूचक है। स्याद्वाद से अभिप्राय है—पदार्थ का भिन्न-भिन्न दृष्टियों से परीक्षण कर निर्णय करना। सर्वथा एक ही दृष्टि से पदार्थ के सर्वाङ्ग का निर्णय नहीं हो सकता अत: आचार्यों ने सबसे पहले 'सिद्धिरनेकान्तात्' अर्थात् वस्तुतत्त्व की सिद्धि अनेकान्त स्याद्वाद से ही हो सकती है अन्यथा नहीं—इस सिद्धान्त की घोषणा की। अनेकान्तवाद, अपेक्षावाद, कथञ्चित्वाद और स्याद्वाद ये सब एकार्थवाची शब्द हैं। जिस वस्तु स्वरूप को हम भावरूप जानते और देखते हैं उसी को शब्दों से जानना स्याद्वाद कहलाता है। इसी हेतु से स्याद्वाद को श्रुत कहा गया है। संस्कृत भाषा के अनुसार स्यात् शब्द अव्यय है और अनेकान्त का द्योतक है। इसका अर्थ कथञ्चित् अथवा किसी अपेक्षा से होता है। सर्वथात्वनिषेधकोऽनेकान्तताद्योतक: कथञ्चिदर्थे स्याद्वादो निपात: — अमृतचन्द्राचार्य: पंचास्तिकाय टीका।

स्याद्वाद सिद्धान्त जीवन में अतीव उपयोगी है। व्यवहार में भी सत्य का प्रतिपादन स्याद्वाद को छोड़कर अन्य रूप में नहीं हो सकता। स्याद्वाद सकलादेश है, नय विकलादेश हैं। जगत् की विविध—राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक समस्याओं को सुलझाने में स्याद्वाद से काम ले सकते हैं। स्याद्वाद मनुष्य में बौद्धिक सहानुभूति उत्पन्न करता है। विरोध को जड़ से उखाड़ देता है। मनुष्य स्याद्वादी होकर ही समाज निर्माता बन सकता है। हमें जैनदर्शन की इस अपूर्व देन का जीवन के क्षेत्र में उपयोग करना चाहिए।

६. सप्तभङ्गी :

जैन दार्शनिक चिन्तन का चरम रूप उसका सप्तभंगी सिद्धान्त है। अनेकान्तिक मस्तिष्क सप्तभंगी पर ही टिक सकता है। आचार्यश्री कुन्दकुन्द की 'सिय अत्थिणात्थि' आदि गाथा प्रत्येक दार्शनिक के मुख पर है। हेगेल ने विचारगति के प्रवाह का उल्लेख करते हुए थीसिस और एन्टी थीसिस तथा सिन्थेसिस के रूप में तत्त्व की व्यवस्था की किन्तु जैन दार्शनिकों ने अस्ति, नास्ति, अस्ति-नास्ति, अवक्तव्य, अस्ति अवक्तव्य, नास्ति अवक्तव्य और अस्ति-नास्ति-अवक्तव्य रूप सात भङ्गों को स्थापित कर अपनी गणित शास्त्र सम्बन्धी तथा विचार शास्त्र सम्बन्धी प्रखरता का परिचय दिया है। इस सम्बन्ध में विशेष जानकारी ग्रन्थों से प्राप्त करनी चाहिए।

७ अहिंसा :

जैन दर्शन और अहिंसा अभिन्न हैं। जैनदर्शन से यदि अहिंसा को अलग कर दिया जाए तो उसकी आत्मा की ही समाप्ति हो जाएगी। आचार्य समन्तभद्र ने अहिंसा को परमब्रह्म का स्वरूप कहा है। आत्मा स्वभाव से अहिंसक है। अनेकान्त विचारदर्शन का व्यावहारिक रूप अहिंसा है। अहिंसा परम व्यवहार धर्म है। विश्व के सम्पूर्ण जीवों का अस्तित्व अहिंसा पर अवलम्बित है। संसार के सब प्राणी जीना चाहते हैं; मरना कोई भी नहीं चाहता अतः जीव दया या जीवरक्षा प्राणिमात्र का धर्म है। जैन दर्शन मात्र योग्यतम के संरक्षण मे विश्वास नही करता इसके विपरीत उसका विश्वास है कि निर्बलतम का भी संरक्षण होना चाहिए। हिंसा स्वघातिनी है; इसकी परम्परा का नाश नही होता। आज विज्ञान की संहारक शक्तियों ने हमारे दिलों को हिला दिया है। एटमबम और हाइड्रोजन बम के आविष्कार हमारी हिंसावृत्ति की चरम सीमा है। हम अहिंसा को अपना कर ही जीवित रह सकते हैं अन्यथा हमारा अस्तित्व ही खतरे में है। व्यक्ति समाज एवं राष्ट्र के जीवन में अहिसा की मात्रा जितनी-जितनी बढ़ती जाएगी, सुखशान्ति एवं स्थायी कल्याण की मात्रा भी उतनी-उतनी बढ़ती जाएगी। इसके विपरीत ज्यों ज्यों हिसा विकराल रूप धारण करेगी, जगत् एवं व्यक्ति का जीवन अशान्त, सन्तप्त, व्याकुल और दुःखी होता जाएगा। अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि एक हिंसा का त्याग कर देने में सहज ही स्वयमेव पाँचों पापों का त्याग हो जाता है। अहिसा समस्त प्राणियों की पथप्रदर्शिका है। अहिंसा ही माता के समान सब प्राणियों की रक्षिका है। 'अहिंसा परमो धर्मः' का सिद्धान्त तो सभी धर्मावलम्बी मानते है परन्तु हिसा-अहिंसा का जैसा सूक्ष्म विवेचन जैनधर्मग्रन्थों में है, वैसा अन्यत्र नहीं मिलता।

८. अपरिग्रहवाद :

परिग्रह की भावना अनेक दोषों की जननी है। लोभ, द्वेष, डाह-ईर्ष्या आदि सब इसी के चट्टे-बट्टे हैं। आज प्रायः प्रत्येक मनुष्य यह चाहता है कि सारे संसार की सम्पत्ति मेरे घर में आ जाए। अमेरिका की परिग्रह-नीति से आज समस्त संसार क्षुब्ध है। संसार की वस्तुओं पर अधिकार कर दूसरों का शोषण करने की भावना पाप भावना है। गृहस्थावस्था में आवश्यकतानुसार परिग्रह रखकर भी हमारा उद्देश्य निर्ग्रन्थ बनने का होना चाहिए। जैनाचार्यों ने अन्तरंग और बहिरंग सब प्रकार के परिग्रहों का निषेध किया है। मानव जाति को अपरिग्रह की ओर झुकना चाहिए। यह मनुष्य अपने साथ न कुछ लाया है और न ले जाएगा। साठ-सत्तर वर्ष की अल्पायु पाकर आत्म कल्याण की भावना रखने की अपेक्षा संसार-शोषण की भावना रखना गर्हणीय है। अपनी-अपनी आवश्यकतानुसार अहिंसा की भावना के साथ वस्तुओं का उपयोग कर निष्परिग्रह होने की भावना रखनी चाहिए। जैनाचार्य तो महारम्भों को भी मानव जाति के लिए हानिकारक समझते

हैं। यथार्थ में मनुष्य पर्याय अल्पारम्भ की भावना से ही मिलती है। इस प्रकार जैन दर्शन ने उत्कृष्ट अपरिग्रहवाद की नींव डालकर एक महान् आदर्श उपस्थित किया है।

९ कर्मसिद्धान्त :

सभी आस्तिक दर्शनों ने एक ऐसी सत्ता स्वीकार की है जो जीव तत्त्व को प्रभावित करती है। उसे स्वीकार किए बिना जीवों में प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने वाली विषमता की तथा एक ही जीव में विभिन्न कालो में होने वाली भिन्न-भिन्न अवस्थाओं की सङ्गति किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है। सब जीव स्वभावत: समान हैं तो एक मनुष्य और दूसरा कीट—ऐसा क्यों? यदि विराट चैतन्य उसका स्वरूप है तो जड़ता और अज्ञान के गहन अन्धकार में जीव क्यों ठोकरें खा रहा है? अमूर्त है तो शरीर के कारागार में क्यों बद्ध है? यह प्रश्नमाला जीव विरोधी दूसरी किसी सत्ता को स्वीकार किए बिना समाधान नहीं पाती।

वह सत्ता वेदान्त में माया, सांख्य में प्रकृति और वैशेषिक दर्शन में अदृष्ट नाम से अंगीकार की गई है। जैन दर्शन उसे कर्म कहता है। जैन दर्शन में कर्म का जैसा सांगोपांग और तर्कसंगत विवेचन मिलता है वह अन्यत्र नही देखा जाता। जैनाचार्यों ने कर्मसिद्धान्त पर विपुल साहित्य का सृजन किया है। पुद्गल द्रव्य की अनेक जातियां हैं जिन्हें जैन परिभाषा मे 'वर्गणा' कहते हैं। उनमें से एक कार्मण वर्गणा भी है. ये योग के द्वारा आकृष्ट होकर जीव के साथ बद्ध हो जाती हैं और कर्म कहलाती हैं। कर्मबन्ध के मुख्य कारण दो हैं—

आत्मा को स्वच्छ दीवार, कषायों को गोंद और योग को वायु मान लिया जाय तो बन्ध की प्रक्रिया सरलता से समझ मे आ जाएगी। आत्मा रूपी दीवार पर जब कषायों का गोंद लगा रहता है तो योग की आंधी से उड़कर आयी हुई कर्म रूपी धूल चिपक जाती है। वह चिपक या पकड़ जितनी सबल या निर्बल होगी बन्ध भी उतना ही प्रगाढ़ या शिथिल होगा, हाँ, कषाय का गोंद यदि हट जाय और दीवार सूखी रह जाय तो धूल का आना-जाना तो नहीं रुकेगा किन्तु चिपकना बन्द हो जाएगा।

कर्मों का वर्गीकरण—कर्म मूलत: एक ही प्रकार के होने पर भी जीव के अध्यवसायों और मनोविकारों की तरतमता के कारण अनेक प्रकार के हो जाते हैं। एक ही प्राणी के मनोविकार पल-पल में पलटते रहते हैं। अतएव उनकी संख्या निर्धारित नहीं की जा सकती है। तथापि सुगमता से समझने के उद्देश्य से स्वभाव के आधार पर कर्मों के आठ विभाग किये गये हैं—

ज्ञानावरण—बादलों का बवण्डर जैसे सूर्य को आच्छादित कर लेता है, उसी प्रकार जो कर्म-पुद्गल हमारे ज्ञानतन्तुओं को सुप्त और चेतना को मूर्च्छित बना देते हैं, वे ज्ञानावरण स्वभाव

वाले कहलाते हैं। मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मन:पर्यय ज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण के भेद से यह पांच प्रकार का है।

दर्शनावरण—राजा के दरबार में जाते हुए पुरुष को जैसे द्वारपाल रोक देता है और राजा के दर्शन में बाधक होता है, ठीक उसी प्रकार जो कर्म आत्मा के दर्शन गुण का घातक हो वह दर्शनावरण कहलाता है। इसके नौ भेद हैं—चक्षुर्दर्शनावरण, अचक्षुर्दर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण, निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि।

वेदनीय—जिसके उदय से जीवों को सुख दु:ख होवे उसे वेदनीय कहते हैं। इसके दो भेद है—सातावेदनीय और असातावेदनीय। सुखरूप संवेदना का कारण सातावेदनीय और दु:खरूप संवेदना का कारण असातावेदनीय कर्म कहलाता है।

मोहनीय—जिसके उदय से जीव अपने स्वरूप को भूलकर अन्य को अपना समझने लगे उसे मोहनीय कहते हैं। मोहनीय कर्म के मुख्यत: दो भेद हैं—१. दर्शनमोहनीय २. चारित्रमोहनीय। उनमें दर्शनमोहनीय के तीन और चारित्रमोहनीय के २५ इस प्रकार कुल मिला कर मोहनीय कर्म के २८ भेद हैं।

आयु—यह कर्म बेड़ी के समान है जिसके खुले बिना स्वाधीनता के सुख का अनुभव नहीं हो सकता। यह कर्म जीव को मनुष्य, तिर्यञ्च, देव और नारकी के शरीर में नियत अवधि तक कैद रखता है। हमारी यह जीवित दशा इसी कर्म का फल है।

नाम—जिसप्रकार चित्रकार विभिन्न रंग संजो-संजो कर अपनी तूलिका की सहायता से नाना प्रकार के चित्र बनाता है, उसी प्रकार नाम कर्म जगत् के प्राणियों के नाना आकार-प्रकार वाले शरीरों की रचना करता है। प्राणीसृष्टि मे जो आश्चर्यजनक वैचित्र्य हमें दिखाई देता है उसका कारण यही कर्म है। इसके ४२ भेद हैं, अवान्तर भेद जोड़ने से ९३ भेद हो जाते हैं।

गोत्र—जैसे कुम्भकार छोटे-बड़े बर्तन बनाता है उसीप्रकार जिस कर्म के प्रभाव से जीव प्रतिष्ठित अथवा अप्रतिष्ठित कुल में जन्म लेता है वह गोत्र कर्म है। यह दो प्रकार का है—उच्च गोत्र और नीच गोत्र।

अन्तराय—अभीष्ट की प्राप्ति में अड़ंगा लगा देने वाला यह कर्म पांच प्रकार का है—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय।

उक्त आठ कर्मों में से ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय ये चार कर्म घातिया (जीव के अनुजीवि गुणों-सद्भाव रूप गुणों के घातने वाले) हैं और बाकी के चार कर्म अघातिया (प्रतिजीवि गुणों–अभावरूप गुणों के घातने वाले) हैं।

ध्यान—उत्तम संहनन वाले का एक विषय में चित्तवृत्ति का रोकना ध्यान है; अथवा

चित्तविक्षेप त्यागो ध्यानं । सर्वार्थसिद्धिः ।९।२०

चित्त के विक्षेप के त्याग को ध्यान कहते हैं। उसके चार भेद कहे हैं—आर्त्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल ।

आर्त्तध्यान—अनिष्ट के संयोग, इष्ट के वियोग, दु:ख की वेदना तथा भोगों की अभिलाषा से जो संक्लेश भाव होते है तथा इस अनिष्ट परिस्थिति को बदलने के लिये जो चिन्तन किया जाता है वह सब आर्त्तध्यान है।

रौद्रध्यान—झूठ बोलने, चोरी करने, धन-सम्पत्ति की रक्षा करने तथा जीवों के घात करने में जो क्रूर परिणाम उत्पन्न होते हैं वह रौद्र ध्यान है। ये दोनों ध्यान व्यक्ति को स्वय दु:ख देते हैं। समाज में भी अशान्ति उत्पन्न करने के कारण होते हैं। इनसे अशुभ कर्मों का बन्ध होता है। इसलिये ये ध्यान अशुभ एवं त्याज्य माने गये हैं। शेष दो ध्यान जीव के कल्याणकारी होने से शुभ हैं।

धर्मध्यान—इन्द्रियों तथा राग-द्वेष भावों से मन का निरोध करके उसे धार्मिक चिन्तन में लगाना धर्म ध्यान है। इस चिन्तन का विषय चार प्रकार का हो सकता है। आज्ञा-विचय, अपाय-विचय, विपाक-विचय और संस्थान विचय ।

आज्ञा विचय—जब ध्यान शास्त्रोक्त तत्वों के स्वरूप, कर्मबन्ध आदि ज्ञान की व्यवस्था व चरित्र के नियम आदि के सूक्ष्म चिन्तन में लगता है तब आज्ञाविचय नामक ध्यान होता है। आज्ञा का अर्थ : शास्त्रादेश तथा विचय का अर्थ है खोज या गवेषणा। इस प्रकार शास्त्रादेश की गवेषणा अर्थात् धर्म के सिद्धान्तों को तर्क, न्याय, प्रमाण, दृष्टान्त आदि की योजना द्वारा समझने का मानसिक प्रयत्न धर्मध्यान है।

अपाय विचय—अपाय का अर्थ है विघ्न बाधा, अतएव धर्म के मार्ग में जो विघ्न-बाधायें उपस्थित हों उन्हें दूर कर धर्म की प्रभावना बढ़ाने के लिये जो चिन्तन किया जाता है वह अपाय विचय धर्मध्यान है।

विपाक विचय—ज्ञानावरणादि कर्म किस प्रकार अपना फल देते हैं तथा जीवन के विभिन्न अनुभव किस-किस कर्मोदय से प्राप्त हुए हैं इस प्रकार कर्मफलसम्बन्धी चिन्तन विपाकविचय धर्मध्यान है।

संस्थान विचय—लोक का स्वरूप कैसा है उसके ऊर्ध्व, अध:, तिर्यक् लोकों की रचना किस प्रकार की है और उसमें जीवों की कैसी-क्या दशायें पायी जाती हैं इत्यादि चिन्तन संस्थान विचय नामक धर्मध्यान है।

उपरोक्त चार प्रकार के धर्म ध्यानों से ध्याता की दृष्टि शुद्ध, श्रद्धा दृढ़, बुद्धि निर्मल तथा चरित्र पालन विशुद्ध व स्थिर होता है। इसीलिये धर्म ध्यान का आत्मकल्याण के लिये बड़ा माहात्म्य है।

शुक्ल ध्यान—पृथक्त्व-वितर्क-वीचार, एकत्व-वितर्क-वीचार, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति और व्युपरतक्रिया निवर्ति। अनेक जीवादि द्रव्यों व उनकी पर्यायों का अपने मन-वचन-काय इन तीनों योगों द्वारा चिन्तन पृथक्त्व कहलाता है।

वितर्क का अर्थ है श्रुत अथवा शास्त्र और वीचार का अर्थ है विचरण अथवा विपरिवर्त्तन। अत: द्रव्य से पर्याय और पर्याय से द्रव्य। एक शास्त्रवाचन से दूसरे शास्त्रवाचन तथा एक योग से दूसरे योग के आलम्बन से ध्यान की धारा चलना पृथक्त्व-वितर्क-वीचार ध्यान कहलाता है। जब आलम्बन मूल द्रव्य व उसकी पर्याय का व योग का संक्रमण न होकर एक ही द्रव्य या द्रव्य-पर्याय का किसी एक ही योग के द्वारा ध्यान किया जाता है तब एकत्व वितर्क अवीचार ध्यान होता है।

जब ध्यान में न तो वितर्क अर्थात् श्रुत वचन का आश्रय रहता है और न वीचार अर्थात् योग संक्रमण होता है किन्तु केवल सूक्ष्म काय योग मात्र का आलम्बन रहता है तब सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति नामक तीसरा शुक्ल ध्यान होता है। तथा जब न वितर्क रहे न वीचार और न योग का आलम्बन तब व्युपरतक्रियानिवर्ति नामक सर्वोत्कृष्ट शुक्ल ध्यान होता है। यह ध्यान केवलज्ञान की चरम अवस्था में ही होता है और आत्मा द्वारा शरीर का परित्याग होने पर सिद्धों के आत्मज्ञान रूप को धारण कर लेता है।

गुणस्थान—मिथ्यात्व से लेकर मोक्षप्राप्ति तक जिन आध्यात्मिक दशाओं में से जीव निकलता है वे गुणस्थान कहलाती हैं। सामान्यत: इन दशाओं में परिवर्तन करने वाले वे कर्म हैं जिनकी नाना प्रकृतियों का स्वरूप पहले बतलाया जा चुका है। इन कर्मों की परिस्थितियों के अनुसार जीव के जो भाव होते हैं वे पांच प्रकार के हैं :—
(१) औदयिक (२) औपशमिक (३) क्षायिक (४) क्षायोपशमिक (५) पारिणामिक।

कर्मों के उदय से होने वाले भाव औदयिक कहलाते हैं। जैसे राग द्वेष, अज्ञान, असंयम आदि। कर्मों के उपशम अर्थात् उदयरहित अवस्था में होने वाले भाव औपशमिक होते हैं जैसे सदाचार, व्रत नियम पालन इत्यादि।

कर्मों के उपशम काल में जीव की उसी प्रकार शुद्ध अवस्था हो जाती है जिस प्रकार जल में फिटकरी आदि शोधक वस्तुओं के प्रभाव से उसका सब मैल नीचे बैठ जाता है और ऊपर का

समस्त जल निर्मल हो जाता है। किन्तु आत्मपरिणामों की यह विशुद्धि चिरस्थायी नहीं होती है क्योंकि उपशान्त हुआ मैल जल में थोड़ी सी भी हलचल से पुन: ऊपर उठकर सम्पूर्ण जल को मलिन कर देता है इसी प्रकार उपशान्त हुए कर्म शीघ्र ही पुन: कषायोदय द्वारा ऊपर उठ जाते हैं और जीव के परिणामों को पुन: मलिन बना देते हैं किन्तु यदि एकत्र हुये मैल को छानकर जल से पृथक् कर दिया जाय तो फिर वह जल स्थायी रूप से शुद्ध हो जाता है। उसी प्रकार कर्मों के क्षय से जो शुद्ध आत्म परिणाम होते हैं उन्हें जीव के क्षायिक भाव कहा जाता है जैसे केवलज्ञान, दर्शन आदि।

कर्मों के सर्वघाती स्पर्द्धकों का उदय-क्षय व सत्तागत सर्वघाति स्पर्द्धकों का उपशम तथा देशघाति स्पर्द्धको के उदय होने से जीव के जो परिणाम होते हैं वे क्षायोपशमिक भाव कहलाते हैं। ये परिणाम क्षायिक व औपशमिक भावों की अपेक्षा कुछ मलिनता लिये हुए रहते हैं। जिस प्रकार गंदले पानी को छान लेने से उसका बहुत कुछ मैल तो उससे अलग हो जाता है शेष में से कुछ अंश पात्र की तली में रह जाता है और कुछ उसी में मिला रहता है जिसके कारण उस जल में अल्प-मलिनता बनी रहती है। सामान्य से मतिश्रुत ज्ञान, अणुव्रतपालन आदि क्षायोपशमिक भाव के उदाहरण हैं।

इसके अतिरिक्त जीव के जीवत्व, भव्यत्व, द्रव्यत्व् आदि स्वाभाविक गुण पारिणामिक भाव कहलाते हैं। इन सभी भावों का विशेष रूप से मोहनीय कर्म की प्रकृतियों से निकटतम सम्बन्ध है। इनकी विभिन्न अवस्थाओं के अनुसार जीव की वे चौदह आध्यात्मिक भूमिकाये उत्पन्न होती हैं जिन्हें गुणस्थान कहते हैं।

प्रथम—मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से जीव के वे समस्त मिथ्याभाव उत्पन्न होते हैं जिनमें अधिकांश जीव अनादिकाल से विद्यमान हैं। यह जीव का मिथ्यात्व नाम का प्रथम गुणस्थान है। मिथ्यात्व के पाँच भेद हैं—एकान्त, विपरीत, विनय, संशय और अज्ञान मिथ्यात्व।

द्वितीय—सम्यक्त्वरूपी रत्नपर्वत के शिखर से गिरकर जो जीव मिथ्यात्व रूपी भूमि के सम्मुख हो चुका है अर्थात् जिसका सम्यक्त्व नष्ट हो रहा है परन्तु अभी तक जो मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं हुआ है उसको सासन या सासादन नामक द्वितीय गुण गुणस्थानवर्ती कहते हैं।

तृतीय—अपने प्रतिपक्षी आत्मा के गुणों को सर्वथा घात करने का कार्य दूसरी सर्वघाती प्रकृतियों से विलक्षण जाति का है। उस जात्यन्तर सर्वघाती नामक सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से केवल सम्यक्त्व रूप या मिथ्यात्व रूप परिणाम न होकर मिश्ररूप परिणाम होते हैं।

किसी-किसी आत्मा में ऐसे अर्धसत्य मिश्रित अध्यवसाय उत्पन्न होते हैं जिनमें सत्य और असत्य दोनों का ही मिश्रण होता है वह दोलायमान अवस्था मिश्रगुणस्थान कहलाती है। यह

गुणस्थान मिथ्यात्व से अलग है किन्तु पूर्ण विवेक के अभाव में सत्य के प्रति दृढ़ प्रतीति न होने से इसमें जीव की स्थिति डाँवाडोल रहती है। यह तीसरे गुणस्थान का कार्य होता है।

चतुर्थ—चतुर्थ गुणस्थान में आत्म चेतना रूप को धार्मिक दृष्टि तो प्राप्त हो जाती है क्योंकि अनन्तानुबन्धी चार कषायों का उपशम, क्षय या क्षयोपशम हो जाता है किन्तु अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय बना रहता है। इसलिये यह गुणस्थान अविरत सम्यक्त्व कहलाता है।

पंचम—जब इन प्रकृतियों का उपशमादि हो जाता है तो जीव के अणुव्रत धारण करने योग्य परिणाम उत्पन्न हो जाते हैं और वह देशविरत व संयतासंयत नामक पाँचवां गुणस्थान प्राप्त कर लेता है।

षष्ठ—पाँचवे गुणस्थान की सीमा अणुव्रत तक ही है क्योंकि यहाँ प्रत्याख्यानावरण कषायों का उदय बना रहता है। जब इन कषायों का भी उपशमादि हो जाता है तब जीव के परिणाम और भी विशुद्ध होकर वह महाव्रत धारण कर लेता है। यह छठा तथा इससे ऊपर के समस्त गुणस्थान सामान्यतः संयत कहलाते है। क्योंकि यहाँ संयम भाव पूर्ण होते हुए भी प्रमादवश मन्द कषायों का उदय रहता है जिसके फलस्वरूप उसकी परिणति स्त्रीकथा, चोर-कथा, राजकथा आदि विकथाओं व इन्द्रिय विषयों आदि की ओर झुक जाती है। क्योंकि उसमें संज्वलन कषाय का उदय रहता है।

सप्तम—जब संज्वलन कषायों का भी उपशमादि हो जाता है तब उसे अप्रमत्त संयत नामक सातवे गुणस्थान की प्राप्ति होती है।

यहाँ से लेकर आगे की समस्त अवस्थायें ध्यान की है। क्योंकि ध्यानावस्था के सिवाय प्रमादों का अभाव सम्भव नही, इस ध्यानावस्था में जब संयमी अधः प्रवृत्त करण अर्थात् विशुद्धि की पूर्वधारा को चलाता हुआ और प्रतिक्षण शुद्धतर होता हुआ ऐसी असाधारण आध्यात्मिक विशुद्धि को प्राप्त हो जाता है जैसी पहले कभी नहीं हुई थी तब वह अपूर्वकरण नामक आठवें गुणस्थान में आ जाता है। इस गुणस्थान में किंचित्काल रहने पर जब ध्याता के प्रति समय के एक-एक परिणाम अपनी-अपनी विशेष विशुद्धि को लिये हुए भिन्न रूप होने लगते हैं तब अनिवृत्तिकरण नामक नौवां गुणस्थान आरम्भ हो जाता है। इस गुणस्थानवर्त्ती समस्त साधकों का उस समयवर्ती परिणाम एकसा ही रहता है अर्थात् प्रथम समयवर्त्ती समस्त ध्याताओं का परिणाम एकसा ही रहता होगा। इसप्रकार इस गुणस्थान मे रहने के काल के जितने समय होंगे उतने ही भिन्न परिणाम होंगे और वे सभी साधकों के उसी समय में एक से होंगे। अन्य समय में नही। इस गुणस्थान सम्बन्धी विशेष विशुद्धि के द्वारा जब कर्मों का इतना उपशमन या क्षय हो जाता है तब जीव को सूक्ष्मसाम्पराय नामक दसवां गुणस्थान प्राप्त हो जाता है। जहाँ आत्मविशुद्धि का स्वरूप ऐसा बतलाया गया है कि जिस

प्रकार केसर से रंगे हुये वस्त्र को धो डालने पर भी उसमें केसरिया रंग का अतिसूक्ष्म आभास रह जाता है उसीप्रकार इस गुणस्थानवर्ती के लोभ संज्वलन कषाय का सद्भाव रह जाता है।

सातवें गुणस्थान से आगे जीव उपशम व क्षपक इन दो श्रेणियों द्वारा ऊपर के गुणस्थानों में बढ़ते हैं। यदि वे कर्मों का उपशम करते हुए दसवें गुणस्थान तक आये हैं तब तो उस अवशिष्ट लोभ संज्वलन कषाय का भी उपशमन करके उपशांतमोह नामक ग्यारहवां गुणस्थान प्राप्त करेंगे और उसमें किंचित्काल रहकर नियमत: नीचे के गुणस्थानों में गिरेंगे। इसप्रकार उपशम श्रेणी की यही चरम सीमा है। किन्तु जो जीव सातवें गुणस्थान से क्षपक श्रेणी ऊपर बैठते हैं वे दसवें गुणस्थान के बाद इसी शेष संज्वलन कषाय का क्षय करके ग्यारहवें गुणस्थान में न जाकर सीधे क्षीणमोह नामक बारहवें गुणस्थान को प्राप्त कर लेते हैं। तथा इसी बारहवें गुणस्थान में मोह के सर्वथा क्षीण हो जाने के कारण अब पतन की कोई सम्भावना नहीं रहती। इसे अब केवल अपने ज्ञानावरणी और दर्शनावरणी प्रकृतियों का क्षय करके केवल-ज्ञान प्राप्त करना रह जाता है। यह कार्य सम्पन्न होने पर जीव को सयोगकेवली नामका तेरहवां गुणस्थान प्राप्त हो जाता है। इस गुणस्थानवर्त्ती जीवों को वह केवलज्ञान प्राप्त होता है जिसके द्वारा उन्हे विश्व की समस्त वस्तुओं का हस्तरेखावत् प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाता है।

इस गुणस्थान को सयोगी कहने की सार्थकता यह है कि इन जीवों का शरीर से अभी तक सम्बन्ध बना हुआ है व नाम, गोत्र, आयु और वेदनीय इन चार अघातिया कर्मों का उदय विद्यमान है।

इसके पश्चात् केवली काययोग से भी मुक्त होकर अयोग केवली नामक चौदहवां गुणस्थान प्राप्त कर लेता है। इन अष्टकर्म विमुक्त सर्वोत्कृष्ट सांसारिक अवस्था का काल अति अल्प है जिसे पूर्णकर जीव अपनी शुद्ध, शाश्वत, अनन्त, ज्ञानदर्शन, सुख और वीर्य से युक्त परम अवस्था को प्राप्त कर सिद्ध बन जाता है।

मुक्तिमार्ग :

आर्यावर्त के सभी आस्तिक धर्मों का उद्देश्य अन्ततः मुक्तिलाभ करना है। जैनधर्म प्रत्येक आत्मा में ईश्वरीय गुणों की सत्ता को दृढ़तापूर्वक स्वीकार करता है और उन गुणों की स्वाभाविक अभिव्यंजना को ही मुक्ति या सिद्धि मानता है। सिद्धि लाभ के लिए वह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की त्रिपुटी की अनिवार्यता स्वीकार करता है; जबकि अन्य धर्मावलम्बी दर्शन या ज्ञान या चारित्र या दर्शनज्ञान या ज्ञानचारित्र को ही मुक्तिलाभ का हेतु मानते हैं। जैनधर्म स्पष्ट घोषणा करता है कि जैसे सम्यग्दर्शनविहीन ज्ञान तथा सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान रहित

कर्मकाण्ड, क्रियाकलाप, जप-तप, कायक्लेश आदि क्रियायें उद्देश्य की सिद्धि नहीं कर सकतीं वैसे ही क्रियाहीन (चारित्रहीन) ज्ञान भी मुक्ति को प्राप्त नहीं होता। परमात्मदशा प्राप्त करने का एक मात्र मार्ग जीवन में तीनों का समन्वय है।

जैनधर्म के अनुसार जिससे तत्त्व का यथार्थ बोध प्राप्त होता है वह सम्यग्ज्ञान कहलाता है। जिससे तत्त्वार्थ पर अडोल-अडिग विश्वास प्राप्त होता है उस दृढ़ प्रतीति को सम्यग्दर्शन कहा जाता है। जिस आचार-प्रणालिका के द्वारा अन्तःकरण की वृत्तियों को नियंत्रित किया जाता है; जीवन के अन्तरङ्ग और बहिरंग को स्वस्थ एवं संशुद्ध रखा जाता है, ऐसी दोषनाशिनी एवं गुणविकासिनी पद्धति को सम्यक्चारित्र कहते हैं। यही जैनधर्म की परम पावन त्रिवेणी है जिसमें अवगाहन करने वाला साधक निर्मल, निर्विकार और निष्कलुष बन जाता है।

ज्ञान और विश्वास का सार शुद्धाचरण है। मानव जीवन में चारित्र का सर्वाधिक महत्त्व है। जीवन की ऊँचाई कोरे ज्ञान या कोरे विश्वास से नहीं आँकी जा सकती है। दिव्यता की ओर गतिशील यात्रा का मुख्य मापदण्ड चारित्र ही है। दैनिक जीवन व्यवहार में भी हम देखते हैं कि विश्वास और ज्ञान जब तक मनुष्य के जीवन में साकार नहीं हो जाते तब तक वह किसी सांसारिक उद्देश्य में भी सफलता नहीं पा सकता। जीवन को सुघड़ बनाने वाली और आलोक की ओर ले जाने वाली मर्यादाएँ—जो प्राणिमात्र के लिए हितकारी हैं और जिनसे स्वपर का हित साधन होता है—चारित्र के अन्तर्गत आती हैं। अपने जीवन में अनुभव में आने वाले दोषों को त्यागने का जब दृढ़ सङ्कल्प उत्पन्न होता है तभी चारित्र की उत्पत्ति होती है। सरिता के सतत गतिशील प्रवाह को नियंत्रित रखने के लिए दो किनारों की आवश्यकता होती है; इसीप्रकार जीवन-रूपी सरिता को नियंत्रित, मर्यादाशील और प्रगतिशील बनाए रखने के लिए चारित्र की आवश्यकता है।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप त्रिवेणी की धारा सीधी मुक्ति की ओर बही जा रही है किन्तु मानव अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार उसकी गहराई में प्रवेश करते हैं। *उद्देश्य सिद्धि के सही पक्ष को पहचान लेना ज्ञान की बात रही और उस पर विश्वास प्रकट करना* श्रद्धा की बात, किन्तु चलना तो अपनी-अपनी शक्ति पर ही निर्भर है। कोई तीव्र गति से चलता है तो कोई मन्द गति से चलता है। जो तीव्र गति से चलता है वह अपने तमाम वस्त्रों को सँभाल कर चलता है और जो मन्दगति से चलता है वह वस्त्र फैलाकर भी चल सकता है पर उसे भी सँवारने तो पड़ते ही हैं अन्यथा गिरने का भय रहता है। इसीप्रकार मोक्षमार्ग में तीव्रगति से चलने वाले मुनीश्वर

अपनी सर्व मनोवृत्तियों को केन्द्रित एवं इन्द्रियों को नियंत्रित करके चलते हैं अर्थात् इन्द्रियों व कषायों पर विजय प्राप्त करके महाव्रत स्वीकार करते हैं। सर्व सावद्ययोग से निवृत्त हो जाते हैं। परन्तु जो अपनी इन्द्रियों एवं मनोवृत्तियों को पूर्णतया रोकने में समर्थ नहीं हैं वे अणुव्रत धारण करके श्रावकाचार को स्वीकार करते हैं। पाँच पापों का एकदेश त्याग करते हैं। वे श्रावक कहलाते हैं, सागार कहलाते हैं। साधुजीवन अंगीकार करने वाले गृहविरत महाव्रती अनगार कहलाते हैं। दोनों का ध्येय मुक्ति प्राप्त करना है परन्तु दोनों के आचरण में भेद है।

मुनिगण पंच महाव्रत, पंच समिति एवं तीन गुप्ति रूपी तेरह प्रकार के चारित्र का पालन करते हैं। उनके मन-वचन-काय की प्रवृत्ति शुद्ध होती है। उनका अन्तःकरण दया से ओतप्रोत रहता है। जैनधर्म के अनुसार वही सच्चा श्रमण है जो जीवन में गहरी जड़ जमाए हुए आन्तरिक विकारों पर विजय प्राप्त करता है; जिसके लिए मानापमान, निन्दास्तुति और जीवन मरण समान हैं। जो तिरस्कार के गरल को भी अमृत बनाकर पी जाता है मगर कटु वचन बोलकर किसी का तिरस्कार नहीं करता। संसार के जीवों को मैत्री और करुणा प्रदान करता है तथा चलती फिरती संस्था बनकर जगत् में आध्यात्मिकता की उज्ज्वल ज्योति प्रज्वलित रखता है। उसकी भावनाएँ जगत का हित करने में तत्पर रहती हैं, वे ऐसी भावनाएँ भाते हैं कि—

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान्धार्मिको भूमिपालः,
　　काले काले च सम्यग्वर्षतु मघवा, व्याधयोयान्तु नाशं।
दुर्भिक्षं चौरमारी क्षणमपि जगतां मास्मभूज्जीवलोके,
　　जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्वसौख्यप्रदायि ॥

सब प्रजा का कल्याण हो। राजा बलवान् और धार्मिक हो। मेघ समय पर अच्छी वर्षा करें, सब रोगों का नाश हो। जगत् में प्राणियों को दुर्भिक्ष, चोरों का उपद्रव तथा महामारी क्षणभर के लिए भी न हो, सब सुखों को देने वाला जैनधर्म सदा फलता रहे।

जैन श्रावक भी उपर्युक्त भावना का पारायण करता हुआ अपने आहार-विहार की विशेष शुद्धि रखता है। अभक्ष्यभक्षण नहीं करता। मुनि बनने को भावना निरन्तर रखता है। श्रावकों के लिए ग्यारह श्रेणियाँ बनाई गई है जिन्हे जैन सिद्धान्त में ग्यारह प्रतिमाएँ कहते है। उन पर धीरे-धीरे आगे बढ़ता हुआ कोई भी श्रावक अपनी आध्यात्मिक उन्नति के चरमशिखर पर पहुँच सकता है। इन प्रतिमाओं का स्वरूप आचार ग्रन्थों से जानना चाहिए; यहाँ विस्तारभय से नहीं लिखा जा रहा है।

व्रतों का पालन करने वाले श्रावकों को पहले षडावश्यकों का भी पालन करना होता है—देवपूजा, गुरुपास्ति, स्वाध्याय, संयम, तप और दान। इनमें भी दान और पूजा प्रमुख हैं।

ध्यान और अध्ययन के बिना मुनि, मुनि नहीं और दान व पूजा के बिना गृहस्थ, गृहस्थ नहीं होता। ये षट्कर्म गृहस्थ की विशुद्धि के कारण हैं। श्रावक अपनी विचारधारा अत्यन्त निर्मल रखता है तथा निरन्तर चिन्तवन करता है कि वह शुभवेला कब आएगी जब मैं भी सर्वपरिग्रह का त्याग कर निर्ग्रन्थ पद धारण करूंगा।

जैनधर्म की सम्पूर्ण प्रक्रियाओं के विस्तार के मूल में अहिंसा है। अहिंसा जैन धर्म का प्राण है। अहिंसा ही सर्वधर्म की जननी है।

पंचहिं णायक वसिकरहु जेण होइ वसि अण्ण।
मूल विणट्ठहिं तरुवरहिं अवसहिं सुक्कहिं पण्ण॥

—परमात्मप्रकाश १४०

पाँच इन्द्रियों के स्वामी मन को वश में करो, जिस मन के वश होने से अन्य पांच इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं जैसे कि वृक्ष की जड़ के नष्ट हो जाने से पत्ते निश्चय से सूख जाते हैं।

❖ (स्व०) हरिप्रसाद 'हरि'

राजुल

[बुन्देलखण्ड अञ्चल के कविवर 'हरि' की काव्यकृति 'राजुल' के कुछ मार्मिक प्रसंग]

☼

ओ मेरी आँखों के पानी
लिखो, कहानी लिखो !

[पशुओं का करुणक्रन्दन सुनकर वरवेषी नेमिनाथ गिरनार के ऊर्जयन्त शिखर पर तपस्या हेतु चले गए। बरात लौट गई। कवि ने बड़ी मार्मिकता से राजुल की उस समय की मनःस्थिति को यों शब्दबद्ध किया है।]

"अब लौट गई बारात, रात रह गई !

मेरी ममताओं का दल चला गया
मेरी साँसो का सम्बल चला गया;
सुधियों पर केवल घात, घात रह गई
अब लौट गई बारात, रात रह गई।

शहनाई के स्वर दुर्बल रुद्ध हुए
सब साज स्वयं अपने में बद्ध हुए;
मङ्गल गीतों की क्या बिसात रह गई
अब लौट गई बारात, रात रह गई !

धरती पर बन्दनवार बिलखते हैं
सब स्वजनों के परिवार बिलखते हैं;
अब तो केवल बरसात साथ रह गई
अब लौट गई बारात, रात रह गई।

सुख कोलाहल हलचल में बदल गया
पट बदला केवल बात, बात रह गई;
नयनों का काजल जल में बदल गया
अब लौट गई बारात, रात रह गई।

[गहनतम आन्तरिक व्यथा से आहत राजुल माता पिता से नेमिनाथ का मार्ग अपनाने के लिए वन-गमन हेतु आशीर्वाद मांग रही है।]

माँ! मुझको बल दो, बनूँ उन्हीं की दासी,
तेरी राजुल है जिन चरणों की प्यासी।

हे पिता! सत्य यह, तुमने मुझको पाला
मुझको, अपनी आँखों का मान उजाला,
मैं हठी, किन्तु मेरा हठ कभी न टाला
बस एक और हठ मानो, इसे न टालो।

मैं बनूँ आज से उस रजकण की दासी,
तेरी राजुल है जिन चरणों की प्यासी।

पिता सिसकते और सिसकती माँ की आँसूधार
सखियो! तुम भी जी भर रो लो, रोता है संसार;
इतना रोना, सुने न कोई यहाँ किसी की बात
राजुल! तू भी रो, रोने में तेरी किससे हार।

[माँ चुप थीं। राजुल के लिए मानों यही स्वीकृति थी। वह उमंग में कह उठी]

लो मान गई, माँ मान गई
मेरी अच्छी माँ मान गई।

बाबुल के जाने-अनजाने
विह्वल अधरों ने सम्मति दी;
मेरी अच्छी सखियो के—
पहिचाने अधरो ने सम्मति दी।

पति के चरणों में जाऊँगी,
पी-पी कह उन्हें बुलाऊँगी।

मेरी अपनी अन्तर की ध्वनि
अन्तर की भाषा जान गई;
लो मान गई, माँ मान गई
मेरी अच्छी माँ मान गई।

[ऊर्जयन्त शिखर पर नेमिनाथ के समीप पहुँची राजुल का प्रभु से निवेदन]

मेरे पीतम तुमको प्रणाम,
मेरे गीतम् तुमको प्रणाम।

मुझको देखो मैं हूँ राजुल,
देखो, मेरी आँखों का जल;
वह महाभाग अबला मैं ही
जिसके केवल तुम ही सम्बल

इस हृद्तन्त्री के बिखरे से
मम संगीतम् तुमको प्रणाम!

मेरे पीतम तुमको प्रणाम!

हूँ निराधार, करती प्रणाम
मैं निर्विकार करती प्रणाम!

मैं जाग रही, मैं जाग रही
मेरी भावुकता जाग रही;
मुझको चरणों में रहने दो
इतना ही माँग सुहाग रही।

पत्नीत्व न पाऊँ, शिष्या बन
यह अश्रुधार करती प्रणाम!

मैं निर्विकार करती प्रणाम!!

[आर्यिका रूप में दीक्षित राजुल की आन्तरिक विचार प्रणाली पर कविवर हरि की अनुभूति]

प्रभु का डग, मग मेरा, मग वह सृष्टि का।
सीमाबद्ध अहम् का जगविस्तार ही
प्रबल मोह का और अहम् का नाश है;

यह समता की धरती, जिसको भी मिली
वह जग का, यह जग भी उसका दास है।

यह तन जितना गले निखरती चेतना
सहकारी बन चेतन यदि गलता नहीं,
केवल जलता राग, निरोधक पन्थ का
राग जले पर नेह कभी जलता नहीं।

चिर अतीत से यह चेतन बन्दी बना
निज कषाय से कर्मों से कसता गया,
लेकर मिथ्यादृष्टि और अज्ञान ही
जितना उभरा और अधिक कसता गया।

पर बन्धन तो केवल इतना मात्र ही
तृष्णा के घट की निज मुट्ठी खोल दे,
फिर अवलम्बन किसका, निजमें शक्ति वह
व्यक्त स्वयं कर निज निजता का मोल ले।

जितना निज का बन जाता चैतन्य जो

उतना ही हो जाता निज से भी वह अधिक समष्टि का
प्रभु का डग, मग मेरा, मग वह सृष्टि का।

— प्रस्तुतकर्त्ता : डॉ० सुशीलचन्द्र दिवाकर, जबलपुर

संघर्ष नहीं मन्थन चाहिए

आज के युग में पद-पद पर संघर्ष चल रहा है जिससे अशान्ति, भय, आकुलता और वैमनस्य की वृद्धि हो रही है। शान्ति का ह्रास हो रहा है। यदि संघर्ष के स्थान पर मन्थन की प्रवृत्ति को बल मिले तो शान्ति और समता का द्रुत विकास हो सकता है—

उषःकाल में एक पथिक बस्ती में से निकल रहा था। सुबह का शान्त वातावरण था। घरों से दही बिलोने और चक्की चलाने का स्वर स्पष्ट सुना जा रहा था। एक स्थान पर दही और मथानी के आलोड़न को देखकर पथिक वहीं ठिठक गया। वह सोचने लगा देखें, इस संघर्ष में किसकी जीत होती है ? किसके गले में जयमाला पहनाई जाती है ? पथिक सोच ही रहा था कि आलोड़न के परिणामस्वरूप नवनीत का गोला उपलब्ध हुआ। पथिक की समझ में आया अरे ! यह संघर्ष नहीं मन्थन है।

पथिक बस्ती में से निकलकर वन प्रान्त की ओर आया। आंधी के कारण उसे कोलाहल सुनाई दिया, तभी उसकी दृष्टि दो काष्ठ उपलों की ओर गई जो परस्पर संघर्ष रत थे। वह इस बार भी जय-पराजय की प्रतीक्षा करने लगा। कुछ क्षणों में ही उनके संघर्षण से स्फुल्लिंग उछलने लगे और देखते-देखते उन्होंने भीषण अग्नि का रूप धारण कर लिया, अब तो वन प्रान्त के असंख्य प्राणियों के जीवन की आहुति होने लगी।

पथिक को रहस्य समझते देर नहीं लगी। बोला, यह संघर्ष का परिणाम है। जीवन में संघर्ष नहीं मन्थन चाहिये।

मन्थन से निर्माण होता है, संघर्ष से विनाश। मन्थन से मक्खन निकलता है तो संघर्ष से स्वाहा (राख) होता है।

मन्थन निस्सार को पृथक् कर दही के सार-अंश को शुद्ध नवनीत रूप में परिवर्तित कर देता है।

संघर्ष प्रतिद्वन्द्वियों को जलाकर समग्र विश्व के लिये खतरा पैदा कर देता है।

अभिप्राय यह है कि हम तत्त्वचर्चा, धर्मकार्य में संघर्ष कर विषाक्त, कटु वातावरण को जन्म न दें अपितु मन्थन कर तत्त्वज्ञान रूपी नवनीत निकालने का प्रयत्न करें।—अस्तु

—आर्यिका सुपार्श्वमती

❖ आर्यिका ज्ञानमतीजी

समयसार में व्यवहारनय

☼

आचार्यश्री कुन्दकुन्ददेव ने सर्वप्रथम गाथा ७ में ही कहा है कि व्यवहारनय से ही ज्ञानी के चारित्र, दर्शन और ज्ञान कहे जाते हैं किन्तु (निश्चयनय से) न ज्ञान है, न दर्शन है और न चारित्र ही है; यह आत्मा ज्ञायकमात्र शुद्ध है । पुन: गाथा ८ में कहते हैं—"जिस प्रकार से किसी म्लेच्छ को उसकी भाषा में बोले बिना उसे समझाना शक्य नहीं है उसी प्रकार से व्यवहार के बिना परमार्थ का उपदेश ही अशक्य है।"

आगे, पुन: गाथा १३ वीं में व्यवहार को अभूतार्थ कहकर तत्क्षण ही अगली गाथा में कहते हैं—

परमभावदर्शी—परम शुद्ध आत्मा का अनुभव करने वाले ऐसे महामुनियों के लिये शुद्ध द्रव्य का कथन करने वाला ऐसा शुद्धनय ही ज्ञातव्य है, अनुभव करने योग्य है किन्तु जो अपरमभाव में स्थित हैं अर्थात् चतुर्थ, पंचम, छठे अथवा सातवें गुणस्थान में स्थित हैं उनके लिए व्यवहारनय का उपदेश दिया गया है।

इसकी टीका में श्री अमृतचन्द्र सूरि ने भी कहा है कि जो अन्तिम सोलहवें ताव से शुद्ध हुए सुवर्ण के समान परम शुद्ध भाव का अनुभव करते हैं उनके लिये ही शुद्धनय प्रयोजनीभूत है किन्तु जो एक दो आदि ताव से शुद्ध सुवर्ण के समान अपरमभाव का अनुभव करते हैं उनके लिये व्यवहारनय प्रयोजनीभूत है क्योंकि तीर्थ और तीर्थ का फल व्यवहार नय से ही चलता है।

कलशकाव्य में भी कहते हैं—

पहली पदवी पर पैर रखने वालों के लिये यद्यपि यह व्यवहार नय हाथ का अवलम्बन स्वरूप है फिर भी पर से रहित चित्-चमत्कार मात्र परम अर्थ-शुद्ध आत्मा को अन्तरङ्ग में देखने वालों के लिये वह व्यवहारनय कुछ भी नहीं है[1]।

---

१. व्यवहरणनय: स्याद् यद्यपि प्राक्पदव्यां""। कलश ५।

इस कथन से भी स्पष्ट है कि पहली सीढ़ी पर पैर रखने वाले ऐसे चतुर्थ, पंचम और छठे गुणस्थानवर्ती जीवों के लिये व्यवहारनय सहारा है, हाथ का अवलम्बन है।

गाथा २२ वीं में यह कहा है कि कर्म में, कर्म रूप मैं हूं अथवा ये मेरे हैं; ऐसा समझने वाला अज्ञानी है। पुनः तत्काल अनेकान्त की व्यवस्था करते हुए कहते हैं कि यह आत्मा जिन भावों को करता है उन्हीं का कर्ता होता है यह निश्चयनय का कथन है और व्यवहारनय की अपेक्षा यह पुद्गल कर्मों का कर्ता होता है[1]।

आगे चलकर शङ्का होती है कि यदि जीव और शरीर एक नहीं हैं तो तीर्थंकरों और आचार्यों की स्तुति मिथ्या हो जावेगी? इस पर समाधान यह है कि व्यवहारनय की अपेक्षा से जीव और शरीर एक हैं और निश्चयनय की अपेक्षा से ये कथमपि एक नही हैं[2]। तथा तीर्थंकर आदि के शरीर आदि की स्तुति व्यवहारनय की अपेक्षा से ही होती है।

आगे आचार्यदेव आठ प्रकार के कर्म और उनके फल आदि को पुद्गलमय कहते हैं; पुनः समाधान रूप में गाथा ५१ में कहते हैं—

रागादि भाव आदि जो भी अध्यवसान परिणाम हैं वे सब जीव हैं यह व्यवहारनय का उपदेश है ऐसा श्री जिनेन्द्रदेव ने कहा है[3]। इसी गाथा की टीका में श्री अमृतचंद्रसूरि कहते हैं— व्यवहारनय अपरमार्थ होते हुए भी परमार्थ का प्रतिपादक है और तीर्थप्रवृत्ति का निमित्त है अतः उसका दिखलाना न्याय ही है। व्यवहारनय को माने बिना शरीर से जीव में परमार्थ से भेद होने से त्रस और स्थावर जीवों की व्यवस्था नहीं होगी; पुनः कोई भी उन त्रस-स्थावरों को राख के समान मर्दित कर देगा और ऐसा करने पर भी हिंसा नहीं होगी तब उसके कर्मबन्ध नही होगा। पुनः रागद्वेष मोह से जीव में सर्वथा भेद रहने से मोक्ष के उपाय को ग्रहण करना कैसे हो सकेगा? और तब तो मोक्ष का ही अभाव हो जावेगा[4]।

उपर्युक्त गाथा में तथा टीका में व्यवहारनय की उपयोगिता विशेषरीति से ध्यान देने योग्य है।

---

१. जंकुणदि भावमादा·······॥ गाथा २४॥

२. ववहारणओ भासदि जीवो देहो य हवदि खलु इक्को॥

३. ववहारस्स दरीसणमुवएसो वण्णिदो जिणवरेहिं। जीवा एदे सव्वे अज्झवसाणादओ भावा॥५१॥

४ व्यवहारो हि परमार्थप्रतिपादकत्वादपरमार्थोपि तीर्थप्रवृत्तिनिमित्त दर्शयितुं न्याय्य एव। त मंतरेण·······भवत्येव मोक्षस्याभावः। (गाथा ४६ की टीका, पृ० ८४)

गाथा ५५ में यह बतलाया है कि जीव के वर्ण, रस, गंध, स्पर्श आदि तथा गुणस्थान आदि कुछ भी नहीं हैं। पुनः नयविवक्षा खोलते हुए कहते हैं—

व्यवहारनय की अपेक्षा से वर्ण आदि से लेकर गुणस्थानपर्यन्त ये सभी भाव जीव के ही हैं किन्तु निश्चयनय की अपेक्षा से ये कुछ भी नही हैं।[1]

इस बात को सुनकर कोई शिष्य प्रश्न कर देता है कि हे भगवन्! शास्त्र में तो जीवके एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, पर्याप्त अपर्याप्त आदि नाना भेद माने हैं सो कैसे? तब पुनः आचार्य समाधान करते हैं—पर्याप्त-अपर्याप्त, सूक्ष्म और बादर आदि जो भी जीव के भेद परमागम में कहे हैं वे सभी व्यवहारनय की अपेक्षा से ही हैं।[2]

गाथा ८६ और ६० मे भी निश्चय और व्यवहार के कार्य को स्पष्ट कर रहे हैं—निश्चयनय से यह आत्मा अपने आपका ही कर्ता है और अपने आपका ही भोक्ता है। किन्तु व्यवहारनय से यह आत्मा अनेक प्रकार के पुद्गल कर्मों का कर्ता है और उसी प्रकार से अनेक प्रकार के पुद्गल कर्मों का भोक्ता भी है।[3]

निश्चयनय के जानने वाले महामुनियों ने जो यह आत्मा के कर्तापने की बात बतलाई है उसको जो समझ लेता है वही भव्य जीव सम्पूर्ण कर्तृत्व को छोड़ सकता है। इस गाथा को टीका में श्री जयसेनाचार्य ने कहा है कि जो ऐसा समझ लेता है कि यह आत्मा निश्चयनय से अपने भावों का ही कर्ता है और व्यवहारनय से कर्मों का कर्ता है वह जीव सराग सम्यग्दृष्टि होता हुआ अशुभ कर्म के कर्तृत्व को छोड़ता है, पुनः निश्चय चारित्र के साथ अविनाभूत ऐसा वीतराग सम्यग्दृष्टि होकर शुभ-अशुभ ऐसे सम्पूर्ण कर्मों के कर्तृत्व से छूट जाता है।[4]

इस प्रकरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि चतुर्थ गुणस्थान से लेकर सातवें गुणस्थान तक के जीव अशुभकर्म के कर्तृत्व से ही छूटने का प्रयत्न करते हैं इससे आगे के जीवों के शुभ कर्म का कर्तृत्व चल रहा है जो कि दशवें तक चलता रहता है, आगे वह भी छूट जाता है।

---

१. ववहारेण दु एदे जीवस्स हवंति वण्णमादीया।
गुणठाणंता भावा ण दु केई णिच्छयणयस्स ॥६१॥

२. गाथा न० ७२।

३. णिच्छयणयस्स एवं.................॥८३॥
ववहारस्स दु आदा पुग्गलकम्म करेदि अणेयविह।
त चेव य वेदयदे पुग्गलकम्मं अणेयविह ॥६०॥

४. गाथा १०४ तात्पर्यवृत्ति टीका।

आगे कहते है, यह आत्मा व्यवहारनय की अपेक्षा से घट-पट-रथ आदि द्रव्यों का कर्ता है; इन्द्रियों का, ज्ञानावरण आदि कर्मों का, शरीर आदि नोकर्मों का और क्रोधादि रूप नाना प्रकार के भाव कर्मों का भी कर्ता है।[1] यह आत्मा पुद्गल कर्म को उपजाता है, करता है, बाँधता है, परिणमाता है और ग्रहण भी करता है; यह सब व्यवहारनय का कथन है।[2]

आगे जीव को कथंचित् अकर्ता सिद्ध करते हुए कहते हैं—

बंध के करने वाले सामान्य प्रत्यय चार हैं—मिथ्यात्व, अविरति कषाय और योग। उनके ही मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगकेवली पर्यन्त तेरह भेद हो जाते हैं। ये गुणस्थान पुद्गल कर्म के उदय से होते हैं अतः अचेतन हैं। ये ही कर्मों को करते हैं इसलिये आत्मा इन कर्मों का भोक्ता भी नहीं है क्योंकि ये गुणस्थान ही कर्म को करने वाले हैं अतः यह जीव अकर्ता है।[3]

इन गाथाओं की तात्पर्यवृत्ति मे आचार्य कहते हैं कि ये मिथ्यात्व आदि प्रत्यय और गुणस्थान न एकान्त से जीवरूप हैं और न पुद्गलरूप हैं किन्तु चूना और हल्दी के मिले हुए रंग के समान हैं। अतः ये अशुद्ध निश्चयनय से अशुद्ध उपादानरूप से चेतन हैं, जीव से सम्बन्धित हैं तथा शुद्ध निश्चयनय से शुद्ध उपादानरूप से अचेतन हैं, पौद्गलिक हैं।

कोई प्रश्न करता है कि सूक्ष्म शुद्ध निश्चयनय से किसके हैं? तो आचार्य कहते है—सूक्ष्म शुद्ध निश्चयनय से तो इनका अस्तित्व ही नहीं है चूंकि "सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया" इस नियम के अनुसार तो सभी जीव शुद्ध ही हैं पुनः ये रागादि प्रत्यय कहाँ टिकेंगे?

आगे पुनः इसी 'कर्तृकर्मअधिकार' में कहते हैं—

"जीव मे कर्म बद्ध हैं और उस जीव के प्रदेशों में मिले हुए हैं यह व्यवहारनय का पक्ष है और जीव में कर्म न बँधे हुए हैं और न स्पर्शित ही हैं यह निश्चयनय का पक्ष है। इस प्रकार से जीव से कर्म बंधे हुए हैं अथवा नहीं बंधे हुए हैं ये दोनों ही नय पक्ष हैं। जो इन दोनों पक्षों से ऊपर जा चुके हैं वे ही महामुनि समयसाररूप हैं। जो समयसाररूप आत्मा का अनुभव करने वाले हैं वे दोनों ही नयों के कथन को केवल जानते हैं किन्तु इन दोनों में से किसी के भी पक्ष को ग्रहण नहीं करते हैं।[4]

---

१. गाथा १०५।

२. गाथा ११४।

३. गाथा ११६ से ११९।

४. गाथा १४९, १५०, १५१।

इस गाथा की टीका में श्री अमृतचन्द्र सूरि कहते हैं कि जिस प्रकार से केवली भगवान् निश्चय-व्यवहार द्वारा कथित सम्पूर्ण पदार्थों को जानते हैं किन्तु कुछ भी ग्रहण नहीं करते हैं उसी प्रकार से जो श्रुतज्ञानात्मक समस्त अन्तर्बाह्यरूप विकल्पात्मक भूमि को पार कर जाने से समस्त नय पक्षों के ग्रहण करने से दूर हो चुके हैं, किसी भी नयपक्ष को ग्रहण नहीं करते हैं वे ही समस्त विकल्पों से परे निर्विकल्प ज्ञानात्मक समयसार रूप हैं। इसी बात को श्री जयसेनाचार्य ने सरल शब्दों मे कहा है कि वे गणधरदेवादि महामुनि ही निर्विकल्प ध्यान की अवस्था में इन नय पक्षों को ग्रहण नहीं करते।

तात्पर्य यही निकलता है कि छठे-सातवें गुणस्थान तक सविकल्प अवस्था में दोनों ही नयों का अवलम्बन लेना पड़ता है। आगे निर्विकल्प ध्यान मे इन दोनों का ही विकल्प छूट जाता है।

इसी बात को आगे कहते हैं कि "ज्ञानी मुनि निश्चय को छोड़कर व्यवहार में प्रवृत्ति नहीं करते हैं क्योंकि परमार्थ का आश्रय लेने वाले यतियों के ही कर्मों का क्षय होता है"।[1]

बंधाधिकार में ऐसा कहा है कि "जीवों को मारने और दुःखी करने के भाव हिंसा रूप होने से पापबंध के कारण हैं वैसे ही असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह के भाव भी पापबंध के कारण हैं तथा जीवों को जीवित रखने और सुखी रखने के भाव अहिंसा रूप होने से पुण्यबंध के कारण हैं वैसे ही सत्य अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के भाव पुण्यबंध के कारण हैं। यह प्रकरण गाथा २६३ से प्रारम्भ होकर विस्तार से लिया गया है। पुनः आगे २८८ गाथा में कहते हैं कि "उपर्युक्त अध्यवसान (परिणाम) तथा और भी अध्यवसान भाव जिनके नहीं हैं वे मुनि ही शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के कर्मों से नहीं बंधते है[2]। यहां गाथा में "मुनि" शब्द ध्यान देने योग्य है।

जब तक संकल्प-विकल्प होते रहते हैं तब तक यह जीव शुभ-अशुभ को उत्पन्न करने वाले कर्म बांधता रहता है जब तक कि उसके हृदय में आत्मा के स्वरूप की ऋद्धि स्फुरायमान नहीं होती है।

"इस प्रकार निश्चयनय के द्वारा व्यवहारनय का प्रतिषेध किया जाता है ऐसा समझो, क्योंकि निश्चयनय का आश्रय लेने वाले मुनिगण ही निर्वाण को प्राप्त करते हैं[3]। यहां पर भी मुनि शब्द ध्यान देने योग्य है।

---

१. परमट्ठ मस्सिदाण दु जदीण कम्मक्खओ होदि ॥१६४॥

२. एदाणि णत्थि जेसिं अज्झवसाणाणि एवमादीणि।
ते असुहेण सुहेण व कम्मेण मुणी ण लिप्पंति ॥२८८॥

३. णिच्छयणयसल्लीणा मुणिणो पावन्ति णिव्वाणं ॥२६१॥

यहां पर तात्पर्य वृत्ति में लिखा है कि यद्यपि प्राथमिक शिष्यों की अपेक्षा प्रारम्भ में सविकल्प अवस्था में निश्चय का साधक होने से व्यवहारनय प्रयोजनीभूत है फिर भी विशुद्ध ज्ञान-दर्शन रूप शुद्धात्मा में स्थित हुए निर्विकल्प ध्यानी मुनियों के लिये निष्प्रयोजनीभूत है।

उपर्युक्त प्रकरण में बंधाधिकार की गाथाओं में श्री कुन्दकुन्ददेव ने मुनियों के लिये ही ऐसा कहा है कि वे ही शुभ-अशुभ इन दोनों प्रकार के कर्मों से छूट सकते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रावक अथवा अव्रती कथमपि पुण्य-पाप इन दोनों से नहीं छूट सकते हैं।

मोक्ष अधिकार के अन्त में ३२६, ३२७ गाथाओं में जो प्रकरण लिया है इससे पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि यह ग्रन्थ महामुनियों के लिये ही है। यथा—इन गाथाओं के पहले श्री अमृतचंद्र सूरि उत्थानिका रूप में कहते हैं—

शिष्य कहता है—इस शुद्धात्मा की उपासना के प्रयास से क्या प्रयोजन है? जबकि प्रतिक्रमण आदि से ही यह जीव अपराधरहित हो जाता है। व्यवहार आचार सूत्र में कहा भी है—

अप्रतिक्रमण, अप्रतिसरण, अपरिहार, अधारणा, अनिवृत्ति, अनिंदा, अगर्हा और अशुद्धि ये विषकुम्भ हैं और इनसे विपरीत प्रतिक्रमण, प्रतिसरण, परिहार, धारणा, निवृत्ति, निन्दा, गर्हा और शुद्धि ये अमृतकुम्भ हैं।

इस चर्चा पर श्री कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं—

प्रतिक्रमण आदि आठों विषकुम्भ हैं और अप्रतिक्रमण आदि आठों अमृतकुम्भ हैं।[1] इन गाथाओं की टीका में श्री अमृतचन्द्र सूरि स्पष्ट कह रहे हैं—

अज्ञानीजनो मे साधारण रूप से रहने वाले जो अप्रतिक्रमण आदि हैं वे तो विषकुम्भ हैं ही हैं, उनके बारे में यहां कुछ विचार ही नहीं करना है किन्तु जो द्रव्यरूप प्रतिक्रमण आदि हैं वे सम्पूर्ण अपराध को दूर करने वाले होने से यद्यपि अमृतकुम्भ हैं फिर भी प्रतिक्रमण, अप्रतिक्रमण से विलक्षण ऐसी तृतीय भूमि को प्राप्त हुए शुद्धोपयोगी मुनि के लिये वे विषकुम्भ हैं। इसलिये व्यवहार से प्रतिक्रमण आदि भी उस तृतीयभूमि को प्राप्त कराने में कारण होने से अमृतकुम्भ हैं, यह बात सिद्ध हो जाती है। यहां द्रव्य प्रतिक्रमणादि को छुड़ाया नहीं है प्रत्युत उससे आगे निर्विकल्प अवस्था में पहुंचने की प्रेरणा दी है।

इसी बात को 'कलशकाव्य' में भी कहते हैं—

---

१. गाथा ३२६, ३२७, (अमृतचन्द्र सूरि के आधार से गाथा ३०६, ३०७)।

यत्र प्रतिक्रमणमेव विषं प्रणीतं,
तत्राप्रतिक्रमणमेव सुधा कुतः स्यात् ।
तत्किं प्रमाद्यति जनः प्रपतन्नधोधः,
किं नोर्ध्वमूर्ध्वमधिरोहति निष्प्रमादः ॥१८९॥

हे भाई ! जहां प्रतिक्रमण को ही विषकुम्भ कह दिया है वहां अप्रतिक्रमण अमृतकुम्भ कैसे हो सकता है ? अतः यह मनुष्य नीचे-नीचे गिरता हुआ प्रमादी क्यों होता है ? निष्प्रमादी होकर ऊंचे-ऊंचे क्यों नहीं चढता है ?

आगे पुनः 'कलशकाव्य' में कहते हैं—

प्रमादकलितः कथं भवति शुद्धभावोऽलसः ।
कषायभरगौरवादलसता प्रमादो यतः ।
अतः स्वरसनिर्भरे नियमतः स्वभावे भवन्,
मुनिः परमशुद्धतां व्रजति मुच्यते चाचिरात् ॥१९०॥

कषाय के भार से भारी होना ही आलस्य है उसे ही प्रमाद कहते हैं । अतः प्रमादयुक्त आलस्य भाव शुद्धभाव कैसे कहा जा सकता है ? इसलिये स्वरस से परिपूर्ण अपने स्वभाव में निश्चल होते हुए मुनि ही परमशुद्धि को प्राप्त होते हैं और वे ही अल्प समय में मुक्त हो जाते हैं ।

इस १९० वें कलश में 'मुनि' शब्द भी स्पष्ट घोषणा कर रहा है कि ये प्रतिक्रमण आदि क्रियायें मुनियों की ही है न कि श्रावकों की ।

इन्हीं गाथाओं की टीका में श्री जयसेन आचार्य कहते हैं—

अप्रतिक्रमण दो प्रकार का है एक अज्ञानीजन आश्रित और दूसरा ज्ञानीजन आश्रित । प्रथम भेद तो विषय-कषाय की परिणतिरूप है और जो द्वितीय भेद है वह रत्नत्रय की एकाग्रपरिणति रूप होने से त्रिगुप्ति समाधिरूप है, उसे ही निश्चय प्रतिक्रमण भी कहते हैं । सरागचारित्र लक्षण शुभोपयोगी मुनि के लिए ये प्रतिक्रमण आदि क्रियायें अमृत कुम्भ हैं और वीतरागी मुनि के लिये शुद्धोपयोगमय ध्यान में विषकुम्भ हैं वहाँ तो अप्रतिक्रमण (निश्चय प्रतिक्रमण) आदि ही अमृतकुम्भ हैं । यहां पर भी ऐसा समझना कि आज के मुनियों के लिये भी व्यवहार प्रतिक्रमण ही प्रयोजनीभूत है ।

इस प्रकरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह समयसार ग्रन्थराज उन महामुनियों के लिए ही है जो कि अपनी आवश्यक क्रियाओं में पूर्णतया सावधान हैं ।

'सर्वविशुद्ध ज्ञानाधिकार' में गाथा ३७० में तात्पर्यवृत्तिकार ने प्रश्नोत्तर के माध्यम से व्यवहारनय की महत्ता दर्शायी है—

"जीव से प्राण भिन्न हैं या अभिन्न ? यदि अभिन्न हैं तो जैसे निश्चयनय से जीवों का विनाश नहीं हो सकता, वैसे ही उनसे अभिन्न उनके प्राणों का भी विनाश नहीं होगा पुन: हिंसा कैसे होगी ? यदि आप कहें कि जीव से प्राण भिन्न हैं तब तो प्राणों के घात होने पर भी जीव का क्या बिगड़ेगा ? और तब भी हिंसा नहीं होगी।"

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए आचार्य कहते हैं—

"ऐसा नहीं है, क्योंकि काय आदि प्राणों का जीव के साथ कथंचित् भेद है और कथंचित् अभेद है । तपाये हुये लोहे के गोले के समान वर्तमान में जीव से प्राणों को पृथक् करना शक्य नहीं है इसलिये व्यवहारनय से अभेद है । मरणकाल में कायादि प्राण जीव के साथ नहीं जाते हैं इसलिए निश्चयनय से भेद भी है।"

यदि एकान्त से ही भेद मान लिया जावे तो जैसे पर के शरीर का छेदन-भेदन करने पर भी आपको दु:ख नहीं होता है वैसे ही अपने शरीर का छेदन-भेदन करने पर भी दु:ख नहीं होना चाहिए किन्तु वैसा तो नहीं है, वैसा मानने में तो प्रत्यक्ष से विरोध आता है।

पुन: शंकाकार कहता है कि—

फिर भी व्यवहार से हिंसा हुई न कि निश्चय से ?

तो आचार्य भी उत्तर देते हैं कि—

सत्य ही कहा है आपने, व्यवहार से ही हिंसा है वैसे ही पाप भी और नारक आदि दु:ख भी व्यवहार से ही होते हैं यह बात हमें मान्य ही है । यदि वे नारक आदि दु:ख आपको इष्ट हैं तब हिंसा करिये । यदि उन दु:खों से भीति है तब छोड़ दीजिये[1] ।

उपर्युक्त कथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि व्यवहारनय का कथन कितना सच है और वह कितना उपयोगी है ।

आगे गाथा ३९४ की तात्पर्यवृत्ति में जयसेनाचार्य कहते हैं—

---

१. ननु तथापि व्यवहारेण हिंसा जाता न तु निश्चयेनेति ? सत्यमुक्तं भवता व्यवहारेण हिंसा तथा पापमपि नारकादि दु:खमपि व्यवहारेणेत्यस्माकं सम्मतमेव । तन्नारकादि दु:खं भवतामिष्टं चेत्तर्हि हिंसा कुरुत । भीतिरस्ति ? इति चेत् तर्हि त्यज्यतामिति । गाथा ३७०, पृ० ३०७ (अजमेर-प्रकाशन प्रथमावृत्ति) ।

सौगत कहता है आपके यहां भी व्यवहार से ही सर्वज्ञ है तब आप लोग हमें क्यों दूषण देते हैं ? तब आचार्य कहते हैं—

आप सौगत आदि के मत में जैसे निश्चय की अपेक्षा से व्यवहार झूठा है, वैसे ही व्यवहार रूप से भी व्यवहार सत्य नहीं है। किन्तु जैन मत में यद्यपि व्यवहारनय निश्चय की अपेक्षा से झूठा है फिर भी व्यवहार रूप से सत्य ही है[1]।

गाथा ३६६ की तात्पर्यवृत्ति टीका में कार्य-समयसार और कारण-समयसार का स्पष्टीकरण है। कारण-समयसार के भी दो भेद हैं—निश्चय कारण-समयसार और व्यवहार कारण-समयसार। केवलज्ञान आदि अनन्तचतुष्टय की व्यक्तिरूप कार्य समयसार है। इस कार्य समयसार के लिये कारणभूत कारण समयसार है।

रत्नत्रय की एकाग्र परिणति रूप जो अभेद रत्नत्रय होता है वह निश्चयकारण समयसार है जो कि कार्य समयसार के लिए साक्षात् कारण है तथा व्यवहार रत्नत्रय को भेद रत्नत्रय भी कहते हैं इसलिये यह भेद रत्नत्रय व्यवहार कारण–समयसार है, यह निश्चयकारण समयसार के लिए कारण हैं।[2]

आज के युग में यह भेदरत्नत्रय ही संभव है।

समयसार के उपसंहार में भगवान कुन्दकुन्ददेव शरीराश्रित लिंग के प्रति ममत्व छुड़ाते हुए कहते हैं कि—

सागार या अनगार लिंग मोक्षमार्ग नहीं हैं किन्तु रत्नत्रय ही मोक्षमार्ग है। पुनः दोनों नयों की उपादेयता दिखलाते हुए कहते हैं—

---

१. गाथा ३६४, तात्पर्य वृत्ति टीका, पृ० ३२१।

२. भेदरत्नत्रयात्मकव्यवहारमोक्षमार्गसंज्ञेन व्यवहारकारणसमयसारेण साध्येन अभेदरत्नत्रयात्मक निर्विकल्प समाधिरूपेण अनंतकेवलज्ञानादिचतुष्टयाभिव्यक्तिरूपस्यकार्यसमयसारस्योत्पादकेन निश्चयकारणसमयसारेण बिना खलु अज्ञानिजीवो रुष्यति तुष्यति च।

गाथा ३६६, तात्पर्यवृत्ति, पृ० ३२६।

व्यावहारिक जन दोनों ही लिंगों को मोक्ष-मार्ग में स्वीकार करते हैं किन्तु निश्चयनय मोक्षमार्ग में किसी भी लिंग को स्वीकार नहीं करता है[1]।

इस गाथा की टीका में अमृतचन्द्र सूरि कहते हैं—

य: खलु श्रमणश्रमणोपासकभेदेन द्विविधं द्रव्यलिंग मोक्षमार्ग इति प्ररूपणप्रकार: स केवलं व्यवहार एव।....यदेव श्रमणश्रमणोपासकविकल्पातिक्रान्तं दृशिज्ञप्तिवृत्तप्रवृत्तिमात्रं शुद्धज्ञानमेवैकमिति निस्तुषसंचेतनं परमार्थ:।[2]

मुनि और उपासक के भेद से दोनों प्रकार का द्रव्य वेष मोक्षमार्ग हैं यह कहना केवल व्यवहार है।....जो श्रमण और उपासक के विकल्प से परे दर्शनज्ञान और चारित्र की एकाग्र परिणति रूप शुद्ध ज्ञान ही एक है, ऐसा निर्विकल्प अनुभव है वह परमार्थ-मार्ग है।

तात्पर्यवृत्तिकार ने और भी स्पष्ट कर दिया है—

हे शिष्य ! इन सात गाथाओं से द्रव्यलिंग का निषेध ही कर दिया है, ऐसा तुम मत समझो, किन्तु निश्चयरत्नत्रयात्मक निर्विकल्पसमाधि रूप जो भावलिंग है उनसे रहित मुनियों को संबोधित किया है। हे तपोधनमुनियो ! तुम द्रव्यलिंग मात्र से ही सन्तोष मत करो, किन्तु द्रव्यलिंग के आधार से निश्चयरत्नत्रयात्मक निर्विकल्प समाधि रूप भावना को करो। यहां पर भावलिंग रहित द्रव्यलिंग का निषेध है न कि भावलिंग सहित का। बल्कि यहां पर द्रव्यलिंग का आधारभूत जो शरीर है उसके ममत्व का निषेध किया है न कि द्रव्यलिंग का। क्योंकि दीक्षा के समय संपूर्ण परिग्रह का तो त्याग कर दिया है किन्तु शरीर का त्याग नहीं किया है। कारण यह शरीर ही ध्यान और ज्ञान के अनुष्ठान का हेतु है। तथा शेष परिग्रह के समान शरीर को पृथक् करना शक्य भी तो नहीं है।

वीतराग, निर्विकल्प ध्यान के समय यह मेरा शरीर है मैं मुनिलिंगी हूं, इत्यादि विकल्प नहीं करने चाहिए।

देखो ! धान के बाहर का तुष विद्यमान रहने पर भीतर की लालिमा को दूर करना शक्य नही है और अभ्यन्तर की लालिमा के दूर कर देने पर बहिरंग का तुष नियम से निकल ही जाता है। इसी प्रकार से सम्पूर्ण परिग्रह के त्यागरूप बहिरंग द्रव्यलिंग के होने पर भावलिंग होता है, नही भी

---

१. गाथा ४३६।

२. गाथा ४३६, अमृतचन्द्र टीका।

होता है। किंतु अभ्यन्तर का भावलिंग होने पर सर्वपरिग्रहत्याग रूप द्रव्य लिंग होगा ही होगा। इसलिये भावलिंग के लिये यह द्रव्यलिंग सहकारी कारण है ऐसा समझना[1]।

इस प्रकार से समयसार में अनेक गाथाओं में व्यवहारनय की उपयोगिता दिखलाई है। टीकाकार श्री अमृतचन्द्र सूरि ने भी व्यवहारनय की महत्ता पर जोर दिया है और यह स्पष्ट कर दिया है कि शुद्धोपयोग में पहुंचने के पहले-पहले व्यवहारनय प्रयोजनीभूत है। श्री जयसेनाचार्य ने तो सरल शब्दों में ही कह दिया है कि निर्विकल्प समाधि में स्थित होने के पहले तक व्यवहारनय का ही अवलम्बन लेना होता है—जहां तक कि सरागचारित्र है। ☸

---

१. अहो शिष्य !····न हि शालितंदुलस्य बहिरगतृषे विद्यमाने सत्यभ्यंतरतुषस्य त्यागः कर्तुमायाति। अभ्यंतरतुषत्यागे सति बहिरंग तुषत्यागो नियमेन भवत्येव।

अनेन न्यायेन सर्वसंगपरित्यागरूपे बहिरंगद्रव्यलिंगे सति भावलिंग भवति न भवति वा नियमो नास्ति। अभ्यन्तरे तु भावलिंगे सति सर्वसंग परित्यागरूप द्रव्यलिंगं भवत्येवेति। पृ० ३५४।

❖ धर्मदिवाकर १०५ क्षुल्लक श्री सिद्धसागरजी महाराज, लाडनूं वाले

सर्वोदय तीर्थ

☼

भगवान महावीर का तीर्थ सर्वोदय तीर्थ है । किसी तीर्थ–धर्म में सर्वोदयता तब आ सकती है जब उसमें साम्प्रदायिकता, पारस्परिक वैमनस्य और हिंसा आदि के लिए कोई स्थान न हो। आज देश में चारों ओर अशान्ति, अभाव और वैर–विरोध के बादल छा रहे हैं, इसके कारणों की खोज करें तो ज्ञात होगा कि आज मनुष्य ने मानवता और धर्मभावना को तिलांजलि देकर अधर्म, अनैतिकता, हिंसा, संग्रहवृत्ति और विवाद को अपना लिया है, किन्तु यदि व्यक्ति अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्त को अपना ले तो आज भी घर में, समाज मे, राष्ट्र मे और विश्व में शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो सकता है । परस्पर सहायता, सहानुभूति, एकता, उदारता, प्रेम, प्रामाणिकता, सन्तोष, अहिंसा, स्पष्टवादिता, निर्भीकता, स्वदार सन्तोष तथा संयम सदृश सद्‌गुणो की यदि अभिवृद्धि हो जाए तो सर्वत्र शान्ति, सौहार्द एवं सौमनस्य का वातावरण स्थापित हो सकता है ।

अहिंसा एक ऐसी सुन्दर व्यवस्था है जो प्राणिमात्र को बिना भेदभाव के अपना पूर्ण विकास करने के समान अवसर प्रदान करती है । प्राणिमात्र का हित सम्पादन करने वाली अहिंसा मानव को मानवता का पाठ पढ़ाती है तथा उसे सत्यनिष्ठ, निश्चल, निर्लोभ, क्षमाशील और आत्मोन्मुख बनने का संकेत करती है । अहिंसा मानव को विश्वप्रेम व विश्वबन्धुत्व के अवसर प्रदान कराती है जिसमें भय, कायरता, घृणा, द्वेष, निराशा, शोषण, मायाचार, निर्दयता, झूठ और बेईमानी आदि कुप्रवृत्तियों का अभाव रहता है । प्रेमनगर को जाने वाली सीधी सड़क अहिंसा ही है जिस पर चल कर व्यक्ति वैरविरोध के उबड़ खाबड़ खड्डों को पार कर सकता है ।

भगवान महावीर की वाणी का दिव्य उद्‌घोष यही है कि जीव मात्र में स्वतंत्र आत्माका अस्तित्व विद्यमान है । प्रत्येक जीव को जीवित रहने का और आत्मस्वातन्त्र्य का उतना ही अधिकार है जितना दूसरे को । जैसे अपने जीवन में तुम्हें कोई बाधा सह्य नहीं उसी प्रकार दूसरों के जीवन में भी आप बाधक मत बनो । अहिंसा मे आस्था रखने वाला साधक यही भावना भाता है—

मैत्री भाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे,
दीन दुःखी जीवों पर मेरे उर से करुणास्रोत बहे।
दुर्जन क्रूर कुमार्गरतों पर क्षोभ नहीं मुझको आवे,
साम्यभाव रखूँ मैं उन पर ऐसी परिणति हो जावे॥

अहिंसा के आधार हैं—प्रेम, आत्मीयता, त्याग, ममता और करुणा। जहाँ अहिंसा है वहाँ अभय है, करुणा है। जहाँ प्रेम है वहाँ भय कैसा? आज व्यक्ति को व्यक्ति से, राष्ट्र को राष्ट्र से भय है। प्रत्येक राष्ट्र आत्मसुरक्षा के नाम पर अरबों रुपया व्यय कर रहा है। विश्व के सम्पूर्ण राष्ट्रों के बजट का अधिकांश भाग सुरक्षा के नाम पर व्यय हो रहा है। क्या यह मानव जाति के लिए दुर्भाग्यपूर्ण नहीं है? सुरक्षा के नाम पर मानव जाति को महाविनाश का खुला आमन्त्रण देना क्या यही मानव जाति की नियति है।

आज का मनुष्य व आज का राष्ट्र अहिंसा के गुणगान तो बहुत करता है परन्तु वह अहिंसा लोगों के पारस्परिक व्यवहार में नहीं उतर सकी है, आज कथनी और करनी में बहुत अन्तर आ गया है। अहिंसा का यथार्थ स्वरूप रागद्वेष, क्रोध–मान–माया–लोभ, भीरुता, शोक और घृणादि विकृत भावों का परित्याग करना है। संसार के सभी धर्मों ने अहिंसा की महत्ता को स्वीकार किया है।

प्राणियों की सच्ची सम्पत्ति अहिंसा है जो मानवों को प्राणिमात्र के साथ प्रेम व मित्रता का द्वार खोलती है इसके विपरीत हिंसा मानवता को खण्डित करके मानव–मानव के बीच दीवार बनाती है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को दीवार न बन कर द्वार बनना चाहिए। अहिंसा तत्त्वज्ञान पर जैनाचार्यों ने जितना वैज्ञानिक व तर्क संगत प्रकाश डाला है उतना अन्यत्र देखने में नहीं आता। जैनाचार्यों ने इतिहासातीत काल से लेकर आज तक इसी तत्त्वज्ञान का संरक्षण किया है। आज विश्व के सभी प्रमुख विचारक अहिंसा के प्रभाव, गौरव एवं महिमा में पूर्ण विश्वास रखते हैं। अहिंसा का अवलम्बन लिए बिना सर्वतोभावेन उन्नति कदापि सम्भव नहीं है। अहिंसा जीवन है और हिंसा मृत्यु। अहिंसा अमृत है हिंसा विष। अहिंसा मां की ममतामयी गोद है, हिंसा आसुरी सम्पत्ति। अतः प्राणियों को हिंसा का परित्याग करके अहिंसा की शरण लेनी चाहिए।

अपरिग्रह और परिग्रह परिमाण व्रत सर्वोदय तीर्थ का दूसरा आधार स्तम्भ है। आज का मानव भौतिकता की चकाचौंध में अमर्यादित लालसाओं के कारण अपने मनोदेवता को खुश करने हेतु संग्रहवृत्ति में आकण्ठ निमग्न हो रहा है और इसके लिये हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और अतितृष्णा को अपनाने में भी नहीं हिचकता। इससे उसके हृदय में एक प्रकार के आन्दोलन व संघर्ष

की स्थिति पैदा हो गई है फिर उसके परिणाम चोरी, लूटमार, युद्ध, हिंसा विद्वेष, छलकपट, मिलावट, घूंसखोरी के विविधरूपों में प्रकट हो रहे हैं । आज परपदार्थों में ममत्व बुद्धि इतनी बढ़ गई है कि मनुष्य दूसरों की सम्पत्ति पर अधिकार जमाने में भी नहीं हिचकता। संसार के समस्त पापों का मूल यह परिग्रह या मूर्च्छाभाव ही है । इससे ग्रस्त हुआ व्यक्ति जघन्य से जघन्य काम करने में भी नहीं हिचकता।

जैनाचार्यों की देशना है कि सुखी रहने और सुखी रखने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को अपने भोग और उपभोग की सामग्री की सीमा बाँधनी चाहिए। अपनी सीमित आवश्यकताओं की परिपूर्ति के बाद जो भी बचे उसे जनकल्याण में लगा देना चाहिये। जैनधर्म ने गृहस्थों के पुरुषार्थ द्वारा उत्पादन और उपार्जन पर रोक नहीं लगाई है, उसका तो इतना ही कहना है कि मनुष्य को अपने व्यापारादि सभी कार्य ईमानदारी से करने चाहिए और दुष्कृत्यों से बचना चाहिए। परिग्रह का परिमाण कर लेना चाहिए।

परिग्रह परिमाण व्रत को अपनाने से सभी संघर्ष टाले जा सकते हैं। मानव का अपने परिवेश के साथ जो संघर्ष है उसमें जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति इतनी नहीं है जितनी भोगासक्ति की। संघर्ष की तीव्रता भोगासक्ति की तीव्रता के साथ स्वयं बढ़ जाती है। जैन दर्शन परिग्रह परिमाण व्रत के माध्यम से आत्मोपलब्धि के मंगल मार्ग की ओर अग्रसर करता है और आधुनिक मानव को आन्तरिक व बाहरी तनावों से मुक्त करता हुआ निराकुल सुख की ओर बढ़ाता है। जैन धर्म की मूल शिक्षा समत्व के सर्जन और ममत्व के विसर्जन की है क्योंकि इसकी दृष्टि में ममता या आसक्ति ही वैयक्तिक और सामाजिक जीवन की समस्त विषमताओं की मूल है।

वर्तमान युग में वैचारिक संघर्ष अपनी चरम सीमा पर है। यह वैचारिक असहिष्णुता धार्मिक, दार्शनिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं पारिवारिक समग्र जीवन को विषाक्त बना रही है। वैचारिक आग्रह और मतान्धता के इस युग में जैन दर्शन का अनेकान्त ही मानव को संकीर्णता से ऊपर उठाने हेतु दिशा निर्देश दे सकता है। अनेकान्त धर्म वस्तु स्वरूप का ज्ञान कराता है और पक्षपात से ग्रसित लोगों को संकेत करता है कि वस्तु उतनी ही नहीं है जितनी आप कह रहे हैं। आचार्यों ने वस्तु को अनन्त धर्मात्मक मान कर सत्य को अनेक पहलुओं से समझने का संकेत किया है अतः पक्षपात छोड़कर दूसरों की विचार धारा भी समझनी चाहिये। एकान्तिक लोग थोथी प्रतिष्ठा और वचन व्यामोह में पड़ कर मात्र अपनी अभिव्यक्ति की पुष्टि में तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर विपरीत दिशा में गमन करने लगते हैं अतः मानवों को पक्षपात का चश्मा उतार कर वस्तु के अनन्त धर्मात्मक स्वरूप को समझने का प्रयत्न करना चाहिए।

संसार के समग्र विवादों को मिटाने में अनेकान्त धर्म ही समर्थ है। यह समन्वय का मार्ग है लोगों की बिखरी विविध विचारधारा रूपी मणियों को एक माला में पिराना तथा संगठन व एकता के सूत्र में बांधना ही इसका मुख्य काम है।

वस्तुतः जैनधर्म एक विशुद्ध वैज्ञानिक धर्म है। इसका तत्वज्ञान अनेकान्त पर आधारित है और आचार अहिंसा पर प्रतिष्ठापित। यह धर्म ऐहिक और पारलौकिक मान्यताओं पर अन्ध श्रद्धा रख कर चलने वाला सम्प्रदाय नही है। यह तो प्राणिमात्र के हित में तथा वस्तुस्वभाव व मनोविज्ञान के अति निकट है। इसके सिद्धान्त मानवों को शान्ति की ओर अग्रसर करते हैं, इसलिए तत्त्वज्ञों ने इस धर्म को सर्वोदय तीर्थ कहा है। जैनं जयतु शासनम्।

☼

आत्मा शुद्ध है यह सिद्धान्त नही साक्षात् है। इसकी चर्चा व्यर्थ है क्योंकि इससे बीमारों के सामने यह भ्रम पैदा हो सकता है कि बीमारिया हैं ही नहीं। यदि बीमारों ने यह मान लिया तो इसका परिणाम स्वास्थ्य नही मृत्यु है। जो जानते हैं वे इसकी चर्चा नही करते। वे तो उस साधना की चर्चा करते हैं जो कि उस साक्षात् तक हमे पहुचा देती है, इसलिये साक्षात् नही साधना विचारणीय है।

इच्छानिरोधस्तपः

अपनी बढ़ती इच्छाओं को रोकने के लिए प्रतिदिन विचार पूर्वक प्रतिज्ञा करें—

* भोजन कितनी बार करेंगे ?
* भोजन में कितनी और कौन-कौन सी वस्तुयें लेंगे ?
* भोजन के अतिरिक्त जल कितनी बार पियेंगे ?
* छह रसों में से कौन-कौन से कितनी बार लेंगे ?
* पान, इलायची, सुपारी, खटाई आदि का सेवन कितनी बार करेंगे ?
* तेल, इत्र, कंघा, साबुन कितनी बार काम में लेंगे ?
* स्नान कितनी बार करेंगे ?
* वस्त्र कितने और कैसे पहनेंगे ?
* आभूषण कितने और कौन से पहनेंगे ?
* वाहन कितनी बार और कौनसा प्रयोग में लायेंगे ?
* निज स्त्री सेवन कितनी बार करेंगे ?
* फल सब्जी आदि कौन सी और कितनी बार ग्रहण करेंगे ?
* सिनेमा, नृत्य कितनी बार देखेंगे ?
* गाना-रेडियो कितनी बार सुनेंगे ?
* कितने प्रकार के बिस्तरों पर सोयेंगे ?
* कितने प्रकार के आसनों पर बैठेंगे ?

आदि नियम प्रतिदिन, सप्ताह भर, माह, षट्मास, वर्ष, दो वर्ष—जिनसे निराकुलता हो—के लिए अवश्य कर सीमा बांधनी चाहिए।

पंचम खण्ड

प्रकीर्णक

डेह के जिनायतन

काल चक्र के साथ-साथ निरन्तर परिवर्तन चलता रहता है। बस्तियां उजाड़ हो जाती हैं और उजाड़ स्थान आबाद हो जाते हैं। यदा कदा प्राचीन और नवीन की सन्धि भी दिखाई देती है और कभी कभी जाने वाला अतीत अपने अवशेष छोड़कर अपनी गरिमा और समृद्धि का संकेत सूत्र दे जाता है। 'डेह ग्राम' में विचरण करें तो वहाँ विद्यमान मन्दिरों, समाधिस्थलों, छतरियों और शिलालेखों से यह अनुमान करने को विवश होना ही पड़ता है कि यहाँ भी कभी समृद्धि और सम्पन्नता का वास रहा होगा। डेह ग्राम से एक मील के अन्तर पर ही अनेक टीलों के रूप में किसी वैभवशाली नगरी के अवशेष देखे जा सकते हैं। जहाँ तहाँ घरेलू उपयोग के मिट्टी के पात्र, घड़े, सिलबट्टों के टुकड़े, आटा पीसने की चक्कियों के टूटे पाट, खण्डित पूजा स्थल, वापिकायें तथा अनेक शिलालेख देखे जा सकते हैं।

डा० पी० सी० जैन ने अपने एक लेख 'डेह की ऐतिहासिकता' में डेह के समीप ही प्राचीन चम्पावती नगरी का अस्तित्व माना है। किसी कारण से इस नगरी का ध्वंस हुआ और तब डेह की बस्ती बनी। यहाँ के वयोवृद्ध निवासी अपने को चम्पावती नगरी से जोड़ते हैं और उसके निवासियों को अपने पूर्वज स्वीकार करते हैं। अपने लेख का उपसंहार करते हुए डा० जैन ने लिखा है—"उपर्युक्त विवरण में निर्दिष्ट मन्दिरों, समाधियों, छतरियों और शिलालेखों आदि से यह स्पष्ट हो जाता है कि विक्रम की दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दी में 'चम्पावती नगरी' अपने पूर्ण यौवन में विद्यमान थी। चम्पा ब्राह्मण और चम्पावत राजपूत आदि सम्भवतः उसी नगरी के निवासी रहे होंगे।.........ग्यारहवीं शताब्दी के अन्तिम और बारहवीं शताब्दी के प्रथम दशकों में किसी अज्ञात कारण से चम्पावती नगरी का विध्वंस हो गया और उसके कुछ निवासियों ने ध्वंस नगर के पास के क्षेत्र में ही गृहनिर्माण करके रहना आरम्भ कर दिया। उसी बस्ती को आजकल 'डेह' के नाम से पुकारा जाता है। डेह ग्राम विक्रम की बारहवीं शताब्दी के प्रथम दशक में निश्चित रूप से आबाद हो चुका था, जिसका विशेष प्रमाण डेह के विक्रम सम्वत् १२१९ के उस शिलालेख से मिलता है जो वहाँ के प्राचीनतम दिगम्बर जैन मन्दिर में विद्यमान है।"

डा० जैन ने लेख के अन्त में यह टिप्पणी भी दी है कि उन्होंने यह लेख "डेह ग्राम के प्रान्त भाग में मिले थोड़े से शिलालेखों के आधार पर ही लिखा है, इनके अतिरिक्त अन्य भी अनेक शिलालेख यहाँ हैं जिन पर किसी अन्य समय मे प्रकाश डाला जाएगा।"

मैं नहीं जानता कि 'डेह की ऐतिहासिकता' पर प्रकाश डालने के लिए आगे और कितना काम हुआ है परन्तु यह तो शिलालेखों से निर्विवाद प्रमाणित होता है कि डेह को विरासत में समृद्ध परम्परा मिली है। छतरियाँ, समाधिस्थल, मन्दिर और नसियांजी आदि स्थान यहाँ के निवासियों के उत्कट धर्मप्रेम की घोषणा करते हैं। धर्म सदा से हमारे लोकजीवन का अंग रहा है, जहाँ नागरिकों ने अपने आवास निवास के लिए महल अट्टालिकाओं का निर्माण किया है वहीं सांसारिक झंझटों से परे रह कर सच्चा सुख एवं शान्ति प्राप्त करने के लिए मन्दिरों एवं अन्य पवित्र स्थानों का निर्माण भी कराया है। ऐसे पवित्र स्थान इच्छुक मनुष्य को अवसर प्रदान करते हैं कि वह थोड़ी देर ही सही एकाग्रचित्त हो आराध्य की आराधना में लीन होकर सांसारिक उद्विग्नता से मुक्ति पा सके।

यहाँ मैं संक्षेप में डेह के जैन मन्दिरों का परिचय लिख रहा हूं।

जायल है तहसील की, जिसका जिला है नागौर।
उसमें सुन्दर डेह है कस्बा, जिसकी महिमा जोर॥
जैनाजैन बहुत अधिकाई, ऋद्धि-सिद्धि भरपूर।
बसे सेठ सामन्त यहाँ पर, दाता, दानी शूर॥
अतिशय महिमा वाले यहाँ हैं चार जिनालय जान।
जिनकी महिमा का क्या कोई कर सके बखान॥

श्री दिगम्बर जैन चन्द्रप्रभ (प्राचीन) मन्दिर

प्रथम पुराना मन्दिर है जो जिसका करूं बखान।
सहस्र साल का है वो पुराना अतिशय की है खान॥
उसमें मूल नायक प्रतिष्ठित, 'चन्द्रप्रभु' भगवान।
चतुर्थकाल सम प्रतिमा है, चमत्कारी अति जान॥
शासनदेव है यहाँ प्रतिष्ठित, जिसको सब नर ध्यावें।
'महावीरकीर्ति' गुरु के सम्मुख, प्रकट होय जो आवे॥
ऐसा चमत्कारी जिन मन्दिर, महिमा अपरम्पार।
कोटि–कोटि करता है वन्दन 'प्यासा' बारम्बार॥

यह प्राचीन मन्दिर विक्रम संवत् १२१९ का माना जाता है। मन्दिरजी के चैत्यालय की दीवार पर लगे एक शिलालेख से यह जानकारी मिलती है। यद्यपि शिलालेख के बीच का भाग मिट गया है तथापि सम्वत् स्पष्ट मालुम पड़ता है।

इसकी प्राचीनता सिद्ध करने के लिये दो तर्क दिये जाते हैं। पहला तो यह है कि मुगलों के शासन के समय मस्जिदों के समान मन्दिरों पर भी कंगूरे बनाये जाते थे ताकि उन्हें मुगल नष्ट न करें। इस मन्दिर के चौक में तथा प्राचीन चँवरी के ऊपर कंगूरे बने हैं। दूसरा तर्क डाइरेक्टर आफ आरकियोलोजी, वेस्ट बगाल द्वारा मूर्तियों के सम्बन्ध में दिये गये प्रमाण पत्र से सम्बन्ध रखता है। प्रमाण पत्र में लिखा है कि श्री भगवान बाहुबली को मूर्ति ९ वीं शताब्दी की है जिसमें शिलापट्ट नहीं है। कलाकृति एवं पत्थर को देखने से अनुमान होता है कि श्रवणबेलगोला में बनी भगवान बाहुबली की मूर्ति के समय में ही यह मूर्ति बनी है और ठीक वैसी ही है। सर्वधातु की पद्मावतीदेवी (मस्तक पर भगवान श्री पार्श्वनाथ) की प्रतिमा भी ९ वीं सदी की प्राचीन मूर्ति है।

मूल नायक श्री चन्द्रप्रभ भगवान की सफेद पाषाण की पद्मासन प्रतिमा विक्रम सम्वत् १२१९ मिती बैसाख सुदी एकम् की प्रतिष्ठित है। प्रतिमा मनोज्ञ है।

डेह नागौर की भट्टारक गद्दी होने से इस मन्दिरजी में अतिशय युक्त कलापूर्ण मूर्तियाँ हैं। दर्शनीय प्रतिमाओं का एकाग्र दृष्टि से दर्शन करने से कार्य की सिद्धि होती है एवं अनेक चमत्कारी घटनाये घटित हो चुकी हैं।

यह मन्दिर ब्राह्मणों की गवाड़ी (बास, मोहल्ला) में स्थित है। कालिया मन्दिर व पुराना मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। पूर्वजो ने जैन बस्ती या घरों के बीच जैन मन्दिर नही बनाए क्योंकि मन्दिर की परछाई जिस घर पर पड़ती वह अशुभ समझा जाता था अतः मन्दिर घरों से दूर बनाये जाते थे।

यह मन्दिर एक मंजिला है। मुख्य द्वार से प्रवेश करते ही सामने रक्षक, शासन देवता का स्थान है। उनका भी अपने पद के अनुकूल सम्मान-सत्कार किया जाता है। चौक में बायें बाजू में चँवरी है जिसमें मूलनायक चन्द्रप्रभ भगवान की अतिशय युक्त मनोज्ञ प्रतिमा है। सर्वधातु की तीन खड्गासन प्रतिमाएँ वि० सं० १४११ बैसाख शुक्ला त्रयोदशी की तथा श्री चक्रेश्वरी देवी (मस्तक पर विराजित जिन प्रतिमा युक्त) की वि० सं० १३२७ की और चरणपादुका वि० सं० १५५९ की प्रतिष्ठित हैं।

भगवान आदिनाथ की केसरिया पाषाण की पद्मासन प्रतिमा वि० सं० १५५२ माघ शुक्ला पंचमी की प्रतिष्ठित है। (लेख है—मूलसंघे भट्टारक मुनीन्द्रकीर्ति उपदेशात्.................. खण्डेलवाल जाति पाटनी..........)

सर्वधातु की चौबीसी प्रतिमा में तीन मूर्तियां खड्गासन हैं। यह विक्रम संवत् १५५४ मिति फाल्गुन शुक्ला एकम् की प्रतिष्ठित हैं। सर्वधातु की श्री सुमतिनाथ भगवान की वि० सं० १७०० की प्रतिमा है। इनके अतिरिक्त भी अन्य प्रतिमाये इस प्रकार हैं—

❀ भगवान पद्मप्रभु वि० सं० १५०२ मि० बैसाख सुदी ३ को प्रतिष्ठित
❀ भगवान नेमिनाथ ,, १५०२ ,, ,, ,, ,,
❀ भगवान चन्द्रप्रभु ,, १५०२ ,, ,, ,, ,,
❀ भगवान नेमिनाथ ,, १५०२ ,, ,, ,, ,,
❀ भगवान चन्द्रप्रभु ,, १५५८ मि० फागण सुदी १० को ,,
❀ भगवान अजितनाथ ,, १५८६ मि० ,, ,, ,,
❀ भगवान पद्मप्रभु ,, १६४३ मि० माघ सुदी १० को ,,
❀ भगवान आदिनाथ ,, १८२६ मि० बैसाख सुदी ६ को ,,
❀ भगवान सुपार्श्वनाथ ,, १८२६ मि० बैसाख सुदी ६ को ,,

कुल मिला कर पाषाण की, सर्वधातु की प्राचीन एवं नवीनतम मूर्तियाँ मोट इस प्रकार हैं—पाषाण की कुल १५ मोट तथा धरणेन्द्र पद्मावती की (पार्श्वनाथ भगवान सहित) दो; सर्वधातु की कुल १४ मोट (११ प्रतिमायें तीर्थंकरों की, ३ देवीदेवताओं की)

स्व० आचार्य १०८ श्री महावीरकीर्तिजी के अनुसार मन्दिर का रक्षक क्षेत्रपाल जागृत अवस्था में है। कुलदेवी, शासनदेवी-देवता, क्षेत्रपालादि धर्म और धर्मात्माओं के रक्षक और सहायक हैं अतः इनका भी यथायोग्य मान सम्मान श्रावकों द्वारा किया जाना चाहिए।

इस प्राचीन मन्दिर में अनेक त्यागी-व्रती, आर्यिका, मुनिगण आचार्य आदि का आगमन हुआ है। क्षेत्रपाल भी आचार्य की सेवा में समुपस्थित हुआ है तथा १९४५ ई० के आषाढ मास के अष्टाह्निका पर्व में रात्रि जागरण होने पर मन्दिर में तथा आसपास में केसर वृष्टि होने का चमत्कार भी देखा गया है।

अकृत्रिम जिन मन्दिरों की भाँति इस मन्दिर में यक्ष, यक्षिणी व जिनशासनरक्षक शासन देवी देवताओं की भी बहुत प्राचीन प्रतिमायें हैं। ये अकृत्रिम जिनमन्दिरों का स्मरण दिलाती हैं।

श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ नसियाँ

अति विशाल यहाँ एक सरोवर, जिसके तट पर आन।
श्री जिन नसियां एक बनी है जिसका करूं बखान ॥

मूल नायक अति सुन्दर मूरत पार्श्वनाथ भगवान।
जिनके चमत्कार की महिमा जन-जन गया है जान।।
वहाँ प्रतिष्ठित क्षेत्रपाल और पद्मावती है माता।
जिनकी सुन्दरता का वर्णन कहने में नहीं आता।।
भक्त सेठ श्रीमन्त शामको दर्शन हेतु आते।
पार्श्वप्रभु की करत आरती मन में अति हर्षाते।।
चिन्तामणि प्रभु चरणन मे, बार-बार प्रणाम।
करता 'प्यासा' भक्ति भाव से, संकट टले तमाम।।

यह नसियाँ सरोवर के किनारे है जहाँ समाधियाँ व छतरियाँ भी बनी हुई हैं। श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ भगवान की काले पाषाण (कसौटी के पत्थर की भाँति) की मूलनायक प्रतिमा बड़ी प्रभावक एव आकर्षक है। कमल के आसन पर सर्प का चिह्न अंकित है। प्रतिमा के दर्शनों से नेत्र अघाते नही, वहाँ से हटने का मन नहीं करता। यह प्रतिमा वि० सं० १६४३ मिती माघ शुक्ला दशमी की प्रतिष्ठित है। एक सर्वधातु की छोटी पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा भी प्राचीन है। आजू बाजू में दो नवीन प्रतिमाएँ हैं—दोनों भगवान पार्श्वनाथ की काले पाषाण की जो वि० सं० २०१८ फाल्गुन शुक्ला सप्तमी की लाडनूँ नगर में प्रतिष्ठित हुई थी और तीसरी सफेद पाषाण की भगवान महावीर स्वामी की प्रतिमा सं० २०२६ की प्रतिष्ठित है।

चँवरी के एक ओर (दर्शक की बायीं तरफ) श्री धरणेन्द्र पद्मावती की भगवान पार्श्वनाथ के बिम्ब सहित मूर्ति है तथा दूसरी ओर (दर्शक के दाहिनी ओर) क्षेत्र एवं शासन रक्षक क्षेत्रपाल की मूर्ति है।

नसियाँ के मध्य भाग में भट्टारक श्री हेमकीर्तिजी (नागौर गादी) का समाधिस्थल, वि० सं० १६५२ माघ शुक्ला १५ की चरणपादुका एवं छत्री बनी हुई है। यहाँ चँवरी में पूजन अभिषेक के समय कई बार सर्पराज (धरणेन्द्र) आता है और चला जाता है, ऐसा अनेक बार हुआ है।

श्री पद्मप्रभु चैत्यालय

चैत्यालय है एक यहाँ पर, अति सुन्दर सुखदाय।
गृहस्थाश्रम में इन्दुमती माताजी ने बनवाय।।
उसमें पद्मावती अतिमनोज्ञ श्री वीतराग भगवान।
उनके दर्शन से मिट जावे, विपदा निश्चय जान।।

नर-नारी जब करते पूजा, वो शोभा है निराली ।
'प्यासा' श्रीजिनचरणकमल में, बार-बार बलिहारी ।।

डेह की महिला समाज को जिन अभिषेक और पूजनादि करने का स्वतन्त्र पृथक् स्थान न होने की कमी को पूरा करने के लिए ब्र० मोहनी बाई (वर्तमान आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजी) ने अपने द्रव्य से अपने घर में वि० सं० १९९८ में इस चैत्यालय की स्थापना की थी। वर्तमान में चैत्यालय में सर्वधातु की ११ प्रतिमायें हैं तथा भगवान पार्श्वनाथ सहित धरणेन्द्र पद्मावती की ७ मूर्तियां हैं । दो आचार्यों के चरण चिह्न भी है । महिलाओं के लिए अभिषेक पूजन व्रत अनुष्ठान विधान आदि के लिए यह बड़ा उपयुक्त स्थान हो गया है ।

श्री शान्तिनाथ भगवान का मन्दिर

(नया मन्दिर)

अति सुन्दर और अति विशाल, जो नया मन्दिर कहलाये ।
जिसमें प्रतिष्ठित शान्तिनाथ प्रभु दुखहर्त्ता कहलाये ।।
दोनों तरफ वेदियां जिनमें सुन्दर प्रतिमा जानो ।
श्री जिनवर की मूर्तियां हैं, सब सुखकारी मानो ।।
ऊपर में इक शिखर बना है, छटा निराली सोहे ।
छवि अनोखी दूर-दूर तक, जन-जन का मन मोहे ।।
उसमें है इक वेदी भारी, जिसकी शोभा न्यारी ।
'पार्श्वनाथ' प्रभु की मूरत, उसमें प्यारी-प्यारी ।।
ऐसा नयनों को सुखदायक, श्री जिनमन्दिर प्यारा ।
बार-बार 'प्यासा' सिर नावे, मिट जाए दुःख सारा ।।

बस स्टेण्ड से 'गवाड़' होते हुए पाण्ड्या चौक में पहुँच कर दाहिनी ओर नजर डालते हैं तो एक भव्य, विशाल, मनोहर, शिखरबन्ध मन्दिर के दर्शन होते हैं। मन्दिर का प्रवेश द्वार एवं दावारें कारीगरों की सधी हुई छैनियों से निर्मित विविध कलापूर्ण जालियों एवं तोरणों से अलङ्कृत हैं।

विक्रम संवत् १९७८ में समाज के पारस्परिक मतभेद के कारण यह मन्दिर अस्तित्व में आया। वि० सं० १९८१ मे बगसुलाल सुगनचन्द पाण्ड्या की पोल में सुजानगढ़ से श्री चन्द्रप्रभु भगवान की मूर्ति लाकर एक चैत्यालय की स्थापना की गई थी । तत्पश्चात् पास में ही जमीन खरीद कर इस नवीन मन्दिर का निर्माण हुआ जिसकी प्रतिष्ठा वि० सं० १९९३ में प्रतिष्ठाचार्य पं० झमनलालजी शास्त्री, कलकत्ता द्वारा विधिवत् सम्पन्न की गई। मूलनायक

शान्तिनाथ भगवान होने से इसे शान्तिनाथ का मन्दिर जाना जाता है। लोहे की जालियों में भी 'शान्तिनाथ' लिखा हुआ है।

इसके शिखर की प्रतिष्ठा वि० सं० २०११ में कराई गई। शिखर संगमरमर (मकराना) का बना है, दर्शनीय है। शिखर की चारों दिशाओं में प्रतिमाओं के होने से दूर से ही दर्शनों का लाभ मिलता है। शिखर के मध्य चैत्यालय में भगवान पार्श्वनाथ की फण सहित पद्मासन काले पाषाण की मनोज्ञ प्रतिमा है। इसे श्री रिद्धकरण, गिरधारीलाल, केशरीमल, पूनमचन्द पाटनी ने वि० सं० २००८ फुलेरा में हुए पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में प्रतिष्ठित कराके विराजमान करवाया था।

मूलनायक शान्तिनाथ भगवान की प्रतिमा वि० सं० १९९१ फाल्गुन शुक्ला द्वितीया की प्रतिष्ठित है। इस मुख्य चँवरी में श्री पद्मप्रभु, श्री महावीर स्वामी, श्री आदिनाथ, श्री मुनिसुव्रतनाथ, श्री चन्द्रप्रभु व श्री पार्श्वनाथ की प्रतिमाएँ भी विराजमान हैं। इनके अतिरिक्त सर्वधातु की १७ प्रतिमाएँ (१२ पद्मासन+५ खड्गासन) तथा चाँदी की ८ प्रतिमाएँ (६ पद्मासन+२ खड्गासन) भी हैं।

मुख्य चँवरी के दोनों ओर दो वेदियाँ हैं जो वि० सं० २००८ में बनी हैं। बायीं ओर की वेदी में भगवान आदिनाथ, भगवान मुनिसुव्रतनाथ और भगवान पार्श्वनाथ के बिम्ब हैं। दाहिनी ओर की वेदी में भगवान महावीर स्वामी, भगवान नेमिनाथ और भगवान शान्तिनाथ के बिम्ब हैं।

सभी वेदियाँ कलापूर्ण मकराने की बनी हैं। बड़ा प्राङ्गण है जिसमें लगभग पाँच सौ व्यक्तियों के बैठने की व्यवस्था की जा सकती है। वेदिकाओं के नीचे एक विशाल सभाकक्ष है जहाँ लगभग एक हजार व्यक्तियो के बैठने की व्यवस्था है। सभाएँ विधान-अनुष्ठान आयोजित करने तथा मुनि संघ के ठहरने आदि के लिए उपयुक्त स्थान है। समीप ही कमरे आदि भी बने हैं।

कुछ वर्ष पूर्व मन्दिर के ऊपर चारों तरफ छत्रियाँ बन जाने से मन्दिर के सौन्दर्य में चार चाँद लग गये हैं।

—डूंगरमल सबलावत, डेह
—सम्पतलाल बड़जात्या 'प्यासा', डेह

णमोकार मंत्र माहात्म्य

❖ आर्यिका सुपार्श्वमतीजी

णमो अरहंताणं।
णमो सिद्धाणं।
णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं।
णमो लोए सव्वसाहूणं।

जिन्होंने ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय और अन्तराय इन चार घातिया कर्म रूपी शत्रुओं का नाश कर दिया है; जो अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्तवीर्य रूप अनन्त चतुष्टय के धनी हैं; जो इन्द्रादि के द्वारा पूजनीय हैं तथा काम क्रोधादि विकारों से रहित हैं उन्हें अरिहन्त वा अरहन्त कहते हैं।

जिन्होंने अनादि काल से बंधे हुए अष्ट कर्मों को शुक्लध्यान रूपी अग्नि के द्वारा भस्मसात् कर दिया है; जिन्हें स्वात्मोपलब्धि हुई है अथवा जो कृत कृत्य हैं और पुनर्जन्म से छूट गये हैं, उन्हें सिद्ध कहते हैं।

परमागम के अभ्यास और अनुभव से जिनकी बुद्धि निर्मल हो गई है; जो बाह्याभ्यन्तर परिग्रह के त्यागी हैं, जो ज्ञानाचार, दर्शनाचार, तपाचार, वीर्याचार और चारित्राचार इन पांच आचारों को निर्दोष रूप से पालन करते हैं और अपने शिष्यों से इनका पालन करवाते हैं शिष्यों का अनुग्रह और पालन करते हैं, उन्हें आचार्य कहते हैं।

जो द्वादशाङ्ग के पाठी हैं, अनेक साधुगण जिनके निकट द्वादशाङ्ग के सूत्रों का अध्ययन करते हैं उन निर्ग्रन्थ साधुओं को उपाध्याय कहते हैं।

जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के द्वारा मोक्षमार्ग की साधना करते हैं; जो सिंह के सामान पराक्रमी, गज के समान स्वाभिमानी, पवन के समान निस्सङ्ग, सूर्य के समान

तेजस्वी, समुद्र के समान गम्भीर, परीषह और उपसर्ग विजेता, आकाश के समान निरालम्ब, निर्भीक हैं तथा निरन्तर मोक्षमार्ग का अन्वेषण करते हैं वे साधु कहलाते हैं।

इन पाँचों को परमेष्ठी कहते हैं। परम उत्कृष्ट पद में रहने वाले होने से परमेष्ठी और पाँच होने से पञ्चपरमेष्ठी कहलाते हैं। इन पाँचों को इस मंत्र में नमस्कार किया गया है इसलिए यह मंत्र नमस्कार मंत्र कहलाता है।

जैसे अग्नि का उष्णत्व, जल का शीतत्व, वायु का स्पर्शत्व एवं आत्मा का चेतनत्व धर्म अनादि है, उसी प्रकार यह णमोकार महामंत्र भी अनादि है अथवा मोक्षमार्ग अनादि है, इस मार्ग के उपदेशक और पथिक भी अनादि हैं वा इस मंत्र के वाच्य अरिहन्त सिद्ध आदि परमेष्ठी अनादि काल से है, इसलिए यह मंत्र अनादि है अथवा अनादि द्वादशाङ्ग वाणी का अग होने से भी यह अनादि है। उक्तं च—

अनादि मूलमन्त्रोऽयं, सर्वविघ्नविनाशनः।
मङ्गलेषु च सर्वेषु प्रथमं मङ्गलं मतः ॥

द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा यह नमस्कार मंत्र अनादि है तो पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा सादि भी अथवा शब्द रूप से निबद्ध यह मत्र सादि हो सकता है परन्तु अर्थ की अपेक्षा तो अनादि ही है; इस प्रकार यह मंत्र नित्यानित्य भी है।

यह महामत्र जीव को जन्म-मरण रूप संसार से छुड़ाने में समर्थ है। इस मंत्र के समान चमत्कारी और प्रभावशाली अन्य कोई मंत्र नहीं है। जिसप्रकार अग्नि की कणिका से ईन्धन का ढेर जलकर भस्म हो जाता है, उसी प्रकार इस मंत्र के प्रभाव से ज्ञानावरणी आदि सर्व पापों का नाश हो जाता है। यह मंत्र रागद्वेषादि भाव-संसार और ज्ञानावरणादि द्रव्य संसार का उच्छेदक है। उक्तं च—

सङ्ग्रामसागरकरीन्द्रभुजङ्गसिंहाः,
दुर्व्याधि वह्निरिपुबन्धनसम्भवानि।
चोरग्रहभ्रमनिशाचरशाकिनीनां,
नश्यन्ति पञ्चपरमेष्ठीपदैर्भयानि ॥

संग्राम, समुद्र, सिंह, सर्प, मदोन्मत्त हाथी आदि हिंसक पशुओं का भय, भयङ्कर रोग, अग्नि, शत्रुबन्धन से उत्पन्न हुई आपत्ति, चोर, ग्रह, निशाचर, शाकिनी आदि समस्त भय पञ्च-परमेष्ठी के नामस्मरण से नष्ट हो जाते हैं। इस पञ्चम काल में सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाले कल्पवृक्ष के समान यह मंत्र है। यह मंत्र चिन्तामणि रत्न या कामधेनु के समान अभीष्ट फलको देने वाला

है। अनादि काल से कर्म रूपी पृथ्वी पटल से आच्छादित आत्मनिधि को प्राप्त करने के लिए तीक्ष्ण धार की कुदाली है अर्थात् जिस प्रकार कुदाली से पृथ्वी को खोद कर गड़ी हुई निधि प्राप्त की जाती है उसी प्रकार अनादिकाल से कर्मों से आच्छादित आत्मनिधि णमोकार मंत्र के प्रभाव से प्राप्त होती है।

महामंत्र की अनुभूति से प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य भाव का प्रादुर्भाव होता है। चिदानन्द शान्त मुद्रा वाले पञ्च परमेष्ठियों का चित्र अपने हृदय में स्थापित करने से विकारों का शमन होता है। वीतराग, शान्त, अलौकिक दिव्यज्ञानधारी, अनुपम, अनन्त सामर्थ्यवान् आनन्दघन आत्माओं का आदर्श सामने रखने से मिथ्याबुद्धि दूर होती है और दृष्टिकोण में परिवर्तन आ जाता है। रागद्वेष की भावना निकल जाती है और आध्यात्मिक विकास होने लगता है। इस मंत्र के प्रभाव से जन्म-जन्मान्तर में संचित किये हुए पाप क्षणभर में नष्ट हो जाते हैं और भव-भव में सुख की प्राप्ति होती है। अतः मुनिराज भी अपनी समस्त क्रियाओं में इसी मंत्र का स्मरण करते हैं।

साधुजनों के षट् आवश्यकों में कायोत्सर्ग नामका एक आवश्यक है। कायोत्सर्ग एक दिन-रात में कुल २८ किए जाते हैं। उनमें दिन में प्रातःकालीन और अपराह्णकालीन, प्रथम रात्रि के समय तथा पिछलो रात्रि के समय स्वाध्याय करते हैं उस स्वाध्याय की समाप्ति में दो और अन्त में एक कायोत्सर्ग करते हैं; दैनिक और रात्रिक प्रतिक्रमण करते हैं तब चार कायोत्सर्ग करते हैं। तीनों सन्ध्याओं मे जिनदेव की वन्दना में दो-दो कायोत्सर्ग करते हैं, योगनिष्ठापन और योग प्रतिष्ठापन में एक कायोत्सर्ग करते हैं; इस प्रकार ये अट्ठाईस निश्चित कायोत्सर्ग हैं। इनके अतिरिक्त आहार के प्रारम्भ में और अन्त में, मलमूत्रोत्सर्ग के अन्त मे और गमनागमन के अन्त में भी कायोत्सर्ग करते हैं।

कायोत्सर्ग का अर्थ है २७ श्वासोच्छ्वास मे नौ बार णमोकार मंत्र का जाप्य करना। साधुओं की तेरह प्रकार की क्रियाएँ हैं। उनमें भी पाँच क्रियाओं में णमोकार मंत्र का ही जाप किया जाता है।

पञ्च णमोकार मंत्र का जाप्य, षट् आवश्यक, आसहि-निःसहि ये १३ क्रियायें कहलाती हैं। श्रावक और साधु की जितनी क्रियाएँ हैं उन सबमें मुख्य णमोकार मंत्र है। पूज्यपाद स्वामी ने लिखा है—

जिनसिद्धसूरिदेश साधुवरानमलगुणगुणोपेतान् ।
पञ्चनमस्कारपदैस्त्रिसन्ध्यमभि नौमि मोक्षलाभाय ॥

मैं मोक्ष प्राप्ति के इच्छुक, निर्मल प्रशंसनीय गुणो से युक्त अरिहन्त सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठी को नमस्कार करता हूं।

'प्रवचनसार' में कुन्दकुन्द स्वामी ने लिखा है—

"जो जाणदि अरिहंतं, दव्वत्त गुणत्त पज्जयत्तेहिं—
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्य लयं।"

जो मनुष्य द्रव्यगुण पर्याय से अरिहन्त भगवान को जानता है वह अपने आपको जानता है और उसका मोह नष्ट हो जाता है क्योंकि जो अरिहन्त का स्वरूप है, वही आत्मा का वास्तविक स्वरूप है इसलिये मुनिराज इसका निरन्तर ध्यान करते हैं। समाधि के समय इस मंत्र की विशेष आराधना की जाती है। यदि मरण-समय में साधक इस मंत्र का जाप करता हुआ मर जाए तो आठवें भव में मुक्तिपद को प्राप्त करता है। आचार्य पूज्यपाद ने लिखा है—

आबाल्याज्जिनदेव देव भवत: श्रीपादयो: सेवया,
सेवासक्तविनेय कल्पलतया कालोद्ययावद्गत:।
त्वां तस्या: फलमर्थये तदधुना प्राणप्रयाणक्षणे,
त्वन्नाम प्रतिबद्ध वर्ण पठने कण्ठोस्त्वकुण्ठो मम ।।

हे प्रभो ! जन्म से लेकर आज तक मैंने जो आपके श्रीचरणों की सेवा की, उस कल्पलता के फल की प्राप्ति का फल मुझे यह मिले कि प्रभो ! प्राण निकलने के समय आपके नामोच्चारण के लिए मेरे कण्ठ कुण्ठित न हों अर्थात् आपके नामाक्षर णमोकार मंत्र का उच्चारण करता हुआ प्राण छोड़ूँ।

इस महामंत्र के जाप से सभी प्रकार के अनिष्ट दूर हो जाते हैं तथा सभी अभिलाषायें पूर्ण होती हैं। यह मंत्र अनादिकाल से आत्मा के साथ बँधे हुए ज्ञानावरणादि द्रव्य मल को तथा द्रव्य मल के निमित्त से उत्पन्न अज्ञान मोह रागद्वेषादि भाव मल को नष्ट करता है, इसलिए इसे मंगल कहते हैं।

यह मंत्र मंगं अर्थात् सुख को (लाति) लाता है, देता है, आत्मा को सुखी करता है इसके जपने से इष्टकार्य की सिद्धि होती है इसलिए यह मंगल है अथवा यह मंत्र आत्मा में (मंगं) उत्तम क्षमादि दस धर्मों को उत्पन्न करता है इसलिये इसको मंगल कहते हैं। अथवा 'मंग्यते साध्यते हितमनेनेति मंगलं' इससे आत्मकल्याण की सिद्धि की जाती है इसलिये यह मंगल है अथवा 'मं भवात् संसाराद् गालयति अपनयति इति मंगलं' अर्थात् यह मंत्र संसार चक्र से दूर करता है इसलिये इसको मंगल कहते हैं। इसके मनन चिन्तवन और ध्यान से सभी प्रकार के कष्ट दूर हो जाते है। इस पंचम काल में संसार त्रस्त जीवों को सुन्दर सुशीतल छाया प्रदान करने वाला कल्पवृक्ष यह महामंत्र ही है। यही दुर्गति से निकाल कर सद्गति में पहुँचाने वाला है। द्रौपदी का चीर बढ़ना, अंजन चोर को आकाशगामिनी विद्या की सिद्धि, सुदर्शन के लिए सूली का सिंहासन, सीता के लिये अग्नि का शीतल

जल, श्रीपाल के कुष्ठ रोग का नाश, सती अंजना के सतीत्व की रक्षा इसी महा मंत्र के प्रभाव से हुए हैं। इसकी महिमा का वर्णन कहाँ तक किया जाए। यदि समस्त वनस्पति की लेखनी बना ली जाय, सारे समुद्रों के पानी की स्याही और सारी पृथ्वी को कागज बना कर स्वयं सरस्वती सहस्र भुजाओं से लिखे तो भी इस मंत्रराज के गुणों का वर्णन नहीं हो सकता।

उत्तिष्ठन्निपतञ्चलन्नपि धरा-पीठे लुठन् वास्मरेत्,
जाग्रद्वा प्रहसन्स्वपन्नपि वने, बिभ्यन्निषीदन्नपि।
गच्छन् वर्त्मनि वेश्मनि प्रतिपदं कर्म प्रकुर्वन्नपि,
यः पञ्चप्रभुमंत्रमेकमनिशं, किं तस्य नो वाञ्छितम् ॥

उठते-बैठते, खाते-पीते, चलते-फिरते, जाग्रत अवस्था में या निद्रावस्था में, वन में, डरते हुए, घर में प्रवेश करते हुए प्रत्येक पद-पद में जो णमोकार मंत्र का जाप्य करता है, उसके समस्त वाञ्छाओं की सिद्धि होती है।

णमोकार मंत्र के एक अक्षर या एक पद के उच्चारण मात्र से जन्म-जन्मान्तर के पाप नष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार सूर्योदय से अन्धकार नष्ट हो जाता है और कमल की शोभा वृद्धिगत होती है, उसी प्रकार इस महामंत्र की आराधना से पापतिमिर लुप्त हो जाता है और पुण्यश्री बढ़ती है। मानव की तो बात ही क्या, तिर्यञ्च भी इसके प्रभाव से मर कर देव होता है।

णमोकार समं मंत्र, वीतरागसमं प्रभुं।
सम्मेदाचलसमं यात्रा न भूतो न भविष्यति ॥

आचार्य उमास्वामी विरचित णमोकार मंत्र माहात्म्य (पद्यानुवाद सहित)	नागौर शास्त्र भण्डार से प्राप्त

विश्लिष्यन् घनकर्मराशिमशनिः संसारभूमिभृतः।
स्वर्निर्वाणपुरप्रवेशगमने, निःप्रत्यवायः सताम् ॥
मोहान्धावटसङ्कटे निपततां, हस्तावलम्बोऽर्हतां।
पायान्नः सचराचरस्य जगतः सञ्जीवनं मन्त्रराट् ॥१॥

प्रबल कर्म घनराशि मिटाता, भव पर्वत को वज्र समान।
स्वर्ग मुक्ति पुर ले जाने में, नेता जो निर्विघ्न प्रधान ॥
अन्धकूप सम राग मोह में, पतित जनों को कर अवलम्ब।
सर्व चराचर का संजीवन, मन्त्रराज है रक्षास्तम्भ ॥१॥

एकत्र पञ्चगुरुमन्त्रपदाक्षराणि ।
विश्वत्रयं पुनरनन्तगुणं परत्र ॥
यो धारयेत् किल तुलानुगतं तथापि ।
वन्दे महागुरुतरं परमेष्ठिमन्त्रम् ॥२॥

एक तरफ तो तीन लोक हो, मन्त्रराज हो दूजी ओर ।
रख कर यदि कोई तौले तो, मन्त्रराज भारी ले ठौर ॥
पंच परम गुरु नमन रूप इस, महामन्त्र की जो महिमा ।
उसको नहिं कह सकता कोई, चाहे जितनी मति गरिमा ॥२॥

ये केचनापि सुषमाद्यरका अनन्ता ।
उत्सर्पिणीप्रभृतयः प्रययुर्विवर्ताः ॥
तेष्वप्ययं परतरं प्रथितं पुरापि ।
लब्ध्वैनमेव हि गताः शिवमत्रलोकाः ॥३॥

काल अनन्ते बीते पहले, फिर आगे भी बीतेंगे ।
उनमें शाश्वत रहा मन्त्र यह, गाई महिमा गावेंगे ॥
नहीं आदि है नहीं अन्त है मन्त्र अनादि निधन यह ही ।
इसको जो जपता है प्राणी शिवपद पाता है वह ही ॥३॥

उत्तिष्ठन्निपतञ्चलन्नपि धरा-पीठे लुठन् वा स्मरे—
ज्जाग्रद्वा प्रहसन् स्वपन्नपि वने बिभ्यन्निषीदन्नपि ।
गच्छन् वर्त्मनि वेश्मनि प्रतिपदं कर्म प्रकुर्वन्नपि,
यः कश्चित् प्रभुमन्त्रमेकमनिशं, किं तस्य नो वाञ्छितम् ॥४॥

चलते उठते गिरते पड़ते और जागते या सोते,
न्हाते धोते धरा पीठ पर चाहे लोटपोट होते ।
जो करता है स्मरण मन्त्र का, वाञ्छित फल पा जाता है;
भक्तिभाव से प्रेरित होकर सङ्कट सभी मिटाता है ॥४॥

संग्रामसागरकरीन्द्रभुजङ्गसिंह—
दुर्व्याधिवह्निरिपुबन्धनसम्भवानि ।
चौरग्रहभ्रमनिशाचरशाकिनीनां
नश्यन्ति पञ्च परमेष्ठि पदैर्भयानि ॥५॥

रण, समुद्र के करि भुजङ्ग के सिंह व्याघ्र के रोगों के,
शत्रु अग्नि के वध बन्धन के और किये सब लोगों के।
चोर डाकिनी प्रेतग्रहों के, राक्षस भूत पिशाचों के,
इस नवकार मंत्र जपने से भय मिट सुख होते चोखे ॥५॥

यो लक्षं जिनबद्धलक्षहृदयं सुव्यक्तवर्णक्रमं,
श्रद्धावान्विजितेन्द्रियो भयहरं मन्त्रं जपेच्छ्रावकः।
पुष्पैः श्वेतसुगन्धिभिः सुविधिना लक्षप्रमाणैरमुम्,
यः सम्पूजयते स विश्वमहितस्तीर्थाधिनाथो भवेत् ॥६॥

जो श्रद्धालु जितेन्द्रिय श्रावक, पञ्च परम गुरु ध्यानी हो,
बुद्ध शुद्ध उच्चारण करता, परमशुद्ध सुज्ञानी हो।
श्वेत सुगन्ध लाख पुष्पों से मन्त्रराज को जपता,
विश्वपूज्य तीर्थङ्कर बनता, विधिपूर्वक ऐसा करता ॥६॥

इन्दुर्दिवाकरतया रविरिन्दुरूपः,
पातालमम्बरमिला सुरलोक एव।
किं जल्पितेन बहुना भुवनत्रयेऽपि,
यन्नाम तत्र विषमं च समं च तस्मात् ॥७॥

चन्द्र सूर्य सम हो जाता है और सूर्य होता शशिरूप,
नभ समान पाताल बनेगा, भूमि बने सुर लोक अनूप।
अद्भुत महिमा मंत्रराज की, कहे कहाँ तक सब असमर्थ,
महामन्त्र को जो जपता है उसके सफलित वाञ्छित अर्थ ॥७॥

जग्मुर्जिनास्तदपवर्गपदं तदैव,
विश्वं वराकमिदमत्र कथं विना स्यात्।
तत्सर्वलोक भुवनोद्धरणाय धीरैः,
मन्त्रात्मकं निजवपुर्निहितं तदत्र ॥८॥

मुक्तिधाम जिसने भी पाया उसने मन्त्र जपा यह ही,
बिना नही इस मंत्र जाप्य के रहे सभी यों के यों ही।
सर्व जगत उद्धार हेतु यह मन्त्र शरीर बना जिनका,
उनही ने शिवपद पाया है और क्लेश मेटा मन का ॥८॥

हिंसावाननृतप्रियः परधनंहर्त्ता परस्त्रीरतः,
किञ्चान्येष्वपि लोकगर्हितमिति पापेषु गाढोद्यतः ।
मन्त्रेशं सपदि स्मरेच्च सततं प्राणव्यये सर्वदा,
दुःकर्माहितदुर्गतिक्षतभयः स्वर्गी भवेन्मानवः ॥९॥

चाहे हिंसक झूठा होवे परधन परनारी हर्त्ता,
अन्य निन्द्य पापो में रत पर पाठ मन्त्र का नित कर्त्ता ।
वह अपराध शीघ्र छोडेगा, अन्त समय सुख पायेगा,
निज पापो की निन्दा करके, दुर्गति से बच जायेगा ॥९॥

अयं धर्मः श्रेयान्नयमपि च देवो जिनपतिः,
व्रतं चैव श्रेयान्नयमपि च यत्सर्वफलदम् ।
किमन्यैर्वाग्जालैर्बहुभिरपि संसारजलधौ,
नमस्कारस्तत् किं यदिह शुभरूपो न भवति ॥१०॥

धर्म यही नवकारमत्र है यही देव जिनपति का रूप,
यही सकल व्रतमूल लोक में यही अमृतफल रस का कूप ।
अधिक कथन से क्या है मतलब यह अलभ्य फल का दाता,
ऐसा कोई भी नहि वाञ्छित जो इससे हो नही मिलता ॥१०॥

स्वपन् जाग्रत्तिष्ठन्न पथि चलन् वेश्मनि स्खलन्,
भ्रमन् क्लिश्यन्माद्यन्वनगिरि समुद्रेष्ववतरन् ।
नमस्कारान् पञ्च स्मृतिखनिनिखातानिव सदा,
प्रशस्तौ विन्यस्तानिव वहति यः सोऽत्र सुकृतिः ॥११॥

जो शिलालेख की भांति हृदय में मन्त्रराज अङ्कित करता,
चलता फिरता उठता सोता जगता कुछ करता रहता ।
दु.ख सुख वनगिरि अब्धि गगन में जहां-तहां भी रहो कहीं,
मन्त्रराज का स्मरण करे जो पा सकता है क्लेश नही ॥११॥

दुःखे सुखे भयस्थाने पथि दुर्गे रणेऽपि वा ।
श्री पञ्चगुरुमन्त्रस्य पाठः कार्यः पदे पदे ॥१२॥

तीन लोक में सार अतुल सब रिपु का कर्त्ता,
भवदु:ख करदे दूर विषम-विष का है हर्त्ता।
करे कर्म निर्मूल सिद्धि सब सुख का दाता,
शिवसुख केवलबोध देत उसे जो जपता रहता ।।

सुर सम्पद को है यह देता मुक्ति रमा को वश करता।
चारों गति की विपदा हरता निज रिपुओं की कृति हरता।
दुर्गति का यह स्तम्भन करता, रागद्वेष सारे हरता।
पञ्च नमन मय मन्त्राराधन सब ही की रक्षा करता ।।

सुख दुःख संकट विपद में रण में दुर्गम पन्थ।
जपो मन्त्र नवकार नित सब विघ्नों का अन्त ।।१२।।

असूयकत्वं शठताविचारो दुराग्रहः सूक्तिविमानना च।
पुंसाममी पञ्च भवन्ति दोषास्तत्त्वावबोधप्रतिबन्धनाय ।।

धर्मरत्नाकर १५६१

असूयकता—दूसरे की उन्नति को नहीं सह सकना, शठता—कपटोपना, अविचार, दुराग्रह और सुन्दर वचनों की अवहेलना करना, ये पाँच दोष पुरुषों के तत्त्वज्ञान में बाधक हैं।

ऋषिमण्डल यंत्र और स्तोत्र

—आर्यिका सुपार्श्वमतीजी

इस भयानक दु:खमय ससार मे समस्त जीव आधिव्याधि से पीड़ित हैं। क्षण भर के लिए भी उन्हें शान्ति नही। आधि से ग्रस्त मनुष्य को दिनरात चिन्ता सताती रहती है जिससे न उसे भूख लगती है और न सुखपूर्वक नींद ही आती है। उसका मन चञ्चल बना रहता है। वह उन्मत्त की भाँति इधर-उधर भटकता रहता है। आर्तध्यान के कारण निरन्तर पापास्रव करता रहता है। आधि से व्यथित मनुष्य न तो लौकिक सुखों का ही अनुभव करता है और न पारमार्थिक कार्यों की ही सिद्धि कर सकता है। कई मनुष्य शारीरिक रोगों से पीड़ित हैं। रात दिन डाक्टर, वैद्य, हकीम का मुख देखा करते हैं। रोगों से मुक्त होने के लिए यांत्रिक-मांत्रिक-तांत्रिक आदि की सेवा करते हैं, निरन्तर कटु औषधि का सेवन करते हैं, भक्ष्याभक्ष्य के विचार से शून्य हृदय होकर पापाचरण करते हैं तथापि उन्हें शान्ति नहीं मिलती। महाकवि धनञ्जय कहते हैं कि—

विषापहारं मणिमौषधानि, मन्त्रं समुद्दिश्य रसायनं च।
भ्राम्यन्त्यहो न त्वमतिस्मरन्ति, पर्यायनामानि तवैव तानि ॥१४॥

—विषापहारस्तोत्र

(विषापहार— विषनाशक मणि, औषधि, मंत्र-तंत्र ये सब वीतराग प्रभु के पर्यायवाची शब्द हैं। उनका स्मरण न करके वह अज्ञानी प्राणी व्यर्थ ही इधर-उधर सुख और शान्ति के लिए भटकता रहता है। अन्तरग दृष्टि से विचार किया जाए तो वीतराग प्रभु के नामस्मरण के सिवाय, अन्य कोई औषधि नहीं है।)

उद्‌भूतभीषणजलोदरभारभुग्नाः, शोच्यां दशामुपगताश्च्युतजीविताशाः।
त्वत्पादपंकजरजोमृतदिग्धदेहा, मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः ॥४५॥

—भक्तामर स्तोत्र

(अत्यन्त भयानक जलोदर के भार से जिनकी कमर झुक गई है, जिनके जीवन की आशा भी नहीं रही, जो अत्यन्त शोचनीय दशा को प्राप्त हुए ऐसे मनुष्य भी यदि भगवान के चरण कमल की रज को मस्तक पर लगावें तो कामदेव के समान मनोज्ञ शरीर वाले बन जाते हैं।)

पहले वादिराज, मानतुङ्ग, धनञ्जय ग्रादि महापुरुषों ने ग्राधिव्याधि के समय सर्वज्ञदेव का स्मरण किया जिससे ग्रसाध्य रोग तथा मानसिक चिन्ता एक साथ दूर हो गई। समस्त रोग-शोक-सन्ताप की नाशक यदि कोई ग्रौषधि है तो वह वीतराग प्रभु के स्मरण के सिवाय दूसरी नहीं है—

वैद्य हमारे सिद्धजी, ग्रौषध जिनवर नाम।
भक्तिभाव से खाइये, भवाताप नश जाय ॥ १ ॥

ग्रौषध जिनवर नाम की, श्रद्धापूर्वक खाय।
तन पीड़ा व्यापे नहीं, महारोग नश जाय ॥ २ ॥

यह एक ग्रपूर्व ग्रौषधि है। इसके समान इस ग्रसार संसार में ग्रन्य कोई वस्तु नहीं। उन प्रभु का नामस्मरण ही स्तुति ग्रौर स्तोत्र है। णमोकार महामंत्र, भक्तामर स्तोत्र, विषापहार-स्तोत्र, एकीभाव स्तोत्र ग्रादि के प्रभाव से इसी पंचमकाल में पहले, मुनियों व श्रावको के संकट एवं ग्रसाध्य रोगादि नष्ट हुए थे। उन स्तोत्रों की महिमा का वर्णन कहाँ तक किया जाय। किन्तु ग्राज तो यह कहावत सत्य हो रही है कि—

"पड़े पारस बेचे तेल, यह देखो कर्मों का खेल"

किसी के पास लोहे को सोना बनाने वाली पारसमणि है ग्रौर वह तेल बेचता है, यहां उसके पूर्वोपार्जित महान् कर्मों का ही उदय समझना चाहिए। इसी प्रकार हमारे पास भी पारसमणि तुल्य महामंत्र, महास्तोत्र हैं परन्तु हम दीन-हीन दुःखी हो रहते हैं। इसका कारण यह है कि हम उनके मूल्य-महत्त्व को नहीं जानते हैं। ग्रथवा जिस प्रकार पारसमणि एक लोहे की डिब्बी मे रखी है किन्तु डिब्बी ग्रौर मणि में बीच में कागज लगा हुग्रा है ग्रतः वह कार्यशील नही होती, यही दशा हमारी है। महामणि रूप मत्र-स्तोत्र ग्रादि को प्राप्त कर भी हम सुखी नही क्योंकि हमारे ग्रौर मंत्र के बीच में पड़ा हुग्रा है ग्रनादिकालीन कागज रूप ग्रश्रद्धान। यदि वह ग्रश्रद्धान हृदय रूपी डिब्बी से निकल जाय तो नियम से हमारा कल्याण होने में देरी नहीं लगेगी। स्तोत्रों के प्रभाव का वर्णन कहाँ तक किया जाय ? ऐसे ही प्रभावशालो स्तोत्रों में से श्री गुणभद्रमुनिराज विरचित एक स्तोत्र है—ऋषि मण्डल स्तोत्र। इसके प्रभाव से ग्राधि व्याधि, रोग शोक सन्ताप ग्रादि दूर होते हैं।

ऋषिमण्डल का ग्रर्थ :

ऋषति जानाति कालत्रयमिति ऋषिः। जो तीन लोक तीन काल की वस्तु को जानता है उसे ऋषि कहा जाता है। मुनि को भी ऋषि कहते हैं।

तपस्वी, संयमी, योगी वर्णिसाधुश्च पातु वः ।
ऋषिर्यतिर्मुनिर्भिक्षुस्तापसः संयतो व्रती: ॥

इस प्रकार ऋषि महामुनियों का नाम है। उनके समूह को 'ऋषिमण्डल' कहते हैं। चतुर्विंशति तीर्थङ्कर, परमेष्ठी, स्वर व्यंजनादि वर्णमाला, ऋद्धिधारी तपस्वी संयुक्त तथा जिनधर्म के शासन की रक्षा करने वाले यक्ष-यक्षिणियों से वेष्टित 'ऋषिमण्डल स्तोत्र' तथा 'ऋषिमण्डल यंत्र' हैं।

जाप्य मंत्र :

ॐ ह्रां ह्रिं ह्रुं ह्रूं ह्रें ह्रैं ह्रौं ह्रः।

अ सि आ उ सा सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो ह्रीं नमः (स्वाहा) उक्त मन्त्र का १०८ वार सफेद सुगन्धित फूलों से जाप्य करना चाहिए। जो कोई इस मंत्र का श्रद्धापूर्वक नित्य सहस्रवार छह मास तक जप करता है उसके रोग शोक पीड़ा आदि का ध्वंस होकर सर्व मनोरथ की सिद्धि होती है।

यंत्र लेखनविधि :

काञ्चनीयेऽथवा रौप्ये, कांस्ये वा भाजने वरे ।
मध्ये लेख्यः सकारान्तो, द्विगुणो यान्त सेवितः ॥

तुर्य स्वर मनोहारी, बिन्दु राजार्धमस्तकः ।
जिनेशास्तत्प्रभा लेख्या, यथास्थानं तदन्तरे ॥

चन्द्रप्रभपुष्पदन्तौ मुनिसुव्रतनेमिकौ ।
सुपार्श्वपार्श्वौ पद्माभवासुपूज्यौ तथा क्रमात् ॥

कलायां तदुपरिष्ठा ह्रीकारे मूर्ध्नि च स्फुटम् ।
लेख्याः शेषा जिना गर्भे नमो युक्ता सुपीतमाः ॥

ततश्च वलयः कार्यस्तद्बाह्ये कोष्ठकाष्टकम् ।
तत्रेति लेख्यं विबुधैश्चाकलक्षणलक्षितैः ॥

ततश्चवलयः कार्यो लेख्यास्तत्राष्टकोष्ठकाः ।
तत्रेति लेख्यं विबुधैश्चतुर्यान्वित विग्रहैः ॥

ततश्च वलयः कार्यस्तत्र षोडशकोष्ठकाः ।
लेख्यास्तत्रेति लेख्यं च विद्वद्भिश्चतुरैर्नरैः ॥

ततश्च वलयः कार्यः चतुर्विंशतिकोष्ठकः ।
तत्र लेख्याश्च कर्तव्याश्चतुर्विंशति देवताः ॥
ततो माया त्रिलोणे च देयं पत्रं मनोहरं ।
सर्वं विघ्नापहं चेतद् ह्रींकारं प्रान्तसंयुजम् ॥

ऋषिमण्डल यंत्र को भोजपत्र पर सुगन्धित द्रव्य से लिखकर हाथ में या गले में बांधने से सर्व प्रकार के रोग-शोक, ऊपरी हवा नष्ट होती है। परकृतविद्या का नाश होता है। सर्व कार्य सिद्ध होते हैं। किन्तु प्रथम ऋषि मण्डल मंत्र को विधिविधानपूर्वक सिद्ध करे। जैसे—प्रथम एक ताम्रपत्र पर अथवा स्वर्ण पत्र पर अथवा रजत पत्र पर अथवा कांसे के पत्र पर यन्त्र खुदवा कर शुद्ध करावे। फिर उसे एक सिंहासन पर विराजमान करके सामने दीप-धूप रख कर मत्र का आठ दिन में आठ हजार जाप करे। संयम से रहे, आचाम्ल तप करे, ब्रह्मचर्य व्रत पाले। मंत्र का जाप समाप्त होने पर शुभ दिन मुहूर्त में ऋषि मण्डल विधान करके दशांश आहुति देवे तो मंत्र के प्रभाव से मनचिन्तित कार्य सिद्ध हो। सर्वोपद्रव मिटे। लक्ष्मी का लाभ हो। मंत्र की छह महीने तक नित्य ही आचाम्ल तपपूर्वक आराधना करने से स्वयं के मस्तक पर अर्हन्त बिम्ब दिखेगा। जिसको अर्हन्त बिम्ब दिख जाएगा, उसे निश्चय ही सातवें भव में मोक्ष होगा। साधक को किसी प्रकार का भय, डाकिनी, शाकिनी, भूत, प्रेत, पर कृत विद्या आदि का उपद्रव कभी नहीं होगा। मत्र की एक माला फेर कर ही स्तोत्र का पाठ करने से सर्व प्रकार के रोग शोक बाधाएं मिटती हैं। इस काल में मत्र यंत्र की साधना कल्पवृक्ष के समान चिन्तित पदार्थ को देने वाली है। व्यर्थ में कुदेवों की आराधना करके पाप बन्ध कर दुर्गति के पात्र नही बनना चाहिए।

ऋषिमण्डल स्तोत्र

आद्यंताक्षरसंलक्ष्यमक्षरं व्याप्य यस्थितम् ।
अग्निज्वालासमं नादं बिन्दुरेखासमन्वितं ॥ १ ॥

अग्निज्वालासमाक्रांतं मनोमलविशोधनं ।
दैदीप्यमानं हृत्पद्मे तत्पदं नौमि निर्मलं । युग्मं ।

ॐ नमोऽर्हद्भ्यः ईशेभ्यः ॐ सिद्धेभ्यो नमो नमः ।
ॐ नमः सर्वसूरिभ्यः उपाध्यायेभ्यः ॐ नमः । ३ ।

ॐ नमः सर्वसाधुभ्यः तत्त्वदृष्टिभ्यः ॐ नमः ।
ॐ नमः शुद्धबोधेभ्यश्चारित्रेभ्यो नमो नमः । ४ ।
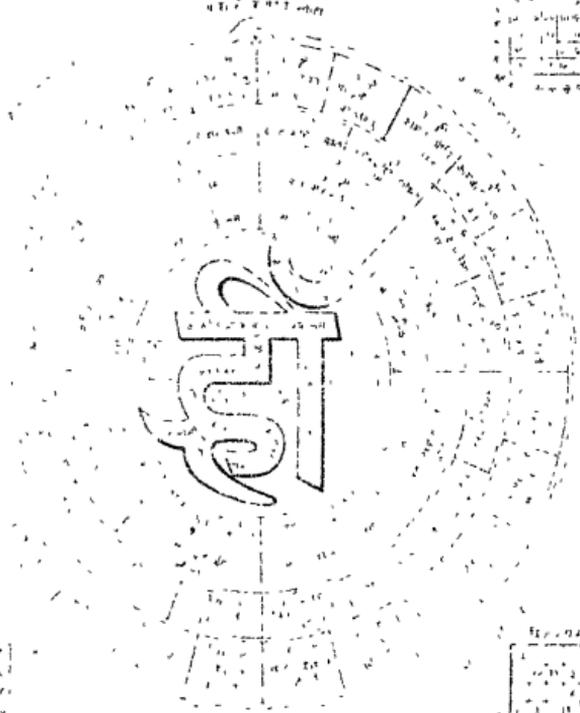
श्रेयसेस्तु श्रीयेस्त्वेनदर्हदाद्यष्टकं शुभं ।
स्थानेष्वष्टसु संन्यस्तं पृथग्बीजसमन्वितम् । ५ ।

आद्यं पदं शिरो रक्षेत् पर रक्षतु मस्तकं ।
तृतीयं रक्षेन्नेत्रे द्वे तुर्यं रक्षेच्च नासिकाम् । ६ ।

पंचमं तु मुखं रक्षेत् षष्ठं रक्षतु घटिकां ।
सप्तमं रक्षेन्नाभ्यंतं पादांतं चाष्टमं पुनः । ७ । युग्मं ।

पूर्वं प्रणवतः सांतः सरेफो द्वित्रिपंचषान् ।
सप्ताष्टदशसूर्यांकान् श्रितो बिंदुस्वरान् पृथक् । ८ ।

पूज्यनामाक्षराद्यस्तु पंचदर्शनबोधकं ।
चारित्रेभ्यो नमो मध्ये ह्रीं सांतसमलकृतं । ९ ।

जम्बूवृक्षधरो द्वीपः क्षीरोदधि-समावृतः ।
अर्हदाद्यष्टकैरष्टकाष्ठाधिष्ठैरलकृतः । १ ।

तन्मध्ये संगतो मेरुः कूटलक्षेरलंकृतः ।
उच्चैरुच्चैस्तरस्तारतारामडलमंडितः । २ ।

तस्योपरि सकारांतं बीजमध्यास्य सर्वग ।
नमामि बिम्बमार्हत्यं ललाटस्थं निरञ्जनं । ३ । विशेषकं ।

अक्षयं निर्मल शांतं बहुल जाड्यतोज्झितं ।
निरीहं निरहकार सार सारतरं घनम् । ४ ।

अनुद्धभूतं शुभं स्फीतं सात्विकं राजसं मतं ।
तामसं विरसं बुद्ध तैजसं शर्वरीसमं । ५ ।

साकार च निराकारं सरसं विरसं परं ।
परापरं परातीतं परं परपरापरं । ६ ।

सकलं निष्कलं तुष्टं निर्भृतं भ्रांतिवर्जितं ।
निरञ्जनं निराकांक्षं निर्लेपं वीतसंशयं । ७ ।

ब्रह्माणमीश्वर बुद्ध शुद्ध सिद्धमभंगुरं ।
ज्योतिरूपं महादेव लोकोलोकप्रकाशकं । ८ । कुलकं ।

अर्हदाख्यः सवर्णान्तः सरेफो बिंदुमंडितः ।
तूर्यस्वरसमायुक्तो बहुध्यानादिमालितः । ९ ।

एकवर्णं द्विवर्णं च त्रिवर्णं तुर्यवर्णकं ।
पंचवर्णं महावर्णं सपरं च परापरं । १० । युग्मं ।

अस्मिन् बीजे स्थिता: सर्वे ऋषभाद्या जिनोत्तमाः ।
वर्णैर्निजैर्युक्ता ध्यातव्यास्तत्र संगताः । ११ ।

नादश्चंद्रसमाकारो बिंदुर्नीलसमप्रभः ।
कलारुणसमा सांतः स्वर्णाभः सर्वतोमुखः । १२ ।

शिरः संलीन ईकारो विनीलो वर्णतः स्मृतः ।
वर्णानुसारिसंलीनं तीर्थकृन्मंडलं नमः । १३ । युग्मं ।

चन्द्रप्रभपुष्पदन्तौ नादस्थितिसमाश्रितौ ।
बिन्दुमध्यगतौ नेमिसुव्रतौ जिनसत्तमौ । १४ ।

पद्मप्रभवासुपूज्यौ कलापदमधिश्रितौ ।
शिर ईस्थितिसंलीनौ सुपार्श्वपार्श्वौ जिनोत्तमौ ।१५।

शेषास्तीर्थंकराः सर्वे रहः स्थाने नियोजिताः ।
मायाबीजाक्षरं प्राप्तश्चतुर्विंशतिरर्हतां । १६ ।

गतरागद्वेषमोहाः सर्वपापविवर्जिताः ।
सर्वदा सर्वलोकेषु ते भवंतु जिनोत्तमा । १७ । कलापकं ।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा ।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु पन्नगाः । १८ ।

देवदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य या विभा ।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु नागिनी । १९ ।

देवदेवस्य यच्चक्र तस्य चक्रस्य या विभा ।
तयाच्छादितसर्वांगं मां मा हिंसतु गोनसाः । २० ।

देवदेवस्य.........मा हिंसतु वृश्चिकाः । २१ । ❀
देवदेवस्य.........मा हिंसतु काकिनी । २२ ।
देवदेवस्य.........मा हिंसतु डाकिनी । २३ ।

❀ नोट—२० वें श्लोक के बाद २१ वें में भी २० वें श्लोक की भाँति पढ़ते हुए अन्तमें 'गोनसाः' के स्थान पर वृश्चिकाः तथा २२ व २३, २४ आदि में क्रमशः काकिनी, डाकिनी आदि बोलना चाहिए ।

देवदेवस्य ………… मा हिंसतु साकिनी । २४ ।
देवदेवस्य ………… मा हिंसतु राकिनी । २५ ।
देवदेवस्य ………… मा हिंसतु लाकिनी । २६ ।
देवदेवस्य ………… मा हिंसतु शाकिनी । २७ ।
देवदेवस्य ………… मा हिंसतु हाकिनी । २८ ।
देवदेवस्य ………… मा हिंसतु भैरवा । २९ ।
देवदेवस्य ………… मा हिंसतु राक्षसा: । ३० ।
देवदेवस्य ………… मा हिंसतु व्यंतरा: । ३१ ।
देवदेवस्य ………… मा हिंसतु भेकसा: । ३२ ।
देवदेवस्य ………… मा हिंसतु लीनसा: । ३३ ।
देवदेवस्य ………… मा हिंसतु ते ग्रहा: । ३४ ।
देवदेवस्य ………… मा हिंसतु तस्करा: । ३५ ।
देवदेवस्य ………… मा हिंसतु वह्नय: । ३६ ।
देवदेवस्य ………… मा हिंसतु श्रृंगिण: । ३७ ।
देवदेवस्य ………… मा हिंसतु दंष्ट्रिण: । ३८ ।
देवदेवस्य ………… मा हिंसतु रेलपा: । ३९ ।
देवदेवस्य ………… मा हिंसतु पक्षिण: । ४० ।
देवदेवस्य ………… मा हिंसतु मुद्गला: । ४१ ।
देवदेवस्य ………… मा हिंसतु जृंभका: । ४२ ।
देवदेवस्य ………… मा हिंसतु तोयदा: । ४३ ।
देवदेवस्य ………… मा हिंसतु सिहका: । ४४ ।
देवदेवस्य ………… मा हिंसतु शूकरा: । ४५ ।
देवदेवस्य ………… मा हिंसतु चित्रका: । ४६ ।
देवदेवस्य ………… मा हिंसतु हस्तिन: । ४७ ।
देवदेवस्य ………… मा हिंसतु भूमिपा: । ४८ ।
देवदेवस्य ………… मा हिंसतु शत्रव: । ४९ ।
देवदेवस्य ………… मा हिंसतु ग्रामीण: । ५० ।
देवदेवस्य ………… मा हिंसतु दुर्जना: । ५१ ।
देवदेवस्य ………… मा हिंसतु व्याधय: । ५२ ।
देवदेवस्य ………… मा हिंसतु सर्वत: । ५३ ।

श्रीगौतमस्य या मुद्रा तस्या या भुवि लब्धय: ।
ताभिरभ्यधिकं ज्योतिरर्हं: सर्वनिधीश्वर: । ५४ ।
पातालवासिनो देवा देवा भूपीठवासिन: ।
स्व:स्वर्गवासिनो देव सर्वे रक्षतु मामित: । ५५ ।
येऽवधिलब्धया ये तु परमावधिलब्धय: ।
ते सर्वे मुनयो दिव्या मां संरक्षंतु सर्वत: । ५६ ।
ॐ श्रीं ह्रींश्च धृतिर्लक्ष्मी: गौरी चंडी सरस्वती ।
जया वा विजया क्लिन्नाऽजिता नित्या मदद्रवा ।५७।
कामांगा कामबाणा च सानंदा नंदमालिनी ।
माया मायाविनी रौद्री कला काली कलिप्रिया ।५८।
एता: सर्वा महादेव्यो वर्तंते या जगत्त्रये ।
मम सर्वा:प्रयच्छंतु कान्ति लक्ष्मी धृतिं मतिं ।५९।
दुर्जना भूतवेताला: पिशाचा मुद्गलास्तथा ।
ते सर्वे उपशाम्यंतु देवदेवप्रभावत: । ६० ।
दिव्यो गोप्य: सुदुष्प्राप्य: श्रीऋषिमंडलस्तव: ।
भाषितस्तीर्थनाथेन जगत्त्राणकृतोऽनघ । ६१ ।
रणे राजकुले वह्नौ जले दुर्गे गजेहरौ ।
श्मशाने विपिने घोरे स्मृतौ रक्षति मानवं । ६२ ।
राज्यभ्रष्टा निजं राज्यं पदभ्रष्टा निजं पदं ।
लक्ष्मीभ्रष्टा निजं लक्ष्मी प्राप्नुवंति न संशय: । ६३ ।
भार्यार्थी लभते भार्यां पुत्रार्थी लभते सुतं ।
धनार्थी लभते वित्तं नर: स्मरणमात्रत: । ६४ ।
स्वर्णे रूप्येऽथवा कांस्ये लिखित्वा यस्तु पूजयेत् ।
तस्यैवेष्टमहासिद्धिर्गृहे वसति शाश्वती । ६५ ।
भूर्जपत्रे लिखित्वेदं गलके मूर्ध्नि वा भुजे ।
धारित: सर्वदा दिव्यं सर्वभीतिविनाशिनं । ६६ ।
भूतै: प्रेतैर्ग्रहैर्यक्षै: पिशाचैर्मुद्गलैस्तथा ।
वातापित्तकफोद्रेको मुच्यते नात्र संशय: ।६७।
भूर्भुव: स्वस्त्रयीपीठवर्त्तिन: शाश्वता जिना: ।
तै: स्तुतैर्वंदितैर्दृष्टैर्यत्फलं तत्फलं स्मृते: ।६८।

एतदगोप्यं महास्तोत्रं न देयं यस्य कस्यचित् ।
मिथ्यात्ववासिनो देये बालहत्या पदे पदे ॥६६॥

आचाम्लादितपः कृत्वा पूजयित्वा जिनावलि ।
अष्टसाहस्रिको जाप्यः कार्यस्तत्सिद्धिहेतवे ॥७०॥

शतमष्टोत्तरं प्रातर्ये पठंति दिने दिने ।
तेषां न व्याधयो देहे प्रभवंति च सम्पदः ॥७१॥

अष्टमासावधि यावत् प्रातः प्रातस्तु यः पठेत् ।
स्तोत्रमेतन्महातेजस्त्वर्हद्बिम्ब स पश्यति ॥७२॥

दृष्टे सत्यार्हते बिम्बे भवे सप्तमके ध्रुवं ।
पदं प्राप्नोति विश्रस्तं परमानन्दसम्पदा ॥७३॥ युग्मं ॥

इदं स्तोत्रं महास्तोत्रं स्तुतीनाममुत्तमं परं ।
पठनात्स्मरणाज्जाप्यात् सर्वदोषैर्विमुच्यते ॥७४॥

☼

वस्तु के स्वभाव को ध्यान में रखते हुए यदि हमारी दृष्टि वस्तुपरक बन जाए और व्यक्तिपरक न रहे तो एक अनासक्ति का भाव, एक ज्ञाता भाव, द्रष्टा भाव सहज ही प्रतिफलित होता है। कर्तृत्व और भोक्तृत्व की अहं भावना और आसक्ति भावना स्वतः विगलित होती है। वस्तु के स्वभाव में हमारा कोई हाथ नहीं।

❖ आर्यिका सुपार्श्वमतीजी

विजयपताका यंत्र

☼

जिस प्रकार णमोकार महामंत्र में समस्त द्वादशाङ्ग वाणी गर्भित है, स्वर और व्यञ्जन से समस्त शास्त्र बनते हैं, णमोकार मंत्र में समस्त स्वर और व्यञ्जन गर्भित हैं उसी प्रकार इस विजयपताका यंत्र में समस्त द्वादशांग गर्भित है। जिस प्रकार सारे मंत्र णमोकार मंत्र से बनते हैं उसी प्रकार सारे यन्त्र विजयपताका यंत्र से बनते हैं।

१ अंक—यह परमात्मा का द्योतक है।

२ अंक—द्रव्यार्थिक नय/परमार्थिक नय; राग-द्वेष; भावहिंसा द्रव्यहिंसा; प्रमाण/नय सामान्य/विशेष, संसारी/मुक्त आदि का द्योतक है।

३ अंक—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र; तीन शल्य, तीन गारव, तीन मूढ़ता, तीन गुणव्रत आदि का द्योतक है।

४ अंक—चार शिक्षाव्रत, चार आराधना, चार अनन्त चतुष्टय, चार प्रकार के दान का द्योतक है।

५ अंक—पंच परमेष्ठी, पंच महाव्रत, पंच समिति, पंच ज्ञान, पंच गति, पंच अणुव्रत, पांच चारित्र, पांच भावना, पंचास्तिकाय, पांच अतिचार, पंच मिथ्यात्व का द्योतक है।

६ अंक—षट् द्रव्य, षट् अनायतन, षट् आवश्यक कर्त्तव्य, षट् काय, षट् लेश्या, असिमसि आदि षट् कर्म जाने जाते हैं।

७ अंक—सप्त तत्त्व, सप्त परम स्थान आदि का द्योतक है।

८ अंक—अष्ट कर्म, सिद्धों के ८ गुण, शंकादि आठ दोष, निःशंकितादि आठ गुण, आठ मद, अष्ट ज्ञानोपयोग, इस अंक से जाने जाते हैं।

९ अंक—नव पदार्थ, नव बलभद्र, नव प्रतिनारायण, नव नारायण का द्योतक है।

१० अंक—दस धर्म, दस प्रकार का धर्मध्यान आदि का द्योतक है।

११ अंक—से ग्यारह प्रतिमा जानी जाती है।

१२ अंक—बारह व्रत, उपयोग आदि जाने जाते हैं।

१३ अंक—तेरह प्रकार के चारित्र आदि का द्योतक है।

१४ अंक—यह अंक १४ जीव समास, मार्गणा, गुणस्थान आदि का द्योतक है।

१५ अंक—प्रमाद, योग आदि का द्योतक है।

सोलह भावना, सोलह कारण आदि रूप जितना द्वादशाङ्ग है वह सब इस यंत्र के अंक गणित से जाना जाता है। इन अंकों से स्वर और व्यंजन भी निकाल कर श्लोक बनाया जाता है; जैसे—

१ अंक का अर्थ क अ ट प य होता है।

२ ,, ,, आ ख ठ फ र होता है।

३ ,, ,, ग ड ब ल इ होता है।

४ ,, ,, घ ढ भ व ई होता है।

५ ,, ,, ङ ण म श उ होता है।

६ ,, ,, च त ष ऊ होता है।

७ ,, ,, छ थ स ऋ होता है।

८ ,, ,, ज द ह ॠ होता है।

९ ,, ,, झ, ध, होता है।

ए, ऐ, ओ औ संध्यक्षर हैं। बिन्दु से अनुस्वार और विसर्ग लिया जाता है। इन अंकों से स्वर और व्यञ्जन बना कर श्लोक बनाये जाते हैं, जैसे—'भूवलय ग्रन्थ' में।[1]

यह 'विजयपताका यंत्र' (हस्तलिखित) नागौर के प्राचीन विशाल शास्त्र-भण्डार में सुरक्षित है। ग्रन्थ भण्डार का अन्वेषण करने पर सम्भवतः इसके महत्व, विधि आदि के सम्बन्ध में विशेष जानकारी भी मिल सकती है।

---

१. पूज्य आर्यिका सुपार्श्वमतीजी को यंत्र मंत्रादि का विशिष्ट ज्ञान है। जिज्ञासु को उनसे पूछ कर अपनी जिज्ञासाओं का शमन करना चाहिए। —सं०

विजयपताका यंत्र में मूल (खास) १५ का यंत्र है जिससे समस्त कार्यों की सिद्धि होती है। इसका प्रभाव अचिन्त्य है तथा गोप्य भी है। विशेष जानकारी किसी विशिष्ट ज्ञानी से ही प्राप्त हो सकती है—

८	१	६
३	५	७
४	९	२

१५ इसका अन्योन्य योग (१+५) करने से छह स्थान में दो का अंक लिख कर परस्पर गुणा करें तो ६४ होगा जैसे—

२×२×२×२×२×२=६४ इसे अन्योन्याभ्यस्त राशि कहते हैं। अन्योन्याभ्यस्त राशि प्रमाण दो का अंक लिख कर परस्पर गुणा करने से जो राशि आयेगी उसमें एक कम करने पर समस्त द्वादशांग के अक्षरों की संख्या निकल आयेगी।

चौबीस तीर्थंकरों की पञ्च-कल्याणक तिथियां

श्रावकों को नीचे लिखी तिथियों में पूजन और स्वाध्याय करना चाहिये, ऐसा करने से पुण्यबंध होता है।

सं०	नाम तीर्थंकर	गर्भ	जन्म	तप	ज्ञान	मोक्ष
१	आदिनाथजी	आषाढ़ कृष्णा २	चैत्र बदी ९	चैत्र बदी ९	फाल्गुन बदी ११	माघ बदी १४
२	अजितनाथजी	ज्येष्ठ बदी १५	माघ सुदी १०	माघ सुदी १०	पौष सुदी ४	चैत्र सुदी ५
३	सम्भवनाथजी	फाल्गुन सुदी ८	कार्तिक सुदी १५	मंगसिर सुदी १५	कार्तिक बदी ४	चैत्र सुदी ६
४	अभिनंदननाथजी	बैशाख सुदी ६	माघ बदी १२	माघ सुदी १२	पौष सुदी १४	बैशाख सुदी ६
५	सुमतिनाथजी	श्रावण सुदी २	चैत्र सुदी ११	चैत्र सुदी ११	चैत्र सुदी ११	चैत्र सुदी ११
६	पद्मप्रभुजी	माघ बदी ६	कार्तिक सुदी १३	कार्तिक सुदी १३	चैत्र सुदी १५	फाल्गुन बदी ४
७	सुपार्श्वनाथजी	भादो सुदी ६	ज्येष्ठ सुदी १२	ज्येष्ठ सुदी १२	फाल्गुन बदी ६	फाल्गुन बदी ७
८	चन्द्रप्रभुजी	चैत्र बदी ५	पौष बदी ११	पौष बदी ११	फाल्गुन बदी ७	फाल्गुन सुदी ७
९	पुष्पदन्तजी	फाल्गुन बदी ९	मंगसिर सुदी १	मंगसिर सुदी १	कार्तिक सुदी २	आसोज सुदी ८
१०	शीतलनाथजी	चैत्र बदी ८	माघ बदी १२	माघ बदी १२	पौष बदी १४	आसोज सुदी ८
११	श्रेयांसनाथजी	ज्येष्ठ बदी ८	फाल्गुन बदी ११	फाल्गुन बदी ११	माघ बदी १	श्रावण सुदी १५
१२	वासुपूज्यजी	आषाढ़ बदी ६	फाल्गुन बदी ११	फाल्गुन बदी १४	भादो बदी २	भादो सुदी १४
१३	विमलनाथजी	ज्येष्ठ बदी १०	माघ सुदी १४	माघ सुदी १४	माघ सुदी ६	आषाढ़ बदी ६
१४	अनन्तनाथजी	कार्तिक बदी १	ज्येष्ठ बदी १२	ज्येष्ठ बदी १२	चैत्र बदी १५	चैत्र बदी ४
१५	धर्मनाथजी	बैशाख सुदी ८	माघ सुदी १३	माघ सुदी १३	पौष सुदी १५	ज्येष्ठ सुदी १४
१६	शांतिनाथजी	भादो बदी ७	ज्येष्ठ बदी ४	ज्येष्ठ बदी १४	पौष सुदी १०	ज्येष्ठ बदी १४
१७	कुन्थुनाथजी	श्रावण बदी १०	बैशाख सुदी १	बैशाख सुदी १	चैत्र सुदी ३	बैशाख सुदी १
१८	अरहनाथजी	फाल्गुन सुदी ३	मंगसिर सुदी १४	मंगसिर सुदी १४	कार्तिक सुदी १२	चैत्र सुदी ११
१९	मल्लिनाथजी	चैत्र सुदी १	मंगसिर सुदी ११	मंगसिर सुदी ११	पौष बदी २	फाल्गुन सुदी ५
२०	मुनिसुव्रतनाथजी	श्रावण बदी २	बैशाख बदी १०	बैशाख बदी १०	बैशाख बदी ९	फाल्गुन बदी १२
२१	नमिनाथजी	आसोज बदी २	आषाढ़ बदी १०	आषाढ बदी १०	मंगसिर सुदी ११	बैशाख बदी १४
२२	नेमिनाथजी	कार्तिक सुदी ६	श्रावण सुदी ६	श्रावण सुदी ६	आसोज सुदी १	आषाढ़ सुदी ८
२३	पार्श्वनाथजी	बैशाख बदी २	पौष बदी ११	पौष बदी ११	चैत्र बदी ४	श्रावण सुदी ७
२४	महावीरजी	आषाढ़ सुदी ६	चैत्र सुदी १३	मंगसिर बदी १०	बैशाख सुदी १०	कार्तिक बदी १५

श्रावक के मुख्य आठ चिन्ह :

सब अन्याय अभक्ष्य त्याग कर, तजो अहितकारी मिथ्यात्व ।
निशिका भोजन बिन छाना जल, हरो व्यसन दुःखकारी सात ।।
जीवों की करुणा मन धारो, कर जिन दर्शन संध्या प्रातः ।
मुख्य चिन्ह ये जैनी के हैं, इन बिन जैनी को धिक्कार ।।

श्रावक के सत्रह यम नियम :

कुगुरु कुदेव कुवृषकी सेवा, अनर्थदण्ड अघमय व्यापार ।
द्यूत मांस मधु वेश्या चोरी, परतिय हिंसादान शिकार ।।
त्रस की हिंसा स्थूल असत्य, बिन छाना जल निशि आहार ।
ये सत्रह अनर्थ जग माहीं यावज्जीव करो परिहार ।।

श्रावक के सत्रह नियम :

भोजन वाहन शयन विलेपन, आसन भूषण अरु अस्नान ।
ब्रह्मचर्य ताम्बूल पेय सब संचित वस्तु का ही परिमाण ।।
पुष्प नृत्य गीतादिक षट्रस वस्त्र देशव्रत गायन मान ।
नियम सप्तदश ये प्रति दिन सब धारण करो सदा मतिमान ।।

श्रावक के त्यागने योग्य बाईस अभक्ष्य :

ओला घोर बड़ा निशि भोजन, बहुबीजक बैंगन संधान ।
बड़ पीपल ऊमर कठ ऊमर, पाकर फल जो होय अजान ।।
कन्दमूल माटी विष आमिष, मधु माखन अरु मदिरा पान ।
फल अति तुच्छ तुषार चलित रस जिनमत ये बाईस बखान ।।

आर्यिका इन्दुमती अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन में

विशेष सहयोगी

श्री निर्मलकुमार सेठी डेह निवासी—प्रवासी—लखनऊ	सीतापुर
,, राय० चांदमल गनपतराय पाण्डया	गोहाटी
,, पूनमचन्द गंगवाल	झरिया
,, किशनलाल सेठी	डीमापुर
,, अमरचन्द पहाड़या	कलकत्ता
,, तिलोकचन्द कोठारी	कोटा
,, उम्मेदमल पाण्डया	दिल्ली
,, मांगीलाल छाबड़ा	डीमापुर
,, मदनलाल सेठी	डीमापुर
,, डूंगरमल बाकलीवाल	खारुपेटिया
,, पन्नालाल सेठी	डीमापुर
,, चैनरूप बाकलीवाल	डीमापुर
,, मंगलचन्द मेघराज पाटनी	इम्फाल
,, मन्नालाल बाकलीवाल	इम्फाल
,, खूबचन्द नेमचन्द पाटनी	कलकत्ता
,, किशनलाल सरावगी एण्ड कं०	डीमापुर
,, चांदमल पारसमल बड़जात्या	कलकत्ता
,, सोहनसिंह कानुगा	नागौर
,, भंवरीलाल सरावगी	गोहाटी
,, निर्मलकुमार सबलावत	कलकत्ता
,, पूसराज बाकलीवाल	गोलाघाट
,, सेठी फ्लोर मिल्स प्रा० लि०	गोरखपुर
,, जयचन्दलाल सबलावत	डेह
,, लादूलाल बाकलीवाल	गोलाघाट
,, पूनमचन्द पाटनी	बारसोई

श्री दिगम्बर जैन महिला समाज प्रेरणा ब्र० मदीबाई	डेह
„ बा० इन्द्रचन्द पाटनी	मैनागुड़ी
„ फूलचन्द राजकुमार सेठी	डीमापुर
„ प्रकाशचन्द पाण्ड्या	कोटा
„ डूंगरमल सबलावत	डेह
„ ब्र० मदीबाई धर्मपत्नि जीवनमल बगड़ा	डेह
„ हुलासीदेवी धर्मपत्नि फतेहचन्द पाटनी	डेह
„ छगनमल सरावगी एण्ड कं०	गौहाटी
„ हुलासचन्द पाण्ड्या	सुजानगढ़
„ नन्दलाल महावीरप्रसाद सेठी	इम्फाल
„ श्री दिगम्बर जैन महिला समाज	गिरिडीह
„ धूसराज पाटनी	जोरहाट
„ सेठ सुनहरीलाल जैन	आगरा
„ रामचन्द्र बाकलीवाल	डेह
„ मांगीलाल बड़जात्या	नागौर
„ सुगनचन्द फूलचन्द पाण्ड्या	डेह
„ बद्रीप्रसाद सरावगी	पटना
„ भागचन्द जैन	कलकत्ता
„ वीरेन्द्रकुमार जैन	कलकत्ता

विशेष :—इसके अलावा अन्य भी साधारण सहयोग तो कई महानुभावों का प्राप्त हुआ है परन्तु सभी का नाम देने में असमर्थ हैं कृपया क्षमा करें।